TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

No. LXXII

# THE

# ÎSÂNASIVAGURUDEVAPADDHATI

BY

ÎSÂNASIVAGURUDEVAMISRA

---

EDITED BY

MAHÂMAHOPÂDHYÂYA

T. GANAPATI SASTRI

*Curator of the Department for the publication of Sanskrit Manuscripts, Trivandrum.*

---

**(Part—II. Mantrapada)**

PUBLISHED UNDER THE AUTHORITY OF THE GOVERNMENT OF HIS HIGHNESS THE MAHARAJAH OF TRAVANCORE.

---

TRIVANDRUM:
PRINTED BY THE SUPERINTENDENT, GOVERNMENT PRESS.
1921.

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ७२.

# ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

श्रीमदीशानशिवगुरुदेवमिश्रविरचिता

संस्कृतग्रन्थप्रकाशनकार्याध्यक्षेण
महामहोपाध्यायेन
त. गणपतिशास्त्रिणा
संशोधिता ।

---

द्वितीयो मन्त्रपादः ।

सा च
अनन्तशयने
महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन
राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

---

# PREFACE.

A note on Īsānasivaguru, the author of Īsānasivagurudevapaddhati, was kindly prepared and sent to me at my request by Mahāmahopādhyāya Haraprasāda Sāstri M. A., C. I. E, of Calcutta; and I am glad to add the note as preface to this second part of Īsānasivagurudevapaddhati. The note runs as follows:—

"Mahādeva performed a sacrifice at Dāruvana from which rose the founder of a line of Munis who successively lived at Kadambaguhā Sankhamaṭhika Torambi, and Āmardaka Tīrtha— all in Gwalior State. One of the line, performed severe austerities on Uttama Sikhara. His name was Purandara. Attracted by his austerities and piety, a local Chief Avantivarman by name, became his disciple in the early years of the 9th century and gave his capital city, Mattamayūra, as his Dakshinā. There the Guru built a great maṭha, and from this time, the line became known as Mattamayūra-Vamsa. He also built another Maṭha at Raṇipattra (Raṇipadra), which has been identified with Rānod in the state of Gwalior half-way between Jhānsī and Guṇā. He had many successors: Kavachasiva, Sadāsiva, Hridaya Siva and Vyoma Siva. (*Epigraphia Indica, Vol. I p. 351 ff*)

Lambakarna, one of this line, migrated from Raṇipattra to Gorāṭika Maṭha in Dhārā and was at once taken "as his own" by the king there. In this branch of the line was born Īsanasiva and Hridaya Siva II, the author of a Saiva Smriti work, entitled Prāyaschitta Samuchchaya (Ms. in the Nepal Durbar Library).

Another branch of the same line settled in the sea-coast of Konkan under the auspices of Rattarāja, the Silhar prince about the year 930 of the Saka Era. (Epi. Ind. Vol. III 297 ff).

Thus the Mattamayūra Vamsa was settled all over Central India from the West Coast to the borders of Magadha. They were greatly respected by the kings of the Chedi, Paramāra, Rāshtrakūṭa Chālukya lines and their Sāmantas.

In Saka 960, Brahmasambhu, belonging to the Karkaroni branch of this line, wrote a work entitled, Naimittika Kriyānusandhāna (Ms. in A. S. B.). But the most important work for the prsent purpose is Pratishthā Darpaṇa (Ms. in A. S. B.) written by Vairochana, a disciple of Īsāna Siva, the

author of Īsānasivagurudevapaddhati. His Guru was Vimala Siva worshipped by Nirbhara Bhūmipa. Vairochana himself does not seem to have been a Yogi, but a prince, the son of Dvāranātha, son of Gopāla Bhūpāla.

Another work on Pratishthā by a disciple of Kumāra Siva who by his name seems to belong to the same line of Gurus, was written at Benares in the early years of the 11th century, as Kumārasiva was the Guru of Mūlarāja, the founder of the Chālukya Dynasty of Guzarat. (Ms. in A. S. B. dated 1090 A. D.)

So Īsānasiva's book now presented to the public embodies the teachings of a long line of Saiva Yogins who were very influential all over India during the 9th, 10th and 11th centuries and the Mss. of whose works are now found in places, so distant as Nepal and Travancore."

Trivandrum,<br>4th May 1921. } T. GANAPATI SASTRI.

## विषयानुक्रमणी ।


| विषयः | पृष्ठम्. | विषयः | पृष्ठम्. |
|---|---|---|---|
| प्रपञ्चगणपत्यधिकारः | १ | दीक्षाधिकारः | ७८ |
| महागणपतिविधानम् | १४ | त्वरितापञ्जराधिकारः | ७९ |
| विनायकैकाक्षराविधानम् | १७ | पूजाधिकारः | ८३ |
| सिद्धविनायकविधानम् | १८ | नित्यक्लिन्नाधिकारः | ८४ |
| उच्छिष्टविघ्नेशाधिकारः | २० | वज्रप्रस्तारिण्यधिकार | ८५ |
| दशभुजादिगणपत्यधिकारः | २१ | नित्यात्र्यक्षर्येकाक्षराधिकारः | ८६ |
| त्रिपुरासंग्रहे पीठपादुकान्यासः | २६ | मातृकामालिन्यधिकारः | ८७ |
| मूलमन्त्रन्यासः | २७ | गौरीविधानाधिकारः | ८८ |
| त्रिपुरासंग्रहाधिकारः | ,, | महाशक्तिविधानम् | ९१ |
| हंसवागीश्वरीविधानम् | ३६ | दुर्गापञ्चके मन्त्रपूजाद्यधिकारः | ९२ |
| दशाक्षरीवागीश्वरीविधानम् | ३९ | दुर्गापञ्चकप्रयोगविधिः | ९५ |
| सिद्धवागीश्वरीविधानम् | ४३ | वनदुर्गामन्त्रोद्धाराद्यधिकारः | १०२ |
| गणवृत्ताधिकारः | ४४ | पूजाधिकारः | ,, |
| गणच्छन्दोमात्राच्छन्दोवृत्ताधिकारः | ४९ | वनदुर्गाधिकारः | १०४ |
| श्रीहृदयम् | ५२ | दुर्गाहृदयाधिकारः | १०९ |
| चतुर्हस्तिविधानम् | ५३ | पूजाधिकारः | ११० |
| श्रीरेखाविधानम् | ५६ | शूलिन्यधिकारः | १११ |
| कमलावासिन्यधिकारः | ,, | वसुधाराधिकारः | ११३ |
| पुरश्चरणाधिकारः | ५८ | भूहृदयाधिकारः | ११९ |
| न्यासाधिकारः | ,, | त्रिपुटाधिकारः | १२१ |
| विषममात्रावृत्ताधिकारः | ६० | आकृष्टिशक्त्यधिकारः | १२२ |
| सामान्यशक्तिपूजाधिकारः | ६१ | अन्नपूर्णाधिकारः | १२३ |
| हृल्लेखापूजाधिकारः | ६३ | देवीमन्त्राधिकारः | ,, |
| भुवनाधिपतिपूजाधिकारः | ६४ | मातङ्गीमन्त्राः | १२४ |
| एकादशावरणपूजाधिकारः | ६५ | सूर्याधिकारः | १२६ |
| क्रूरसौम्ययजनाधिकारः | ६६ | भास्करषडक्षराधिकारः | १३१ |
| शक्तिदीक्षाधिकारः | ६७ | संग्रामविजयाधिकारः | ,, |
| अभ्युदयाधिकारः | ६८ | मार्ताण्डभैरवाधिकारः | १३२ |
| खड्गसाधनाधिकारः | ७० | सौरयाजुषाष्टाक्षरमन्त्रः प्रयोगश्च | १३४ |
| दर्पणपूजाधिकारः | ७१ | शैवमन्त्रसाधनाधिकारः | १३७ |
| मुद्राधिकारः | ७२ | एकावरणाधिकारः | १४१ |
| त्वरिताधिकारे धननित्यपूजा | ७४ | पूजाक्रमः | १४३ |
| होमविधिः | ७८ | विनियोगाधिकारः | १४६ |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| शैवाष्टाक्षराधिकारः | १४९ |
| मृत्युञ्जयाधिकारः | १५१ |
| त्र्यम्बकाधिकारः | १५३ |
| शताक्षराधिकारः | १५७ |
| दक्षिणामूर्त्यधिकारः | १५८ |
| अघोरास्त्रमन्त्रसाधनाधिकारः | १६० |
| सामान्ययागाधिकारः | १६३ |
| केवलरोगशान्तिः | १६८ |
| गवाश्वादिशान्तिः | १६९ |
| पौष्टिकम् | ,, |
| स्वसेनारक्षणम् | १७० |
| पाशुपतास्त्रादिमन्त्रसाधनाधिकारः | १७१ |
| व्योमव्यापिप्रकरणम् | १७६ |
| पिण्डाधिकारः | १७७ |
| चिन्तामणिमन्त्रसाधनाद्यधिकारः | १७९ |
| शास्तृपूजाधिकारः | १८४ |
| शास्तृमन्त्राधिकारः | १८७ |
| क्षेत्रपालविधिः | १८८ |
| चण्डेश्वरमन्त्रसाधनम् | १८९ |
| इन्द्रपूजाधिकारः | १९० |
| जम्भलमन्त्राधिकारः | १९१ |
| कर्णयक्षाधिकारः | १९३ |
| यक्षिण्यादिमन्त्राः, विनियोगश्च | १९४ |
| अष्टाक्षरमन्त्राधिकारः | १९९ |
| श्रीकराष्टाक्षरगोपालमन्त्रः | २१० |
| विष्णुहृदयाधिकारः | ,, |
| सामान्यसाधनाधिकारः | २११ |
| त्रिषवणध्यानाधिकारः | २१३ |
| सामान्यतः कृष्णयजनविधिः, विनियोगश्च | २१४ |
| नृहरिमन्त्रः | २१८ |
| नृहरिध्यानम् | २१९ |
| नित्यार्चनविधिः | २२० |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| [illegible] | २२२ |
| विनियोगः | ,, |
| [illegible] | २२७ |
| नृसिंहरसायनम् | २२८ |
| नानानृसिंहाधिकारः | ,, |
| नृसिंहैकाक्षरः, मालामन्त्रः, प्रयोगाश्च | २३० |
| महावराहमन्त्राधिकारः | २३४ |
| वराहैकाक्षरविधिः | २३५ |
| वराहमालामन्त्रः | ,, |
| वराहार्चनाविधिः | २३६ |
| सुदर्शनमन्त्रध्यानाराधनप्रयोगाः | २३९ |
| सुदर्शनयन्त्रम् | २४७ |
| सुदर्शनमालामन्त्रः | २४८ |
| त्रैलोक्यमोहनमन्त्रसाधनाधिकारः | २४९ |
| सर्पजातिभेदस्तत्[illegible]श्च | २५८ |
| दंशनभेदाः, तल्लक्षणानि, दष्टस्यावस्थाविशेषाश्च | १६० |
| अनिष्टस्थानानि | २६२ |
| दूतवाक्याक्षरनियमः | ,, |
| साध्यत्वतद्विपर्ययसूचकनिमित्तानि | २६३ |
| विषतिमन्त्राधिकारः | २६५ |
| विषहरनानामन्त्रध्यानविनियोगविधानम् | २६७ |
| फणिचिकित्सा | २७२ |
| मण्डलिचिकित्सा | २७४ |
| राजिलचिकित्सा | २७६ |
| सर्वाहिचिकित्सा | २७७ |
| वृश्चिकचिकित्सा | २७८ |
| आखुविषचिकित्सा | २७९ |
| लूताचिकित्सा | २८१ |
| नानाप्राणिविषचिकित्सा | २८२ |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| नानास्थावरद्रव्यविषचिकित्सा | २८६ |
| खड्गरावणबालचिकित्सा | २८८ |
| बालपीडकग्रहतच्चेष्टाः, तत्प्रतीकारविधयश्च | २९२ |
| ग्रहाणां भेदाः, तदाविष्टस्य लक्षणं, तद्विमोचनोपायाश्च | २९८ |
| भूततन्त्राधिकारः | ३०१ |
| अपस्मारोन्मादचिकित्साधिकारः | ३११ |
| कृत्तिकादिनक्षत्रक्रमेण रोगसम्भवे निवृत्त्यवधिः तत्तद्देवताभ्यो बलिप्रक्षेपश्च | ३१४ |
| ज्वरादिनिवर्तकदानमन्त्रयन्त्रहोमौषधादिविधिः | ३१७ |
| नानारोगचिकित्साधिकारः | ३३१ |
| क्षुद्रप्रयोगतत्प्रतीकाराधिकारः | ३४४ |
| लवणमन्त्राधिकारः | ३५६ |
| सर्वजनसंवननाधिकारः | ३६० |
| गोरक्षाधिकारः | ३६६ |
| नानाद्रव्यभावनाधिकारः | ३६८ |
| महेन्द्रजालोक्तविस्मयप्रदनर्मप्रकाराः | ३७२ |
| पञ्चपक्षिणः, प्रतिपदादितिथिक्रमेण नाडीभेदेन च तेषां बाल्याद्यवस्थाः, भुक्त्यादिकर्माणि तत्फलभेदाश्च | ३८० |
| युद्धार्थं गमने वर्जनाय विष्टिराहुमातृकादिदेशकालनिरूपणम् | ३८६ |
| मनुष्यशरीरे नक्षत्राणां ग्रहाणां चावस्थानं, कुंजास्थितनक्षत्राङ्गस्य विशेषतो रक्षणीयत्वं च | ३८७ |
| शस्त्रवारणाधिकारः | ३८८ |
| मुमुक्षोः प्रस्थानसमये कर्तव्यविधिः | ३९१ |
| आयुरियत्तावेदननिमित्तानि | ३९२ |
| आयुर्वर्धनरसायनविशेषविधिः | ३९३ |
| मृत्युविजयोपायाः | ३९४ |
| कृत्स्नमन्त्रपादार्थसंग्रहः | |

॥ श्रीः ॥

# ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

श्रीमदीशानशिवगुरुदेवमिश्रविरचिता ।

## ( द्वितीयो मन्त्रपादः । )

### अथ पञ्चदशः पटलः ।

वन्दे सिन्दूरसन्दोहसुन्दरारुणरोचिषम् ।
स्तम्बेरमाननं देवमिन्द्रादिसुरवन्दितम् ॥ १ ॥

महदहङ्कृतिखानिलकानलक्षितिगुणोदयशक्तिविजृम्भितम् ।
जगदिदं गणसंज्ञितमस्य यद् गणपतिः[1] पतिरेष शिवः स्वयम् ॥ २ ॥

विकुरुते निखिलं खलु शक्तितः पुरुष एष शिवः स चिकीर्षया ।
तदवनं च ससंहृतिमिच्छया वितनुते तनुभेदविलक्षणः ॥ ३ ॥

हरिविरिञ्चिमहेशमुखाः सुरा जगति विघ्नगणैरपि निघ्निताः ।
गणपतेर्यजनं खलु तन्वते यदत एव विभुर्हि विनायकः ॥ ४ ॥

स खलु प्रपञ्चमखिलं व्यसृजत् पुरतोऽवनाय किल तस्य विभुः ।
अथ भूतये च जगतामतनुस्तनुमास्थितो गजमुखीमभवत्[2] ॥ ५ ॥

समुपोढविश्वनिखिलाध्वगणां गुणधातुबीजरवषट्कयुताम् ।
परमाङ्गषट्कविहिताङ्गविधिं वरमूर्तियुङ्मिथुनषट्कमयीम् ॥ ६ ॥

जगदेकभूतिजननीमजरां कमलाम्बुजाक्षगिरिजागिरिशैः ।
रतिमन्मथावनिवराहयुतैः परितो गिरा च चतुरास्यवृताम् ॥ ७ ॥

स्मरति वा समनुं सविधानकं प्रतिदिनं तमिमं गणनायकम् ।
अपचितिं प्रविधाय जपेच्च यैः[3] स खलु सर्वसमीहितभाजनम् ॥ ८ ॥

---

१. 'ति', २. 'गु' ख. पाठः. ३. 'वः' क. पाठः.

G. P. T. 1214. 500. 24-11-19. B

प्रणववाग्भवयोरितरत् पुरस्तदनु मागिरिजास्मरबीजयुक् ।
अवनिबीजगतं भुजमध्यमं शशिकलाढ्यसवामविलोचनम् ॥ ९ ॥

तदनु दण्डयुतो भुजमध्यमो गणपतेः खलु बीजवरो ह्ययम् ।
षडिति बीजवराणि समुद्धरेदखिलसिद्धिकराणि यथाक्रमम् ॥ १० ॥

उदकमक्षियुतं कथितं ततः पवनसारथिरूढ[१]विलोचनम् ।
सनयनावथ खड्गिभुजङ्गकाविति पुरोर्णचतुष्टयमुद्धरेत् ॥ ११ ॥

ह्रिणाश च ह्रषः ह्रष डट् सर्वलोकहृदयं मे वशं कुरु ठठ ॥

श्रुतिवेदवेदगुणभोगिरसैर्गणितैः स्ववर्णनिकरैस्तु मनोः ।
पृथगुक्तबीजसहितैस्तु भवेदथ सर्ववित्प्रमुखजातियुतैः ॥ १२ ॥

सर्वज्ञाय नित्यतृप्ताय अनादिबोधाय स्वतन्त्राय अलुप्तशक्तये अनन्तशक्तये एवं क्रमेण स्वा[२]र्णैरायोज्य षडङ्गानि भवन्तीति यावत् ।

करशुद्धिमस्त्रमनुना तनुतां निदधात्वथाङ्गुलिषु चाङ्गमनून् ।
तलमध्यके तदनु चास्त्रमनुं लिपिवर्णमूलपदवच्च तनौ ॥ १३ ॥

तत्राङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं हृदयादिनेत्रान्तानङ्गमन्त्रान् विन्यस्यास्त्रमन्त्रं च हस्ततले तदनु लिपेरवर्गाक्षरादिकानि षड्बीजानि त्रिष्कृत्वो मुखे विन्यस्य कचटतपयादीनि षड्वर्गाणि मूलमन्त्रस्य विकारादीनि षट् पदानि भुजद्वयपादद्वयपार्श्वद्वयेषु पृष्ठनाभिहृदयेषु च विन्यस्यात्मानं मातृकाम्बुजगतं सशक्तिकं गणपतिं ध्यायेदिति यावत् ।

हृदयादिकेष्वथ षडङ्गमनून् निजशस्त्रतोऽपि च दिशां कलनम् ।
पुनरस्त्रतो ज्वलितवप्रविधिं परितस्तु तर्जनिकया रचयेत् ॥ १४ ॥

अपि वामदेवमृषिमस्य तथा प्रवदन्ति केचन तथा गणकम् ।
तदनन्तरापि च निवृत् कथितो भगवान् प्रपञ्चगणपोऽधिपतिः ॥ १५ ॥

गुरुमुखात्तमनुं तदनुज्ञया गिरिनदीतटदेवगृहादिके ।
क्वचिदभीष्टमनोहरलक्षणं त्वभिनवं प्रविधाय मठं ततः ॥ १६ ॥

समुचिताहृतपूजनसाधनो विहितनैत्यककर्म न हापयन् ।
जपतु लक्षमतन्द्रितधीर्मनुं व्रतिजनोदितशस्तमिताशनः ॥ १७ ॥

---

१. 'वि', २. 'स्व' क. पाठः.

इति पूर्वसेवनविधौ चरिते मनुरेष सिद्धिमधिकां तनुते ।
प्रतिवासरं यजनहोमजपैर्भजतां भवन्त्यभिमतान्यचिरात् ॥ १८ ॥

अथ लिख्यतेऽस्य तु विधानवरं स्मरणेन सिध्यति च यस्य मनुः ।
प्रविलिख्य चित्रतरचित्रपटं विभवे यजेत् सति न चेन्मनसा ॥ १९ ॥

अथ चिन्तयेदुदधिमिक्षुरसं लहरीतरङ्गशतरम्यतरम् ।
तिमिनक्रशङ्खकुलमीनगणैः सतिमिङ्गिलाकुलजलोल्लसितम् ॥ २० ॥

पुलिनं च मध्यभुवि तस्य महन्मणिपर्वतं च शिखरोपचितम् ।
परितस्तमालवनतालशतैः सरलैश्च सालघनसारनगैः ॥ २१ ॥

सकदम्बनिम्बनिकुरुम्बयुतैरपि नालिकेरकरकेलिशतैः ।
वरकुण्डहालिनिचुलाम्रवणैः कदलीवनैश्च रमणीयतटम् ॥ २२ ॥

नवपूगपूगगतनागलताकुलसल्लकीलवलिकामरिचैः ।
सलवङ्गबिल्ववकुलैश्च मिलन्मदचञ्चलीककुलनादकलम् ॥ २३ ॥

सहकारकोरकरसास्वदनोन्मदकोकिलस्वनसनाथमरम् ।
चमरैरपि स्मरकैश्चरितं सुरकिन्नरासुरवराध्युषितम् ॥ २४ ॥

नवपल्लवाकुलगुलुच्छमिलत्कलिकोन्मिषत्कुसुमभारततीः ।
व्रततीभिरत्र दधतीभिरलं समलङ्कृतं खगकुलाकुलितम् ॥ २५ ॥

कुवलयैः कमलैः समलङ्कृतं समरसं सरसामपि सारसैः ।
क्वचन कैरवकैर्विकचोत्पलैः कुरवकैः कलहंसकुलैरपि ॥ २६ ॥

तटपरिस्रुतनिर्झरशीकरोत्करभरैर्गजदानमनोहरैः ।
चलितचन्दनचम्पककेतकीपरिमलैरनिलैरपि सेवितम् ॥ २७ ॥

सकलशीतकरोदयचन्द्रिकाविशदतारकजालकमेकतः ।
गगनमुद्यदुदंशुमदंशुना विलसितं क्वचिदम्बुवहैरपि ॥ २८ ॥

समधुमाधवशुक्रशुचि[1]श्रिते नभसि युक्तनभस्यमिषोर्जयोः ।
सहसि स[2]ङ्गि सहस्यसमं तपः कुसुमसंपदलम्भि तपस्यता ॥ २९ ॥

ऋतुगणेन समानगुणोदयं सततसंभृतकौसुमसम्पदा ।
समधिकं समलङ्कृतकाननं कनकचारुतटं प्रविचिन्तयेत् ॥ ३० ॥

---

१. 'चिस्मितौ न', २. 'घस्यताम् । ' ग. पाठः.

तन्मध्यहेमशिखरे मणिहेमभूमौ वप्राणि सप्त कनकोज्ज्वलभित्तिकानि ।
ध्येयानि तत्र च विमानशतानुकीर्णाः कक्ष्याश्च सप्त पृथगुच्छ्रितगोपुरान्ताः ॥

तासां तु मध्यविनिविष्टमनन्तरत्नच्छायावृतं कनकमण्डपमुच्चशृङ्गम् ।
दिव्यं शशाङ्कमणिकुट्टिमभूषितं स्याद् ध्येयं विशालचतुरश्रमतीव रम्यम् ॥

मुक्तास्रगञ्चितवितानसनाथमध्यं हैमैर्मणिप्रवरवज्रविकारचित्रैः ।
कुम्भैर्विराजितमथास्य चतुर्दिशासु द्वाराणि चित्रमकराकृतितोरणानि ॥ ३३ ॥

नानाविधैर्मधुरसैः परिलम्बमानैः पक्वैः फलैश्च कुसुमैर्वरमाल्यदामैः ।
शाल्यग्रकैः कनकपल्लवमोदकैश्च व्यालम्बितैस्तु परिमण्डितमण्डपान्तम् ॥ ३४ ॥

समन्ततः साङ्कुरपालिकाभिर्मणिप्रदीपैश्च हिरण्यदीपैः ।
सधूपपुष्पाक्षतगन्धपात्रैः सचामरस्वस्तिकशङ्खपद्मैः ॥ ३५ ॥

विराजितं दर्पणपूर्णकुम्भैः सलाजकुम्भैरपि तत्र तत्र ।
समाहितैर्वामनकुब्जकाद्यैर्गणैः समन्तात् समलङ्कृतं तत् ॥ ३६ ॥

अथार्घ्यतोयोक्षितगन्धपुष्पस्वात्माम्बुयागालयमण्डपः सन् ।
भुवस्तलानामपि चाप्यधस्तादाधारशक्तिं तु यजेत् पुरस्तात् ॥ ३७ ॥

ततस्त्वनन्तं पृथिवीधरं तं पृथ्वीं च संपूज्य तु योगपीठम् ।
यजेदनन्तात्मकमस्य पादान् धर्मादिकानुक्ततनून् यथावत् ॥ ३८ ॥

रजस्तमस्सत्त्वमयानि कुन्दं नालाम्बुजे च प्रविचिन्त्य पद्मे ।
क्रमेण सूर्याग्निनिशाकराणां तत्पत्रतत्केसरकर्णिकाः स्युः ॥ ३९ ॥

तन्मातृकाब्जं लिपिवर्णजुष्टं पूर्वोक्तभङ्ग्या परिभाव्य तस्मिन् ।
दिक्पत्रकोणच्छदनक्रमात् स्युः पूज्याः सपीठाष्टकमातृरुद्राः ॥ ४० ॥

प्राच्यां श्रीकामरूपो यमदिशि च तथा कोल्लपूर्वो गिरिः स्यात्
सोपाराख्यं प्रतीच्यां धनददिशि तथा चोड्डियाणं तु पीठम् ।
आग्नेय्यां चापि तद्वन्मलयगिरिरथ श्रीकुलान्तं निर्ऋत्यां
जालन्ध्रं वायुभागे त्रिणयनहरिति स्यात् तथा देविकोट्टम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्म्याद्याश्चण्डिकान्ताः पृथगिह कथिता मातरस्तेषु पूर्वं
दीर्घैर्युक्ताः स्वरैस्ताः शशधरशकलैर्ह्रस्वबिन्दुस्वरैस्ते[1] ।

---

1. 'स्तैः' ख. पाठः

युक्ताः स्युश्चासिताङ्गो रुरुरथ कथितश्चण्डकः क्रोधनाख्य-
श्चोन्मत्तोऽन्यः कपाली तदनु निगदितो भीषणः संहृतिश्च ॥ ४२ ॥

तारश्रीयुतपीठनामसहितः पीठेतिशब्दः स्वरो
दीर्घः स्यादथ मातृनामसहितं तत्तच्चतुर्थ्यां तु हृत् ।
ह्रस्वा बिन्दुयुताः स्वराश्च कथिता नाम्ना सिताङ्गादय-
श्चाप्यष्टावथ भैरवाय च नमस्तत्पादुकेभ्यस्तथा ॥ ४३ ॥

ब्रह्माण्याद्यास्तु देव्यः स्वसुरसमवपुर्वर्णवाहायुधाद्याः
कृष्णा रक्ताच्छपीतास्त्वरुणशुकनिभाः स्वर्णताम्रप्रभास्ते ।
भूषाढ्या भैरवाः स्युः सितमुखकमलाः स्वाक्षमालाकपाला-
श्चन्द्रोत्तंसास्त्रिनेत्रास्त्वरुणनिवसनालेपमाल्या विचिन्त्याः ॥ ४४ ॥

आमोदोऽथ प्रमोदस्तदनु च सुमुखो दुर्मुखोऽन्यस्तु विघ्न-
स्तद्वद् वैनायकाख्यः षडिति गजमुखा दिव्यभूषाम्बराढ्याः ।
सिद्धिः कान्तिः समृद्धिस्त्वथ मदनवती क्लिन्नया क्लेदनी चे-
त्याभिर्वामाङ्कगाभिः स्मररसललिताः शक्तिभिस्तेऽर्चनीयाः ॥ ४५ ॥

दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः शङ्खपद्मनिधी वसुमत्या वसुधारया च शक्त्या श्लिष्टदेहौ वसुवर्षिणौ सुपूज्यौ ।

षडेते गणेशाः प्रियालिङ्गिताः स्युः सुरेशाम्बुपाग्नीशरक्षोनिलानाम् ।
दलेष्वर्चनीया निधी शङ्खपद्मौ प्रवर्षद्धनौ याम्यसौम्यच्छदस्थौ ॥ ४६ ॥

तदन्तर्वृतावङ्गमन्त्रा गजास्या हृदाद्यास्तु कोणच्छदेष्वर्चनीयाः ।
दिशास्वस्त्रमेषां पुरो नेत्रमिष्ट्वा स्वनाम्ना नमोन्तं च पञ्चोपचारैः ॥ ४७ ॥

अथ विभाव्य निशाकरमण्डलं गगनपाण्डरपङ्कजमध्यगम् ।
शशिकलांशुसहस्रपरिस्रवत्सिततसुधामयशीकरवर्षि यत् ॥ ४८ ॥

सुषिरमस्य च मध्यगतं तनुं तरलदीपशिखानुकृतिं त्विषा ।
शिवमयं रुचिमत् प्रविचिन्तयेत् परिलसत्परबिन्दुरवोदयम् ॥ ४९ ॥

---

१. 'तु तत्', २. 'नपति क्लि', ३. 'न्तद्रुता', ४. 'वशम', ५. 'भ्यां तु क्रो' क. पाठः.

आनीयास्मादिन्दुसुधाशीकरशीतं सूक्ष्मं ज्योतिर्मूर्धनि सौषुम्नसरण्या ।
विन्यस्याब्जे मन्त्रतनुं तत्र गणेशं तेजोराशिं तप्तहिरण्यद्रवभासम् ॥ ५० ॥

पुष्पापूर्णं स्वाञ्जलिमायोज्य तु तस्मिन् दिव्यं ज्योतिः पङ्कजमध्ये विनिवेश्य ।
ध्यायेद् देवं सुन्दरदेहं कनकाद्रिसदृक्षं भासा भानुसहस्रोदयतुल्यम् ॥ ५१ ॥

द्वादशबाहुः शेखरितेन्दुस्त्रिदृगिभवरमुखरुचिरतरवपुः
शङ्खरथाङ्गे चाङ्कुशपाशौ मनसिजधनुरपि सरसिजविशिखान् ।
कल्पकशालिकामुकशूले भयहरवरकरमपि दधदवतात्
पद्मनिविष्टः शक्तिसखो वो गणपतिरिभकरधृतमणिचषकः ॥ ५२ ॥

क्षमाङ्घ्रिपद्मं खतनुं रसोदरं रवीन्दुवह्नित्रिदृशं मरुद्ध्वनिम् ।
प्रधानबुद्ध्यक्षशिरोविचेष्टितं समस्तलोकास्पदविश्वविग्रहम् ॥ ५२ ॥

पिशङ्गकौशेयनिभाम्बराम्बरं प्रलम्बतुन्दाश्रितविश्वविष्टपम् ।
विचित्रहारोल्लसितोरुवक्षसं भुजङ्गमाधीशकृतोपवीतकम् ॥ ५४ ॥

सुजाटजूटार्पितहेममौलिनं कलामयं ज्ञानशशाङ्कशेखरम् ।
प्रपञ्चविद्यामयचारुविग्रहं समस्तशोभैकगुणास्पदं विभुम् ॥ ५५ ॥

सहेमनिष्काङ्गदकण्ठभूषणं विचित्रनानावलयाङ्गुलीयकम् ।
विनीलरत्नोदरबद्धमण्डितं पिशङ्गरत्नोज्ज्वलहेमनूपुरम् ॥ ५६ ॥

सुखोपविष्टं सरसीरुहोदरे पदाम्बुजं दक्षिणमर्थवर्षिणि ।
सलीलमाधाय पुरो हिरण्मये सरोजवक्त्रे कलशे विचिन्तयेत् ॥ ५७ ॥

सव्यमङ्कमुपाश्रितां सकलेश्वरीं त्रिगुणात्मिका-
मव्ययां निजशक्तिमक्षरमातरं जगतामपि ।
भव्यरूपमनोहरामुरुपारिजातमुपाश्रितां
दिव्यकल्पकवल्लरीमिव कामदां प्रविचिन्तयेत् ॥ ५८ ॥

बन्धुजीवदलत्विषा रजसा निजाङ्गरुचारुणां
कुन्दकुड्मलकोमलस्मितचन्द्रिकाधवलप्रभाम् ।
चञ्चलीकविनीलवेल्लितकेशपाशभरासिता-
मङ्गनां प्रथमामजां प्रकृतिं वदन्त्यपि यां विदः ॥ ५९ ॥

---

१. 'म्बा' ख. पाठः. २. 'य' क. ग. पाठः. ३. 'न्ध' ख. पाठः.

अङ्घ्रिपङ्कजयुग्मदीधितिनिर्जितस्थलपङ्कजां
　जङ्घयोर्युगकान्तिभिर्जितकेकिनीगलमङ्गलाम् ।
अङ्गवत् कदलीप्रकाण्डमनोरमोरुयुगश्रियं
　सुन्दरीं[1] रशनास्पदेन च सुन्दरेण सुमध्यमाम् ॥ ६० ॥
बिभ्रतीं तनुनोदरेण तु रोमराजिमणीयसीं
　कज्जलोल्ललितां यथैव वलित्रयं च मनोहरम् ।
रुक्मकुम्भयुगस्तनीं नवपारिजातलताभुजां
　तुङ्गरत्नविभूषणेन गलेन चाप्यतिमङ्गलाम् ॥ ६१ ॥
शारदेन्दुमुखीं तरङ्गचलन्नवोत्पललोचनां
　चारुकर्णयुगावसङ्गिचलत्प्रभामणिकुण्डलाम् ।
चारुनासिकया च रम्यकपोलयुग्मललाटिकां
　मारचापनतभ्रुवं मधुपावलीरुचिरालकाम् ॥ ६२ ॥
स्यन्दमानसमस्तकान्तिरसप्रकर्षगुणास्पदां
　चन्द्रिकामिव शारदीममलप्रभामनपायिनीम् ।
इन्द्रचन्द्रमुखैर्मुनीन्द्रवरासुरैरपि वन्दिता-
　मिन्दिरागिरिजारतिक्षितिवाग्वधूमयविग्रहाम् ॥ ६३ ॥

आश्लिष्यैनं दक्षदोष्णा तदीयं लक्ष्मप्रेम्णा पाणिना संस्पृशन्तीम् ।
देवं चैनां पुष्पचापाङ्कदोष्णा स्वालिङ्गंचाधः संस्पृशन्तं तु नीव्याम्[2] ॥
एवंरूपां मूलशक्तिं च तद्वत् प्रोक्ताकारं देवमप्युक्तवेषम् ।
ध्यात्वा सम्यक् पूजयेच्चोपचारैः शुद्धिं कृत्वा वक्ष्यमाणक्रमेण ॥ ६५ ॥
अस्त्रेण[3] धौतं तु पुरोऽर्घ्यपात्रं चापूर्य तोयाक्षतगन्धपुष्पैः ।
सिद्धार्थदूर्वाफलदुग्धकूर्चैः साङ्गं तु मूलं विनिधाय तस्मिन् ॥ ६६ ॥
तद्द्वादशान्तामृतपूरपूर्णं हंसेन चैतन्ययुतं विभाव्य ।
धेनुं प्रदर्श्याथ सधूपपुष्पैरिष्ट्वा तु कूर्चेन तदर्घ्यतोयैः ॥ ६७ ॥
शिरः स्वमभ्युक्ष्य तथाश्रयं च द्रव्याणि चाम्भः कुसुमादिकानि ।
तद्बिन्दुसंयोगनिरीक्षणाभ्यां विशोध्य पाद्याचनमीयकं च ॥ ६८ ॥

---

१. 'रीं शरणास्प' ख. पाठः.　२. 'व्यां:' क. पाठः.　३. 'श' ख. पाठः.

सत्पुष्पदूर्वाङ्कुरशेखरः सन् गन्धेन कृत्वा तिलकं ललाटे ।
पूर्वोत्तरस्यां दिशि भक्तिनम्रः पञ्चोपचारेण गुरून् यजेत ॥ ६९ ॥

ओं गुरुभ्यो नमः । ओं परमगुरुभ्यो नमः । ओं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । ओं पूर्वाचार्यगुरुभ्यो नमः । ओं महापूज्यपूर्वसिद्धेभ्यो नमः ।

ते रक्तमाल्याम्बरगन्धभूषाः[1] स्वलङ्कृताः पङ्कजविष्टरस्थाः ।
सर्वे च सालम्बनयोगनिष्ठाः प्राप्ताखिलैश्वर्यगुणाष्टकार्थाः ॥ ७० ॥

अथोपचर्यापटलोक्तमार्गादावाहनस्थापनसन्निधानैः ।
निरोधनं चाप्यवकुण्ठनान्तं षड्भिस्तदङ्गैः क्रमशो विदध्यात् ॥ ७१ ॥

अर्घ्यं च पाद्याचमने हृदास्मै देयाश्च गन्धाक्षतपुष्पधूपाः ।
स्नानं षडङ्गैरपि मूलयुक्तैर्मन्त्रैश्च सूक्तैरपि वैदिकैः स्यात् ॥ ७२ ॥

वस्त्राणि माल्यानि च भूषणाद्यं गन्धाक्षते चाप्यथ धूपदीपौ ।
हृदैव दद्यान्मुकुरं च नेत्रान्मूलेन नैवेद्यमपि प्रदेयम् ॥ ७३ ॥

तच्चोत्तमादुत्तमपूर्वमार्गाच्चतुर्विधान्नाज्यफलोपदंशैः ।
युक्तं दधिक्षौद्रसितोपलाज्यैः सलड्डुकैर्मोदकमण्डकाद्यैः ॥ ७४ ॥

शीतं जलं साम्बु च नारिकेलं[2] सक्तूंश्च लाजान् मधुरान् गुलाक्तान् ।
पाण्योर्जलं चाचमनं च दत्त्वा ताम्बूलमष्टाङ्गयुतं निवेद्य ॥ ७५ ॥

[3]फैवोडषां विद्महे [4]वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो गणपतिः प्रचोदयात् ।
गायत्रीयं विघ्नराजस्य योज्या नैवेद्यादौ जप्यहोमादिके च ।
स्तुत्वा स्तोत्रैर्दण्डवच्चापि नत्वा कक्ष्यासंस्थाः पर्षदश्चात्र पूज्याः ॥ ७६ ॥

पद्मो महापद्मनिधिश्च पूर्वे द्वारेऽथ याम्ये मकरश्च कूर्मः ।
पश्चान्मुकुन्दो निधिरप्यनन्तः पूज्यस्ततो नीलनिधिश्च शङ्खः ॥ ७७ ॥

अन्तर्द्वारे बाह्यतो मण्डपस्य प्राच्यां याम्ये पश्चिमे चोत्तरे च ।
स्वर्णाकाराः कल्पवृक्षास्तु पूज्याश्चत्वारस्ते रत्नचैत्यैर्निबद्धाः ॥ ७८ ॥

ते च बिल्वाश्वत्थवटोदुम्बराकाराः कल्पवृक्षा इति यावत् ।

---

१. 'भूषणाः स्व', २. 'नालिकेरं स', ३. 'फवोडषाद्यल वि' ख, 'ढवोडषां वि' ग. पाठः. ४. 'च' ग. पाठः.

बिल्वस्याधः पद्मगतौ श्रीकमलाक्षौ शर्वो गौरी दक्षिणतः पिप्पलमूले ।
न्यग्रोधाधः कामरती पश्चिमतस्तां[१] सौम्ये क्रोडो भूश्च तथोदुम्बरमूले ॥ ७९ ॥

पद्मौ शङ्खं चक्रमथो टङ्कवरैणौ ध्येयाः पाशं चाङ्कुशपुष्पेषुधनूंषि ।
बिभ्राणास्ते तूरपलपूगोत्थगदारीन् शाल्यग्राली कल्पलतेव क्रमशोऽमी ॥ ८० ॥

श्रीमुकुन्दादयोऽष्टौ द्वन्द्वशः क्रमेणोर्ध्वकराभ्यां पद्मादीन्यायुधानि बिभ्राणाश्चाधःकराभ्यां बद्धाञ्जलिपुटा ललितवेषाभरणाद्यलङ्कृता मिथो दाम्पत्यप्रीतिमविच्छिन्नां चिराय प्रार्थयन्तो गणेशाभिमुखं पद्मेषु स्थिता ध्येयाः स्युरिति यावत् ।

दाम्पत्यानां मध्यविदिक्ष्वप्सरसोऽन्तर्गन्धर्वा(र्या)श्चाप्यथ विद्याधरसिद्धाः ।
वह्न्याशाद्यं वादितगीतं सहनृत्तं[२] तन्वानास्ते स्वेष्टफलाप्त्यै खलु चिन्त्याः ॥

तेषां बाह्ये वेदचतुर्गोपुरसंस्थो ब्राह्मया युक्तः कुण्डिकजप्यावलिपाणिः ।
पद्मासीनः पुस्तककुम्भौ च दधत्या शुक्लाकल्पः पङ्कजभूः स्यादभिचिन्त्यः ॥

तत्र गोपुराणां मध्ये कोणेष्वाग्नेयादिषु सनकादयो दक्षादयो वालखिल्याः सप्तर्षयश्च यथाधिकारं ध्यायन्तः सुखासीनाः स्मर्तव्याः ।

तृतीयहारे त्वथ लोकपालान् यजेत् स्वदिक्स्थान् सगणान् सवाहान् ।
याम्ये पितॄनम्बुपतौ च नागान् सौम्ये धनेशं सह यक्षवृन्दैः ॥ ८३ ॥

चतुर्थकक्ष्या[३]निलयांस्तु दैत्यान् सदानवांस्तान् ससुतान् सदारान् ।
यजेद् ऋषीनप्यथ पञ्चमी या वृतिस्तु तस्यां मरुतश्च सर्वान् ॥ ८४ ॥

षष्ठ्यां वृतावुत्तरतो गुरुं च क्षेत्रेशमभ्यर्च्य नवग्रहांश्च ।
मध्ये रविं दिक्षु शशिज्ञधिष्ण्यैः शुक्रं कुजाद्याननलादिकेषु ॥ ८५ ॥

तस्यां ग्रहान् स्कन्दमुखांश्च भूयो भूतानि मातॄश्च यजेद् यथावत् ।
दिव्याधिवर्षाम्बुधिवासिनो ये सकिन्नरास्तेऽन्त्यवृतौ विचिन्त्याः ॥ ८६ ॥

एवं बहिः सप्त यथोक्तकक्ष्यावासास्तु[४] ये दम्पतिकल्पवृक्षाः ।
देवादयः प्रोक्तगणा यथावत् पूज्या गणेशार्चनतत्परास्ते ॥ ८७ ॥

---

१. 'स्तः', २. 'त्तः' क. पाठः. ३. 'क्ष्यांस्तुल' ख. पाठः. ४. 'स्तु देयं प' क. पाठः.

पञ्चोपचारैस्तु यथोपपत्त्या स्वैर्नामभिः पूजनमुक्तमेषाम् ।
वह्नावपीत्थं सगणं गणेशं सन्तर्पयेदाज्यनिवेद्यशेषैः ॥ ८८ ॥

मुद्रास्तु शङ्खारिमुखाः प्रदर्श्या बाहुं मुखे हस्तिकरोपमानम् ।
विन्यस्य सङ्कुञ्चितमध्यमाग्रमङ्गुष्ठयुक्तं गणराजमुद्राः ॥ ८९ ॥

ततो यथाशक्ति जपेच्च नित्यं जपं च पूजां चुलुकोदकेन ।
निवेदयेदङ्घ्रिसरोरुहे[1]ऽस्य क्रमेण मन्त्रैरिह वक्ष्यमाणैः ॥ ९० ॥

ॐ

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता ॥ ९१ ॥

यत्किञ्चित् कुर्महे देव! सदा सुकृतदुष्कृतम् ।
तन्मे शिवपदस्थस्य भुङ्क्ष्व क्षपय शङ्कर! ॥ ९२ ॥

शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।
शिवो[2] जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव तु ॥ ९३ ॥

येयं पूजा कृता देव! जपहोमान्विता मया ।
प्रसीद प्रतिगृह्णीष्व सिद्धिमिष्टां[3] प्रयच्छ मे ॥ ९४ ॥

ततः समाधाय हिरण्यरेतसं यथोक्तसंस्कारविशेषसंस्कृतम् ।
द्विजस्तु हुत्वाभिमुखं च तन्मुखे गणेशमावाह्य जुहोतु सिद्धये ॥ ९५ ॥

धवलकुसुमगन्धः पौर्णमास्यादि हुत्वा घृतगुळमधुयुक्तं पुण्डरीकायुतानि ।
घृतमधुपयसा वा श्रीफलैरर्धलक्षं धनपतिरिव लक्ष्मीमक्षयां विन्दतेऽसौ ॥९६॥

शुक्लां तु प्रतिपदमादितस्त्रिरात्रं वोपोष्य त्रिमधुरपङ्कजैश्चतुर्थ्याम् ।
हुत्वाम्भावयुतमथाधिकं च लक्षं लक्ष्मीं वा निधिमपि पश्यतीति सत्यम् ॥९७॥

नन्द्यावर्तैर्वा भगर्क्षे सहस्रैः पञ्चम्यां वा पुण्डरीकाच्छपुष्पैः ।
द्वादश्यां वा शुक्लपर्वण्यथैवं हुत्वा श्वेतैः पङ्कजैः स्याद् धनेशः ॥ ९८ ॥

नित्यं प्राह्णे वोर्ध्वबाहुर्जपित्वा यावल्लक्षं सूर्यदृष्टिर्धनी स्यात् ।
उत्पाद्याथोदुम्बरं वाप्यशेषं हुत्वा लक्ष्मीं विन्दते मण्डलेन ॥ ९९ ॥

---

१. 'हृ', २. 'वो यजति' क. पाठः. ३. 'च्छां' ख. पाठः.

एकच्छायापत्यगोक्षीरसिद्धं स्पृष्ट्वाभ्यस्तं तच्चरुं प्राशयेद् वा ।
पारावारंगामिनीसिन्धुतोये भानुं पश्यन् वा जपन् स्याद्धनेशः ॥ १०० ॥

नालिकेरपनसैक्षवरम्भासक्तुलाजपृथुकैर्मधुराक्तैः ।
मोदकैश्च सहितैस्तु समांशैर्होम एष खलु कल्पकवृक्षः ॥ १०१ ॥

हुत्वाच्छिद्रानूर्णनाभेस्तु तन्तून् वस्त्रार्थं वा शुक्लरक्तादिपुष्पैः ।
तत्तद्वर्णान्याप्नुयात् कैरवैर्वा वासांस्यब्जैः शोभनैः शोभनानि ॥ १०२ ॥

क्षीराज्याभ्यां सिक्तदूर्वासहस्रं हुत्वा नित्यं स्यादरोगश्चिरायुः ।
पुष्पैः पुष्टिः स्यात् तिलैराज्यमिश्रैः पीत्वाभ्यस्तं वारि रोगान् निहन्यात् ॥

चतुरङ्गुलमात्रमिताः सुहुताः प्रहरन्त्यमृतालतिकासमिधः ।
दधिमध्वभियुक्तघृतस्नपितास्त्वपमृत्युभयं ग्रहदोषमपि ॥ १०४ ॥

सघृतं ससितं परमान्नहुतं सघृतं तु पयः सह कृष्णतिलैः ।
असिताहनि पिप्पलमूलजपोऽप्यभिमृश्य हरेदपमृत्युभियम् ॥ १०५ ॥

कलशं तु रवेरुदयेऽब्जगतं परिजप्य दिवा निशि जागरणात् ।
उदये तु रवेरभिषिच्य जयेद् दुरितान्यभिचाररुजोऽपि हरेत् ॥ १०६ ॥

उदये परिपूर्य तथा कलशं घृतहोमदशांशकशेषयुतम् ।
दिनमध्यगते तपने स्नपनात् सुभगस्तु समृद्धिसुतान् लभते ॥ १०७ ॥

सलिलान्नफलादि चरेदमुना परिजप्य तु रोगहरं वचसाम् ।
विभवं वितनोति च दत्तमिदं प्रियकूर्चमथो जनरञ्जनकम् ॥ १०८ ॥

ब्राह्मे काले पर्वणि क्षीणचन्द्रे पाद्मे पत्रे कापिलं गोमयं खे ।
लब्ध्वाभ्यस्तं चायुतं तन्निखातं द्वारे रक्षेद् रोगचोराग्न्यहिभ्यः ॥ १०९ ॥

तद्वद् वह्नौ गोमयाद् भस्म सिद्धं सापस्मारान् क्षुद्रभूतग्रहादीन् ।
हन्याद् रक्षां[1] चावहेच्छ्रीकरं तन्मन्त्रालब्धं[2] चन्दनाद्यं च वश्यम् ॥

तिस्रो रात्रीः प्रागुपोष्योपरागे ब्राह्मीसर्पिस्ताम्रपात्रे वचायाः ।
चूर्णोन्मिश्रं हंसवागीश्वरीयुङ्[3]मन्त्रेणाप्तं वाग्विलासं विधत्ते ॥ १११ ॥

वृष्टिर्भवेद् वेतसजाभिरिष्टा त्रिपत्रजाभिश्च सुताः समिद्भिः ।
हुत्वा कणैर्वारयतीह वृष्टिं तथार्कपुष्पैर्मधुरैर्जयं च ॥ ११२ ॥

---

१. 'रक्षाद्वोव' ख., 'रक्षां चालभेत' ग. पाठः. २. 'ब्यं' क. पाठः.
३. 'रीयं म' ख. ग. पाठः.

अन्नेन चान्नं मधुरैस्तु विन्देत् पलाशकौदुम्बरबोधिजाभिः ।
प्लक्षोद्भवाभिर्हवनात् समिद्भिः क्रमेण वर्णान् वशयेद् द्विजादीन् ॥ ११३ ॥
बैल्वैः फलैः सरसिजैश्च नृपा वशे स्युः श्वेतोत्पलैर्जनपदा लवणाज्यलाजैः ।
कन्याः सलोणमधुना हवनात् स्त्रियोऽन्यान् ग्रामान् निशाह्वतिलतण्डुलशर्कराभिः॥
राज्ञां तु शत्रुविजयाय विशिष्टदेशे कृत्वा तु मण्डपवरं चतुरश्रशालम् ।
दिग्द्वारतोरणयुतं समलङ्कृतं तत् संच्छाद्य सूक्ष्मवसनैः फलपुष्पमाल्यैः ॥
तत् स्वस्तिकाम्बुजगतं गणनाथमिष्ट्वा कुण्डे जुहोतु मधुरत्रितयेन लक्षम् ।
भक्ष्यैश्च मोदकफलैरपि तद्दशांशं क्षीरौदनैक्षवघृतैस्त्रिसहस्रसंख्यम् ॥ ११६ ॥
मृष्टान्नहेमवसनं प्रथमाश्रमिभ्यो दत्त्वा गवाश्वकनकानि तथैव होतुः ।
सन्तर्प्य च द्विजवरांस्त्रिदशानपीष्ट्वा यास्यन् परान् स हि भवेद् विजयी नरेन्द्रः॥

तेनाभ्यस्ताः शर्कराः सर्पदस्यून् व्याघ्रादीन् वा वारणान् वारयेयुः ।
अग्निं हस्ते धारयेज्जम्भकादीन् रक्षोयक्षान् भूतवर्गांश्च हन्यात् ॥ ११८ ॥
आकृष्याथो योषितं नर्तयेद्वा लोकं सर्वं क्षोभयेन्मन्त्रसिद्धः ।
तेनाभ्यस्तं कज्जलं चन्दनं वा प्रीतिं ह्यामावहेल्लोचनानाम् ॥ ११९ ॥
यत् सिद्धार्थैर्मन्त्रितैः प्राक् सहस्रमश्वत्थान्तः स्थापितैः सप्तरात्रम् ।
पौनःपुन्यं तज्जपात् साधितैस्तैः शत्रून् सर्पांश्चाटयेत् तत्र खातैः ॥ १२० ॥
द्वेषयेत् कलिसमिद्भिरथान्यान् वा तुषान्तरितनिम्बदलैश्च ।
चैत्यकानलविभीतसमिद्भिर्मारयेत् सपदि रक्तविषाभ्याम् ॥ १२१ ॥
अतिरक्तकृष्णमभिचिन्त्य विभुं वनदर्भपुञ्जमभिमन्त्र्य समम् ।
पुरुषप्रमाणमथ शत्रुपथे विकिरेत् तु रोगमुपयान्त्यरयः ॥ १२२ ॥
रसनागतं प्रदहदग्निनिभं प्रतिवादिनो गणपतिं स्मरतु ।
प्रजपन् मनुं शिततदङ्कुशतो लवनेन तं जयति रुद्धमुखम् ॥ १२३ ॥

तृतीयामुपोष्याथ मन्त्री चतुर्थ्यां स्वशक्त्या तु हुत्वा तथाग्नौ फलाद्यैः ।
पयोन्नं घृताढ्यं निवेद्यास्य भक्त्या द्विजेन्द्रांस्तथेष्ट्वा स्वभीष्टं स विन्देत् ॥
पयो वाथ शाकं समश्नंस्तु लक्षं जपेद् यः स सिद्धिं समग्रामुपेयात् ।
द्विजाग्र्यानभीष्टैर्वैद्र्ंश्चेष्टदानैरजस्रं स्वशक्त्या यजेच्चापि विन्देत् ॥ १२५ ॥

अत्रोच्यते कुण्डवरस्य तु प्रागुक्तस्वरूपं गणनाथमिष्ट्वा ।
कुण्डेऽग्निमाधाय पयोघृताभ्यामर्कस्य पुष्पैरपि वालुकाभिः ॥ १२६ ॥
क्षौद्रेण चान्नेन पृथक् क्रमेण हुत्वा तु लक्षाण्यथ कुण्डमध्ये ।
वेतालसंज्ञां गुलिकां लभेत तां धारयन् स्यादणिमादिसिद्धः ॥ १२७ ॥
एवं हि खड्गाञ्जनपादुकाद्यं यद् यत् तदिष्टं लभते स्म मन्त्री ।
किं तन्न लभ्यं भुवनत्रयेऽस्मिन् नास्त्यस्य किं वा बहुनोदितेन ॥ १२८ ॥
शालिपिष्टकदलीफलमाषक्षोदशर्करसनिस्तुषमुद्गैः ।
नालिकेरमधुजीरकलोणैर्व्योषचूर्णसहितं घृतसिद्धैः ॥ १२९ ॥
मोदकैर्हृदयमोदकगन्धस्वादुभिः प्रतिदिनं निजशक्त्या ।
होम एष किल कल्पकवृक्षो वाञ्छितार्थफलदो हि नराणाम् ॥ १३० ॥
शालितण्डुलसनिस्तुषमुद्गैः सार्धशर्करघृतैरपि सिद्धम् ।
नालिकेरकपिलापयसोर्यत् पायसं हुतमभीष्टदमुक्तम् ॥ १३१ ॥
कदलीपनसाम्रगोस्तनीनां बदराणां मधुरत्रयोक्षितानाम् ।
अपि लड्डुकमण्डकादिकानां[1] हवनं कृष्णतिलैश्च कामदं स्यात् ॥ १३२ ॥
चातुर्थिकार्चनहुते विभवानुरूपं नित्यार्चनं च गगनाब्जसुधामयाद्भिः[2] ।
सन्तर्पणं च सकलाभिमतानि पुंसां संसाधयन्ति निखिलान्यपि वाञ्छितानि ॥
ध्यातः शशाङ्कधवलद्युतिरेष देवः स्वैक्येन हस्तचषकामृतवारिवर्षैः ।
सिञ्चन् विषाणि निखिलानि निहन्ति सद्यो जप्त्वा प्रपञ्चमयविग्रहविघ्नराजः ॥
हृत्पङ्कजेऽभिनवपाण्डरपुण्डरीकस्वच्छाभिरामवपुरिन्दुसहस्रकान्तिः ।
अङ्गुष्ठमात्रतनुरूर्ध्वसुधाम्बुसिक्तो ध्यातश्च मृत्युमपि हन्ति विमुक्तिदः स्यात् ॥

इतीह खलु कीर्तितो मनुरयं प्रपञ्चे यथा
तथा च ललितागमे मकुटवातुले तूदितः ।
प्रपञ्चगणनायकस्तु सविधानमन्त्रक्रिय-
स्त्रिवर्गविभवार्थिनां कलियुगेऽपि सिद्धिप्रदः ॥ १३६ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
प्रपञ्चगणपतिपटलः पञ्चदशः ।

---

१. 'कण्टक' ख. पाठः. २. 'ब्जमयासुधाद्भिः ।' क. पाठः.

## अथ षोडशः पटलः ।

तारश्रीशक्तिकामक्षितिगणपतयो बीजभूताः षडादौ
चण्डान्तो[1] नान्तडान्तावषडिरथ मरुद्योनिगो[2]ऽम्भश्चै रक्तम् ।
तोयं वह्निस्तदा त्रिस्तदनु च कथितः सर्वशब्दो जनं मे
मन्त्रो वैनायकोऽयं वशमिति च पदादानयाग्निप्रियान्तः ॥ १ ॥

प्राग्वद् बीजैस्तारकाद्यैस्तु षड्भिर्वैद्यं बीजं तत् तु दीर्घस्वराढ्यम् ।
युक्तं स्वाभिर्जातिभिः षड् यथावदङ्गानि स्युस्तानि चास्त्रान्तमार्गात् ॥ २ ॥

ऋषिस्तथोक्तो गणकः ककुप् स्याच्छन्दस्तु गायत्रमितीह केचित् ।
तद्दैवतं चापि महागणेशः सिद्धिश्चतुर्वर्गफलावसाना ॥ ३ ॥

भवाभावभावप्रसंख्यं जपेत् तत्समर्थो न चेद् भावभावाभसङ्ख्यम् ।
दशांशं च हुत्वा घृतं चाष्टभक्ष्यैर्भवेत् सिद्धमन्त्रो गणेशप्रभावः ॥ ४ ॥

हैमं नानावृक्षषण्डाभिरामं शैलं मध्ये गौलरत्नाकरस्य ।
ध्यायेत् तस्मिन् हेमवप्रावृतान्त दिव्योद्यानं चन्द्रकान्तस्थलान्तम् ॥ ५ ॥

स्थलेऽत्राथ मध्ये षडश्रे तु पीठे गजास्यं सरोजे पुरोक्ते निविष्टम् ।
जपाभं महान्तं सतुन्दं गणेशं विचित्रैः सरत्नैश्च हारैरुपेतम् ॥ ६ ॥

बीजपूरकगदास्मरहेतीरङ्कुशारिजलजान्यपि पाशम् ।
उत्पलं च कलमाग्निकरं वो यो रदं दशभुजो दधदव्यात् ॥ ७ ॥

सव्यमङ्कमधिरोपितशक्त्या श्वेतपद्मकरया स्ववगूढम् ।
गौरहारमणिहेमविचित्रैर्भूषणैरलमलङ्कृतगात्र्या ॥ ८ ॥

रक्तगन्धकुसुमाम्बरमाल्यैर्भूषितं सह तया गणनाथम् ।
पुष्करेण कलशं च दधानं साधकोपरि किरद्वसुवर्षम् ॥ ९ ॥

आमोदोऽथ प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।
विघ्नश्च विघ्नकर्ता च शङ्खपद्मनिधी ततः ॥ १० ॥

शक्राग्नीशानवरुणरक्षोवाय्वग्रगास्तु षट् ।
गणेशाः शङ्खपद्माख्यौ निधी याम्योत्तरस्थितौ ॥ ११ ॥

---

१. 'न्तोढान्तनान्ता व' क. ग. पाठः. २. 'योगिनोऽम्भ' ख. पाठः ३. 'क्त', ४. 'व' ग. पाठः.

श्वेतौ च रक्तावसितौ च वेद्यावामोदपूर्वाः क्रमशस्तु विघ्नाः।
टङ्काक्षमालोर्ध्वकरद्वयाः स्युरर्वाक्कराभ्यां धृतदन्तभक्ष्याः॥ १२॥

शङ्खाब्जसंज्ञौ सितरक्तवर्णौ निधी च तल्लक्षितहस्तयुग्मौ।
ध्येयौ वमन्तौ विपुलं धनौघं परस्परं संमुखयक्षवेषौ॥ १३॥

तीव्रा च ज्वालिनी चैव मोहिनी भोगदा तथा।
कामिनी चेति तेजिष्ठा षडामोदादिशक्तयः॥ १४॥

अङ्गैश्च विघ्नैर्निधियुग्मयुक्तैर्लक्ष्म्यादिभिश्चाप्यथ मातृभिश्च।
शक्रादिभिश्चावरणानि चैवं पञ्चैव पूज्यानि यथाक्रमेण॥ १५॥

पद्माम्बुजाक्षौ पुरतस्तु बिल्वे याम्यां वटाधो गिरिजावृषाङ्कौ।
पश्चात् तु बोधौ रतिपुष्पबाणौ सौम्ये प्रियङ्गौ च महीवराहौ॥ १६॥

पद्मद्वयारिसितशङ्खकरौ पुरोक्तौ पाशाङ्कुशत्रिशिखटङ्ककरावुमेशौ।
युग्मोत्पलस्मरधनुःकुसुमेषुहस्तावन्यौ च शालिशुकचक्रगदा दधानौ॥ १७॥

दाम्पत्यं ते प्रार्थयमानाश्चिरसौख्यं विघ्नाधीशं साञ्जलिबन्धाः प्रयजन्ते।
बाह्ये चैषां सायुधवाहा हरिदीशा ध्येयाः सर्वे दिव्यविभूषाम्बरगन्धाः॥

आधारशक्त्यादिसरोरुहान्तमिष्ट्वा पुरोवन्निजनामधेयैः।
देवः सपञ्चावरणो यथावत् पूज्योऽङ्गमूलैः प्रथमोपचारैः॥ १९॥

भित्तौ पटे वा कनकादिबेरे सम्यक् प्रतिष्ठाप्य महागणेशम्।
संपूजयेत् प्राप्य तु मन्त्रदीक्षां प्राग्वाभिषिक्तस्तु गणेशकुम्भैः॥ २०॥

जपेच्चतुर्लक्षमथाष्टभक्ष्यैर्हुत्वा दशांशं त्वथवा स्वशक्त्या।
स्मृत्वा गणेशं मनसापि चेष्टा सिध्येत् तु मन्त्रोऽस्य समीहितं च॥

आखुर्हैमः पर्वतकूटप्रतिमः प्रागीशोपान्ते क्षेत्रपतिः स्याद् गणचण्डः।
पूज्यः प्राग्वद् भक्ष्यहुताद्यैः सकलार्थाः सिध्यन्त्यस्याचार्यपदाब्जाहितभक्तेः॥

नित्यं यथाशक्ति जपेच्च मन्त्रं सन्तर्पयेच्चाम्बरचन्द्रतोयैः।
भक्ष्याद्यभीष्टं प्रथमाश्रमिभ्यो दद्याद् द्विजेभ्योऽपि च सिद्धिकामः॥ २३॥

चतुर्दिग्दलाग्रे न्यसेच्चापि कुम्भान् प्रधानं च कुम्भं सरोजस्य मध्ये।
सैदुग्धैश्च वृक्षैश्चतुर्भिः पुरोक्तैस्तथा चौषधीभिर्लिपेदम्बुभिश्च॥ २४॥

सरत्नैश्च गन्धैः सुपुष्पैश्च हेम्ना सुपूर्णान् घटांस्तान् सवस्त्रान् पुरोवत् ।
निवेश्याथ देवं गणेशं तु मध्ये तथैन्द्रादिकुम्भेषु युग्मानि चेष्ट्वा ॥ २५ ॥

विभूष्याथ वस्त्रैश्च गन्धैस्तथेष्ट्वा समूलैस्तदङ्गैः सजीवान् विदध्यात् ।
जपित्वा तु शक्त्या च हुत्वाभिषिञ्चेत् प्रसिध्येद्धि मन्त्रः स्वभीष्टं च विन्देत् ॥

अन्नेनान्नसमृद्धये तु मधुना स्वर्णाप्तये गोरसै-
र्गोसिद्ध्यै तिलतण्डुलैस्तु जुहुयाल्लक्ष्म्यै घृतेनापि वा ।
दध्ना शर्करया जुहोतु[1] यशसे वाश्वारिकौसुम्भकै-
र्वस्त्रार्थं कमलैर्नृपं तु कुमुदैर्देवीं च तन्मान्त्रिणम् ॥ २७ ॥

आश्वत्थैर्वटजैरुदुम्बरसमित्प्लक्षैस्तु वर्णान् वशे
कुर्यान्मोदकपिष्टकैस्तु युवतीर्द्रव्याष्टकैर्वाञ्छितम् ।
संसिध्येल्लवणैश्च वेतसभवैर्वृष्टिर्भवेत् तर्पणा-
न्मन्त्रेणाथ चतुर्गुणेन सकलान् कामान् जपैर्वा हुतैः ॥ २८ ॥

इच्छेच्चेद् द्विरदवने जलोपकण्ठे कृत्वादौ समचतुरश्रहोमशालाम् ।
तत्रेष्ट्वा द्विरदमुखं तु मध्यवेद्यामैशान्यां दिशि जुहुयाच्छुभेऽग्निकुण्डे ॥ २९ ॥

समृद्धिमार्गेण जुहोतु वह्नौ तस्मिन् समावाह्य महागणेशम् ।
ततस्तु बीजैरपि चाङ्गमन्त्रैर्हुत्वा पुरस्तादपि मूलतोऽत्र ॥ ३० ॥

वर्गत्रयेणापि विभज्य मन्त्रं नवप्रकारं तु घृतेन हुत्वा ।
समस्तमन्त्रेण तदर्णसंख्यं हुत्वाष्टभक्ष्यैर्मधुरत्रयाक्तैः ॥ ३१ ॥

भवोद्भवाभावनसंख्यमेतच्छतांशतो ब्राह्मणभोजनं च ।
शक्त्याथ तान् वस्त्रहिरण्यगोभिरिष्ट्वा[2] वटान्तर्द्विरदाः पतन्ति ॥ ३२ ॥

तल्लब्धमातङ्गदशांशतोऽस्मै स्याद् दक्षिणा मन्त्रिवराय देया ।
ततः सहाङ्गैः परिचारकाणां बलिं च दत्त्वा सहदेवमग्निम् ॥ ३३ ॥

हृदम्बुजे स्वे गगनाम्बुजे वा नियोजयेच्चेति गजग्रहैः[3] स्यात् ।

महागणपतिविधानम् ।

---

१. 'ति' क. पाठः. २. 'ष्टा' क. ग. पाठः. ३. 'हा' ख., 'हं' ग. पाठः.

पञ्चान्तकं बिन्दुयुतं च साक्षाद् बीजं गणेशस्य वदन्त्यथान्ये ॥ ३४ ॥
औकारबिन्द्वन्तमुदीरयन्ति तुल्यस्तयोः स्याद् विधिरेषणीयः ।

गणराजाय ठठ । एकदंष्ट्राय हुं फट् । अचलकर्णिने नमो नमः । गजवक्त्राय नमो नमः । महोदराय दण्डहस्ताय हुं फट् । विनायकाय वौषट् ।

स्वजातिभाञ्जीत्युदितानि षड् यान्यङ्गानि नेत्रान्तमनुक्रमेण ॥ ३५ ॥

गणेश्वराय ठठ । धूम्रमुखाय ठठ । धूर्जटाय ठठ । विघ्नरूपाय ठठ ।

इत्यष्टदिग्बन्धविधिः प्रदिष्टः

विघ्नहन्त्रे ठठ । लम्बोदराय ठठ ।

सोर्ध्वाधराशाकलनं विदध्यात् ।
ऋषिस्तु नाम्ना गणको विराट् तच्छन्दस्तु देवोऽस्य विनायकाख्यः ॥ ३६ ॥
त्र्यत्याशनोऽमुं जपतु त्रिलक्षं पुरस्क्रियार्थं स दशांशहोमम् ।
चतुर्भुजः खर्वतनुर्गजास्यो लम्बोदरो नागकृतोपवीतः ॥ ३७ ॥
दधत् सपाशाङ्कुशदन्तभक्ष्यैः पात्रीं तदालम्बितपुष्कराग्रः ।
रक्ताम्बरालेपनमाल्यरत्नैर्विभूषितः कुङ्कुमपिञ्जराभः ॥ ३८ ॥
ध्येयो ह्यधः कल्पतरोः फलार्थैरापूर्यमाणः कनकाब्जपीठे ।
ऐशे गुरुं क्षेत्रपतिं च पूर्वमिष्ट्वा तथाधारमयीं च शक्तिम् ॥ ३९ ॥
शेषं च पृथ्वीं तदनन्तपीठं धर्मादिभिः प्रोक्तगुणाब्जबिम्बैः ।
तच्चन्द्रमध्यस्थिततारमध्ये त्वानीय खाब्जामृतधारयेन्दौ ॥ ४० ॥
विनायकं स्वैर्वृतमङ्गमन्त्रैर्गजाननैर्दिग्दलगैर्हृदाद्यैः ।
कोणेषु हेतिं पुरतोऽस्य नेत्रं दिग्बन्धविघ्नांस्तु गणेश्वरान् षट् ॥ ४१ ॥
शङ्खाख्यपद्माख्यनिधी च दिक्स्थान् कोणेषु चैवं क्रमशोऽर्चयीत ।
इन्द्रादिलोकाधिपतीन् सवाहानिष्ट्वा स्वकाष्ठासु तदायुधानि ॥ ४२ ॥
यजेच्चतुर्थावरणे त्वथैशे गुरूनपि स्वान् गणचण्डकं च ।
आवाहनाद्यैस्तु यथोपचारैरिष्ट्वा यथाशक्ति जपेच्च मन्त्रम् ॥ ४३ ॥

कलशे शरावकपिलाज्यदीपिके स्वभिपूजिते निशि जपेच्च कन्यकाम् ।
अधिवास्य तत्र खलु तावलोकनाद् वदति त्रिकालकलितार्थसन्ततिम् ॥ ६६ ॥
इत्थं मन्त्रो भार्गवेणोदितोऽयं वैघ्नः पूर्वं कामधुग् यो मुनीनाम् ।
योऽमुं सम्यक् साधयेत् साधकेन्द्रस्तस्यासाध्यं नास्ति किञ्चित् त्रिलोक्याम् ॥

## सिद्धविनायकविधानम् ।

उद्धृत्य झण्टीक्रोडेशौ दन्तायेति पदं ततः ।
वस्तिपुच्छाशसंक्षोडषांश उच्छिष्टमात्मने ॥ ६८ ॥
ताराङ्कुशाभ्यां शक्तिश्च बिन्दुनादविभूषिता ।
हुङ्कारं चास्त्रबीजं चाप्योष्ठयुक्तः शिवोत्तमः ॥ ६९ ॥
द्विरभ्यस्तश्च मन्त्रोऽयमष्टाविंशतिवर्णकः ।
उच्छिष्टविघ्नराजाख्यो जपाद्यैः सर्वसिद्धिदः ॥ ७० ॥

उच्छिष्टाय ठठ ।

अनेन जातियुक्तानि हृदाद्यङ्गानि षट् क्रमात् ।
विन्यस्य तु यथास्थानमुच्छिष्टः साधयेदिमम् ॥ ७१ ॥
ऋषिरुच्छिष्टयाजाख्यश्छन्दः स्यान्निचृदेव हि ।
उच्छिष्टशब्दपूर्वोऽस्य दैवं गणपतिः स्मृतः ॥ ७२ ॥
तुन्दी विघ्नः शुक्लवर्णो गजास्यः पाशी नग्नः साङ्कुशोऽङ्गुष्ठमात्रः ।
नानारत्नैर्भूषितः स त्रिणेत्रः पूज्यो नृत्यन् साभयेष्टप्रदोऽसौ ॥ ७३ ॥
यावत्कृष्णचतुर्दशि प्रतिदिनं प्रारभ्य कृष्णाष्टमी-
मुच्छिष्टोऽष्टशतं जपेच्च जुहुयात् सद्दन्तकाष्ठैर्नवैः ।
स्वाद्वक्तैर्मनुरेष सिध्यति ततो मन्त्रं ससाध्याह्वयं
संलिख्यात्र निधाय तं गणपतिं जप्येन चाकर्षयेत् ॥ ७४ ॥
कक्षे क्षिप्त्वा चाप्नुयादिष्टमेनं हेमोन्मत्तैर्विघ्नमिष्ट्वा शतैस्तम् ।
यस्याः पद्भ्यां पांसुसंस्थं च कृत्वा जप्याद् रात्रौ तूर्णमार्यैति चेष्टा ॥ ७५ ॥

---

१. 'शो' ख. पाठः. २. 'षाडश' ग. पाठः. ३. 'कु' क. पाठः. ४. 'र्यान्ति चेष्टाः' ख. पाठः.

स्नेहं मिथश्चेन्मिथुनस्य वाञ्छेद्धस्तस्थविघ्नः प्रजपेच्च पश्यन् ।
गन्धादिकं वा जपितं प्रदद्याद् वश्यं धृतं चन्दनहोमभस्म ॥ ७६ ॥
अङ्गुष्ठमात्राः समिधोऽथ जुहृत् सौवर्णमत्तस्य नरेन्द्रवश्ये ।
पुष्पैर्द्विजानां वणिजां फलैस्तैः शूद्रस्य पत्रैः सकलस्य सर्वम् ॥ ७७ ॥

हस्तीत्युक्त्वा साक्षिपार्श्वं च वान्तो दीर्घः कूर्चो[1] मायया साक्षिमें[2]सम् ।
सोष्ठश्चण्डौ वह्निजायान्वितोऽसौ स्यादौच्छिष्टो विघ्नमन्त्रः पुरोवत् ॥ ७८ ॥

हस्ति हृदयाय नमः । पिशाच शिरसे स्वाहा । लिखे शिखायै वषट् । स्वाहा कवचाय हुम् । सङ्ग अस्त्राय फट् ।

अमून्यङ्गानि किष्किन्धो मुनिश्छन्दोऽस्य वै विराट् ।
प्राग्वद् दैवं तथाष्टम्यां सिध्येद् रविसहस्रकैः ॥ ७९ ॥

उच्छिष्टात्मा स्वार्णलक्षं जपेद् यस्तस्यासाध्यं नास्ति लोकेऽर्थजातम् ।
बीजस्योक्तं यत्तु वैघ्नस्य कृत्यं तच्चोच्छिष्टोऽनेन कृत्वैष विन्देत् ॥ ८० ॥
एकारादेर्यन्मनोः कर्म गीतं तच्चानेन प्राप्नुयात् साधकेन्द्रः ॥ ८१ ॥
समन्त्रसाध्याह्वयपत्रभृत्कां तनुं मधूच्छिष्टमयीं निखन्यात् ।
उपर्यथास्याः खदिरानले यज्जुतेन साध्यं वशयेत् समस्तम् ॥ ८२ ॥
मन्त्रस्तु यन्नामविदर्भजापाद् वश्यस्तथा भूर्जविदर्भितं वा ।
तन्नाम धार्यं त्वथवा विसर्पि[3]होमश्च वश्याय तु सप्तरात्रात् ॥ ८३ ॥
तज्जापतैलाञ्जनचन्दनाद्यं वश्यं हुतं चापि च हेमपुष्पैः ।
पाशाङ्कुशाढ्योऽत्यरुणस्तु नग्नो ध्येयो निजाङ्गैः सहितो गणेशः ॥ ८४ ॥

### उच्छिष्टविघ्नेशाधिकारः ।

---

क्षिप्रप्रशब्दस्त्वथ सादनाय स्याद् विघ्नबीजादिमनुर्हृदन्तः ।
पङ्क्त्यक्षरो विघ्नपतेरभीष्टान् संसाधयेदेष हि कल्पवृक्षः ॥ ८५ ॥
ऋष्यादि चाङ्गादिकमप्यशेषमेकाक्षरप्रोक्तविधानतः स्यात् ।
सन्दीक्षया लक्षजपेन सिध्येद् दशांशहोमान्मधुरैस्तिलैश्च ॥ ८६ ॥

पाशाङ्कुशे कल्पलतां च दन्तं हस्तैः करेणापि च बीजपूरम् ।
बिभ्रद् गजास्यः समलङ्कृतो वः क्षिप्रप्रसादः शशिमौलिरव्यात् ॥ ८७ ॥

---

१. 'मौ' क. ख. पाठः. २. 'मा' ख. पाठः. ३. 'र्पु' ख. पाठः.

ध्येयोऽरुणस्तुन्दधृतत्रिलोकः श्वेताम्बराढ्योऽम्बुजविष्टरस्थः ।
हस्तस्थसङ्कल्पलताप्रसूतैर्वर्धन् धनैर्मूर्धनि साधकेन्द्रम् ॥ ८८ ॥

सिद्धाह्वयस्यावरणैश्चतुर्भिः पूज्यः स्वमूर्तौ हृदयाम्बुजे वा ।
द्रव्यैः पुरोक्तैर्घृतपायसाद्यैर्हुत्वा श्रियं पङ्कभवैश्च विन्देत् ॥ ८९ ॥

नित्यं यथाशक्ति घृतान्नहोमात् कुटुम्बिनां तद्गृहपोषणं स्यात् ।
सन्तर्पयेच्चामृतवारिपूरैर्यदिष्टमन्यच्च लभेत सर्वम् ॥ ९० ॥

दध्याज्यसिक्तसितलोणकृतावदानैर्हुत्वा निशास्वभिमतं खलु तस्य सिध्येत् ।[1]
[2]संवादमिच्छति विरोधिषु वा चतुर्थ्यां तन्नालिकेरहवनाच्छ्रियमश्नुतेऽसौ ॥

पञ्चान्तकोऽग्निसहितः सह वामनेत्रो दण्डी च शक्तिमनुसंपुटगस्त्रिवर्णः ।
वैघ्नो मनुर्निगदितः स्वयमेव दीर्घैरङ्गानि जातिसहितानि यथा स्वरे स्युः ॥

छन्दो विराण्मुनिरथास्य तु भार्गवः स्यात् तद्दैवतं गणपतिः पुरतोऽर्णलक्षम् ।
अभ्यस्य चांशहवनेन च पञ्चभक्ष्यैः कन्या वटूंश्च खलु सिध्यति भोजयित्वा ॥

सन्दीक्षितो गुरुमुखात् समवाप्तमन्त्रः स्नानादिनित्यविधिना यजनं विदध्यात् ।
गौलाब्धिहेमभुवि कल्पककाननान्तर्ध्यात्वा हिरण्मयमणिमण्डपसिंहपीठम् ॥

शक्त्यादिधर्ममुखपादगुणाब्जबिम्बैः कोणच्छदेषु हृदयादिमनून् पुरस्तात् ।
नेत्रं पुरोऽस्त्रमपि दिक्षु यजेत् तु शक्तीः[3]

जया, विजया, अजिता,[4] अपराजिता, नित्या, विलासिनी, शौण्डी, अनन्ता, सुमङ्गला ।

एताः क्रमेण तु दलाग्रगताश्च मध्ये ॥

गणं गणनाथं विघ्नेशं विनायकं भक्ष्यप्रियं पञ्चकरं लम्बहस्तं महोदरम् ।

एतांश्च पङ्कजबहिः क्रमशोऽष्टदिक्स्थान् विघ्नान् यजेद् गजमुखानरुणान् स्वनाम्ना ।
पाशाङ्कुशाभयवरादिनोऽरुणमाल्यगन्धांस्तद्वाह्यतो दशदिशास्वपि लोकपालान् ॥

ध्यायेदथाम्बरसरोजरसामृताद्रे व्योमात्मकं गणपतिं द्रुतहेमवर्णम् ।
पीताम्बरं स्वरुगभूषणमाल्यगन्धं लम्बोदरं त्रिणयनं शशिखण्डमौलिम् ॥ ९७ ॥

---

१. 'स्थलं कल्प' क., 'स्थतत्कल्प' ग. पाठः. २. 'सम्पादसुच्छ' ख. ग. पाठः.
३. 'र्चित' क. पाठः. ४. 'अजिता' ख. पाठः.

पाशाङ्कुशाग्ररदमोदकपञ्चहस्तं ह्रस्वाकृतिं विविधभूषणचित्रगात्रम् ।
पुष्पाञ्जलौ तमभिचिन्त्य सहाङ्गमूलादावाहयेत् कथितपङ्कजकर्णिकायाम् ॥

साङ्गेन मूलमनुना प्रथमोपचारैराराध्य पायसगुलाज्यचरूनपूपान् ।
मूलानि चाप्यभिनवानि फलानि चेक्षून् लाजान् मधूनि विनिवेद्य तु लड्डुकादीन् ॥

नित्यं जपेद् गुणसहस्रमपि त्रिसन्ध्यं ध्यायेद् यजेच्च विभवानुगुणं गणेशम् ।
तस्य प्रयच्छति धनानि विशिष्टभोगानायुश्च दीर्घमगदं निखिलांश्च कामान् ॥

अथ विनियोगाः कथ्यन्ते ।

आधायाग्निं विधिवद्वेदकोणे कुण्डे तस्मिन् विधिनावाह्य देवम् ।
गौलान्नाज्यं जुहुयात् पायसं वा विन्देदिष्टं विभवं च द्विमासात् ॥ १०१ ॥

आज्यापूपैर्गुलमिश्रैस्तु जुह्वद् वाष्टद्रव्यैर्धनमिष्टं च विन्देत् ।
विप्रं लाजैस्तिलमिश्रैः सखण्डैर्वश्यं कुर्यान्मधुना भूमिपालम् ॥ १०२ ॥

गुलैरमात्यान् मधुतण्डुलेक्षुभिस्त्रियस्तु वश्यं पललैर्मधुप्लुतैः ।
फलैस्तु शूद्रान् सकलान् सशर्करैस्तिलैः सलाजैर्वशयेज्जुहोति चेत् ॥

कन्याख्यया संपुटमन्त्रजापात् तां प्राप्नुयात् पिष्टतनुं गुलाक्ताम् ।
हुत्वा तु तच्छेषमदन्नभीष्टां सर्वत्र पूजां विदधीत शक्त्या ॥ १०४ ॥

क्षेत्रेषु बीजं निवपन् पुरस्तात् तद्बीजभक्ष्यं विनिवेद्य तस्मै ।
तत्रायुतं तानि वपेज्जपित्वा स्याद् भूयसी तेन तु सस्यसम्पत् ॥ १०५ ॥

निष्पन्ने सस्ये तस्मादग्रमंशमुद्धृत्य देवस्य महतीं पूजां विदध्यात् ।

क्षेत्रं विवादास्पदमप्यथान्यदात्मीयमिच्छेद् यदि तस्य मध्ये ।
अद्यान्मृदं स्वैक्यगणेशमूर्तिर्भौमाष्टवारेषु जपन् लभेत ॥ १०६ ॥

सूर्यग्रहे तु कपिलाज्यपलं वचायाः पादांशचूर्णमिलितं जपितं यथावत् ।
पीत्वोपवासपरमस्तु भवेदजीर्णे यावद् घृतं श्रुतधरः स भवेच्च वाग्मी ॥

निष्कं तदर्धमपि पादमथो हरिद्रासिन्धूत्थपाण्डरवचाः पशुमूत्रपिष्टाः ।
स्पृष्ट्वा पिबेदृतुमती जपितास्तनूजं विन्देद् गणेशमभिपूज्य पुरः स्वशक्त्या ॥

---

१. 'घु', २. 'लायचलं', ३. 'विम्बे म' ख. पाठः.

भौमे दिने सविभवं गणनाथमिष्ट्वा भक्ष्याज्यपायसचरूंश्च निवेद्य हुत्वा।
कन्यावटुद्विजवरानपि भोजयित्वा जापेन मोचयति बन्धगतानशेषान् ॥

समवाप्य शिलामुदक्प्रवृत्तां कलिकामङ्कुशवत्त्रिलक्षजापात्।
निगलस्थकरे प्रदाय मुच्येत् कुजवारे सितसिन्धुवार[1]जाताम् ॥ ११० ॥

अधिवास्य वटुं निशां कुमारीं स्नपितौ तौ समलङ्कृतौ प्रभाते।
महतीं च विधाय विघ्नपूजां परमान्नाज्यहुतैश्च मोदकाद्यैः ॥ १११ ॥

कलशं विनिधाय धान्यवेद्यां जलगन्धाक्षतपुष्पचूर्णमिष्ट्वा।
घृतपूर्णनवं शरावमस्मिन् निदधीतार्चितदीपविघ्नराजम् ॥ ११२ ॥

स वटुश्च कुमारिकात्र पश्येत् खलु नष्टं च धनं त्रिकालवद्धम्।
स्वयमत्र जपेत् स्पृशन् कुमारौ मुकुरेऽप्येष विधिः समो विधेयः ॥

यदि वृष्टिरभीप्सितात्र शक्त्या यजनं विघ्नपतेर्विधाय भक्त्या।
घृतपायसमोदकैः फलाद्यैर्वरगन्धैरपि माल्यधूपदीपैः ॥ ११४ ॥

ध्वजतोरणमङ्गलाङ्कुराद्यैर्जलकुम्भैश्च फलैर्वितानमुख्यैः।
समलङ्कृतकुण्डवह्निवक्त्रे विभुमावाह्य जुहोतु सप्तरात्रम् ॥ ११५ ॥

कदलीफलशर्करादिपिष्टैर्घृतसिद्धैश्च तथौदनैरपूपैः।
फलपायसशर्कराज्यदुग्धैरपि नित्यं त्रिशतं पृथग् जुहोतु ॥ ११६ ॥

महावृष्टिर्भविष्यति।

अग्निनैधनभादिभौमवारे विषदिग्धाक्षसमित्सहस्रकैर्वा।
अपराह्णहुतात् तथैव निम्बैः खलु पक्षादरयः प्रयान्ति मृत्युम् ॥ ११७ ॥

अभिलिख्य तनुं परेतभूमावसुभिर्नाम च भूसुतापराह्णे।
उदरेऽस्य तदेधसाग्निमिष्ट्वा जपतः शत्रुरुपैति मृत्युलोकम् ॥ ११८ ॥

विषवृक्षफलायुतैश्चिताग्नौ लिखिताख्यै[2]स्तु हुतैः स याति मृत्युम्।
रिपुवेश्मनि निम्बकीलवेधात् स्फुटमुच्चाटकरं कुजापराह्णे ॥ ११९ ॥

तत्पत्रैर्विद्वेषः।

---

१. 'पा' क. ग. पाठः. २. 'द्यै' ख. पाठः.

भौमे गणेश्वरतिथौ गणनाथमिष्ट्वा वैयाघ्रचर्मणि तथैव सुसन्निविष्टः ।
आपूर्य तत्र कलशं प्रजपेच्च हुत्वा तेनाभिषिच्य शमयेदभिचाररोगान् ॥

क्षीरैक्षवाज्यहवनाच्छमयेज्ज्वरार्तिं सापूपदुग्धहवनं गजवाजिशान्त्यै ।
शस्तं च तेन परिषिच्य जलेन तेषां सम्प्रोक्षणाद् भवति शान्तिरपीह वृद्धिः ॥

इत्थं स भार्गवमुनिर्जगतां हितार्थं प्राह त्रिवर्णगणराजमनोर्विधानम् ।
कन्या वटूंश्च मधुरैः सह भोजयित्वा सर्वत्र चोदितफलं लभते स्म मन्त्री ॥

कन्यां दुर्गां ध्यात्वा वटुं गणपतिं ध्यात्वा भोजयेत् ।

स्वैर्नामभिश्चाष्टगणेशमुख्यानुक्तान् पृथग् विघ्नविनायकादीन् ।
सन्तर्पयामीत्यमृतांशुतोयैः सन्तर्प्य नित्यं लभते यदिष्टम् ॥ १२३ ॥

व्योमाम्बुजेन्दोः प्रसृतामृताद्भिः सन्तर्पयन् विघ्नपतीन् यथोक्तान् ।
ध्यात्वा स्वमन्त्रैस्तृषितान् दिनादौ संसाधयेद् वाञ्छितमर्थजातम् ॥ १२४ ॥

काल्यं करीन्द्रं करिणीगणानां मध्यं गतं तूदयशैलशृङ्गात् ।
तद्धेमसोपानपथावतीर्णं संस्मृत्य सन्तर्प्य लभेत कामान् ॥ १२५ ॥

भक्ष्याद्यैर्विनिवेदनं गणपतेर्होमो जपस्तर्पणं
स्तोत्रैस्तस्य नुतिर्नमस्कृतिरपि स्याच्छक्तितो नित्यशः ।
चत्वारिंशदथो चतुष्टययुतं चातुर्थिकं चार्चनं
शस्तं तद्यजनं च यस्य स भवेद् विघ्नाधिराजप्रियः ॥ १२६ ॥

इति गणपतिमन्त्रा मुख्यशो नैकभेदाः
पृथगिह कथिता ये तन्त्रभेदेषु दृष्टाः ।
निखिलमपि जपाद्यं यत्क्रियाजालमुक्तं
मनुरपि गणनाथः पूर्वपूर्वो गरीयान् ॥ १२७ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
दशभुजादिगणपतिपटलः
षोडशः ।

## अथ सप्तदशः पटलः ।

वाग्भवं तदनु मन्मथबीजं सर्गवान् भृगुरनुग्रहयुक्तः ।
त्रैपुरो मनुरयं किल बालः कामधेनुरिव कामधुगुक्तः ॥ १ ॥

विद्यावाग्भवकामराजकलिता ह्येषा सवागीश्वरी
त्रेताग्नित्रिजगत्त्रिमूर्तिसवनैर्वेदैर्गुणैः कारणैः ।
यद्वान्यत् त्रिविधं भवेत् त्रिपुरया वर्णत्रयाविष्कृतं
तज्ज्ञेयं त्रिपुरेतिनामविषया शक्तिः पराख्यायते ॥ २ ॥

श्रीब्रह्मा मुनिरस्य चोष्णिगुदिता छन्दः स्वयं देवता
वागीशीत्यपरे शिवं च कथयन्त्यन्ये तथा भैरवम् ।
पूर्णेन्दुद्युति वाग्भवाख्यमपरं यद् बन्धुजीवारुणं
प्रोत्फुल्लारुणकर्णिकाररुचिरं बीजं तृतीयं विदुः ॥ ३ ॥

तारं व्योम तथा भृगुश्च सकलो मन्त्रस्त्रिवर्णो ह्ययं
शेषाख्यस्त्रिपुरामनोस्तु रचयेदङ्गान्यनेन क्रमात् ।
स्वाभिर्जातिभिरन्वितान्यथ पुनः पाण्योः शरीरे न्यसेत्
कृत्वास्त्रान् करशुद्धिमङ्गुलिषु तद्वर्णानि चाङ्गानि च ॥ ४ ॥

ओं हसौं कनिष्ठाङ्गुलये नमः । ओं हसौं अनामिकायै नमः । ओं हसौं मध्यमायै नमः । ओं हसौं तर्जन्यै नमः । ओं हसौं ज्येष्ठाङ्गुलये नमः ।

विन्यस्याङ्गुलिषु क्रमेण करयोरेवं त्रिपर्वक्रमात्

ओं हसौं ऊर्ध्ववक्त्राय नमः । ओं हसौं पूर्ववक्त्राय नमः । ओं हसौं दक्षिणवक्त्राय नमः । ओं हसौं उत्तरवक्त्राय नमः । ओं हसौं पश्चिमवक्त्राय नमः ।

इत्थं चाङ्गुलिभिर्मुखेष्वभिसृतैर्ज्येष्ठादिभिर्विन्यसेत् ।
मूलार्णान्वितशेषतश्चरणयोर्जान्वोरुपस्थे तथा
नाभौ हृद्गलतालुबिन्दुषु पृथङ् मूर्धन्यपीत्थं न्यसेत् ॥ ५ ॥

---

१. 'ह्यासनक' क. ख. पाठः. २. 'रं जीवं तृ' क. पाठः. ३. 'स्तु चरय' क. पाठः. ४. 'क' ख. पाठः.

विलोमतश्च —

कामरूपी कोल्लगिरिः सोपारोड्याणके तथा ।
मलयाद्रिः कुलान्तं च जालन्धं देविकोट्टकम् ॥ ६ ॥

इत्यष्ट योगपीठानि ।

ब्राह्मयाद्याश्चण्डिकान्ताः पृथगिह कथिता मातरस्तत्र पूर्वं
दीर्घैर्युक्ताः स्वरैस्ताः शशधरशकलैर्ह्रस्वबिन्दुस्वरैस्ते ।
युक्ताः स्युश्चासिताङ्गो रुरुरथ कथितश्चण्डकः क्रोधनाह्व-
श्चोन्मत्तः स्यात् कपाली तदनु निगदितो भीषणः संहृतिश्च ॥ ७ ॥

शेषश्रीयुतपीठनाम च ततः पीठेति शब्दः स्वरो
दीर्घः स्यादथ मातृनामसहितं तत्तच्चतुर्थ्या तु हृत् ।
ह्रस्वा बिन्दुयुताः स्वराः स्युरसिताश्चान्ये तदाद्यक्षरै-
र्बिन्द्वन्तैरथ भैरवाह्वयमथ स्यात् पादुकेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पृथगेवं न्यसेन्नाभिहृत्कण्ठास्येष्वथो नसि ।
ललाटे मूर्धनि तथा द्वादशान्तेऽप्यनुक्रमात् ॥ ९ ॥

**पीठपादुकन्यासः ।**

---

गुह्ये च हृदये तद्वल्ललाटे बिन्दुसंज्ञिते ।
त्रिषु स्थानेषु शेषाद्यं मूलार्णान् विन्यसेत् पृथक् ॥ १० ॥

**मूलमन्त्रन्यासः ।**

---

न्यासः पुरस्तात् करयोस्ततः स्याद् वक्त्रेष्वथो पीठकपादुकानाम् ।
पदादिमूर्धान्तविलोमतः स्यान्मूलेन चाङ्गैरिति षट्प्रकारः ॥ ११ ॥

प्रविश्य दीक्षां गुरुणाभिषेचितस्तदिष्टकृत् तेन विशेषशिक्षितः ।
अनुज्ञया तस्य विधाय नैत्यकं कृतात्मशुद्धिर्मनुनद्धविग्रहः ॥ १२ ॥

सितांशुकालेपनमाल्यभूषणो गणेशमभ्यर्च्य गुरुं च भक्तितः ।
उपोपविश्योचित आसने शुभे समाहृतेज्याविधिसाधनादिकः ॥ १३ ॥

---

१. 'काद्या मा' ख. पाठः. २. 'त् तत्पादु' कं. ख. पाठः.

ब्रह्माण्डोदररत्नसौधजलधेर्मध्ये कदम्बोज्ज्वलं
चोद्यानं मणिमण्डपं च विलसन्माणिक्यशोणद्युति ।
दिव्यं द्वारचतुष्टयस्थवटुकैस्तावद्भिरेवारुणैः
सर्वाङ्गैररुणाम्बरादिविलसद्वेषैर्युतं चिन्तयेत् ॥ १४ ।

कुलपूर्वस्तु वटुकस्तथैवाकुलपूर्वकः ।
समयाख्यस्तृतीयः स्याच्चतुर्थः साधकाह्वयः ॥ १५ ॥
चतुर्द्वारेष्विमे पूज्यास्तद्वत् क्षेत्रगणेश्वरौ ।
स्वलङ्कृतौ तौ[1] नित्यं तावुदग्दक्षिणतः स्थितौ ॥ १६ ॥

तन्मध्यकार्तस्वरसिंहपीठे शक्तिं प्रवालाङ्कुरभङ्गशोणाम् ।
तामष्टधावेष्टच गुणैरनन्तो ध्येयस्तादित्थं सितमम्बुजं च ॥१७ ॥

धर्मादयः स्युश्चतुरोऽस्य पादाः सिंहाननाः सत्त्वतमोरजांसि ।
कन्दं च नालं कमलं क्रमेण ध्येयं त्रितत्त्वं त्रिजगत्त्रिमूर्तिः[3] ॥ १८ ॥

पुर्यष्टकोर्ध्वच्छदमम्बुजं तदधश्छदाकारचतुर्युगं च ।
परिस्फुरत्केसरजालकीर्णां तत्कर्णिकां चोपरि मूलशक्तिम् ॥ १९ ॥

ध्येयं तथा वाग्भवमात्रबीजं बन्धूकरक्तं रुचिरं त्रिकोणम् ।
हिरण्यगर्भं च हरिं च रुद्रं तथेश्वरं चैव सदाशिवं च ॥ २० ॥

ततस्तु तन्मध्यसुखोपविष्टां देवीं जपायावकरक्तकान्तिम् ।
निबद्धपद्मासनसौम्यमूर्तिं नेत्रत्रयालङ्कृतवक्त्रपद्माम् ॥ २१ ॥

जटाकिरीटाहितशीतरोचिषं पिशङ्गरक्ताभरणाम्बरस्रजम् ।
धृताक्षमालां वरदां च दक्षिणे सपुस्तकाभीतिकरां च वामतः ॥ २२ ॥

समग्रताराधिपमण्डलाननां प्रतप्तजाम्बूनदरत्नकुण्डलाम् ।
गलप्रभाराञ्जितनिष्कभूषणां सुजातवृत्तोन्नतपीवरस्तनीम् ॥ २३ ॥

विचित्रहारोल्लसितस्तनांशुकां तथाङ्गुलीयैः कटकैश्च भूषिताम् ।
पिशङ्गकौशेयरुचारुणत्विषं हिरण्यकाञ्चीं दधतीं तदास्पदे ॥ २४ ॥

---

१. 'तौ नृत्यन्तावु' क. ग. पाठः. २. 'कु' ख. पाठः. ३. 'र्तिम्' ख. पाठः.
४. 'राभितम' ख. पाठः.

यथोचिताकारविशेषसुन्दरं मनोरमोर्वोरपि जङ्घयोर्युगम् ।
क्रमेण वृत्तं दधतीं पदाब्जयोर्विचित्ररत्नस्फुरिते च नू[1] ॥ २५ ॥
समस्तशोभाविभवैकसुन्दरीं विभावसौन्दर्यसुधारसात्मिकाम् ।
निजैक्यतस्त्रैपुरदेवतां शुभां विचिन्त्य भावाहितसाधनैर्यजेत् ॥ २६ ॥
ततस्तु खाम्भोरुहचन्द्रमण्डले शिवात्मिकां निष्कलसूक्ष्मचेतनाम् ।
विचिन्तयेत् तारकसङ्क्रमत्विषं शतह्रदादामरुचिं तनीयसीम् ॥ २७ ॥
ततः समादाय कृतां सुषुम्नया निजैक्यदेव्या हृदयाम्बुजं नयेत् ।
सचेतनां तां प्रविभाव्य तु क्षणं मनः स्थिरं तत्प्रवणं विधाय तु ॥ २८ ॥
खपङ्कजेन्दोरमृतस्य धारया परिस्रवन्त्या सितदुग्धरोचिषा ।
सुषुम्नया ब्रह्मपथामृताम्बुभिर्निजैक्यदेवीमभिषिच्य हर्षयेत् ॥ २९ ॥
यथोपचारैर्मनसाभिपूज्य तां सुधाभिराप्लाव्य पुनस्तु चिन्तयेत् ।
षडन्तराधारसमण्डलाम्बुजैः शरीरमूर्ध्वक्रमया सुषुम्नया ॥ ३० ॥
मूलाधारे चापि पायावुपस्थे नाभौ हृद्ये तालुमूले च मूर्ध्नि ।
वेदर्त्वाशार्कार्ष्टियुग्मच्छदानि तान्यब्जानि ह्यन्तरा ब्रह्मनाड्याः ॥ ३१ ॥
अथात्र मूले नवकोटियोजनं प्रविस्तृतं चान्द्रमसं तु मण्डलम् ।
तमीषदाकुञ्च्य निबध्य चिन्तयेत् तदुत्थमब्जं धवलं कलादलम् ॥ ३२ ॥
अधोमुखं वक्रतनौ तदम्बुजं भवेद्रजोरुन्मुखमायतं स्मि[2]तम् ।
विभाव्य मध्येऽस्य तु काममन्दिरं कदम्बगोलाकृतिलिङ्गमिन्दुभम् ॥ ३३ ॥
तं कुण्डलिन्यथ बिसाङ्कुरतन्तुगौरा सुप्ता त्रिधा समभिवेष्ट्य तथा प्रबोधम् ।
याति प्रबुद्धमदनालयसंभ्रमेण लिङ्गं तु वाग्भवमयं प्रथमं तदुक्तम् ॥ ३४ ॥
आग्नेयबिम्बमरुणं हृदयेऽत्र पद्मं बन्धूककान्ति दश[3]पत्रमथास्य मध्ये ।
यत् पद्मरागरुचि मान्मथबीजलिङ्गं ध्यायेत् तु विश्वजनरञ्जनमोहनं तत् ॥
बिन्दुस्थानं ललाटे दिवसकरमयं मण्डलं पीतवर्णं
तत्राब्जं द्वादशारं दिनकररुचिरं पीतवर्णं तु लिङ्गम् ।
बीजं सारस्वतं तत् प्रभवति परमं वाङ्मयं यत्प्रभावा-
दित्थं प्रोक्तं पुराणां त्रयमिदमिह यत् त्रैपुराख्या हि विद्या ॥ ३६ ॥

---

१. 'नं' क. ख. पाठः.　२. 'स्म' ग. पाठः.　३. 'म' ख. पाठः.

सुषुम्नापथास्मात् तु कामाख्यलिङ्गात् समारभ्य विद्युत्प्रभासूक्ष्मरोचिः ।
द्वितीयं तृतीयं च मध्येन लिङ्गं गता शक्तिरूर्ध्वं पुरं द्वादशान्तम् ॥ ३७ ॥

अहं जीवभूतः क्रमेणेह लिङ्गत्रयोर्ध्वं गतस्या स्वपद्मं समेतः ।
सहस्रच्छदं तत् कलामध्यपत्रं सुधासारविष्यन्दि सच्छिद्रमध्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः सैव शक्तिः सुधाधारयास्मान्निवृत्ता सुषुम्नापथा ब्रह्मरन्ध्रम् ।
प्रविष्टा पुरोवत् त्रिलिङ्गानि चान्तः क्रमात् छादयन्तीह मूलाब्जमीयात् ॥

विभाव्येत्थमूर्ध्वादधश्चोर्ध्वयानं तथा शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरगौरैः ।
प्रपूर्णं शरीरं त्वथो रोमकूपात् स्रवच्चामृताम्भः समाप्लाव्यमानौ ॥ ४० ॥

क्रमादष्टपीठस्थिता देवताश्चाङ्गसिद्धिर्वृतिस्था + + + - + + ।
गुरुं द्वारपालानथो लोकपालांस्तथा मण्डपं चाम्बुधिं चिन्तयीत ॥ ४१ ॥

विभाव्येति मन्त्रं सदाभ्यासयोगान्मनोवाञ्छितार्थांस्त्रिलोकेषु विन्देत् ।
विजित्येह मृत्युं गुणैश्वर्यवाचामधीशत्वमैश्यादलभ्यां च मुक्तिम् ॥ ४२ ॥

इत्थं निजैक्येन विभाव्य देवीमिष्ट्वा यथावन्मनसोपचारैः ।
बाह्ये पुरोवद् यजनाय सम्यग् लेख्यं तु चक्रं विधिनैव देव्याः ॥ ४३ ॥

काश्मीरगोरोचनचन्दनेन्दुस्पृक्कुष्ठरुक्पत्रकगोमयाद्भिः ।
चक्रं लिखेद्धाटकरूप्यताम्रैः कृते तलेऽरत्निमितेऽतिरम्ये ॥ ४४ ॥

सकर्णिकं साष्टदलं तु पद्मं मध्ये बहिर्द्वादशकं दलानाम् ।
तद्बाह्यतः षोडशपत्रमब्जं बाह्ये तथा रागदलानि च स्युः ॥ ४५ ॥

तद्बाह्यवृत्तं चतुरश्रमस्मिन् कोणास्तु पार्श्वे कलशोपमानाः ।
लेख्याः सपाशाङ्कुशशङ्खपद्मैश्चिह्नैरुपेतास्तु यथाक्रमेण ॥ ४६ ॥

मध्ये त्रिकोणाकृति वाग्भवं स्यात् तन्मध्यगे च स्मरशक्तिबीजे ।
लेख्येऽष्टदिक्पत्रगताः स्वराः स्युर्बाह्ये दलैर्द्वादशकेषु कामम् ॥ ४७ ॥

शक्तीर्लिखेदन्वथ षोडशास्मिन् पत्रेष्वथ द्वादशकेषु कामम् ।
सान्तान् सकारादीन् सह हंसबिन्दून् द्वात्रिंशदब्जच्छदनेषु मन्त्री ॥ ४८ ॥

---

१. 'तम्' ख. पाठः. २. 'नाः' क. ख. पाठः. ३. 'ङ्गशक्तिर्वृ' क. ग. पाठः. ४. 'भ' क. पाठः. ५. 'षु', ६ 'लं' ख. पाठः. ७. 'म' क. पाठः.

बाह्येऽथ मालामिव शेषमन्त्रं वृत्ताद् बहिस्तच्चतुरश्रमन्तः ।
तद्वल्लिखेत् कोणचतुष्टयस्थे पाशाङ्कुशे रम्यतरे यथावत् ॥ ४९ ॥
एतद्धि चक्रं त्रिपुराभिधेयं संलिख्य तस्मिन् यजनं विदध्यात् ।
तच्चापि पीठे विनिधाय मन्त्री संपूजयेत् तैर्विहितोपचारैः ॥ ५० ॥
शस्तं निजैक्येन तथैव चक्रे चित्रेऽपि देव्या यजनं न भूमौ ।
मोहादसौ स्थण्डिलगां यजेच्चेद् भ्रंश्येत्[1] त्रिवर्गादपि मन्त्रसिद्धेः[2] ॥ ५१ ॥
पूर्वं त्रिलिङ्गात्मकबीजयुक्त्या सद्वादशान्तामृतशक्तियोगाम् ।
विभाव्य गन्धाक्षतपुष्पतोयैः स्वमूर्धनि स्वैक्यतनुं यजेत् ताम् ॥ ५२ ॥
व्योमेन्दुपङ्केरुहतः पुरोवत् तेजश्चिदानन्दमयीं गिरं ताम् ।
आवाह्य चक्रोदरकर्णिकायां व्योमेन्दुसूतैरमृतैर्निषिञ्चेत् ॥ ५३ ॥
शेषाङ्गमूलैर्मनुभिः क्रमेण प्राग्वत् समाराध्य महोपचारैः ।
व्योमावृताम्भःपृषतैः पुरोवदाप्लाव्य तूक्तावरणानि चेष्ट्वा ॥ ५४ ॥
अङ्गैर्यजेदावरणं दलानां मध्ये यथावत् प्रथमं ततश्च ।
शक्तीर्द्वितीयेऽथ दलाग्रगास्ताः सल्लेखिनीपुस्तकहस्तयुग्माः ॥ ५५ ॥
योगा च सत्या विमला च मेधा श्रद्धा च बुद्धिश्च तथा समृद्धिः ।
ज्ञाना च पूर्वादिषु रक्तवर्णा दिव्याम्बराद्यैरपि भूषिताङ्ग्यः ॥ ५६ ॥
ततस्तृतीयावरणेऽष्टपीठे मातॄः क्रमाद् भैरवपादुकाश्च ।
ऐशे गुरून् पञ्च यजेच्चतुर्थे क्षेत्रं सविघ्नं वटुकांश्च दिक्षु ॥ ५७ ॥
लोकाधिपान् सायुधवाहनादींस्तान् पञ्चमे त्वावरणे यथावत् ।
संपूज्य तैस्तैरुपचारभावैः पुनश्च देवीं सुमनोभिरिष्ट्वा ॥ ५८ ॥

आत्मतत्त्वाधिपायै देव्यै नमः । विद्यातत्त्वाधिपायै देव्यै नमः । शवतत्त्वाधिपायै देव्यै नमः ।

पृथगेभिः क्रमान्मन्त्रैर्दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
भावाष्टपुष्पैरपि[3] तामर्चयेद् भावसाधनैः ॥ ५९ ॥
अहिंसा प्रथमं पुष्पं ततश्चेन्द्रियसंयमः ।
क्षमा भक्तिर्दया ध्यानमलोभो ज्ञानमष्टमम् ॥ ६० ॥

---

१. 'भ्रश्यन्ति व', २. 'द्धम्', ३. 'च' ख. पाठः

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः पृथग् प्राग्वन्नमोन्तकम् ।
जपाद्यन्ते जपं कुर्याज्जपरक्षाकरो विधिः ॥ ६१ ॥

स्फटिकाक्षावली शस्ता जप्येषु त्रैपुरेषु वै ।
जपं चाप्यमृताम्भोभिर्मनसास्यै समर्पयेत् ॥ ६२ ॥

ततः स्तवमिमं ध्येयमन्त्रसारमुदीरयेत् ।

शतह्रदाकदम्बवल्लसद्द्युतिं तनीयसीं
मृणालतन्तुकोमलां त्रिलिङ्गबिम्बनिर्गताम् ।
ससर्गबिन्दुनादकान् क्रमादतीत्य तत्पदाद्
द्रवत्सुधारसाप्लुतां सुनिष्कलां नुमो गिरम् ॥ ६३ ॥

सुधाम्बुधौ सितावनौ च चन्द्रकान्तमण्डपे
शशाङ्कबिम्बपङ्कजे तु गौरवर्णबालिकाम् ।
सबोधमुद्रपुस्तकां सकुम्भजप्यमालिकां
सिताम्बरादिभूषितां सितावृतिं[1] नुमो गिरम् ॥ ६४ ॥

हिमाश्रमेऽष्टमातृभिश्च मातृकाम्बुजासनां[2]
शशिप्रभां वराभयां तथा धृताब्जपुस्तकाम् ।
सविघ्नराजषण्मुखां सदक्षिणेशदेशिकां
सभैरवां त्रिलोचनां कपर्दिनीं नुमो गिरम् ॥ ६५ ॥

निजैक्यतोऽरुणत्विषं प्रतप्तहेमकुण्डलां
विचित्रभूषणाम्बरां स्थितां सकल्पकाम्बुजे ।
सपाशमङ्कुशं करैर्वराभये च बिभ्रतीं
सशङ्खपद्मशेवधिं विभूतये नुमो गिरम् ॥ ६६ ॥

ललाटपद्मवाग्भवे सुरेन्द्रचापदीधितिं
शिरस्यथेन्दुमण्डले समन्मथां सितद्युतिम् ।
रविप्रभां हृदम्बुजे हि सौरबिम्बमध्यगां
पृथग् विभाव्य भुक्तये च मुक्तये नुमो गिरम् ॥ ६७ ॥

---

१. 'तं', २. 'न' ख. पाठः.

स्वकान्तियावकाम्बुभिर्विलोहिते च रोदसी
सपुष्पबाणकार्मुकां च साङ्कुशां तु पाशिनीम् ।
विलोहिताम्बरादिकां निजैक्यतो विभूषितां
स्मृतां जगद्विमोहिनीं विकर्षिणीं नुमो गिरम् ॥ ६८ ॥

समस्तवेदशास्त्रवाग्विभूतिजन्मभूर्यत-
स्ततश्च संस्कृतादिवाग्विलासदं हि वाग्भवम् ।
स्फुरत् स्मरस्य मन्दिरे स्मृतं हि तारकप्रभं
यदात्मकं प्रवृत्तये गिरां च तां नुमो गिरम् ॥ ६९ ॥

यतः प्रपञ्चसंभवस्थितिक्षयप्रवर्तनं
त्रिविग्रहप्रभेदतस्त्रिमूर्तिका विभाव्यते ।
गुणत्रयीजगत्त्रयीत्रितत्त्वकालपूर्विका
ततस्त्रिपूर्विका पुरा त्वमम्ब! तां नुमो गिरम् ॥ ७० ॥

किमङ्गपूजनाविधावजानताथवा मया
तदङ्गमन्त्रसाधनक्रियादिहीनमर्चिता ।
त्वदङ्घ्रियुग्मपद्मयोस्तु भक्तिचोदितेन तत्
त्वमम्ब! खेदिताधुनासि दुर्नयं क्षमस्व मे ॥ ७१ ॥

भक्तिहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं यदर्चनम् ।
तदस्तु परिपूर्णं मे तव देवि! प्रसादतः ॥ ७२ ॥

इत्यात्मादित्रितत्त्वान्तमधिपायै नमोऽन्तकम् ।
देव्यै पूजाजपफलमर्पयेच्चुलुकाम्भसा ॥ ७३ ॥

अनामिके द्वे तर्जन्यां मिथः पाण्योर्निबध्य तु ।
उत्तानपाणितलयोर्मध्यमे सकनिष्ठिके ॥ ७४ ॥

पार्श्वाभ्यां सहिताग्रे स्तामृज्वायतमुपस्थिते ।
कृत्वाङ्गुष्ठाग्रयुग्मेन कनिष्ठामूलयोः स्पृशेत् ॥ ७५ ॥

मुद्रेयं योनिसंज्ञा स्याच्छाक्तेयी मन्त्रसिद्धिदा ।
तां बद्ध्वा दर्शयेद् देव्यै सद्यःप्रीतिकरं भवेत् ॥ ७६ ॥

---

१. 'यत्का' क. ख. पाठः. २. 'वाक् स्फु', ३. 'चरस्य' ख. पाठः.
४. 'भिर्विभा' ख. ग. पाठः.

अथार्घ्यं तु हृदा दत्त्वा नमस्कृत्य प्रसाद्य च ।

निरञ्जने! लयं गच्छ ठठ ।

अनेन पुष्पाञ्जलिना देवीं सपरिवारकाम् ॥ ७७ ॥

आदायामृतनिःष्यन्दैः खाब्जमध्ये नियोजयेत् ।

अर्घ्यं हृदा विसृज्याथ भोजयेच्च कुमारिकाः ॥ ७८ ॥

वटूनपि यथाशक्ति पायसाज्यमधूत्तरम् ।

सूतकादिषु बाह्यार्चां जपं वा न समाचरेत् ॥ ७९ ॥

पवित्रारोपणादीनि कुर्याच्चैव विधानतः ।

विशेषात् पट्टसूत्रेण पवित्राण्यत्र कल्पयेत् ॥ ८० ॥

गङ्गावतारणं चापि कुर्यात् कङ्कणिकामपि ।

न शस्ता चण्डपूजात्र विधिर्होमस्य कथ्यते ॥ ८१ ॥

तिलाज्यशर्कराहोमः सर्ववश्यप्रदो भवेत् ।

बैल्वैः पत्रैः फलैः शुक्लैः पुष्पैः पत्रैरथ श्रियै ॥ ८२ ॥

जुहोति राजिकालोणैर्मधुना तुष्टिरुत्तमा ।

शुक्लां शुक्लैस्तु कुसुमैर्हुत्वा विद्यां लभेदसौ ॥ ८३ ॥

श्रीवश्याकृष्टिकृत्येषु रक्तां रक्तैस्तु साधनैः ।

दूर्वाग्रैर्लभते कन्यां साज्यान्नेनान्नमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

शिरीषकुसुमैर्वेश्यां वशयेत् क्षौद्रमिश्रितैः ।

शुक्लादिपुष्पैर्होमेन शुक्लादिवसनागमः ॥ ८५ ॥

अपामार्गैस्तथाश्वत्थैर्न्यग्रोधोदुम्बरैरपि ।

विप्रादींश्चतुरो वर्णान् वशयेन्मधुरैः क्रमात् ॥ ८६ ॥

धुर्धूरकाष्ठैस्तद्धोमादुन्मत्ताः स्युररातयः ।

विद्वेषो निम्बकार्पासैर्मारयेत् सविषैर्विषैः ॥ ८७ ॥

काककाकारिपत्राभ्यां होमादुच्चाटयेत्[3] परान् ।

क्षुद्रेषु कृष्णां ध्यायेत् तां कृष्णान्यावरणानि च ॥ ८८ ॥

---

१. 'त्र' ख. पाठः. २. 'कृष्टि' क. पाठः. ३. 'त् पुरात्' ख. पाठः.

मध्वाज्यक्षीरहोमेन समृद्धिर्महती भवेत् ।
वटाधो गोमयालिप्ते दर्भानास्तीर्य साधकः ॥ ८९ ॥

पुष्पलाजाक्षतैः शुभ्रैः पूजयेद् ब्रह्मयक्षिणीम् ।
नित्यमष्टसहस्रं तु जपित्वा निशि तन्मनाः ॥ ९० ॥

मासेन यक्षिणीं पश्येदिष्टार्थांश्चापि विन्दते ।
तन्मन्त्रिताम्बु पीतं तु नित्यं मेधाकरं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

अष्टोत्तरशतं स्पृष्टमम्भः पीत्वा दिवानिशम् ।
निरीक्ष्य बद्धमुद्रस्तु तद्वाचं स्तम्भयेदसौ ॥ ९२ ॥

अश्रुतान्येव शास्त्राणि दर्शनादेव धारयेत् ।
बहुना किं प्रलापेन वाग्विलासविभूतिदः ॥ ९३ ॥

न मन्त्रस्त्रैपुरादन्यः श्रीकरोऽपि विशेषतः ।
शेषमन्त्रविहीनस्तु मनुर्यः प्रथमोदितः ॥ ९४ ॥

बालाभिधानो जप्यः स्याद् बालैरेवैष नेतरैः ।
एतैरशेषशेषस्थैर्मूलार्णैस्तु विभागशः ॥ ९५ ॥

कूटस्थस्त्रैपुरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदो हि सः ।
स्वरादिभिः क्रमात् काद्यैः क्षान्तगैर्द्वितयक्रमात् ॥ ९६ ॥

अन्तःस्थितस्वरैस्तैश्च स्पर्शवामाक्षपल्लवैः ।
क्रमेण त्रैपुरा एव मन्त्रास्ते प्रभवन्ति हि ॥ ९७ ॥

सम्यगित्थमुदिता त्रिपुरेयं कामधेनुरिव कामदविद्या ।
यामुपास्य सुरगुह्यकसिद्धाः सिद्धिमृद्धिमपि चापुरभीष्टाम् ॥ ९८ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
त्रिपुरासङ्ग्रहो नाम
सप्तदशः पटलः ।

## अथाष्टादशः पटलः ।

अथोदितविशेषतस्त्रिपुरहंसवागीश्वरी
सबिन्दुगगनं भृगुः पृथगुपोढबालाक्षरैः ।
इयं भुवनमोहिनी भवति विश्ववाग्भूतये
मुनिस्तु कमलासनस्तदनु चोष्णिगुक्ता च वाक् ॥ १ ॥

मुखे नयननासयोरधरवक्त्रवृत्ते च के
श्रवस्यपरके मुखे च हृदयेऽपि नाभौ क्रमात् ।
न्यसेदखिलविग्रहे शिरसि चेति बिन्दुस्वरान्

ओं हंसः कं खं गं घं ङं हृदयाय नमः । ओं हंसः चं छं जं झं ञं शिरसे ठठ । ओं हंसः टं ठं डं ढं णं शिखायै वषट् । ओं हंसः तं थं दं धं नं कवचाय हुम् । ओं हंसः पं फं बं भं मं अस्त्राय फट् ।

इहाङ्गरचनोदिता भवति बद्धदिग् यादिभिः ॥ २ ॥

निजाङ्गमनुमूलतः स्नपितविग्रहेष्टासनः
पयो[1]निधिपुरक्षितौ स्मरत दिव्यसिद्धाश्रमम् ।
शशाङ्कमणिमण्डपे[2] रजततारसिंहासने
सहाम्बुरुहमुल्लसत्त्रिगुणमेरुसत्कर्णिकम् ॥ ३ ॥

मेरुरूपायै कर्णिकायै नमः ।

नमोऽन्तमथ केसरान् कुलगिरीन्द्रतत्त्वान् यजेत्

कुलपर्वतात्मकेभ्यः केसरेभ्यो नमो नमः ।

तथैव जगतीच्छदैः प्रथितवर्षशैलात्मकान् ।

वर्षपर्वतात्मकेभ्यो दलेभ्यो नमो नमः ।

बहिर्धरणिमण्डलं जलनिधींश्च सप्तार्चयेत्
तथैव दिशि चण्डिकां गणपतिं गुरुं क्षेत्रपम् ॥ ४ ॥

निजाङ्गवृतिरादितस्तु पुरतोऽथ रुद्रो[3]ऽम्बुजे
तथोपरि चतुर्मुखः कमलगस्त्वधो वासुकिः ।

1. 'धिपरिक्षि' ग. पाठः. 2. 'ले' क. पाठः. 3. 'द्रा' ग. पाठः.

दिवाकरनिशाकारावुपरि दीपकृत्यौ पुरः
सरोजजलजाह्वयौ निधिवरौ धनस्राविणौ ॥ ५ ॥
शशाङ्कमणिपाण्डरां वरददक्षिणाक्षस्रजं
प्रसव्यधृतवल्लकीं विधृतपुस्तकां त्रीक्षणाम् ।
जटामकुटचन्द्रिणीममलहारमाल्यादिकां
परामममृतविग्रहां नमत हंसवागीश्वरीम् ॥ ६ ॥
तदम्बुरुहकर्णिकासुखनिविष्टदिव्याकृतिं
विचिन्त्य निजमूर्धनि स्फुटसरोजचन्द्रामृतैः ।
प्रसिञ्चदमलप्रभामथ तदर्घ्यतोयोक्षितैः
सुगन्धिकुसुमादिकैर्यजतु चोपचारैर्धिया ॥ ७ ॥

ऐरावताय नमः । पुण्डरीकाय नमः । कुमुदाय नमः । अञ्जनाय नमः । वामनाय नमः । पुष्पदन्ताय नमः । सार्वभौमाय नमः । सुप्रतीकाय नमः ।

यजेदिति दिशागजान् शतमखादिदिक्षु स्थितान्

धराय नमः । ध्रुवाय नमः । सोमाय नमः । आपाय नमः । अनिलाय नमः । अनलाय नमः । प्रत्यूषाय नमः । प्रभासाय नमः । इत्यष्ट वसून् ।

अजैकपादे नमः । अहिर्बुध्न्ये नमः । विरूपाक्षाय नमः । रैवताय नमः । त्र्यम्बकाय नमः । पिनाकिने नमः । भवनाय नमः । ईश्वराय नमः । कपालिने नमः । स्थाणवे नमः । भवाय नमः । इत्येकादश रुद्रान् ।

धात्रे नमः । अर्यम्णे नमः । मित्राय नमः । वरुणाय नमः । अंशाय नमः । भगाय नमः । इन्द्राय नमः । विवस्वते नमः । पूष्णे नमः । पर्जन्याय नमः । त्वष्ट्रे नमः । विष्णवे नमः । इति द्वादशादित्यान् ।

क्रतवे नमः । दक्षाय नमः । सुधाय नमः । स्तव्याय नमः । कालाय नमः । कामाय नमः । धुनये नमः । कुरुमते नमः । मधुमते नमः । रोचमानाय नमः । इति दश विश्वेदेवान् ।

---

१. 'डु' क. ग. पाठः.

वसून् सुरपतौ यमे त्रिनयनान् जले भास्करान् ।
शशाङ्कदिशि विश्वकान् यजतु चाथ लोकाधिपां-
स्तदस्त्रमयदेवताः प्रणवनामहृत्पूर्वकम् ॥ ८ ॥

गन्धादिभिर्यजेदिति यावत् ।

व्रतोचितमिताशनो धवलगन्धमाल्याम्बरः
पुरश्चरणकं जपेत् तरणिलक्षमक्षस्रजा ।
पलाशकुसुमैः सितैः सरसिजैश्च जात्युत्पलैः
सुगन्धिनवसर्पिषा च जुहुयात् तु लक्षं पृथक् ॥ ९ ॥

ततः सकलसिद्धिभाग् भवति सिद्धवागीश्वरः
स साधकवरः स्फुटं त्रिभुवनैकसम्पत्पदम् ।
जपेत् प्रतिदिनं तथा घृतपयोहुतं शक्तितो
निजैक्यमभिचिन्त्य तां विजयते ह वादे परान् ॥ १० ॥

प्रतप्तकनकप्रभां त्रिनयनां सपाशाङ्कुशां
सखड्गकुलिशाम्बुजां त्रिशिखवर्यहस्तां शिवाम् ।
धृताभयवरप्रदां स्मरतु राज्यलक्ष्म्याप्तये
स्मरेद् भुवनमोहिनीं भगवतीं जपापाटलाम् ॥ ११ ॥

निजैक्यमरुणात्विषं करयगक्कणद्वल्लकीं
सपाशमथ चाङ्कुशं कलशमक्षमालां करैः
विचित्रमणिभूषणां तु दधतीं गिरं चिन्तये-
ज्जपादिषु वशीकरं तदिदमिष्टमाकर्षयेत् ॥ १२ ॥

श्रियं कमलबिल्वकैर्मधुरदुग्धसेकैस्तथा
नृपं च वशयेज्जनं कमलबन्धुजीवैर्हुतैः ।
स्त्रियं लवणतण्डुलैर्द्विजवरांश्च कुन्दोत्पलै-
र्विशोऽपि सगुलैस्तिलैर्मधुतिलैस्तु शूद्रादिकान् ॥ १३ ॥

हुतैर्विषविभीतकैररिविनाशविद्वेषणं
समिद्भिरथ तद्दलैररिविकायसंस्तम्भनम् ।
भवेत् सविषराजिकैर्विषसमिद्धुतैर्मारणं
[illegible] ॥ १४ ॥

गल्वचिशकलैः समैः सुरभिदुग्धदूर्वाङ्कुरै-
हुतैस्तु सकलामयांस्तिलयुतैस्तु मृत्युं जयेत् ।
यदिष्टमिह मानसं तदखिलं जपध्यानतः
प्रसिध्यति निजैक्यतो[1] यजतु हंसवागीश्वरीम् ॥ १५ ॥
किमत्र बहुवर्णितैस्त्रिपुरया तु यत् साध्यते
यदिष्टमनयाप्यलं निखिलमश्नुते विद्यया ।
अतस्तु विनियोगतः खलु समानयुक्तं फलं
ननु त्रिभुवनोदरे न तदिहास्त्यसाध्यं द्वयोः ॥ १६ ॥

हंसवागीश्वरीविधानम्।

---

जला[2]त्रिसलिलात्रयस्तदनु चापि वाग्वादिनी-
त्युदीर्य ठयुगान्वितो मनुरयं दशार्णो गिरः ।
ऋषिस्तु धिषणो भवेदपि परे तु कण्वं विदु-
र्विराजमपि देवतां विदुरथास्य वागीश्वरीम् ॥ १७ ॥

ओं ह्रां वद ऋग्वेद हृदयाय नमः। ओं ह्रीं वद यजुर्वेद शिरसे स्वाहा। ओं ह्रूं वाक् सामवेद शिखायै वषट्। ओं ह्रैं वादिनि अथर्ववेद कवचाय हुम्। ओं ह्रौं षडङ्ग नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं ह्रः इतिहासपुराणशास्त्र स्वाहा अस्त्राय फट्।

षडङ्गसनवस्त्वमी गुरुवरेण सन्दीक्षितः
स्वकर्मकरणे रतो धवलगन्धमाल्याम्बरः ।
व्रतोचितमिताशनः कथितशस्तदेशासनः
पुरश्चरणसिद्धये जपतु पङ्क्तिलक्षं मनुम् ॥ १८ ॥
मनोः प्रथममक्षरं हृदि निविष्टतारं न्यसेत्
कनासिकमुखानि दृग्गलकुचोरुजान्वङ्घ्रयः ।
तथोदरमुदीरितं नवममेषु शिष्टाक्षरं
न्यसेद्धृदयपङ्कजे पुनरपि न्यसेत् तारकम् ॥ १९ ॥
शिरोनयनकर्णयोर्युगलके च नासापुटे
मुखे च हृदये क्रमाच्चरणयोर्दशार्णान् न्यसेत् ।

---

1. 'तो जयतु' ख. पाठः. २. 'द्रि' ग. पाठः.

क्रमोऽयमपरो भवेद् रुचिरमेकमार्गे[1] द्वयो-
स्ततोऽङ्गमनुभिर्न्यसेद् विहितहेतिदिग्बन्धनः ॥ २० ॥

ॐ रक्ष मां दक्षिणामूर्ते! वीरभद्र! नमोऽस्तु ते ।
त्वत्पादसेवान् रक्ष त्वं सदास्मान् भक्तवत्सल! ॥ २१ ॥

अनेन शयनासने गमनयोस्तथावश्यके
पुरो जपतु साधकः स्वतनुमन्त्ररक्षाकृते ।
भुजङ्गजलनर्गमादुपमि च भ्रमं नाशये-
न्मनोर्जपकृतः स चेच्छुचिरिहोत्तरः साधकः ॥ २२ ॥

अथार्चनविधौ स्मरेद् धनददिङ्मुखः स्फाटिकं
पयोजलधिमध्यतः कमलषण्डगं मण्डपम् ।
हिरण्यहरिपीठगं विकसितं सितं मातृका-
सरोजमधिकर्णिकं स्फुटविकीर्णसत्केसरम् ॥ २३ ॥

निजाङ्कलिताघ्यर्तो गगनपद्मचन्द्रामृतैः
स्वमस्तकमथाश्रयं यजनवस्तुजातं क्रमात् ।
निरीक्ष्य समवोक्ष्य तद् यमजलार्थनाथेन्द्रगा-[2]
स्त्वचा मृगरिपोर्बृसीरुपरि पद्मसंस्थान् यजेत् ॥ २४ ॥

क्रमेण चतुरस्त्विमान् प्रकृतवक्ष्यमाणाकृतीन्
सदक्षिणशिवं गुरुं तदनु कृत्तिवस्त्रं गणम् ।
शरच्छशधरद्युतिं त्रिनयनं जटामौलिकं
शशाङ्ककृतशेखरं कलितयोगपट्टासनम् ॥ २५ ॥

अधो वटतरोर्वृतं मुनिभरेण टङ्कान्वितं
सबोधजपमालिकं नमत दक्षिणामूर्तिकम् ।
गुरुं परमकं गुरुं च परमेष्ठिसंज्ञं गुरुं
स्वपूज्यगुरुमन्त्रतो गुरुमनन्तपूज्याह्वयम् ॥ २६ ॥

समाधिनिरतानिमान् नमत शुक्लगन्धाम्बरान्
गणाष्टकविभावितान् सकलवेद्यपारङ्गतान् ।

---

१. 'र्गे' क. ख. पाठः. २. 'थे' ख. पाठः.

कराहितकपालकत्रिशिखमिष्टमुद्रान्वितं
त्रिणेत्रमहिभूषणं गजतरक्षुचर्माम्बरम् ॥ २७ ॥
परेतकमलासनं सुभटमुण्डमालाधरं
सुरासुरनुतं विभुं नमत भैरवं भूतये ।
जपारुणरुचिं विभुं गजमुखं प्रलम्बोदरं
सपाशमपि चाङ्कुशं दधतमात्मदन्तं फलम् ॥ २८ ॥
शशाङ्ककृतशेखरं त्रिनयनं लसद्भूषणं
नतोऽस्मि गणनायकं गगनमूर्तिमिष्टप्रदम् ।
समाहितमनास्त्विमान् दुरितदुःखविघ्नापहान्
प्रणम्य कमलोदरे भगवतीं समावाहयेत् ॥ २९ ॥
मृगाङ्कमणिचन्द्रिकाकुमुदषण्डकुन्दद्युतिं
शशाङ्कशकलोल्लसज्जटिलमौलिकां त्रीक्षणाम् ।
सिताम्बरविलेपनाममलहारहारिस्रजं
धृताभयविलेखिनीं वरदपुस्तकां भारतीम् ॥ ३० ॥
तथाङ्गमनुभिः क्रमाद् यजतु चोपचारैरिमां
विशुद्धगुळपायसं सघृतमस्तु नैवेद्यकम् ।
पटेऽथ फलकेऽथवा समभिलिख्य चित्रे यजे-
न्न चेद् रुचिरपुस्तके लिखितपङ्कजे पूजयेत् ॥ ३१ ॥
खपङ्कजगतां तु वा सवितृबिम्बमध्येऽथवा
जलेऽपि निजवाञ्छया विभवसारसाम्यं यजेत् ।
निजाङ्गवृतिरादितस्तदनु शक्तिभिर्मातृभि-
स्तदाह्वयनमोन्तकं यजतु वक्ष्यमाणक्रमात् ॥ ३२ ॥

ओं योगायै नमः । ओं सत्यायै नमः । ओं विमलायै नमः । ओं बुद्धये नमः । ओं स्मृतये नमः । ओं मेधायै नमः । ओं श्रद्धायै नमः ।

सपुस्तकजपस्रजो विमलहारमाल्योज्ज्वलाः
शशाङ्करुचिरप्रभाः प्रतिदलाग्रगाः शक्तयः ।

---

१, 'खमक्षसु' क. ग. पाठः.

कृताञ्जलिकरद्वया [illegible]

पुराभिहितमूर्तयः स्वसुरलक्षणा मातरः ॥ ३३ ॥

तृतीयवृतिगान् यजेत् कथितदक्षिणेशादिकां-

श्चतुर्थवृतिगान् बहिः शतमखादिलोकाधिपान् ।

तदस्त्रमयदेवतास्त्वथ यथावदन्त्यावृतौ

सुगन्धिकुसुमादिभिः समभिपूज्य मन्त्रं जपेत् ॥ ३४ ॥

जपं च यजनादिकं चुलुकवारिहस्तोऽर्पयेत्

गुह्यातिगुह्यगुप्तात्ममूर्तिस्त्वं परमेश्वरि! ।

गृहाणात्मकृतां पूजां जपाद्यं च फलाप्तये ॥ ३५ ॥

अनेन पदपद्मयोः सकलशक्तिमन्त्रार्चने ।

क्षमापयतु दैवतैर्यजनबिम्बतः स्वाम्बुजे

निरञ्जने! लयं गच्छ ठठ ।

नियोजयतु तां चितिं हृदयपद्मकोशेऽथवा ॥ ३६ ॥

स्पृशन् प्रतिदिनं मुखं निजकरेण तां चिन्तयेत्

त्रिसन्ध्यमपि तं जपन् भवति गद्यपद्यादिकृत् ।

सवामकरमन्त्रवान् कलितमुष्टयवष्टम्भनात्

परस्य वदने क्षिपन् सपदि तद्गिरः स्तम्भयेत् ॥ ३७ ॥

क्षणाच्छ्रुतधरो भवेच्छशधरद्युतिं षड्भुजां

वराभयजपावलीकमलकुम्भपुस्तान्विताम् ।

सितां त्रिनयनां सितैर्वसनमाल्यभूषादिभिः

स्मरन् भवति सर्वविल्ललितवेषतुङ्गस्तनीम् ॥ ३८ ॥

यथोक्तसुभुजाष्टकामथ निजैक्यवागीश्वरीं

चतुर्वदनपङ्कजां निजमुखे च तां चिन्तयन् ।

स्ववक्त्रमभिमन्त्रयन् विजयते ह वादे परां-

स्तदुक्तमनधीतवानपि च शास्त्रवेदान् वदेत् ॥ ३९ ॥

सितैः कुसुमपङ्कजैर्मधुरदुग्धसिक्तैर्हुता-

ल्लभेत कवितां तथा श्रियमपीह षण्मासतः ।

स मन्त्रतनुरादृतो दिनमुखे सहस्रं जपन्
भवेत् स खलु वत्सरात् सकलशास्त्रपारङ्गतः ॥ ४० ॥
दशोत्तरशतं जलं समभिमन्त्र्य काल्यं पिबे-
ज्जले हृदयमात्रके जपतु वा त्रिसाहस्रकम् ।
सहस्रमथवा जपेदुषसि मन्त्रसन्नाहितो
हुतैरपि च वत्सराद् भवति बिल्वकैः काव्यकृत् ॥ ४१ ॥
पलाशकुसुमैर्हुतैः प्रतिनवैः समिद्भिस्तु वा
लभेत कवितां तथा श्रियमपीह मालूरकैः ।
पिबेत् कमलजाह्वयाघृतमनेन वा मन्त्रितं
गृहे सितवचान्वितं सपदि यच्छ्रुतं धारयेत् ॥ ४२ ॥
किमत्र बहुभाषितैर्हि मनसोऽस्य यद् वाञ्छितं
तदस्ति नहि दुर्लभं त्रिभुवनोदरे विद्यया ।
जगद्द्विपदपाकृतिस्थितविभूतिकृत्येप्सया
भजत्यपि ह यां स्वयं कमलभूः कथं वर्ण्यते ॥ ४३ ॥
पलण्डुमपि गृञ्जनं तुषजलं रसोनं[1] तथा
कलञ्जबृहदालु[2]पेज्जपह[3]र्णि तथाम्लातकम्
न भक्षयतु सिद्धये निशि तथैव ताम्बूलकं
दिवा न भजतु स्त्रियं भज[4]ति चेत् स वागीश्वरीम् ॥ ४४ ॥

## दशाक्षरीवागीश्वरीविधानम् ।

पुरः प्रणवशक्तियुग् भवति सैव पञ्चाक्षरा
जगद् वशयतीह या प्रथितसिद्धवागीश्वरी ।
पुरश्चरणकं जपेत् तरणिसंख्यलक्षं पुनः
सगुग्गुलुपयोम्बुजैरपि सपादलक्षं हुतम् ॥ ४५ ॥
निजार्णयुगलैः पृथक् कथितमङ्गषट्कं क्रमाद्
विधानविनियोजनं समभिहापि पूर्वोदितैः ।

१. 'जि' ख. पाठः. २. 'पे' क. पाठः. ३. 'णीं' क. ग. पाठः. ४. 'तु' ख. पाठः.

नमो भगवतीत्यथो पदयुगं च वाग्देवि ठ-
द्वयान्मनुरयं पुरः कथितकृत्यसिद्धिर्मतः ॥ ४६ ॥

प्रज्ञां मेधां श्रुतिं शक्तिं स्मृतिं वागीश्वरीं मतिम् ।
स्वस्ति चेति वदन्त्यन्ये शक्तिर्वागीश्वरीमनोः ॥ ४७ ॥

कदम्बगोलकाकृतिं हृदम्बुजे सरस्वतीं
पतङ्गबिम्बदीधितिं विचिन्तयेद् विमुक्तये ।
सपद्मबिन्दुमध्यगां शरच्छशाङ्करोचिषं
स्रवत्सुधारसप्लवां भवच्छिदं विभावयेत् ॥ ४८ ॥

गगनकमलपूर्णचन्द्रे सुधाप्रसरगलितवारिधाराः स्मरन् ।
उषसि च गिरमेष सन्तर्पयन् भवति विभवमेत्य वागीश्वरः ॥ ४९ ॥

इत्थं प्रोक्तं वागैश्वर्यान्मन्त्रेज्याद्यं सामान्यार्थम् ।
विज्ञायेष्टं वागैश्वर्यं विन्देल्लोके सामान्यार्थम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
वागीश्वरीपटलोऽष्टादशः ।

---

### अथ एकोनविंशः पटलः ।

अत्र गणवृत्तमात्रावृत्तच्छन्दोवृत्तानां लक्ष्यलक्षणोदाहरणभूताः श्लोका लिख्यन्ते ।

सा जयति जगत्यम्बा लक्ष्मीः करुणाकटाक्षपरिपतनात् ।
रक्षत्यभिमतविभवैर्या जनमार्या स्वपोष्यमिव ॥ १ ॥ आर्या ।

धान्यानि गोहिरण्यं क्षेत्रं राज्यं च विभवतुरगगजान् ।
स्त्रीरत्नान्यपि पुष्यति यत्पदकमलस्मृतिर्लोके ॥ २ ॥ प्राग्वत् ।

वान्तो वह्न्यारूढो योजितवामाक्षिबिन्दुनादाढ्यः ।
मनुरुदितः खलु लक्ष्म्या यो जपपथ्याशु सिद्ध्यै स्यात् ॥ ३ ॥ पथ्या ।

शक्त्याद्यन्तपुटस्थः श्रीहृत्संज्ञस्तु मन्त्रराजोऽयम् ।
ध्यानेन गुरुमुखात्तः फलदो गाथासमोऽन्यस्मात् ॥ ४ ॥ पथ्यागाथा ।

विष्णुर्नाम मुनिः स्याच्छन्दस्तज्जागतं तथा दैवम्।
लक्ष्मीर्हि भुवनवन्द्या कथितास्याङ्गानि वक्ष्यामि ॥ ५ ॥ प्राग्वत्।

ओं लक्ष्म्यै हृदयाय नमः। ओं श्रियै शिरसे ठठ। ओं देवजुष्टायै शिखायै वषट्। ओं मायायै कवचाय हुम्। ओं श्रीं हुं फट् अस्त्राय फट्। ओं हं सः। अनेन दशदिग्बन्धः।

दीक्षां प्राप्य तु विद्यां गृह्णीयात् फाल्गुने तु फल्गुन्याम्।
इष्टेऽपि तिथिमुहूर्ते निजजन्मर्क्षादिपथ्येऽह्नि ॥ ६ ॥ मुखपथ्या।

उत्तरपदसंस्थेऽर्के स्नातः सितगन्धमाल्यनववसनः।
आर्यामपि गजवदनं देशिकमिष्ट्वा मनुं जपतु ॥ ७ ॥ इयमप्यार्या।

प्राग् जपतु नदीतीरे बिल्वे च गिरौ मुकुन्दशिवगृहयोः।
लक्षं पृथगथ कथितं ध्यानविधानेन तां यजतु ॥ ८ ॥

भूसरसिजमध्यस्थो मेरुः पृथुकर्णिकास्य भवति तथा।
पर्यन्तकनकशिखरान् केसरजालान् विभावयतु[1] ॥ ९ ॥

तस्य तु कमलस्यासौ संविश्य तु मध्यदेशमतिरुचिरम्।
ऋज्वायततनुरचैलः[2] संयतचित्तः स्वयं भवति ॥ १० ॥

पद्मं सहस्रपत्रं नाभेरर्वाक् तु मिहिरशतरुचिरम्।
ध्यायेत् तारककर्णिकमत्र तदरुणं तु शक्त्यर्णम् ॥ ११ ॥

हृत्पद्मेऽष्टदलाढ्ये स्मरेत् तु माबीजमार्द्रकनकनिभम्।
दशशतपत्रमथाब्जं भ्रूमध्ये शक्तिबीजमपि ॥ १२ ॥

मूर्ध्न्यब्जे शतपत्रे सबिन्दुकुम्भं च टान्तमतिधवलम्।
स्मरतु सुधाप्लववर्षावर्वाग् (?) वक्त्राम्बुजं तदपि ॥ १३ ॥

प्रथमकमले तु शक्तिं घण्टास्वनतुलितरुचिररवमधुराम्।
जपतु मनसैव हृदयगपङ्कजसौषुम्नमार्गान्तम् ॥ १४ ॥ एते त्वार्याविशेषाः।

हृत्पद्मे श्रीबीजं दीपनिभं शक्तिनादसम्भिन्नम्।
उपरि ततोऽपि च पथ्यां प्राप्य सुषुम्नां व्रजेद् बिन्दुम् ॥ इयमपि पथ्या।

---

१. 'वदज्जु' २. 'ति' ख. पाठः. ३. 'म' क. ख. पाठः. ४. 'भाम्' ख. पाठः. ५ 'त' ख. पाठः. ६. 'ये' क. पाठः.

भ्रूमध्यान्मूर्धाब्जं ब्रह्मपथे शक्तिनादसम्भिन्नाम्[1] ।
गगनशशाङ्कसरोजं तां गमयेच्चेतनां लक्ष्मीम् ॥ १६ ॥
चैतन्यात्मानन्दां ब्रह्मपथा[2]धो हृदब्जमानीताम् ।
परमसुधामृतपूरैः प्लावितमूर्तिं हृदि ध्यायेत् ॥ १७ ॥
पौनःपुन्येनैनां मूलगशक्तिं सुषापथं नीत्वा ।
हृदयमथापि च नीतामूर्ध्वगतिं हृद्गतां नित्याम् ॥ १८ ॥
इत्थं प्रोक्ते योगे निष्कलसंज्ञे यदि स्थिरं चित्तम् ।
जपति च तन्मनस्का चेत् पश्यति सर्वं स सर्वज्ञः ॥ १९ ॥
शास्त्राण्यस्याभान्ति[3] च धान्यधनैश्वर्यसंपदोऽपि स्युः ।
वशयति चाखिललोकं श्रीहृदयस्यैवमभ्यासात् ॥ २० ॥
अत्र हि सकलध्यानं वक्ष्ये बहिरन्तरङ्गयजनयुतम् ।
गन्धादिबाह्यविभवैर्मानससिद्धैस्तु तैरपि च ॥ २१ ॥ आर्येयम् ।
क्षीराम्भोधेर्मध्यस्थमण्डपं पद्मवनपरिस्तीर्णम् ।
मुखविपुलार्थाख्यावैर्निधिभिर्ध्यायेच्च हैरण्यम् ॥ २२ ॥ मुखविपुला ।
वैदूर्यसञ्चिततलं चारुचतुर्द्वारतोरणोपेतम् ।
यं शोभयन्ति दूत्योऽपि रुचिरवदना जघनविपुलाः ॥ २३ ॥ जघनविपुला ।
मौक्तिकमरतकमणिभिः स्तम्भाश्चित्रा वितानकानि तथा ।
कोणानि तस्य चत्वारि स्फटिकमणिभिश्चिरत्नपर्यन्तम् ॥ अपरा जघनविपुला ।
सौगन्धिकचलवनगन्धपारिजातादिपुष्परेणुवहाः ।
वान्ति स्म मन्दमलयाद्रिमारुताः सुखमहाविपुलाः ॥ २५ ॥ महाविपुला ।
घनसारकालसारैर्हिमाम्बुकाश्मीरचन्दनोपहितैः ।
पङ्कैः परिमलिता[4]न्ता धूपैश्च दिशोऽत्र मुखचपलाः ॥ २६ ॥ मुखचपला ।
अथ मण्डपस्य मध्ये स्मरेत् तु माहेन्द्रमण्डलं दिव्यम् ।
तन्मध्ये पीठपद्मं यथा स्वभाभिर्महाचपला ॥ २७ ॥ महाचपला ।
मधुरं वीणा[5]रणितं सानकपणवा नदन्ति चाप्यस्मिन् ।
पथ्या गीतिरजस्रं समतालमिताक्षरं मृदङ्गमपि ॥ २८ ॥ पथ्यागीतिः ।

---

१ 'त्', २. 'थो' ख. पाठः. ३ 'न्ति यशोधा' क. ग. पाठः. ४. 'लितांतु धू', ५. 'हि' ख. पाठः.

श्रुतिमधुरा विपुला गीतिः किन्नरजा तथैव मधुपानाम् ।
कलकण्ठकोकिलानां स्वनेन सहितं विभाव्यते यत्र ॥ २९ ॥ विपुलागीतिः ।
शक्तिं शेषमथावनिपीठे पद्मं च संस्मरतु ।
अनलरवीन्द्वधिपतयो विधिविष्णुशिवोपगीतार्थाः ॥ ३० ॥ उपगीतिः ।
पद्माष्टपत्रशक्तीः कान्तिः पुष्टिद्युतिधृतिकीर्तिमतीः (?) ।
तुष्टिश्च शान्तिरासामार्या गीताः स्वनामतो हृदयात् ॥ ३१ ॥ आर्यागीतिः ।
प्राच्यां तु वासुदेवः पत्रे सङ्कर्षणोऽथ याम्ये भवति ।
वारुण्यां प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धाख्यश्च वित्तनाथेऽभिहितः ॥ ३२ ॥
ते शङ्खचक्रहस्ताः पीताम्बरदिव्यमाल्यगन्धाभरणाः ।
नीलसितारुणपिङ्गाः प्रभया श्रीवत्सवक्षसः कौस्तुभिनः ॥ ३३ ॥
ऐरावतो[1]ऽथ कुमुदो वामनसंज्ञोऽथ सार्वभौमोऽपि गजः ।
कोणदलेषु सिताङ्गाः सामृतकलशाश्च ते चतुर्दन्तयुताः ॥ ३४ ॥
ऋद्धिः सरस्वती स्यात् स्वस्तिः प्रीतिः क्षमा रतिः सिद्धिरुची ।
दूत्योऽष्टदिक्षु कथिता माल्याम्बरगन्धभूषणव्यजनकराः ॥ ३५ ॥
अथ भुवनेशान् क्रमशः सायुधपरिवारवाहनान् शक्रमुखान् ।
पञ्चम्यां यजतु वृतौ प्रागेवाङ्गानि केसराग्रेषु यजेत् ॥ ३६ ॥
द्वारे बलाकिनीं प्राग् दूतीं वनमालिकाह्वयां याम्यगताम् ।
पश्चाद् विभीषिकाख्यामुत्तरतः शाङ्करीं यजेद् द्वारि तथा ॥ ३७ ॥
खड्गं च वेत्रयष्टिं तत्र दधत्यस्तु वामनास्ताः सुदृशः ।
स्वाभरणालङ्काराः श्यामलशुक्लातिशोणमधुपिङ्गरुचः ॥ ३८ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाः कोणचतुष्केषु दिव्यमाल्याभरणाः ।
ध्येयाः पुरुषाकाराः सर्वे स्वार्थाभिरूपगुणवेषधराः ॥ ३९ ॥
आवाहयेदथैनां खाम्बुरुहेन्दोः श्रियं प्रभाजालमयीम् ।
हृदये वा बहिरब्जे

"ॐ एह्येहि देवि ! कमले ! जगन्मातर्जगत्पतेः ।
वक्षःस्थलादिहैव त्वं भक्तस्य मम वृद्धये ॥ ४० ॥

---

१. 'त्वो' ग, पाठः,

गृहाण पूजां प्रकृतां यथाविभवभाविताम् ।"
मन्त्रेणानेन संपुटं विधिना ॥ ४१ ॥

मूलाङ्गपूरितार्घ्यस्तेनात्मस्थानसाधनावोक्षणतः ।
शोध्यं स्यात् प्लुतमन्त्रैश्चेद् बेरं पुष्पशोभनतः स्नापनतः ॥ ४२ ॥

हृदयेनार्घ्यं दद्यात् पाद्याचमनमस्त्रतोऽङ्गमनुमूलजपात् ।
स्नानं वसनाभरणे गन्धादीन् पञ्च चापि हृन्मूलयुतम् ॥ ४३ ॥

घृतपायसं तु ससितं नैवेद्यं शुद्धमोदनं घृतमिलितम् ।
स्वादुफलैरुपदंशैर्घृतसिद्धैर्मोदकैस्तथा मधुररसैः ॥ ४४ ॥

शीतलमम्बु सगन्धं दत्त्वा हस्तावसेकतो मुखवासम् ।
जुहुयाच्चाग्नौ विधिवद्धुत्वाभिमुखं तथाङ्गमूलाज्यहुतैः ॥ ४५ ॥

जात्युत्पलानि तुलसी वासन्ती मल्लिका च कुब्जाख्यसहाः ।
नन्द्यावर्तकदमनकमरुवकमालूरनागपुन्नागशीफाः ॥ ४६ ॥

वन्यानि वा सुगन्धैर्युक्त्या पुष्पाणि यानि शुक्लानि तथा ।
त्यक्त्वा द्रोणं लक्ष्म्याः प्रीत्यै प्रभवति चेत्थमार्यागीतिः ॥ ४७ ॥

[एता आर्यागीतयः ।

अजमजरममरमेकं भक्त्या विष्णुं प्रणम्य तु श्रीविषयाम् ।
आर्यागीतां तनुयादिति पथ्यामर्चनां चतुर्वर्गाप्त्यै ॥ ४८ ॥

[पथ्यार्यागीतिः।

श्रियमाप्तुमिच्छुरिह चेत् स साधको जपतु सततमपि मनसि मनुम् ।
विपुलां त्यजन् विषयसक्तिं धिया भाजनं भवति कमलायाः ॥ ४९ ॥

[विपुलार्यागीतिः ।

सितवस्त्रपुष्पगन्धस्तु नित्यहोमी च मन्त्रजपयजनपरः ।
धर्मेण योऽर्थवान् सत्यधीर्भवेत् पदमखिलविभवसंप्राप्तेः ॥ ५० ॥

[विपुलाचपलार्यागीतिः ॥

इति गणवृत्ताधिकारः ।

[illegible] चैष सिध्यति क्षिप्रं भक्तिविशेषसेवया ।
राज्ञां [illegible] तोषयेत् ॥ ५१ ॥ वैतालीयम् ।

धवलाम्बरगन्धभूषितः कृतपुण्याहविशेषमङ्गले[1] ।
भवने कृतविप्रभोजने सितमब्जं विलिखेत् सपीठकम् ॥ ५२ ॥

कमले विनिधाय पावकं चतुरश्रेऽप्यथ [illegible] ।
प्रकृताग्निमुखेऽथ तद्धृदि [illegible] जुहोतु साधनैः ॥ ५३ ॥ प्राग्वत् ।

श्रीसूक्तजपं च तत्र कुर्युरौपच्छन्दसिकीं द्विजा विशिष्टाः[2] ।
वेदांश्चतुरस्तथा जपेयुः सर्वे तेऽत्र कमण्डलुं दधानाः ॥ औपच्छन्दसिकम् ।

बिल्वैः कमलैश्च शुक्लपुष्पैर्लाजैः साक्षतगन्धधूपदीपैः ।
संपूज्य तु पावकं च लक्ष्मीमौपच्छन्दसिकं[3] लभेत सर्वम् ॥ ५५ ॥ प्राग्वत् ।

बिल्वफलैर्वा सितपद्मैरर्थार्थी जुहुयाद् घृतमिश्रैः ।
आपातलिकामपि लक्ष्मीं चिरतरमात्मकुले निदधाति ॥ ५६ ॥ आपातलिका ।

कुमुदोत्पलकुब्जकैर्हुतं वसलाभमधिकं तनोति तत् ।
परमान्नहुतेन सर्पिषा प्राच्यवृत्तिमभियान्ति तं श्रियः ॥ ५७ ॥ प्राच्यवृत्तिः ।

पलाशसमिधां हुताद् भवेदतिमेधा कुसुमैश्च तद्भवैः ।
घृतेन सह दौर्वहोमतश्चिरमायुस्तदुदीच्यवृत्तिकम् ॥ ५८ ॥ उदीच्यवृत्तिः ।

हविष्यभुगथार्धवत्सरं जपेत् प्रतिदिनं श्रियं यजन्[4] ।
स राज्यपदवीमियाच्छ्रियं व्रजेन्न यदि चारुहासिनीम् ॥ ५९ ॥ चारुहासिनी ।

धवलतण्डुलैः क्षीरमिश्रितैर्घृतमधुप्लुतैः[5] स्यात् तथाश्नवान् ।
भगदिने सरलपुष्पहोमतः श्रियमुपैति भुवनेऽपरान्तिकाम् ॥ अपरान्तिका ।

क्रुद्धस्य पुरो जपतु स्वैक्यं ध्यायन् शान्तिं व्रजतीहासौ ।
राज्ञस्तु पुरः प्रजपन् मन्त्रं मात्रासमकं सुहृदं कुर्यात् ॥ ६१ ॥ मात्रासमकम् ।

वीक्ष्य जपेद् यं वशयति तं तं हि वानवासिकमपि मृगयूथम् ।
यदि दुस्स्वप्नं हरति हि काल्यं स्नानजपाद्यैश्चरति च बिल्वम् ॥ वानवासिकम् ।

---

१. 'लैः', २. 'ष्टः', ३. 'स' ख. पाठः. ४. 'यजेत्' क. पाठः. ५. 'तै-र्भवति चात्र' क. ग. पाठः.

दौस्थ्यं हरति तथा विश्लोकं दु[illegible] दोषान् ।
पीडामपि महतीं रिपुजातां होमः [illegible]तैः ॥ ६३ ॥ विश्लोकः ।
यदि वाञ्छति नृपसममैश्वर्यं राज्यं स्वयमिह परिपा(तुपो ? तुं वा) ।
तद्दशशतदिनजपहोमाभ्यां राज्यं श्रियमपि लभते चित्राम् ॥ ६४ ॥ चित्रा ।
षट्त्रिंशच्च शतत्रययुक्तं बिल्वैधांसि फलानि दलानि ।
जुहुयाद् वा बिल्वैरुपचित्रं त्रैषवणं महतीं श्रियमेयात् ॥ ६५ ॥ उपचित्रा ।
तत्कालेषु घृतान्नहुतं स्यात् सक्षीरं द्विजभोजनयुक्तम् ।
उपचित्रापचितिर्निशि कार्या वाञ्छति [illegible] ॥ ६६ ॥ प्राग्वत् ।
विधिना पूरितकलशं स्पृष्ट्वा मन्त्रं जपतु च तद्गतलक्ष्मीम् ।
इष्ट्वा क्षोणीपतिरभिषिक्तः पादाकुलकं भूमिमुपेयात् ॥ ६७ ॥ पादाकुलकम् ।
दत्त्वा द्रविणपशूनपि होत्रे भूषणवसनैर्वाहनधान्यैः ।
अभिमतदानैरपि विप्रांस्तानिष्ट्वा नचिरात् साधयतीष्टम् ॥ ६८ ॥ प्राग्वत् ।

क्षीरोदतनये! राज्ञः प्रसीदाम्बाभिकाङ्क्षितम् ।
श्रीकुम्भेनाभिषिक्तोऽसौ श्रीमान् भूयाच्छतं समाः ॥ ६९ ॥

इति देवीं विज्ञापयेत् ।

अथ शुभनवगृहेविलिखितसरसिजविनिहितनवघटजलमितनवमणिः ।
सवसनपरिमलकुसुमकमभियज कृतमनुजपहुतमुदयति सवितरि ॥ गीत्यार्या ।
नृपवरमपि परमपि नरमभिगुणपरहितसुरवरगुरुनुतिरतिमिह ।
स्नपनकपरमिति यदि कृतमथ खलु चलधृतिमपि भुवि जयमुपगमयति ॥७१॥
[चलधृतिरित्यन्ये ।

शालिदूर्वाबिल्वपद्मोत्पलदर्शपुष्पतिलमाषकुशचतुःक्षीरवृक्षाक्षतान् प्रक्षिप्य ब्रह्मकूर्चं च मुक्ताजालैरलङ्कृत्यात्मानं च शुक्लाम्बराद्यैः कलशे श्रियमावाह्यायुतमष्टोत्तरसहस्रं वा मूलं जपित्वा विष्णोर्महतीं पूजां कृत्वा देवीदेवौ सहितावभिष्टौति ।

जयजय नखमुखविदालितदितिसुत! जयजय विमथितजलनिधिवरभवे! ।
जयजय धृतजलभवरथचरणक! जयजय सरसिजदृशि कृतनिलयने! ॥ चूलिका ।

---

१. 'ताः', २. 'हलि', ३. 'ल' ख. पाठः.

प्रणमत मधुभिदमशरणशरणदमनुपममतिगुणमगणितगुणमिह ।
विश्वात्मानं यन्तं सन्तः पश्यन्त्यन्तः स्वात्मज्योतिः ॥ ७३ ॥ सौम्या ।
लक्ष्मीं देवीं पद्मावासां क्षीराम्भोधेर्जातां वन्दे ।
अभिनवसरसिजदलरुचिपदयुगमिह तव भगवति! भवतु च मम हृदि ॥ प्राग्वत्।

इति नुतिमन्ते कृत्वा धनानि गुरवे च विभवतो दत्त्वा ।
स्वाभिमतमैश्वर्याद्यं प्रभवति नचिरादसंख्यातम् ॥ ७५ ॥

अथ चतुरश्रे गेहे चारुचतुर्द्वारतोरणोपेते ।
फलकुसुमाद्यैश्चित्रे हुतविधिरिह सर्वशान्तिकरः ॥ ७६ ॥

स्वस्तिश्रीसूक्ताभ्यां जपेच्चतुर्दिक्षु धवलकमलसमैः ।
जुहुयाद् बिल्वैः सघृतैर्मध्यमदिवसेऽर्धरात्रेऽपि ॥ ७७ ॥

घृतमपि तद्दशभागं हरये हुत्वा तु भोजयेद् विप्रान् ।
जलतर्पणमपि कुर्यात् प्रतिदिवसं मासमात्रमितम् ॥ ७८ ॥

स भवति सुभगः श्रीमाञ्छमिताखिललोकविप्लवाबाधः ।
कुसुममनेनालब्धं गन्धं वा यस्य दीयते वशयेत् ॥ ७९ ॥

अमृतगते त्वथ वायौ सुप्तजनस्यानिलं पिबेत् सजपः ।
वशयति च स्वललाटे दहनपुरे शक्तिबीजमरुणाभम् ॥ ८० ॥

सहदेवीं परिशुद्धाद् देशात् सङ्गृह्य मन्त्रितां बहुशः ।
शिरसि भुजे वा कलयेद् रणवादवनेषु विजयमीयात् ॥ ८१ ॥

सितपक्षे पञ्चम्यामेकादश्यां तथासिते ललनाम् ।
वशयेत् सजपमुपेत्य नृपमपि पुरुषं तथान्यजनम् ॥ ८२ ॥

लिखतु सरोजं गन्धैः शाक्तैः क्रमशोऽष्टषोडशच्छदनम् ।
रागदलं बहिरस्माद् वितानसंख्यच्छदं ततोऽपि बहिः ॥ ८३ ॥

[आर्याविशेषाः ।

गणच्छन्दोमात्राच्छन्दोवृत्ताधिकारः ।

---

१. 'पम्' ख. पाठः. २. 'दनवेषु' क. पाठः.

अथानुष्टुप् ।

[illegible] लिखेत रक्ष्यमष्ट तद्दलेषु ।
[illegible][1] [illegible] समानमेव ॥ ८४ ॥ समानी ।

षोडशच्छदे[illegible] मूलमन्त्रमालिखेत ।
[illegible] पाशमङ्कुशं क्रमेण ॥ ८५ ॥ प्राग्वत् ।

मातृकाक्षर[illegible] लिखेत् ।
माजपार्णतारकांश्च तद्बहिः क्रमालिखेत ॥ ८६ ॥

तद्धिरण्यताम्रनालवेष्टितं गुलीकृतं तु ।
पद्मपट्टतन्तुना च हेमवेष्टितं क्रियेत ॥ ८७ ॥ प्राग्वत् ।

सरोजमण्डलेऽथ तां विचिन्त्य पूजितां धिया ।
श्रियं सहैव विष्णुना [illegible] ॥ ८८ ॥ प्रमाणी ।

लक्ष्मीकरमायुष्करमेतज्जयचक्रं त्विह ।
रक्षाधनसम्पत्क्षितिपुत्रादिवितानं खलु ॥ ८९ ॥ वितानम् ।

निखिलारातिजयार्थं गुणकोणेऽनलकुण्डे ।
मणिचित्रे सविताने श्रियमावाह्य तु कृष्णाम् ॥ ९० ॥ मणिचित्रा ।

शरखड्गादिभिरस्त्रैर्बहिरास्तीर्य तु वह्नौ ।
जुहुयादक्षसमिद्भिर्नवराजीवदलैकम् ॥ ९१ ॥ प्राग्वत् ।

रूषितोऽरिं प्रतितिष्ठन् रिपुसंज्ञापुटलंस्थम् ।
मनुमुच्चार्य हनाभ्यां कवचास्त्राग्नि[3]भुवस्थां[4] ॥ ९२ ॥ प्राग्वत् ।

अपिपिष्टायुधपङ्क्तैः परमान्नेन च हुत्वा ।
विजयेदिन्द्र इवारीनपि मासात् विमुक्तान्तात् ॥ ९२ ॥ प्राग्वत् ।

इति ह श्रीहृदयाख्यः कथितः कल्पकवृक्षः ।
त्रिजगत्सारमणिर्वा भजतां चिन्तितदोहः ॥ ९३ ॥

**इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे श्रीहृदयाख्य एकोनविंशः पटलः ।**

---

१. 'र्धि', २. 'स्तु' क. पाठः. ३. 'नि' ख. पाठः. ४. 'स्थाम्' क. ग. पाठः.

वक्ष्ये [illegible] श्रीबीजसिद्धिसाधनम् ।
धर्मार्थ[illegible]होवि[illegible] ॥ १ ॥

लक्षत्रयं जले स्थितः पद्माक्षमालया जपेत् ।
तद्वज्जलाभिषेचितो मासत्रयाद् धनी भवेत् ॥ २ ॥ प्राग्वत् ।

यो नियुतानि दिनादौ त्रीणि ज[illegible] ।
विष्णुगृहेऽपि च बिल्वे चित्रपदां [illegible] ॥ ३ ॥ चित्रपदा ।

अपुरश्चर्ययाप्येष भजतां धनधान्यादीन् ।
नित्यमावहतीत्यस्माच्छ्रियो बीजमनुवक्त्रम् ॥ ४ ॥ वक्त्रम् ।

छन्दोऽस्य भवति श्रीस्तु मुनिः स्यान्मङ्कणो नाम्ना ।
देवता चापि लक्ष्मीः स्याज्जपध्यानार्चनैः सिध्येत् ॥ ५ ॥ इदमपि वक्त्रम् ।

अङ्गानि चास्य पञ्च स्युः स्वीयजातियुतान्यन्ते ।

महाश्रिये महाविद्युत्प्रभे! ठठ । श्रिये देवि![2] यजे स्वाहा । गौरी! महाबले! बन्ध! बन्ध ठठ । धृतिः स्वाहा । हुं महाकाये! पद्महस्ते! हुं फट् ।

अन्येऽन्यथा[3] वदन्तीह
श्रिये ठठ । श्रीं फट् । श्रीं नमः । श्रिये प्रसीद नमः । श्रीः फट् ।
मार्गमेकं भजेदाभ्याम् ॥ ६ ॥ एतदपि वक्त्रम् ।

दीक्षां प्राप्य गुरोराप्तमन्त्रः श्रीसाधनाय तु ।
कृतनित्यक्रियः स्वीये पथ्यावक्त्रादिसंयमी ॥ ७ ॥ पथ्यावक्त्रम् ।

शुक्लमाल्याम्बरादिकः शस्ते देशे वसन् रम्ये ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽथवा विपरीतं तु यद् वर्ज्येत् ॥ ८ ॥ विपरीतपथ्यावक्त्रम् ।

रौक्ममैन्द्रमभिनवं मण्डपं हृद्गतं ध्यायेत् ।
हेमवप्रं तु परितश्चपलावक्त्रशोभाढ्यम् ॥ ९ ॥ चपलावक्त्रम् ।

दूतिकास्तु पुरोदिताः पद्माक्षविपुलाननाः ।
द्वारेष्वथ वलाकिनीमुखास्ताः पूजयेत् क्रमात् ॥ १० ॥ विपुलावक्त्रम् ।

---

१. 'मासवती', २. 'वि जये स्वा' ३. 'थाहन्ति ह', ४. 'क्रममभि' ख. पाठः.

प्रदीपपालीकलशैस्तथा चैवाष्टमङ्गलैः ।
स्रग्दामघण्टाविपुलैर्मण्डलं[1] तदलं शुभम् ॥ ११ ॥ मकारविपुला ।
सिंहासनं तस्य मध्ये सुवर्णमणिभासुरम् ।
सिताम्बुजं[2] केसराढ्यं विपुला कर्णिका परा ॥ १२ ॥ रविपुला ।
तत्पद्मदिग्दलगतान् वासुदेवादिकान् यजेत् ।
प्रोक्तवर्णायुधवधू[illegible] ॥ १३ ॥ नविपुला ।
कोणच्छदस्थान् पूर्ववद् गजान् गुग्गुलुपूर्वकान् ।
चतुर्विषाणाढ्यान् सितान् विपुलाङ्गान् यजेत् ततः ॥ १४ ॥

ते गुग्गुलुगुरण्डदमकशलयः ।

सौवर्णसौधकलशैः शिरस्युत्क्षिप्तपुष्कराः ।
सिञ्चन्ति तेऽमृतजलैर्विपुलानन्दनां तु माम् ॥ १५ ॥ नविपुला ।
ततः श्रियं च जगतां मातरं पूर्ववद् धिया ।
समग्ररूपविभवां कर्णिकायां स्मरेदिमाम् ॥ १६ ॥ प्राग्वत् ।
दोर्भिश्चतुर्भिस्तामूर्ध्वे पुण्डरीकद्वयीधराम् ।
वराभयाढ्यां वामादिविपुलां तेजसासमाम् ॥ १७ ॥ इयमपि विपुला ।
नवपद्मान्तराभासां हेमाम्भोजनिभाननाम् ।
सितगन्धाम्बरां माल्यैर्युतां विपुलतेजसम् ॥ १८ ॥ विपुला ।
सुवर्णवर्णामुत्तुङ्ग
चारुपी(नश्वर)पयोधरयुगलाम् ।
शरदखिलेन्दुबिम्बकमलकोमलमुखीम्
अखिलभुवनजनवन्दितपङ्कजपदचतुरूर्ध्वाम् ॥ १९ ॥ पदचतुरूर्ध्वा ।
करमिततनुमध्यां
विकसितकुवलयकमलाक्षीम् ।
अलिकुलरुचिरुचिरचिहुरभरबन्धां
स्मरति यदि निजहृ(तिःदि) स भवति गतसकलपीडः ॥ आपीडः ।

---

१. 'पं' ग. पाठः. २. 'जं कर्णिकाढ्यं' क. पाठः. ३. 'दमल' क. ख. 'अनव-तनमरन्दमलघु' ग. पाठः.

निधियुगमथ लक्ष्म्याः
पदकमलमनुजलभवाह्वम् ।
अनवरतवमदलघुमणिवसुधारं
स्मरतु स निजवपुरभिषिक्तमभिनवपूर्णम् ॥ २१ ॥ प्राग्वत् ।

ध्यायेद् यदि सकृदपि
लभ्यं धनमिह किमपि भवति ।
नित्यं यजति च जपहुतविधिपर इह
प्रत्यादिशदिव धनपतिमिव धनमधिगमयति ॥ २२ ॥ प्रत्यापीडः ।

संसाधयति हि लक्ष्मीं
नग्नो न विशतु जलमपि निद्राम् ।
नेयादशुचिरवनितलशयनमथासौ
तैलार्द्रिततनुर्न चरति किमपि न मलचितदेहः ॥ २३ ॥ प्रत्यापीड एव ।

तिलरसलवणप्रत्यक्षसेवां
बैकुण्ठं चापि वर्जयेत् ।
कमलमपि बिल्वं शीर्ष्णा
पदा च नसंस्पृशेत्सरसिजभवं बीजं नाद्यान्न भिनत्ति कुसुममञ्जरीम् ॥
[* मञ्जरी ।

नच्छिन्द्यात् तृणमपरं च धरां न लिखेद् वृथा
न च मुखे रजनीमनुलेपयेद् ।
पञ्चम्यामपि सप्तम्यां
भगदिने च लवणामलकाम्ललवलीः परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥ लवली ।

स्नातोऽनुपहतशुचिधवलाम्बरकुसुमगन्धधारी
प्रातर्लक्ष्मीपुष्पशिराः ।
भक्षः स्याद् वचनैः सर्वं जनम-
नुगृह्णन् हृदयङ्गमैः प्रीत्येवामृतधाराभिः ॥ २६ ॥ अमृतधारा ।

मधुरं भजन् मगादिने (च)
भुजगातिथिशुक्रवारयोः ।
[illegible]
लभतेऽच्छपर्वणि कुलोद्भूतां श्रियम् ॥ २७ ॥ उद्भूता ।

सघृतौदनेन च घृतेन
सितसरसिजैः सपायसैः ।
बैल्वपत्रफलसौरभकै-
रयुतैर्हुतैः स लभतेऽ[illegible] ॥ २८ ॥ सौरभकम् ।

अभिषेचयेदथ जपेच्च
यजतु स च सूक्तकैः[3] श्रियः ।
हुतविधिमपि पदशस्तनुतां
ललितां विभूतिमचिरेण सोऽनुश्नुते ॥ २९ ॥ ललिता ।

नन्द्यावर्तकपुण्डरीककुब्जकपुष्पै-
रुदिते सवितरि यो जुहोति नित्यम् ।
जपति च दशशतकं
प्रचुपितबहुधनपशुभिः स सुखी स्यात् ॥ ३० ॥ उपस्थितप्रचुपितम् ।

## चतुर्हस्तिविधानम् ।

युद्धहालले नमो फ वा श्रीशे नमः (?) ।
ऋष्याद्यं च पुरोदितं समानमिह स्यात्
प्रतिवासरमपि वर्धमानभक्तिः ।
गलमितसलिलगतस्त्रिनियुतमनुमिह यः
प्रजपति धनमिह विपुलं लभतेऽसौ ॥ ३१ ॥ वर्धमानम् ।

## श्रीरेखाविधानम्[3] ।

हृद्भ्राथ विषं मही जलं च सदीर्घं
नयनान्वितभृगुवर्णमन्ततोऽन्यैः ।

---

१. 'तः', २. 'नम् । हृद' ग. पाठः. ३. 'वर्धमान' क. पाठ.

[illegible] मनुः
श्रियमिह जनयति [illegible]विराड् यः ॥ ३२ ॥ शुद्धविराट् ।

ऋषिरस्य तु दक्ष इतीरितः
सा च विराट् कथिता ह्युपचित्रा ।
कमला [illegible]
दै[illegible] ॥ ३३ ॥ उपचित्रकम् ।

देव्यै नमः । पद्मिन्यै नमः । विष्णुपत्न्यै नमः । वरदायै नमः । कमलरूपायै नमः ।

पञ्चविधाङ्गमनूनि यथावत् क्रमपठितानि पुरेव विधानम् ।
नित्यमिमां तु भजेत् तु नरो यः श्रियमचिराल्लभते द्रुतमध्याम् ॥ द्रुतमध्या ।

आढ्यतमः स भवेदिह बिल्वैः सरसिरुहैरपि वायुतशो यः ।
षष्टिदिनानि ततो द्विगुणं [illegible] जुहुयाच्च जपेत् तम् ॥ प्राग्वत् ।

कमलां भजते दिनशो यो ध्यानपरो यजनेन च होमैः ।
उदितव्रतधारणनित्यो वेगवतीं स जहात्यधनार्तिम् ॥ ३६ ॥ वेगवती ।

शुक्लैः कुसुमैर्[illegible] ।
नित्यं जुहुयात् [illegible] स स्याद् [illegible]र्थनाथः ॥ भद्रविराट् ।

गुळदुग्धगव्यसितपद्मैर्बिल्व[illegible]ः [illegible] ।
जुहुयात् त्रिमास[illegible]नां केतुमतीं जयेदपि तथोर्वीम् ॥ ३८ ॥ केतुमती ।

[illegible]ः ।

---

इह तन्त्रविशेष[illegible] निगदिता मनवः खलु ये श्रियः ।
भजतां समकर्मफलोदयं ननु वदन्ति यथा हरिणप्लुतम् ॥ ३९ ॥ हरिणप्लुतम् ।

इति सरसिजवासिनीमनूनां निगदितमेकतरं तु साधयेद् यः ।
प्रथयति कुलमस्य तं च लक्ष्मीर्गृह[illegible]लतेव पुष्पिताग्रा ॥ पुष्पिताग्रा ।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्र-
सारे चतुर्हस्त्यादिपटलो
विंशति(तम)ः ।

## अथ एकविंशः पटलः ।

जयति हि शिवशक्तिरैश्वरी निखिलगिरां जगतां च मातृका ।
न परमपरवक्त्रजन्मना नुतिवचसामपि यत् परं पदम् ॥ १ ॥ अपरवक्त्रम् ।
प्रथमपटल एव शक्तिबीजं निगदितमाद्यमितीह विश्वरूपम् ।
सुरतरुलतिकेव पुष्पिताग्रा फलति हि यद्वितातिः समस्तकामान् ॥ २ ॥
ऋषिमपि चेश्वरमाहुर्गायत्र्याख्यं भवेदपिच्छन्दः ।
शक्तिः स्वयं हि दैवं तद्बीजं बिन्दुनादयुक्तं स्यात् ॥ ३ ॥
युतमिह गगनं स्वरैस्तु दीर्घैः षडपि च जातियुताः स्युरङ्गमन्त्राः ।
नयनमपि पुरोऽस्त्रमन्त्रतः स्यात् फडिति च दिक्षु निबन्धनं विदध्यात् ॥
भवति हि भुवनाधिपाप्लुतान्ता त्रिभुवनमोहनिका तु शक्तिरेषा ।
हृदयकमलगापि नादहीना स्वरुणरुचिर्हृदयान्विता च लेखा ॥ ५ ॥
त्रिविधमिति ह शक्तिबीजमुक्तं प्रणवयुतं क्वचिदर्चने नमोन्तम् ।
हवनविधिषु चानलप्रियान्तं जपविषये खलु केवलं तु बीजम् ॥ ६ ॥
चिरतरमभिराद्धदेशिकेन्द्रस्तदभिमतं[3]प्रियकृच्च दीक्षितः सन् ।
स्वभिमतदिवसेऽथ पूर्वपक्षे शिवभवने सुमनोहरैकलिङ्गे ॥ ७ ॥
गजमुखमपि देशिकं स्वमिष्ट्वा सितभसितावरणत्रिपुण्ड्रधारी ।
व्रतमितविहिताशनस्तु मौनी शुचिवसनः शुचिदक्षिणाननस्थः ॥ ८ ॥
शिवमपि शिवया महोपचारैः सह परिवारगणं यथावदिष्ट्वा ।
चरुमपि विनिवेद्य दुग्धसिद्धं घृतगुलमिश्रितमग्नये च हुत्वा ॥ ९ ॥
प्रजपतु बहुलाष्टमीदिनाद्यर्दपरचतुर्दशिकान्तमर्कलक्षम् ।
हुतमपि न विलम्बितं प्रशस्तं स भवति तत्त्वदिनैस्तु सिद्धमन्त्रः ॥

### पुरश्चरणाधिकारः ।

स्फुटमथ कथयामि शक्तिपूजां विविधविधानविशेषसिद्धिहेतोः ।
स्नपिततनुरथाङ्गमूलमन्त्रैः स्वविहितसाध्यविधिं समाप्य मौनी ॥ ११ ॥
यजनगृहमुपैतु धौतपादः स विधिकृताचमनः पवित्रपाणिः ।
करधृतकुसुमार्घ्यकूर्चतोयैर्वलयगतां पुरतो यजेत्तु देवीम् ॥ १२ ॥

---

१. 'ग्रां', २. 'ष' क. पाठः. ३. 'तं', ४. 'म' ख. पाठः. ५. 'मुपेत्य धौ' क. पाठः

दक्षिणवामद्वाःस्थे जया च विजया च रक्तपीताभे ।

तद्यथा —

वेत्रकरे वसनस्रक्स्वाभरणैर्भूषिते सुरूपाढ्ये ॥ १३ ॥

तद्वदुपर्यथ गङ्गा यमुना च सितासितेऽब्जधारिण्यौ ।

द्वारश्रीरपि मध्ये स्वर्णाभा पद्मिनी सगजयुग्मा ॥ १४ ॥

संपूज्यैताः पूर्वं नाराचास्त्राभिमन्त्रितं क्षि[1]त्वा ।

निस्सार्य विघ्नसङ्घानन्तः प्रविशेद् यजेच्च वास्त्वीशम् ॥ १५ ॥

स्वासनमिष्ट्वानन्तरमुपविष्टो भूतशुद्धिशुद्धात्मा ।

करयुगमथ शोधयेत् तदस्त्रादुभयकराङ्गुलिषूदिताङ्गमन्त्रात्[2] ।

करतलयुगले न्यसेत् तदस्त्रं प्रणवयुतं क्रमशः कनिष्ठिकान्तम् ॥ १६ ॥

शिरसि च नयनद्वये च वक्त्रे श्रवणयुगे हृदये च नाभिकट्योः।

मदननिलयजानुजङ्घयोस्तच्चरणयुगेऽपि च विन्यसेत् तु मूलम् ॥ १७ ॥

हृल्लेखायै गगनायै रक्तायै करालिकायै महोच्छुष्मायै । प्रणवादिनम न्यसेत् ।

मूर्ध्नि मुखे हृदि गुह्ये पदयोरपि पञ्च मूर्तयो ह्येताः ॥ १८ ॥

गायत्र्यै सावित्र्यै सरस्वत्यै ब्रह्मणे विष्णवे रुद्राय ।

कण्ठस्तनद्वयांसद्वयहृदयेषु न्यसेत् पुनस्त्वेताः ।

षण्मूर्तीः प्राग्वामे पश्चादङ्गेषु दक्षिणे सूक्ताः ॥ १९ ॥

अलिकांसवामपार्श्वोदरदक्षिणपार्श्वांसपृष्ठहृदः ।

स्थानान्यथैषु नाम्ना ब्रह्माण्याद्यास्तु विन्यसेन्मातॄः ॥ २० ॥

तदनु च हृदयादिकाङ्गषट्कं वपुषि निधाय पृथग् यथाप्रदेशम् ।

ज्वलदनलनिकाशमस्त्रवप्रं बहिरथ तर्जनिकाग्रतो विधेयम् ॥ २१ ॥

एतत्पर्यन्तं पुष्पिताग्रा क्वचित् क्वचिदार्या[3]चास्मिन् पटले ।

## न्यासाधिकारः।

---

१. 'क्षिप्त्वा' क. ग. पाठः. २. 'न्' क. पाठः. ३. 'यस्मिन्' ख. पाठः.

गन्धकुसुमवरैः [illegible]

[illegible] दूर्वया [illegible]।

पूरयेत् तु शाक्तमर्घ्यमादरेण

यवान्वितं तु नामतोऽर्चयेत् तदुक्तम्॥ २२ ॥ यवमती।

प्रोक्षयेत् समस्तकं तु कूर्चकेन तदाश्रयं च [illegible]।

वेदकोणरत्नमण्डपं तदेव विभावयेत् तु तत्र रत्नसिंहपीठम् ॥ २३ ॥

शक्तिमस्य चाप्ययोऽरुणां यजेत् (तु) तथैव [illegible] पीठपादान्।

तस्य मध्यतोऽरुणं सरोरुहं(च) चतुर्युगाग्रच्छदं [illegible] ॥ २४ ॥

तस्य षोडश स्वरास्तु केसराणि [illegible] कर्णिका स्यात्।

अष्ट शक्तयो भवन्ति केसरेषु [illegible] सुमङ्गला तु कर्णिकायाम् ॥ २५ ॥

जयायै विजयायै अजितायै अपराजितायै नित्यायै [illegible]सिन्यै शौ-ण्ड्यै अघोरायै सुमङ्गलायै। सर्वत्र [illegible] समानम्।

कोणपत्रगानि वै हृदादिकानि पुरस्तु नेत्रमस्य दिग्दलेषु चास्त्रम्।

पूजयेद् बहिः क्रमेण दिग्विदिक्षु अनङ्गरूपिकादिकाः सुवेषदूतीः ॥ २६ ॥

अनङ्गरूपायै अनङ्गमदनायै मदनातुरायै पवनवेगायै भुवनपालायै स-र्वशिशिरायै अनङ्गदमनायै अनङ्गमेखलायै। [illegible]न्तं पद्मबाह्ये पीठे-ऽर्चयेत्।

ताः स्वर्णकलशदर्पणता[illegible]।

चामरमाल्यकरण्डे [illegible] ॥ २७ ॥

अथ भगवतीं शक्तिं वक्ष्यमाणरूपादिकां ध्यात्वावाह्यार्चयेत्।

अरुणतरुणकमलदलचरणयुगनखमणिरुचिविजितशशिरि[illegible] या (?)।

उपरिचरणयुगलमुपरिनिखिलजगति [illegible] न खलु [illegible]म् ॥ २८ ॥

क्षमत इति जघनमपि तनुतदुदरमथ च [illegible](लं)।

गलमुत किमु मुखसरसिजमुग[illegible]शिखां ॥ २९ ॥

[शिखा नाम चूलिका।

सकलभुवनभवननिलयसुरदिति(ज)दनुजमनुजभुजगवरयुवतीः।

विलसदखिलविमलतुहिनकिरणकमलवदननयनचरणयुवतीः ॥ ३० ॥

---

१. 'वा' क. पाठः. २. 'णि म', ३. 'त्रा' ख. पाठः.

गगनपवनदहनसलिलधरणितरणिमखपशशिन इति सृजति या ।
तदतिसुभगवपुषि न खलु विधिरपि [illegible] ह निगदितुमलमलम् ॥

[षड्जा ।

इति सामान्यशक्तिपूजाधिकारः[1] ।

---

अथ छन्दस्सु, उक्तायां—

ह्रीर्गौर्या श्रीः ॥ ३२ ॥ श्रीनाम वृत्तम् ।

अथात्युक्तायां —

वन्दे गौरीं शक्तिं देवीम् ॥ ३३ ॥ देवी नाम वृत्तम् ।

मध्यमायां —

या सूक्ष्मा चिन्नित्या
ध्येया या सा नारी ॥ ३४ ॥ नारी नाम वृत्तम् ।

प्रतिष्ठायां —

विश्वं लोकं यानुग्राह्यम् ।
स्रष्टुं पातुं चाभूत् कन्या ॥ ३५ ॥ कन्या नाम वृत्तम् ।

सुप्रतिष्ठतायां —

स्वेच्छामूर्तिं या धत्ते विश्वेशी ।
रूपातीतां तां रूपाढ्यां ध्यायेत् ॥ ३६ ॥ रूपाढ्या नाम वृत्तम् ।

अथ गायत्र्यां —

तेजोमयमूर्तिं बन्धूकनिभाङ्गीम् ।
दिव्याकृतिवेषां देवीं तनुमध्याम् ॥ ३७ ॥ तनुमध्या ।

रक्ताम्बरगन्धां रत्नोज्ज्वलमौलौ ।
सार्धेन्दुकलां तां दिव्याभरणाढ्याम् ॥ ३८ ॥

पाशाङ्कुशहस्तां साभीतिवराढ्याम् ।
अष्टाब्दवयस्कां लावण्यरसाब्धिम् ॥ ३९ ॥

विश्वैकजनित्रीं संसारतरित्रीम् ।
बीजात्मकतत्त्वां ध्यायेदिति शक्तिम् ॥ ४० ॥ प्राग्वत् ।

---

१. 'या' ख. पाठः.

उष्णिहि —

खपङ्कजशशाङ्के परामृतरसार्द्रे ।
चितिं भगवतीं तां कुमारललिताङ्गीम् ॥ ४१ ॥ कुमारललिता ।
विभाव्य निजपाणौ स्थिते कुसुमपूरे ।
नियोज्य गगनाब्जाज्जपन् मनसि शक्तिम् ॥ ४२ ॥
यथोक्तवपुषं तां हृत्पीठकमलेऽस्मिन् ।
निवेशयतु देवीं स्थिरां हृदयजापी ॥ ४३ ॥
आवाह्याथ स्थापनसान्निध्ये रोधनावकुण्ठाख्ये ।
तद्वत् प्ररोचनान्तं स्वाङ्गैर्मूलान्वितैः क्रमाद् कुर्यात् ॥ ४४ ॥

ततस्तु —

हृदार्घ्यमपि पाद्यं तथाचमनमस्नान् ।
प्रदेयमपि मूलाद् अथ स्नपनमङ्गैः ॥ ४५ ॥
वराम्बराविभूषाः स्रजोऽपि च सुगन्धान् ।
सुधूपमपि दीपं ददातु निजमूलात् ॥ ४६ ॥
चरुं च विधिसिद्धं तथैव परमान्नम् ।
फलाद्यमुपदंशैः समोदकगुलाज्यम् ॥ ४७ ॥
निवेद्य तु समूलं तथाम्बु च सुशीतम् ।
सुगन्धिमुखवासं हृदा खलु निवेद्यम् ॥ ४८ ॥
पुरोक्तपरिवारान् यथावदुपपत्त्या ।
सगन्धकुसुमाद्यैर्यजेत् तु मनसा वा ॥ ४९ ॥ प्राग्वत् ।

अनुष्टुभि —

पीठबहिष्कोणगतान् बालतनून् हस्तिमुखान् ।
माणवकक्रीडितकानीशदिशाद्यासु यजेत् ॥ ५० ॥ माणवकक्रीडितकम् ।
पाशकरान् साङ्कुशकांस्तानरुणस्रग्वसनान् ।
साम्रफलानेकरदान् स्वाभरणान् स्वर्णनिभान् ॥ ५१ ॥
गणाधिपाय गणाध्यक्षाय गणनाथाय गणेश्वराय । स्वबीजप्रणवादिनमो-ऽन्तं तानर्चयेत् ।

वीथिगतान् बाह्यवृतौ लोकपतीनिन्द्रमुखान् ।
सायुधकांस्तान् सगणान् स्वासु यजेद् दिक्षु सुरान् ॥ ५२ ॥

अथाग्निकार्यार्थमग्निशरणे —

इन्द्रदिशं प्राप्य ततो योनिनिभे कुण्डवरे ।
मान्त्रदिशा वह्निमुखे तत्र यजेच्चापि शिवाम् ॥ ५३ ॥

आज्यचरुक्षीरतिलैर्नित्यविधौ तज्जुहुयात् ।
काम्यकृते चान्यविधावुक्तादिशा स्याच्च हुतम् ॥ ५४ ॥ प्राग्वत् ।

अङ्गानां च दशांशं मूलाद्धुत्वाज्यशेषतः पूर्णाम् ।
भुवि बलिमथान्नशेषैर्विकिरेत् तत्पार्षदेभ्य इति नाम्ना ॥ ५५ ॥

ततः प्रक्षालितपाणिराचान्तस्त्रिसहस्रं सहस्रं वा नित्यं मूलं जपेत् ।

हेममयी जपमाला स्फाटिकजापि वरिष्ठा ।
मौक्तिकजा यदि सिद्धिं चित्रपदां लभतेऽसौ ॥ ५६ ॥ चित्रपदा ।

ततः प्रणम्य चुलुकोदकेन वक्ष्यमाणमन्त्रैर्देवीपदयोर्जपपूजादिकं निवेदयेत् ।

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता ॥ ५७ ॥

भक्तिहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं च पूजिता ।
सर्वं तन्मेऽस्तु सम्पूर्णं तव देवि! प्रसादतः ॥ ५८ ॥

सर्वतत्त्वाधिपायै शक्त्यै नमः ।

अग्निगतामपि बिम्बे बिम्बगतां च खपद्मे ।
तां तु नियोज्य सुधार्द्रे सिध्यति हृत्कमले वा ॥ ५९ ॥

बाह्यपूजायामशक्तश्चेन्मनसैव हृदयाम्बुजे यजेत् ।

## सामान्यशक्तिपूजाधिकारः ।

---

बन्धूकाभां हृल्लेखाख्यां विद्युन्मालालोलाभासम् ।
चन्द्रापीडां दिव्याकारां रक्ताकल्पां त्र्यक्षां वन्दे ॥ ६० ॥ विद्युन्माला ।

कल्पोद्याने रम्यच्छाये प्राग्वत् पीठे पद्मासीनाम् ।
दिव्याकारां द्व्यष्टाब्दाभां हृल्लेखां तां देवीं ध्यायेत् ॥ ६१ ॥

अङ्गान्यन्तः किञ्जल्काग्रे शक्तीरष्टौ पत्राग्रस्थाः ।
विघ्नाधीशं याम्ये रक्तं लोकाधीशान् स्वाशासंस्थान् ॥ ६२ ॥ पूजयेत् ।
एवंरूपां हृत्पद्मस्थां बौद्धद्रव्यैर्धर्मनिवेष्ट्वा ।
चातुर्लक्षं [illegible] सिध्येन्मन्त्रः ॥ ६३ ॥

अपिच —

मध्येऽम्भोधेर्हैमाद्रीन्द्रे कल्पोद्याने रत्नाकीर्णे ।
रक्ताकल्पां त्र्यक्षां देवीं चन्द्रोत्तंसां हृद्यां वन्दे ॥ ६४ ॥
हैमे पीठे रक्ताम्भोजे किञ्जल्काग्रे [illegible] ।
हृल्लेखाद्यास्तत्पत्रान्तः शक्तीर्ह्यष्टौ [illegible] ॥ ६५ ॥

करास्यै विकरास्यै उमादेव्यै सरस्वत्यै दुर्गायै शच्यै मायायै लक्ष्म्यै श्रुत्यै स्मृत्यै धृत्यै श्रद्धायै मेधायै मत्यै कान्त्यै आर्यायै । पत्राग्रेषु द्वे द्वे शक्त्यौ प्रणवादिनमोऽन्तमर्चयेत् ।

वीथ्यां बाह्ये स्वाशास्वष्टौ [illegible] बाह्ये ।
लोकाधीशाश्चास्त्राण्यन्ते पूज्यानि स्युः श्रीकामानाम् ॥ ६६ ॥

हृल्लेखापूजाधिकारः ।

---

यद्याकाङ्क्षेद् भोगैश्वर्यं रत्नाकारैर्लोकाधीशैः ।
दिव्याकारा [illegible]ज्याम्भोधौ कल्पोद्याने पीठाम्भोजे ॥ ६७ ॥
अङ्गान्यन्तर्हृल्लेखाद्या ह्यष्टौ शक्तीः पत्राग्रस्थाः ।
मातॄरष्टौ द्वात्रिंशद् याः शक्तीश्चाथो लोकाधीशान् ॥ ६८ ॥

पूजयेद् इति सम्बन्धः । कास्ताः शक्तयः यद् यथा — विद्यायै ह्रियै पुष्ट्यै प्रज्ञायै सिनीवाल्यै कुह्वै रुद्रवीर्यायै प्रभायै नन्दायै पोषण्यै ऋद्धिदायै शुभदायै कालरात्र्यै महारात्र्यै भद्रकाल्यै कपालिन्यै विकृत्यै दण्डिन्यै मुण्डिन्यै सेन्दुखण्डायै शिखण्डिन्यै निसुम्भमथनायै महिषासुरमर्दिन्यै इन्द्राण्यै रुद्राण्यै शङ्करार्धशरीरिण्यै नार्यै नारायण्यै शूलिन्यै पालिन्यै अम्बिकायै ह्लादिन्यै । एताः स्वनामानुगुणरूपादिकाः प्रणवादिनमोऽन्तमर्चनीयाः ।

पार्वत्येषा लोकाधीशा रक्ताकल्पा सिन्दूराभा ।
भास्वन्मौलिश्चन्द्रापीडा त्र्यक्षा ध्येया धम्मिल्लाढ्या ॥ ६८ ॥
नानारत्नैर्हैमैर्निष्कैर्मुक्ताहारैः केयूराद्यैः ।
क्रोडीबन्धं या बिभ्राणा काञ्चीं चाग्र्यां मञ्जीराभ्याम् ॥ ६९ ॥
(चक्रं ? छत्रं) धवलं धत्ते दूत्येका शुक्लचामरे चान्ये ।
भृङ्गारदर्पणादीन् देव्याः पार्श्वे स्थिता दधत्योऽन्याः ॥ ७० ॥
एवंरूपां ध्यात्वा भुवनाधिपतिं तु पार्वतीं भक्त्या ।
प्रोक्तैः सप्तावरणैरिष्ट्वा मन्त्रं जपेत् कलालक्षम् ॥ ७१ ॥

भुवनाधिपतिपूजाधिकारः ।

---

अथ लिख्यते विधानं भुवनाधिपतिशक्तिहृद्यसंज्ञानाम् ।
एकादशावरणकैः सामान्यं सर्वसिद्धिदं नृणाम् ॥ ७२ ॥
आद्याङ्गैस्तु जयाद्या हृल्लेखाद्याथ मूर्तिभिः षड्भिः ।
सानङ्गरूपपूर्वा स्याद् विघ्नैर्मातृभिर्वृतिः षष्ठी ॥ ७३ ॥
षोडशशक्तिभिरन्या द्वात्रिंशच्छक्तिभिस्तथावरणम् ।
नवमं तु पिङ्गलाद्यं दशमं लोकाधिपैरथास्त्रैः स्यात् ॥ ७४ ॥

प्रागुक्ता एव दशावरणदेवतास्त्वत्र पिङ्गलाक्ष्यादिचतुष्षष्टिशक्तयो लिख्यन्ते—

पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ।
बुद्धिः स्वाहा स्वधा माया तथाभिख्या वसुन्धरा ॥ ७५ ॥
त्रिलोकधात्री गायत्री सावित्री त्रिदशेश्वरी ।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाता शिवप्रिया ॥ ७६ ॥
अमला विमलाख्यान्या अरुणिश्चारुणापि च ।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संख्या[3] च संहृतिः ॥ ७७ ॥
जगन्माता सती चैव हंसिनी मर्दिकाह्वया ।
वज्रिका देवमाता च भगवत्यपि देवकी ॥ ७८ ॥

---

१. 'षा' क. पाठः.　२. 'धा' ख. ग. पाठः.　३. 'न्ध्या' क. ग. पाठः.

पद्मासना च त्रिमुखी ततः सप्तमुखी स्मृता ।
देवासुरविमर्दिन्या लम्बोष्ठी लम्बकेशिनी ॥ ७९ ॥
ऊर्ध्वकेशी बहुलिङ्गा ततः ख्याता बहूदरी ।
रथरेखा शशिरेखा तद्वद् गगनवेगिका ॥ ८० ॥
वायुवेगानङ्गरूपा चानङ्गमदनाह्वया ।
तद्वद् भुवनपाल्याख्या ततश्चानङ्गमेखला ॥ ८१ ॥
मदनातुरसंज्ञा चाप्यनङ्गकुसुमाह्वया ।
विश्वरूपा भवेत् पश्चात् तथासुरभयङ्करी ॥ ८२ ॥
सुररक्षिणिकाक्षोभ्या[2] सत्यवादा शुचिव्रता ।
वज्रवेगा च वरदा वागीशी चेति शक्तयः ॥ ८३ ॥
चतुःषष्टिरिमाः सर्वाः सर्वाश्चित्राम्बरस्रजः ।
स्वनामानुगुणाकाराश्चारुरूपा विभूषिताः ॥ ८४ ॥
ध्यात्वा नमोन्तं तारादि पूजयेदखिलावृतीः ।
हिमवच्छिखरोद्याने रत्नकल्पतरोरधः ॥ ८५ ॥
रत्नसिंहासनाम्भोजे पादपीठोपशोभिते ।
स्वासीनां[3] पूजयेद् ध्यात्वा प्रोक्तरूपादिकामुकाम् ॥ ८६ ॥

**अथ बृहत्याम्—**

इति यजनविधिं बुद्ध्वा प्रतिदिवसमियं पूज्या ।
भुजगशिशुसृतां बुद्धिं सुदृढमृजुगतिं कृत्वा ॥ भुजगशिशुसृता ।
हृदयसरसिजेऽप्येवं यजतु सुमनसा शक्तिम् ।
बहिरपि च शुभैर्द्रव्यैर्विभवसमुचितैर्नित्यम् ॥ ८८ ॥

**एकादशावरणपूजाधिकारः ।**

---

**अपिच—**

अम्बिकां नवघनरुचिं सुन्दरीं तरुणवयसम् ।
भूषितां कनकमणिभिश्लीक्षणामरुणवसनाम् ॥ ८९ ॥ हल्मुखी ।

---

१. 'ण' ख. पाठः. २. 'क्षिका' ग. पाठः. ३. 'धो' क. पाठः.

शुक्तिकाशकलघटितां घण्टिकामपि च दधतीम्।
अङ्गदैः कटकमकुटैर्भूषितामपि च भुजगैः ॥ ९० ॥ प्राग्वत्।

अथवा,

शार्दूलचर्मवसनां भुजङ्गराजोपवीतिनीं सौम्याम्।
उग्रां कपालशूले साभयवरदे च बिभ्रतीं ध्यायेत् ॥ ९१ ।
चामरकलशच्छत्रैरन्यैरपि राजलक्षणैर्विधृतैः।
दूतीभिश्चाभरणैः सप्तभिरुक्तैर्यजेत् समोपेताम् ॥ ९२ ॥

पङ्क्तौ —

आदौ षोडशलक्षमभ्यसेच्छक्तिं वा भुवनाधिपां पुरः।
रक्ताब्जैर्मधुरान्वितैर्भवेद्धुत्वा शुद्धविराट् स साधकः ॥ ९३ ॥ शुद्धविराट्।

क्रूरसौम्ययजनाधिकारः।

---

अथ दीक्षाविधिरुच्यते—

रक्ताब्जं विलिखेत् तु भद्रकं मायाचक्रमथापि वा बुधः।
शक्तिं तत्र यजेद् विधानतः सद्बीजाङ्कुशपाशकर्णिके ॥ ९४ ॥
ऐशान्यां दिशि पञ्चपत्रके त्वम्भोजे कलशांश्च तावतः।
हैमादीन् विधिनाभिपूरयेद्धृल्लेखादिसपञ्चमूर्तिकम् ॥ ९५ ॥
गव्यैः पञ्चभिरेषु योजयेत् पञ्चाशत्प्रणवोदिताः कलाः।
सक्षीरद्रुमचर्मवारिभिर्गन्धाम्भोमणिभिश्च पञ्चभिः ॥ ९६ ॥

अथवा,

पद्मेष्टच्छदने सकर्णिके कुम्भानां नवकं प्रपूरयेत्।
आज्यक्षीरदधीक्षुजैः क्रमात् क्षीरित्वग्रसतीर्थवारिभिः ॥ ९७ ॥
लिप्यर्णौषधिरसमपि मध्यकलशे प्रक्षिपेत्।
ब्रह्माणीप्रभृतीस्तु मातृकाः कुम्भेष्वष्टसु दिग्विदिक्क्रमात्।
मूलाङ्गैः सह मध्यमेऽम्बिकामावाह्यावरणैः सहार्चयेत् ॥ ९८ ॥

---

१. 'क्तां' क. २. 'अ' ख. पाठः. ३. 'री', ४. 'म' ख. पाठः.

पलाशक्काथपूरितकलशद्वयं द्वारचतुष्टये पृथक् पृथग् विन्यस्य रक्षार्थं तेषु जयादिशक्तीरर्चयेत् ।

शैवोक्तं तु विधानमाश्रितो दीक्षायामधिवासनादिकम् ।
कुर्याद् वाप्यथ मन्त्रदीक्षया शक्त्यङ्गैरपि शक्तिबीजतः ॥ ९९ ॥

मधुरैस्त्रिभिः सहस्रं हुत्वा संपातशोधितं त्वाज्यम् ।
कलशेषु तेषु दत्त्वा तैरभिषिक्तं तु दीक्षयेच्छिष्यम् ॥ १०० ॥

अश्वत्थखदिरजातीबिल्वसमिद्भिश्च सर्वधान्यतिलैः ।
चरुणाज्येन च हुत्वा बिम्बे चेष्ट्वाधिवासयेदेनम् ॥ १०१ ॥

शिष्यं तं गुरुरधिवास्यैनं सुस्वप्नैर्निशि विदितोदर्कम् ।
मङ्गल्यैः सह पणवातोद्यैर्गीताद्यैरपि तनुताद् दीक्षाम् ॥ १०२ ॥ पणवम् ।

एवं प्राप्य तु दीक्षां गुरोर्मुखात् प्राप्तशक्तिमन्त्रोऽसौ ।
ध्यानजपार्चनहोमैरिष्टान् संसाधयेन्नरः कामान् ॥ १०३ ॥

**शक्तिदीक्षाधिकारः ।**

---

पूजितवह्नेस्तस्य हृदब्जे सावरणाङ्गां शक्तिमथेष्ट्वा ।
पङ्कजलक्षैर्बिल्वघृतान्नैरस्य हुतैः स्याद् रुक्मवती श्रीः ॥ १०४ ॥ रुक्मवती ।

अष्टसहस्रं वाष्टशतं वा प्रत्यहमुक्तैर्द्रव्यविशेषैः ।
यज्जुहुयात् प्राक्च्छिष्टमथाज्यं बिल्वफलं च श्रीकरमद्यात् ॥ १०५ ॥

समृद्धिविषये ध्यानमुच्यते—

पाशसरोजे चाङ्कुशशङ्खावादधतीं तां हेमनिकाशाम् ।
षण्मुखयुक्तां हृद्यथ वह्नौ पूजयतः स्याच्छ्रीः शरलक्षैः ॥ १०६ ॥

पद्मोद्भवेऽन्ते श्रीशक्तिबीजमुक्तं नमोन्तकम् ।
जपन् जुह्वद् यथापूर्वं लभते धनसम्पदः ॥ १०७ ॥

कल्पनगाधो हाटकपीठे स्वैक्यमुमाख्यां हाटकवर्णाम् ।
अङ्कनिविष्टस्कन्दशिशुं तां संस्मरतः स्याल्लक्षजपाच्छ्रीः ॥ १०८ ॥

आदौ शङ्खनिधिः पाशशक्तिबीजाङ्कुशानि च ।
अन्ते पद्मनिधिश्चाग्नेर्जाया चैवं जपेच्छ्रियै ॥ १०९ ॥

दीर्घजलस्थः सोऽथ सबिन्दुः शक्तियुतोऽस्मात् पर्वतशृङ्गे ।
लक्षजपाद्यैर्दीर्घमिहायुः प्राप्यमिह स्याद् दौर्वहुताद् वा ॥ ११० ॥

कुम्भपुटस्था कुम्भजलस्था भानुसहस्रं तज्जपहोमात् ।
हन्त्यपमृत्युं तज्जलसेकाच्छक्तिरशेषान् हन्ति च रोगान् ॥ १११ ॥

आज्यसेचितामृता समिद्भिः कुम्भसंपुटं जुहोतु लक्षम् ।
संहरेदकालमृत्युभीतिं या मयूरसारिणी जनानाम् ॥ ११२ ॥ मयूरसारिणी ।

हस्तसप्तमीषु सूर्यवारे सूर्यमूर्ध्वबाहुरीक्षमाणः ।
वत्सरं जपेद् दिनेशलक्षं यक्ष्मरोगकांश्च हन्ति कुष्ठम् ॥ ११३ ॥

कुम्भसंपुटं चतुस्सहस्रं भस्म तज्जपेन हन्ति रोगान् ।
वातरोगहृत् तथैव तैलं पित्तहृद् घृतं कणाकफघ्नी ॥ ११४ ॥

पिप्पलीह्लिहां हरेच्च पथ्यां[2] कुक्षिरोगहृत् तथाखिलानि ।
औषधानि यानि तानि मन्त्री यद् ददाति तेन हन्ति रोगान् ॥ ११५ ॥

पञ्चविंशतिं जपेत् तु दुग्धं तत् पिबेत् स विन्दतेऽतिमेधाम् ।
अन्नमन्यदप्यनेन[3] युक्तं भुक्तमायुषे श्रिये च भूयात् ॥ ११६ ॥

तण्डुलैर्दधिप्लुतैस्तु पुष्टिं कन्यकां मधुप्लुतैश्च लाजैः ।
विन्दते पशून् पयोघृताभ्यां चेज्जुहोतु साज्यमन्नमन्नम् ॥ ११७ ॥

पिप्पलैर्वशीकरोतु विप्रान् पङ्कजैर्नृपान् पलाशपुष्पैः ।
तत्स्त्रियं तु कैरवैर्विशोऽन्यांस्तैललोणकैर्हुतैस्तु लक्षैः ॥ ११८ ॥

संवनने मधुराक्तं सर्वं जुहुयाद् वदाम्यथाकृष्टौ ।
ओ(का?ङ्का)राद्यं राज्ञामन्येषां भौतिकादिमन्त्रः स्यात् ॥ ११९ ॥

रक्तहयारिसमिद्भिर्जुहुयाद् वटवृक्षमूलगो रात्रौ ।
लक्षत्रयं घृताक्तैर्मन्त्री पश्येत् तु यक्षिणीं वरदाम् ॥ १२० ॥

सध्यानं शतलक्षं शक्त्यभ्यासाद् विशुद्धदेशान्तर्म्[4] ।
लभतेऽष्टगुणैश्वर्यं दशकोट्या खेचरो भवेदमरः ॥ १२१ ॥

अभ्युदयाधिकारः ।

---

१. 'च' क. पाठः. २. 'थ्यं', ३. 'न्न' ख. पाठः. ४. 'न्तः' ग. पाठः.

शक्तिं रसपत्रसरोरुहे मध्ये च दलेषु बहिः स्वरान् ।
आलिख्य धृतं खलु योषितां कुर्यात् तनयं समुपस्थितम् ॥ उपस्थितम् ।

मध्ये षडरस्य लिखेन्मनुं[1] स्वाख्याद्वयमस्य तु रन्ध्रयोः ।
बाह्ये धरणीभवनं लिखेत् स्नेहं प्रकरोति धृतं द्वयोः ॥ १२३ ॥

त्रिष्टुभि —

साख्यारिरूपं लिखितं कपाले षट्कोणगं मूलमपि श्मशाने ।
सन्तापयेत् तत् प्रजपन् निशायां स्यादिन्द्रवज्राभिहतो यथारिः॥ इन्द्रवज्रा ।

राजीर्मनुष्यास्थियुताः सलोणा राजीघृताक्ता जुहुयात् तु पक्षम् ।
मूलेन साध्याह्वयकृत्ययुक्तं निर्मूलतः शत्रुरुपैति मृत्युम् ॥ १२५ ॥

आजस्नुहिक्षीरसपादधूलीन् काकस्य पक्षान् जुहुयान्निशायाम् ।
मन्त्रं जपन् मारुतसम्पुटस्थमुच्चाटयेत् सप्तदिनैरराातिम् ॥ १२६ ॥

काकारिकाकच्छदनैस्तु जुह्वत् साजासृजा स्नुक्पयसावसिक्तैः ।
स्थाण्वादिमूलेन तु सप्तरात्रं विद्वेषमाशु प्रकरोत्यरीणाम् ॥ १२७ ॥

स्तम्भं च भूबीजपुटे प्रकुर्यादुत्सादनं चाग्निमरुत्पुटस्थम् ।
शान्तिं च पुष्टिं जलसम्पुटस्थं यच्छक्तिबीजं हवने च जप्ये ॥ १२८ ॥

साख्यं तु बीजं वलयद्वयस्थं बाह्यस्वरोपेतकलादलाब्जम् ।
भूबीजपाशाङ्कुशमूलकोणं वश्यं धृतं चक्रमिदं त्रिलोक्याम् ॥ १२९ ॥

षट्कोणशक्तौ निजनाम बाह्ये शक्त्या च पाशाङ्कुशकौ विदर्भौ ।
संवेष्ट्य वायोर्भवनं च बाह्ये वश्यं भवेन्नागदलं मुखस्थम् ॥ १३० ॥

अथोच्यते खड्गविशेषसिद्धिरवाप्य यामूर्जितवीर्यशौर्यः ।
विजित्य शत्रून् विचरेच्च लोकानुपेन्द्रवज्रायुधतुल्यलक्ष्मीः ॥ उपेन्द्रवज्रा ।

विशुद्धदेशे विजने वनादौ विधौ तदन्तःसलिलेऽवगाह्य ।
चतुर्दशीरात्रिमुपोष्य कृष्णां पिशङ्गमाल्याम्बरचन्दनाढ्यः ॥ १३२ ॥

---

१. 'तं', ख. पाठः. २. 'ल' क. पाठः. ३. 'च' ख. पाठः. ४. 'स्वांस्वाहि' ख. पाठः. ५. 'मध्ये' ख., 'जप्येत्' क. पाठः. ६. 'भविम्बपा' ख. ग. पाठः.

सरोजमालिख्य तु पञ्चचूर्णैर्निधाय तस्मिन् कलशं यथावत् ।
सपञ्चरत्नाम्बरमाल्यगन्धं शिवां समावाह्य तु रौद्रसौम्याम् ॥ १३३ ॥

यजेच्च रुद्रावरणैरुपेतां शिवां समूलाङ्गविधानयुक्त्या ।
सगन्धपुष्पाक्षतधूपदीपैश्चरुं निवेद्यात्र बलिं च दत्त्वा ॥ १३४ ॥

धौतं विदोषं नरघातिनं प्रागगर्भरेखास्फुटितादिदोषम् ।
द्विजोपजातिव्यतिरिक्तखड्गं निधाय बिम्बे नृपजातिमिष्ट्वा ॥ उपजातिः ।

क्षणेन शस्त्रेण हतं तु शूरं युवानमानीय मृतं सरक्तम् ।
आभूष्य रक्ताम्बरमाल्यगन्धैस्तं तस्य पाणौ विनिधाय खड्गम् ॥ १३६ ॥

स्पृष्ट्वा जपन् मूलमनुं स यावत् सचेतनः खड्गधरः परेतः ।
उत्थातुमिच्छेदसिमस्य हस्तात् प्रसह्य गृह्णीत नदन् प्रहृष्टः ॥ १३७ ॥

ततः शिवान्तैः परिवारमुख्यैरुद्रास्य तं खड्गवरं दधानः ।
स सार्वभौमोऽपि भवेद् यदीच्छेल्लोकेऽप्रधृष्यः खलु साधकेन्द्रः ॥ उपजातयः ।

अनेनैव प्रकारेण शूलाङ्गुलीयाञ्जनादिसाधनमपि व्याख्यातम् ।

खड्गसाधनाधिकारः ।

---

आयतिभूततदात्मनिबन्धान् संशयितानखिलानपि चार्थान् ।
दोधकचित्तविकारकृतस्तान् वेदयितुं प्रवदेऽहमुपायम् ॥ दोधकम् ।

एकदिनं समुपोष्य तु कृष्णां मातृतिथिं तनुतादुपचारैः ।
एकशिवे महतीमपि पूजां षोडशपङ्करुहैः करवीरैः ॥ १४० ॥

क्षीरचरुं विनिवेद्य घृताढ्यं वह्निमुखेऽपि जुहोति तिलाज्यम् ।
जातिसमित्कुसुमान्नफलानामष्टसहस्रमितं पृथगुक्तम् ॥ १४१ ॥

दर्पणमप्यतिनिर्मलमेकं निर्व्रणमत्र निधाय तु देवीम् ।
तत्र यजेच्च जपेदथ मूलं भानुसहस्रमितं मुकुरस्पृक् ॥ १४२ ॥

यावद् दर्पणविधिं साधयति, तावच्छाकभैक्षयावककुसरान्नं खादेत् । सिध्यति ।

अष्टम्यां वा सूर्यवारे कुमारीं स्नातां सम्यग् भूषितां भोजयित्वा ।
क्षीरान्नाज्यं तत्र पूर्वेद्युरेनां प्रेक्षाकृत्ये शालिनीं दर्पणादेः ॥ शालिनी ।
शुद्धे देशे दर्भशय्याधिरूढां मन्त्रेणैनां दर्पणं चाधिवास्य ।
प्रातःस्नातामर्चितां सूपविष्टां प्रेक्षाकृत्ये योजयेद्दर्पणान्तः ॥ १४४ ॥
रम्ये देशे गोमयेनोपलिप्ते पिष्टैः कृत्वा मण्डलं धूपदीपैः ।
रक्तैः पुष्पैर्दर्पणस्थां तु देवीमिष्ट्वा सर्वं तत्र पश्येत् कुमारी ॥ १४५ ॥

तत्र सा कल्पवृक्षाधः सिंहासनस्थां प्रथमं देवीं दृष्ट्वा ततस्त्रिकालबद्ध-मभीष्टार्थं सर्वं पश्यति । अनेनैवाङ्गुष्ठादिषु प्रयोगो व्याख्यातः ।

**दर्पणपूजाधिकारः ।**

---

स्वैक्यं ध्यायेदथ वा सिंहवाहां रौद्रां कृष्णां सकपालत्रिशूलाम् ।
तोये वाब्धौ द्रुतवातोर्मिमाले[1] न स्याद् भीतिर्विपिने वा रणे वा ॥ वातोर्मिः ।
शक्तिः साक्षं सलिलं चाथ मज्जा खं वह्निस्थं नयनं सर्वशब्दः ।
शक्तिं त्यक्त्वा चतुरोऽर्णान् पुरोक्तान् स्वाहान्तोऽसौ मनुरुक्तो विषघ्नः ॥
स्वैक्यं शुक्लां धृतकुम्भत्रिशूलां शुक्लाकल्पां शशिमौलिं त्रिनेत्राम् ।
संसिञ्चन्तीममृतैः कुम्भसृतैर्ध्यात्वा हन्याद् गरलं मन्त्रजापी ॥ १४८ ॥
यस्मिन् क्षेत्रे कुजवारेषु मृत्स्नां सप्तस्वद्यान्नवदिक्ष्वेष मन्त्री ।
तत् स्वीयं स्यान्नवमासात् पुरस्ताद् भौमाश्विन्यामपि मध्याह्नकाले ॥ १४९ ॥

अमावास्यायां सप्तपञ्चाशद्धटिके कालेऽप्येवम् ।
हस्तादित्ये धृतिसंख्येष्टकास्ता[2] मन्त्री यावद् विलिखेद् यस्य संज्ञाम् ।
सोऽस्य स्निह्येत् तदभीष्टं च कुर्यात् सर्वान् मन्त्री वशयेत् स्पर्शनाद्यैः ॥
इष्ट्वा देवीं पटगां स्थण्डिले वा रम्ये देशे रसलक्षैर्निशीथे ।
मन्त्री पुष्पैः पृथगस्तैः सुगन्धैर्नित्यं देव्याः पदयोः स्याद्धनेशः ॥ १५१ ॥

---

१. 'ले स्यात्', २. 'ता' ख. पाठः.

कर्णिकारलक्षहोमादपि प्राग्वत् फलम् ।
गन्धैः पुष्पैरपि धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यैस्तामुपहारैर्निशायाम् ।
इष्ट्वाग्रे स्यात् प्रजपेदोदयात् तत् षड्भिर्मासैः स भवेद् वित्तनाथः ॥ १५२ ॥
नित्यमर्धरात्रे पूजाजपाद्यैर्धनधान्यैश्वर्यवान् भवति ।
दष्टाख्यार्णैर्ग्रथितं शक्तिबीजं कुड्यादौ स्याल्लिखितं तद्विषघ्नम् ।
अभ्यस्यामुं लिखितं मार्जयेद् वा मन्त्रेणाम्भः परिषिञ्चेत् पिबेद् वा ॥ १५३ ॥
भूर्जे पत्रे लिखितं मूलमन्त्रैर्धान्यादौ तन्निहितं वर्धयेत् तत् ।
इष्ट्वा देवीं धनदं चापि तस्मिन् तेनालब्धं दशपुष्पं च धार्यम् ॥ १५४ ॥

अन्योन्यसंमुखौ हस्तौ सुश्लिष्टौ मुक्ततर्जनी[1] ।
मध्यमाङ्गुष्ठसंयोगान्मुद्रैषा क्षोभणी स्मृता ॥ १५५ ॥
श्लिष्टाङ्गुलितलौ हस्तौ प्रसार्याङ्गुष्ठतर्जनी ।
कनिष्ठानामिकामध्यासंश्लेषान्मोहनी भवेत् ॥ १५६ ॥
तथैव श्लिष्टकरयोः प्रसार्योभयतर्जनी ।
मध्यमाङ्गुष्ठसंयोगपीडनाद् द्रावणी स्मृता ॥ १५७ ॥
तद्वत् सुश्लिष्टकरयोस्तर्जनीद्वयपीडनात् ।
कर्षिणी स्यात् तथा मध्यातर्जाभ्यां ज्यैष्ठिकाद्वयम् ॥ १५८ ॥
निपीड्य सान्निध्यकरी स्याच्छिष्टाङ्गुलि(विस ? व)र्जनात् ।
अनामिके द्वे तर्जाभ्यामधः पाण्योर्निबध्य तु ॥ १५९ ॥
उत्तानपाणितलयोर्मध्यमे सकनिष्ठिके ।
पार्श्वाभ्यां संहताग्रे ते ऋज्वायतमवस्थिते ॥ १६० ॥
कृत्वाङ्गुष्ठाग्रयुग्मेन कनिष्ठामूलयोः स्पृशेत् ।
मुद्रेयं योनिसंज्ञा स्याच्छाक्तेयी सर्वसिद्धिदा ॥ १६१ ॥
मोहनी क्षोभणी योनिमुद्रा द्रावण्यपि क्रमात् ।
नृपसर्वस्त्रियां वश्ये नराणां च नियोजयेत् (?) ॥ १६२ ॥

मुद्राधिकारः ।

---

१. 'नीः' क. पाठः.

गङ्गादीनामपि वरसरितां कूले वाब्धेर्गिरिवरशिखरे ।
उद्याने वा भ्रमरविलसिते कोट्यभ्यासाद् भवति मुनिसमः ॥ भ्रमरविलसितम् ।

खेचारी स्यात् त्रिभुवनभवने पातालं वा व्रजति सुखमसौ ।
हेमाद्रौ वा वसति मनुजपाद् दीर्घायुष्मानतिबलतरुणः ॥ १६४ ॥

वर्ण्यते किमिह शक्तिविद्यया साधकैरिति युतः सुनिश्चितम् ।
प्रार्थ्यते जगति सिद्धिरीप्सिता यादृशी निजमनोरथोद्धतौ ॥ रथोद्धता ।

इत्यशेषभुवनैकमातरं विश्वतत्त्वनिखिलाध्वनायिकाम् ।
शक्तिमाश्रितवतां दृढं नृणां दुर्लभा न खलु सिद्धयोऽखिलाः ॥ १६६ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
शक्तिपटल एकविंश(ति?)ः ।

---

## अथ द्वाविंशः पटलः ।

शङ्करेण विजयस्य तपोभिस्तोषितेन वरदेन वनान्ते ।
या किरातवपुषा सह गौरी स्वागता जयति सा त्वरिताख्या ॥ १ ॥ स्वागता ।

तारं सार्धेन्दुकवचं सोष्ठश्चण्डोऽथ कच्छपः ।
हरान्तवानेकनेत्रः सर्गी संवर्तकाह्वयः ॥ २ ॥

वामाक्षाग्न्याषढी शुक्लं सार्घि खं दण्ड्यथोष्ठगः(?) ।
क्रोधः फट् च दशार्णा स्यात् त्रोतला त्वरितापि च ॥ ३ ॥

ऋषिः किरातरुद्रोऽस्याः पङ्क्तिश्छन्दश्च देवता ।
पार्वती शबरीवेषा ध्येया लक्षेण सिद्धिदा ॥ ४ ॥

तारतः पुरमितं पुरतोऽस्याच्छक्तिबीजमुभयत्र यथा स्यात् ।
द्वादशार्णकलिता खलु सिद्धिं तूर्णमेव दिशति त्वरितातः ॥ ५ ॥

---

१. 'वत्सरि' क पाठः. २. 'ता ॥ इ', ३. 'र्घ' ख. पाठः ४. 'फट् वद' क. ख .पाठः ५. 'णौक्रो' ख. पाठः ६. 'ली' क. पाठः. ७. 'क्ष' ख. पाठः

वर्मतः परमवागपि चास्त्रात् स्वार्णसप्तकयुगार्णविभागात् ।
स्यात् षडङ्गरचनापि च पूर्वैः सोत्तरार्णकलितोऽत्र यथा स्यात् ॥ ६ ॥

अत्रेति सोष्ठचण्डे कूर्माभ्यां हृदयम्, कूर्मोक्तस्वरैकनेत्राभ्यां शिरः । यथोक्तैकनेत्रकोपाभ्यां शिखा । उक्तकोपोक्तभृगुभ्यां कवचं, भृग्वाकाशाभ्यां यथोक्ताभ्यां नेत्रत्रयम् । उक्ताकाशसंवर्तकाभ्यामस्त्रम् । सर्वाणि स्वजातियुक्तानीत्युपदेशः ।

दीक्षितोऽथ गुरुणोदितमन्त्रः साङ्गमूलमनुभिः स्नपिताङ्गः ।
विन्यसेत् तु करयोश्च तदङ्गैर्ज्येष्ठिकान्तमुभयोश्च तलेऽस्त्रम् ॥ ७ ॥

मूलेन व्यापकं विन्यस्य प्रणीतां बध्नीयात् ।

संमुखाश्लिष्टयोः पाण्योः साङ्गुष्ठे तर्जनी पृथक् ।
ऊर्ध्वे व्यवस्थिते[1] कृत्वा वलिताग्रे च मध्यमे ॥ ८ ॥
मध्योपरिगतेऽनामे तदूर्ध्वस्थे कनिष्ठिके ।
निबध्य हवसंस्थानं प्रणीता स्यात् फणाकृतिः ॥ ९ ॥

मुद्रया स्पृशतु[2] सर्वशरीरं स्वैक्यमर्पितधिया स्वभिषिक्तः ।
मुद्रया पुनरपि स्पृशतु स्वं देहमत्र परिधाय च वासः ॥ १० ॥

त्वरिताविद्यायै विद्महे त्रोतलाविद्यायै धीमहि, तन्नस्तूर्णा प्रचोदयात् । अनया त्वरितागायत्र्या देवीं सन्तर्प्य परिवारांश्च स्वनामभिः,

यागभूमिमभिगम्य तु मौनी धौतपाणिचरणः शुभतोयैः ।
चोदिताचमनकृत् परितोऽस्मिन्नस्त्रवप्ररचनाकृतरक्षः ॥ ११ ॥

क्षेत्रपालमपि वास्तुपमिष्ट्वा स्वासने समुपविश्य तु मौनी ।
भूतशुद्धिमपि भावविशुद्धिं भावयेदखिलभूतहितार्थाम् ॥ १२ ॥

करन्यासं कृत्वा बद्धमुद्रो[3] न्यस्ताङ्गमन्त्रः स्वस्थाने स्वार्णान् मूर्ध्नि ललाटे कण्ठे हृन्नाभिगुह्योरुजानुजङ्घाङ्घ्रिषु विन्यसेत् ।

अथ स्वैक्येन देवीं ध्यायेत् । कृत्वात्मशुद्धिं पश्चाद् बाह्यपूजा कुर्याद्, ध्यानं च ।

---

१. 'सि' ख. पाठः. २. 'तु श' क. पाठः. ३. 'द्रन्ब' क. ग. पाठः.

श्यामलां भ्रमरबर्बरकेशीं गुञ्जदामचितहेमकिरीटाम् ।
शारदेन्दुवदनां त्रिदृशं तां तुङ्गपीवरकुचां तनुमध्याम् ॥ १३ ॥

स्वंसचारुसुकुमारभुजस्रक्कन्दलीसुरुचिराङ्गुलिपाणिम् ।
सूरुजानुचरणाम्बुजयुग्मां सर्वकान्तिसमवायसुरूपाम् ॥ १४ ॥

विप्रराजवणिगन्त्यजनागैः कर्णबाहुकटिपादविभूषाः ।
बिभ्रतीं वनजमाल्यविशेषैर्भूषितां किसलयांशुकिनीं ताम् ॥ १५ ॥

बर्हिपिञ्छवलयां च मयूरच्छत्रचामरयुगध्वजयुक्ताम् ।
चिन्तयन् शबरिकापरिवारां स्वैक्यतोऽर्चनविधावपि बाह्ये ॥ १६ ॥

सकृदपि निगदितरूपाद्यां स्मरति ह यजति च गौरीं यः ।
स्वभिमतमिह यदसौ विन्देद् वरफलमिव पतितं वृन्तात् ॥ १७ ॥ वृन्ता ।

अथ हिमगिरितटभुवि चिन्त्यं सुरुचिरमुरुतरमुद्यानम् ।
स्थलमपि मणिमयमस्यान्तर्वसुहरिधृतरुचिरं पीठम् ॥ १८ ॥

शक्तिमस्य मध्यतस्तु धारिणीं विद्रुमद्रवद्युतिं विचिन्तयेत् ।
पत्रजालशोभितं तदुत्थितं श्येनिकोद्गमोपमं च पङ्कजम् ॥ १९ ॥ श्येनिका ।

सूर्यसोमवह्निमण्डलैः क्रमाद् ब्रह्मविष्णुरुद्रदैवतैश्च तैः ।
पत्रकेसरालिकर्णिकागतैः स्वाख्ययात्र पूजयेन्नमोन्तकम् ॥ २० ॥

अथ जगत्याम् —

ततोऽम्बराम्भोरुहचन्द्रपङ्कजे दलाग्रवंशस्थकलामृतस्रुतौ ।
चितिं लसत्तारकसंक्रमद्युतिं सशक्तिपुष्पाञ्जलियोजितां स्मरेत् ॥ २१ ॥ वंशस्थम् ।

सहाङ्गमूलं मनसा जपन् क्रमाद् यथोक्तरूपां त्वरितां विचिन्तयेत् ।
तथा समावाह्य पुरोऽर्चिताम्बुजे हृदा स्थिरीकृत्य तु संनिधापयेत् ॥ २२ ॥

शिरसा सन्निरुध्य मूलेन प्ररोच्यामृतीकृत्य कवचेनावकुण्ठ्य हृदयेनार्घ्यगाद्याचमनानि दत्वा,

यजेत् तदङ्गान्यरुणानि षट् क्रमात् सुरेन्द्रपत्रादिषु रूपतः स्त्रियः ।

---

१. 'षि' ख ग. पाठः. २. 'षाम्' क. पाठः. ३. 'तं श्ये', ४. 'मंम
[illegible]

धनेश्वरेशानदलद्वये त्विमे

गायत्र्यै नमः । प्रणीतायै नमः ।

तथाष्ट शक्तीस्तु दलाग्रगाः पुनः ॥ २३ ॥

हुं रावायै खेचर्यै चण्डायै छेदिन्यै क्षेपण्यै स्त्रियै हुंकार्यै क्षेमकारिकायै।

इमास्तु लोकाधिपवर्णवाहनास्तदायुधाः सप्त यजेदथाष्टमीम् ।
सुभीषणां शूलकपालधारिणीं सजानुहस्तोत्थितविग्रहां भुवम् ॥ २४ ॥

ज्वलत्त्रिणेत्रोग्रमुखीं दिगम्बरां सभूतविघ्नारिभयार्तिनाशनीम् ।
इति स्मरेत् क्षेमकरीं स्वनामभिः सशक्तिबीजादिनमोन्तकैस्तु ताम् ॥ २५ ॥

पुरस्तु फट्कारिणिकां धनुर्धरां रसस्य वामे गुलिकां च बिभ्रतीम् ।
सहेमवेत्रां विजयां जयां तथा सुभूषिते द्वारि बहिःस्थिते यजेत् ॥ २६ ॥

किङ्कर ! रक्ष त्वरिताज्ञां स्थितो भव फट् ।

अनेन कृष्णं त्वथ किङ्करं बहिः सुमण्डितं दण्डधरं तु बर्बरम् ।

लकुळिने नमः । इति किङ्करस्य चेटं कान्तां तादृशमर्चयेत् ।

यजेच्च लोकाधिपतीन् स्वदिग्गतान्

निर्माल्यधारिण्यै चण्डायै[1] नमः ।

अनेन चण्डामपि चेशादिग्गताम् ॥ २७ ॥

सर्वान् स्वनामभिः नमोन्तकमभ्यर्च्य देवीं षोडशोपचारैः परिवारान् पञ्चोपचारैर्यथाविभवमर्चयेत् ।

विचित्ररक्ताम्बरगन्ध + + +. + + पुष्पाक्षतमाल्यदर्पणैः ।
सधूपदीपैर्मधुमूलपायसैर्गुलान्नशुद्धान्ननवाज्यमोदकैः ॥ २८ ॥

इष्ट्वा निवेद्य शीताम्बुताम्बूलाद्यं च भक्तितः ।
निवेद्यशेषमध्वाज्यतिलैः पुष्पैस्तथानले ॥ २९ ॥

देवीमावाह्य जुहुयात् पञ्चविंशतिसंख्यया ।
गायत्र्या चापि मूलेन नित्यमङ्गैर्दशांशतः ॥ ३० ॥

---

१. 'यै । अ' ख. पाठः.

बलिं च तत्पार्षदकिङ्करान्तकं विकीर्य वह्नेः पुरतोऽन्नशेषतः ।
समाप्य तत्कर्म विसृज्य चानलं ततः समाचम्य जपेज्जपस्रजा ॥ ३१ ॥

शक्तिपटलोक्तमार्गेण चुलुकोदकेन पूजाजपादिकं देवीपादाम्बुजे निवेदयेत् ।

प्रणम्य नृत्तस्तुतिगीतवादितैर्यथोपपत्त्या परितोष्य पार्वतीम् ।
निरञ्जने गच्छ लयं ठयुग्मवत् समूलमुच्चार्य हृदि प्रवाहयेत् ॥ ३२ ॥

ध्यानादिना यस्त्वरितां तु नित्यशः शक्त्या यजेद् वा हृदयाम्बुजे धिया ।
तस्येन्द्रवंशानुगुणश्रियो यथा वंशेऽपि नित्याः स्युरशेषसंपदः ॥ इन्द्रवंशा ।

**धनित्यपूजाधिकारः ।**

---

कुण्डे तु योनिप्रतिमे तु मान्त्रिके वह्नौ समावाह्य यथावदम्बिकाम् ।
संपूज्य हुत्वा मधुरैः समीहितान् लक्षेण कामानभिविन्दते फलान् ॥ ३४ ॥
धान्यैर्धनं कृष्णतिलैरभीप्सितं कुन्दैर्नवैश्चम्पकबिल्वपङ्कजैः ।
लक्ष्मीं च राज्यं लभते मधुप्लुतैर्हुत्वा मधूकैः कुसुमैः समीहितान् ॥ ३५ ॥
पुष्टिं च गोधूमयवैस्तथोत्पलैर्जम्बूसमिद्भिर्धनधान्यसंपदः ।
सिद्धार्थकैरीतिहरं तु तण्डुलैरारोग्यमिष्टागमनं तथेक्षुभिः ॥ ३६ ॥
हुत्वा तु माषैरिह मूकतां रिपोरक्षैर्भ्रमः कोद्रवकैर्गदागमः ।
स्याच्छल्मलीभिः सविषैस्तु मारणं तां कृष्णवर्णां प्रविचिन्त्य भीषणाम् ॥३७॥
क्षोभः पुरस्यापि भवेत् सुमल्लिकैर्हुत्वा स्त्रियः पाटलकैरवाप्नुयात् ।
आम्रैस्तदायुः कुमुदैर्वशीकरं पुत्रानशोकैर्मधुराज्यमिश्रितैः ॥ ३८ ॥

**होमविधिः ।**

---

द्रुतमपीह न मन्त्रमुदीरयेद्धुतविधौ च (न?) तथैव जपादिके ।
न च विलम्बितमिष्टमतः सदा द्रुतविलम्बितमेव हि सिद्धिदम् ॥ द्रुतविलम्बितम् ।

---

१. 'म' क. पाठः.

सितरजोरुचिते त्वथ मण्डले विकिरसंमितयोनिनिभे क्रमात् ।
दशदिशालिखितत्वरिताक्षरे स्वभिनवान् कलशान् दश विन्यसेत् ॥ ४० ॥

हुंरावादिभिरापूर्य कलशान् नवशक्तिभिः ।
क्रमेण दशमं मध्ये देव्या मूलेन पूरयेत् ॥ ४१ ॥

हिरण्यरत्नकुसुमफलगन्धकषायकैः ।
आपूर्य पनसाश्वत्थचूतबिल्वदलोत्तरान् ॥ ४२ ॥

सितसूक्ष्माम्बरच्छन्नान् माल्यपुष्पाद्यलङ्कृतान् ।
यथावदर्चयेत् सम्यक् त्वरिताशक्त्यधिष्ठितान् ॥ ४३ ॥

अथाग्नौ त्रिशतं मूलेन हुत्वा पृथक् पृथग् दशाहुतीरङ्गैर्नवशक्तिभिश्च दश दश हुत्वा तिलैश्चरुणा च,

समधिवास्य च शिष्यमुपोषितं निशि रवावुदिते कलशैः क्रमात् ।
तमभिषिच्य तु मान्त्रिकदीक्षया त्वरितया विधिवत् सह योजयेत् ॥ ४४ ॥

स गुरवे विनिवेद्य तु दक्षिणां निजशरीरधनैरपि तोषयेत् ।
अथ जपेद् गुणलक्षमिमं मनुं भवति सिद्धमनुः खलु शक्तिमान् ॥ ४५ ॥

दीक्षाधिकारः ।

---

वररागभवैर्धृतमानमिदं शुभताम्रमतो रजतं कनकम् ।
द्रुतमेकतया त्वथ तत्कृतया ग्रहतोटककृत् खलु मुद्रिकया ॥ ४६ ॥ तोटकम् ।

त्वरितया लक्षाज्यहोमजपसाधितया । अङ्गुल्या धृतयेति यावत् ।

धृतया तु तया खलु भूतगणानभिचारभयं भुजगान् सविषान् ।
अवलोकितयापि हरेत् स्ववशान् कुरुते च लुनाति निहन्ति च तान् ॥ ४७ ॥

संख्याशक्तेर्बहिः पद्मदशपत्रस्थिताक्षरैः ।
षट्चतुष्कोणगं लेख्यं चक्रं तच्चेष्टदं धृतम् ॥ ४८ ॥

---

१. 'हुंकारा', २. 'श्चरु' ख पाठः.

प्राचीनोदीच्यतिग्मांशुरेखाः करककोष्ठके ।
रेखाग्रजम्भशूलाढ्ये चक्रे भूर्जादिकेऽर्पिते ॥ ४९ ॥

मध्ये संज्ञां तु कोणेषु तारं फट् दिक्षु मध्यतः ।
कोणे तारादिमन्त्राणां तत्फडन्तान् यथा तथा ॥ ५० ॥

संलिख्य तत्रोभयथा दिक्षु मूलाष्टकं भवेत् ।
विंशतिः प्रणवास्तस्मिन् भवन्ति श्रुतिकोणगाः ॥ ५१ ॥

सर्वकोष्ठेषु नामार्णान् क्रमादेकैकशो लिखेत् ।
जपहोमार्चितं चक्रं धृतं सर्वग्रहार्तिजित् ॥ ५२ ॥

त्रोतलाचक्रम् ।

अथवात्र चतुष्कोणप्रणवानां चतुष्टयात् ।
लेख्या पुरोवत् त्वरिता संज्ञार्णसहिता क्रमात् ॥ ५३ ॥
एतत् तु त्वरिताचक्रं ग्रहभूतनिवारणम् ।
दशार्णस्य मनोरस्य द्वितीयं च तृतीयकम् ॥ ५४ ॥

षष्ठं च वर्णमुद्धृत्य सिध्येन्मन्त्रस्त्रिकण्टकी[1] ।
शिरोललाटास्यहृत्सु नाभिगुह्योरुजानुषु ॥ ५५ ॥

अङ्घ्र्योश्च त्वरितावर्णान् मुक्ततारान् नव न्यसेत् ।
शरदस्त्ररसैर्वसुनन्दपरैर्निजजातियुतस्त्वरिताक्षरकैः ।
ाडपीह तदङ्गमनून् रचयेद् गुणलक्षजपेन तु सिद्धिमियात् ॥ ५६ ॥

वरणादसितामपि नाभितटादथ चा[3]गलकं नवयावकभाम् ।
शशिशुभ्रमुखीं च गलात् परतो धृतचन्द्रकलां जटिलां त्रिदृशम् ॥ ५७ ॥

उदरेवदनैरसितैर्भ्रुकुटीकुटिलैर्भयदैः सितदंष्ट्ररदैः ।
अहिभूषणकैरपि वेदमितैर्वमदग्निशिखैः परितोऽपि युताम् ॥ ५८ ॥

सेतशङ्खमरिं त्वथ दीपयुगं दधतीं च भुजैः सममूर्ध्वमधः ।
इति शैलसुतां तु निजैक्यगतामभिचिन्त्य जपादिकमिष्टकरम् ॥ ५९ ॥

स्वैक्यं त्रिकण्टकीं ध्यात्वा मुद्रां बद्ध्वा त्रिशूलिनीम् ।
जपन् वीक्ष्य ग्रहग्रस्तान् नश्यन्त्याविश्य ते क्षणात् ॥ ६० ॥

---

१. 'क्षीम्'. २. 'व'. ३. 'ङ्गु'. ४. 'द' ख. पाठः. ५. 'वि' ग. पाठः

त्रिकण्ठकीरूपं रुद्रं स्वैक्यं ध्यात्वा ग्रहादीन् हरेदिति कश्चित् ।
अथ वास्य मनोर्मुनिवर्णमयं नवमार्णपुटं प्रजपेद् युवतीः ।
गुणलक्षमथो वशयेद् यदि तत् त्रिशतं शयने निशि कर्षणकम् ॥ ६१ ॥

एतदभिमन्त्रितपुष्पादिदानाद् वश्याः स्युः स्त्रियः ।
तृतीयपञ्चमार्णाभ्यां सम्पुटं षष्ठमक्षरम् ॥ ६२ ॥

स्वैक्यं जपंस्तोतलया स्मृत्वा हन्त्यखिलं विषम् ।
अथाखिलविधिच्छिद्रं पूरणं त्वरितामनोः ॥ ६३ ॥

ॐ सर्वरक्षाकरं ज्ञेयं त्वरितापञ्जरं यथा ।
हुंरावा मस्तके मेऽस्तु गलेऽस्तु मम खेचरी ॥ ६४ ॥

चण्डा च हृदये मेऽस्तु छेदिनी चोदरेऽस्तु मे ।
अस्तु मे क्षेपणी कट्यामूर्वोः स्त्रीसंज्ञितास्तु मे ॥ ६५ ॥

जान्वोर्ममास्तु हुङ्कारी क्षेमकार्यस्तु जङ्घयोः ।
फट्कारी पादयोर्मेऽस्तु सर्वाङ्गेषु जयास्तु मे ॥ ६६ ॥

विजया सर्वतत्त्वेषु ममास्तु विजयावहा ।
एवमुच्चारयन् ध्यायंस्तत्तदङ्गं स्पृशाम्यहम् ॥ ६७ ॥

ॐ ब्रह्माणी पुरतो मेऽस्तु पृष्ठे माहेश्वरी मम ।
पार्श्वयोर्मेऽस्तु कौमारी वैष्णवी चोर्ध्वतोऽस्तु मे ॥ ६८ ॥

जले रक्षतु वाराही स्थलेन्द्राणी स्थिताऽवतात् ।
सर्वतोऽस्तु स्थिता चर्चा चामुण्डा रक्षताच्च माम् ॥ ६९ ॥

पर्वताटविदुर्गादौ रक्षिणी[1] मेऽस्तु चण्डिका ।
वज्रिणी पूर्वतो मेऽस्तु स्थिताग्नेयेऽस्तु शक्तिनी ॥ ७० ॥

दण्डिनी दक्षिणे मेऽस्तु खड्गिनी मेऽस्तु नैर्ऋते ।
पाशिनी वारुणे मेऽस्तु वायव्ये ध्वजिनी स्थिता ॥ ७१ ॥

---

१. 'क्ष' क, ख' पाठः.

गदिनी मेऽस्तु कौबेरे तथैशानेऽस्तु शूलिनी ।
चक्रिण्यधोगता मेऽस्तु पद्मिन्यस्तु ममोर्ध्वगा ॥ ७२ ॥

लोकेशायुधरूपा मां सदा रक्षन्तु शक्तयः ।
मां पातु दिक्षु त्वरिता त्रोतला च विदिक्षु माम् ॥ ७३ ॥

ऊर्ध्वाधः पातु मां तूर्णा सदाव्यान्मां त्रिकण्ठकी ।
त्वरितापञ्जरस्थोऽहं विद्यया परिरक्षितः ॥ ७४ ॥

न कुतश्चिद् भयं मेऽस्ति ततोऽस्मान् पातु पार्वती ।
यदन्यरक्षा कर्तव्या पञ्जरस्य जपं तदा ॥ ७५ ॥

मांशब्दविषये योज्यस्त्वांशब्दः सर्वतो भवेत् ।

त्वरितापञ्जराधिकारः ।

---

अचिररुचिलताभां त्रोतलाख्यां स्मरति यदि सुजातां कुण्डलिन्याः ।
कमलपुटमुपेतां द्वादशान्ते स्रवदमृतरसार्द्रां मुक्तिमेयात् ॥ ७६ ॥ पुटः ।

पुनरपि गगनाब्जान्मूलपद्मं त्वरितमिव समेता ब्रह्मनाड्या ।
व्रजति च पुनरूर्ध्वं ज्योतिरार्द्रा दिशति सकलसिद्धीः संस्मृतैवम् ॥ ७७ ॥

जगति निखिलमन्त्राः साधकानां विदधति फलमिष्टं कालपाकात् ।
प्रदिशति खलु तूर्णा तूर्णमिष्टं यदिति भवति सार्थं नाम चास्याः ॥ ७८ ॥

जलोद्धतगतिं यथा त्रिपथगां विगाह्य दुरितं प्रयाति विलयम् ।
भवेच्च सुकृतैः सुखं च सुलभं तथा त्वरितया जनस्य भजतः ॥ जलोद्धतगतिः ।

अयं[1] नोपदेश्यो मनुस्त्रोतलाया भुजङ्गप्रयातात्मने[2] नास्तिकाय ।
प्रदेयः स्वभीष्टार्थदायापि राज्ञे सुपुत्राय वा श्रद्दधानाय नित्यम् ॥ भुजङ्गप्रयातम् ।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
त्वरितापटलो द्वाविंशः ।

---

१. 'यत्नाप' क. पाठः. २. 'त्मना' ख. पाठः.

## अथ त्रयोविंशः पटलः ।

पुरस्तारशक्ती च वाङ्नित्यशब्दौ भुजः सा[1]क्षिमांसः सझण्टी द्विमेषः ।
विषा[2]तिद्रवे चापि शक्तिश्च वाग्जं ठयुग्मं[3] च नित्यां त्रिपञ्चार्णकोक्तौ ॥ १ ॥
विना वाग्भवं स्वैः क्रमात् क्रूरखारी भवार्णैः समस्तेन चाङ्गानि षट् स्युः ।
यथा जातियोगा[4]त् तदङ्गान्तमेवं पुनर्वाग्भवेन त्वथाङ्गानि कुर्यात् ॥ २ ॥
ऋषिः कामदेवोऽतिशक्र्यपीष्टा मनोश्छन्द उक्ता तु नित्याभिधाना ।
भवेत् क्लिन्नपूर्वा स्वयं देवतोमा फलं लोकवश्यं च लक्ष्मीकरं तत् ॥ ३ ॥
गुरोः प्राप्य दीक्षां तु लब्धप्रसादो मनुं साधकोऽसौ जपेत् प्राग् विधाय ।
तथात्मादिशुद्धिं त्वथो माधवाब्धे[7]ः स्मरेदन्तरीपं तु मध्ये त्रिकोणम् ॥ ४ ॥
लसत्कल्पवृक्षैश्च हृद्यं तु तस्मिन् समुद्यद्दिनेशं तथैन्द्वीं च पश्चात् ।
स्फुरत्पूर्णचन्द्रं सनक्षत्रमालं नभः प्रावृषेण्यैर्घनैः क्वापि रम्यम् ॥ ५ ॥
स्फुरत्कुड्मलाढ्यैर्गुलुच्छप्रवालैः पिशङ्गैरशोकैश्च शोकापहं तत् ।
कलैः कोकिलानां तथा षट्पदानां विरावैः सुरम्यं च हेमस्थलान्तम् ॥ ६ ॥
ततस्तस्य पद्मे स्फुरत्पद्मरागं यजेद्धेमपीठं त्रिकोणं सपद्मम् ।

ओं ऐं क्लीं योनिपद्मपीठाय नमः । इति तत्पीठमभ्यर्च्य, ओं आं द्रावण्यै, ओं ईं आह्लादकारिण्यै, ओं खं क्षोभण्यै

इतीष्टाग्निवाशिकोणेष्वथास्मिन्

ओं ऐं मदद्रवायै । ओं औं रौद्र्यै । ओं अः मदनातुरायै । ओं ऐं क्लीं योनिशक्त्यै ।

नमोऽन्तं दिशास्वत्र मध्ये च पूज्याः ॥ ७ ॥

ततो द्वादशान्ते चितिं सूक्ष्मरूपां स्मरन् शक्तिमाद्यां सुधार्द्रां तु नित्याम् ।
समावाहयेत् तां तु तद्योगपीठे यजेच्चोपचारैरिहोक्तस्वरूपाम् ॥ ८ ॥
बन्धुजीवारुणां रक्तगन्धाम्बरां दिव्यरत्नोज्ज्वलैर्भूषणैर्भूषिताम् ।
पीनतुङ्गस्तनीं षोडशाब्दाकृतिं हारिधम्मिल्लकां स्रग्विणीं त्रीक्षणाम् ॥ स्रग्विणी ।

---

१. ‘क्ष’ ग. पाठः. २. ‘त्र’ क. घ. पाठः. ३. ‘फं’, ४. ‘त्यां’, ५. ‘काम्’ ख. पाठः. ६. ‘यास्तद’ क. पाठः. ७. ‘से’ ग. पाठः.

पूर्णचन्द्राननां चन्द्रमौलिं शिवां षड्भुजां बिभ्रतीं पाशमप्यङ्कुशम् ।
पारिजातस्पृशं दक्षिणे सव्यतः सत्कपालामृतां वादयद्वल्लकीम् ॥ १० ॥
सर्वतः सुन्दरीं द्राङ् मदाघूर्णितां चिन्तयन् पार्वतीमर्चयेत् साधकः ।
हेमबेरेऽपि वा चारुचित्रेऽथ वा द्रव्यसम्पन्न चेत् स्वैक्यतो वा धिया ॥ ११ ॥

अथ पूर्वादिमध्यान्तं नव शक्तीरर्चयेत् । इं नित्यायै । ईं सुभद्रायै । उं मङ्गलायै । ऊं नरवीरिण्यै । एं सुभगायै । ऐं दुर्गायै । ओं मनोन्मन्यै । औं मदद्रवायै । अं काममन्दिरायै ।

दिक्षु शक्तीरिमाश्चारुरूपारुणा रक्तगन्धाम्बरा भूषिताङ्गयः स्थिताः ।
वादयन्तीः समं वल्लकीश्चिन्तयन् साङ्गयैः पूजयेन्मन्मथाघूर्णिताः ॥ १२ ॥

ओं अं अनङ्गाय । ओं स्मराय । ओं मन्मथाय । ओं कामाय । ओं कुसुमायुधाय।

रक्तगन्धाम्बरांश्चारुवेषाकृतीन् पुष्पचापं शरं पाशमप्यङ्कुशम् ।
बिभ्रतश्चेषुधी पञ्च कामानिमान् दिक्षु चैवाग्रतो बाह्यतः पूजयेत् ॥ १३ ॥

सर्वे लकुळीकामस्वाख्या नमोन्तमिति यावत् (?) । जं रत्यै नमः । जां विरत्यै नमः । जिं प्रीत्यै नमः । जीं विप्रीत्यै नमः । जुं मत्यै नमः । जूं दुर्मत्यै । जों धृत्यै । जौं विधृत्यै । जं कुष्टयै । जः पुष्टयै नमः ।

कामानां पार्श्वयोर्द्वे द्वे दशैताः क्रमशोऽर्चयेत् ।
वीणाकराश्च गायन्त्यो रक्ता रक्ताम्बरादिकाः ॥ १४ ॥

तद्बहिर्लोकपान् सात्त्ववाह्यदिकान् स्वावकाशस्थितान् पूजयेत् स्वाख्यया ।
पायसं सैक्षवं क्षौद्रसर्पिःप्लुतं मोदकैरन्वितं यन्निवेद्यं भवेत् ॥ १५ ॥
नालिकेराम्बु च स्वादु पानीयकं हस्तसेकं तथा साङ्गताम्बूलकम् ।
स्यात् प्रदेयं ततो नृत्तगीतादिभिः स्तोत्रवन्मङ्गलैस्तोषयेत् पार्वतीम् ॥ १६ ॥

**पूजाधिकारः ।**

---

अनुलोमतोऽपि च विलोमगतैर्लिपिवर्णकैः सह मनुं जपतः ।
वशमेति विश्वभुवनं त्वचिरात् प्रमिताक्षरापि च भवेत् कविता ॥ प्रमिताक्षरा।

---

१. 'तु', २. 'कु' ख. पाठः.

अथ योनिकुण्डहुतभुग्वदनः स्वभिपूजितां भगवतीं य इमाम् ।
अभिचिन्त्य रक्तकमलैर्मधुना स्नपितैर्जुहोति स भवेद्धनदः ॥ १८ ॥

मधुना मधूककुसुमैर्जुहुयान्नियुतं महद्धनमसौ लभते ।
सघृतान्नदुग्धमधुनान्नवरं पशुमान् भवेत् सघृतदुग्धहुतात् ॥ १९ ॥

मधुसिक्तरक्तकुसुमैः सकलान् वशयेदपि त्रिमधुरैर्नृपतिम् ।
अवलोक्य यां जपति यं च मिथः स्वनुरागितं च मिथुनं हि भवेत् ॥ २० ॥

नित्याक्लिन्नाख्यां साधयेच्चापि नित्यं ध्यायन् श्रद्धावान् पूजयेद् वै जपेद् यः ।
त्रिंशत्पञ्चाशत्षष्टिलक्षाणि कोटीर्भौमाद्याः सिद्धीर्वैश्वदेवीश्च विन्देत् ॥ वैश्वदेवी ।

नित्यक्लिन्नाधिकारः ।

---

सक्ष्माक्षो बाहुर्न्ने च पाशाङ्कुशाभ्यां नित्यार्णे कालोदद्रवे शक्तिबीजम् ।
हृल्लेखाद्येयं द्वादशार्णा हि नित्या वज्रप्रस्तारी नामधेया हि विद्या ॥ २२ ॥

आह्लदिनि क्लिन्ने नित्यक्लेदिनि नित्ये मदद्रवे

अङ्गान्येवं षट् स्वाख्यया जातिभिः स्युः कामश्चर्षिः स्याज्जागतं छन्द उक्तम् ।
सर्वज्ञा शक्तिर्दैवतं भानुलक्षैरभ्यस्तैः सिध्येत् तत् फलं सर्वकामाः ॥ २३ ॥

दीक्षां चाचार्यात् प्राप्य मन्त्रं यथावच्छुद्धात्मस्थानद्रव्यमन्त्रः स्वशक्त्या ।
रक्ताम्भोराशिं तुङ्गकल्लोलमालं ध्यायेच्चाप्यस्मिन् नावमुत्तुङ्गशृङ्गाम् ॥ २४ ॥

नौमध्ये हैमं मण्डपं योनिकल्पं मुक्ताजालाढ्यं माल्यदामाभिरामम् ।
तन्मध्ये पीठे तादृगब्जं च रक्तं ध्यायेद् रामाश्रं कर्णिकां वाग्भवां ताम् ॥

तस्यामासीनां दिव्यरूपां तु देवीं बन्धूकारक्तां षड्भुजां सत्रिणेत्राम् ।
नानारत्नाढ्यैर्भूषणैर्भूषिताङ्गीं संरक्ताकल्पां पीनतुङ्गस्तनीं ताम् ॥ २६ ॥

करकलिताङ्कुशामपि सपाशां घृतशरकार्मुकामृतकपालाम् ।
स्मरतु च बीजपूरफलपाणिं शशिनवमालिनीं शशिमुखीं ताम् ॥ नवमालिनी ।

---

१ 'भ्या', २. 'शं ष' ख. पाठः. ३. 'बहुर्हेच' ग. पाठः. ४. 'नी' क. पाठः.
५. 'मदद्रचे' क., 'मदान्द्रवे' ग. पाठः. ६. 'ध्य तु है' ख. पाठः.

एवंरूपां ध्यात्वावाह्य स्थापनसान्निध्यसंनिरोधप्ररोचनानि शक्तिबीजेन कृत्वा

सरसिजकेसरेषु च तदङ्गैस्तरुणदलाग्रकेष्वरुणशक्ती[1] ।

हृल्लेखायै क्लेदिन्यै नन्दायै क्षोभण्यै मदनातुरायै निरञ्जनायै रागवत्यै मदनावत्यै शेखरिण्यै द्राविण्यै वेगवत्यै कामाय ।

बहिरिह चाष्टमातृ[illegible] यजतु दिशां पतीन् निजादिगन्ते ॥ २८ ॥

इह परिवारकैस्तु सहितां यः प्रतिदिनमर्चयन् सदुपचारैः ।
जपति सहस्रकं दिशि दिनादौ भवति कुबेरवज्जगति धन्यः ॥ २९ ॥

अथातिजगत्यां —

ध्यायेद्वा त्रिभुवनमोहनीं तु वज्रप्रस्तारां जपति विधानतोऽभिषिक्तः ।
तं लक्ष्मीः स्वयमुपयाति नैकसंपत् कल्याणी स्वजनमनःप्रहर्षिणी या ॥ प्रहर्षिणी ।
व्याघातैर्मधुमिलितैर्दिशासहस्रैर्हुत्वादौ फलति मनुस्ततो यथेष्टम् ।
लक्षं तैर्यदि जुहुयात् स लोककान्तो लक्ष्मीवान् मुदितमनाश्चिराय जीवेत् ॥
क्षैरेय्या घृतयुतया महासमृद्धिं रक्ताब्जैर्मधुनि तथोत्पलैरभीष्टम् ।
यद्विन्देत् सलवणतण्डुलैः स्त्रियः स्युर्मध्वक्तैरखिलजना वशेऽस्य लाजैः ॥ ३२ ॥

**वज्रप्रस्तारिण्यधिकारः ।**

---

हृल्लेखा तदुपरि नित्यकामबीजं नैभान्तस्तदनु[2] च भद्रपीठयुग्मम् ।
रुद्रार्णा भवति हि मोहिनी तु विद्या ऋष्याद्यं फलमपि पूर्ववत् समस्तम् ॥

ध्याने स्वल्पतो विशेषः ।

गन्धाद्यैररुणतरैर्विभूषिताङ्गीं रक्ताभामभयकपालपाशहस्ताम् ।
ध्यायेत् तां कर(तल ? )कलिताङ्कुशां त्रिणेत्रां धम्मिल्ले धृतशकलेन्दुपारिजाताम् ।
लक्षाणां त्रितयमिमां जपेत् पुरस्तात् तावद्भिर्मधुललितैर्मधूकपुष्पैः ।
हुत्वादौ भवति जगत्प्रियो यशस्वी लक्ष्मीवान् सुभगतनुः सुखी च नित्यम् ॥

---

1. 'स्तदङ्ग' ख. ग. पाठः. 2. 'नै' ख. पाठः.

मन्त्रेण स्नपनमपीष्टमात्मनो वा गन्धं वा सलिलमथाञ्जनादिकं वा ।
दुःस्वप्नं हरति करोति रोगशान्तिं सौभाग्यं जनयति जन्यतां च वश्यम् ॥

[मोहनी ।

धृताङ्कुशां वरदकपालपाशिनीं कपर्दिनीं त्रिदशसमीन्दुशेखराम् ।
जपारुणां मणिवसनादिभूषितां विचिन्त्यतः स्मररुचिरां वशीकरम् ॥ रुचिरा ।

अथवा,

तदम्बुधौ[२] स्मरभवनारुणाम्बुजे स्मरेदिमामभिनवकुङ्कुमद्युतिम् ।
कपालतः प्रसृतसुधाप्रदायिनीं करद्वयां जपतु जगद्वशीकरीम् ॥ ३८ ॥

तत्र ह्रस्वस्मरबीजैः पञ्चवक्त्राण्यात्मनः सङ्कल्प्य दीर्घैरङ्गानि नामयुक्तं स्मरबीजं स्वैक्यतो जपन् विश्वं वशयतीत्युपदेशः ।

यदाख्यया स्वयमधिरुह्य तन्मयो लिपिं क्रमाद् ग्रथितनिजार्णमन्मथाम् ।
जपेत् स्वयं वपुषि करे च विन्यसेद् वशीकरं भवति निबद्धमुद्रया ॥ ३९ ॥

साध्याख्यायुक्तां क्षोभणीमुद्रां बद्ध्वा जपन् वशयतीत्युपदेशः ।

इत्थं नित्यां ध्यानजपाद्यैरिह नित्यं संसेवन्ते भक्तिभरानम्रधियो ये ।
तेषामग्रे मत्तमयूरा इव नृत्तं कामाः स्वैरं कुर्युरभीष्टार्थमनोज्ञाः ॥ मत्तमयूरा ।

## नित्यात्र्यक्षर्यै(का)क्षराधिकारः ।

---

लिप्यर्णादिर्मन्मथबीजं भुवनेशी मेषः क्ष्वेलं सर्गि च (?) नित्यामनुरुक्तः ।
पञ्चार्णोऽयं विश्वजनक्षोभणकारी जाती स्वर्गैर्मानसजप्योऽङ्गविधिः स्यात् ॥

कामोऽस्यर्षिः सिद्धिलिपिर्दैवतमुक्ता पङ्क्तिश्छन्दो लक्षजपात् सिध्यति मन्त्रः ।
क्षीराज्याभ्यां क्षौद्रयुतं चापि दशांशं हुत्वा लक्ष्मीस्तस्य वशे तिष्ठति नित्यम् ॥

स्वैक्यं रक्तां लेखानिकापुस्तकपाणिं रक्ताकल्पां चोपरिपाशाङ्कुशहस्ताम् ।
चन्द्रोत्तंसां चारुकपर्दामयुगाक्षीं ध्यायेद् देवीं पीवरयुग्मस्तनकुम्भाम् ॥ ४१ ॥

मूलाधारात् कुण्डलिनीपङ्कजलिङ्गं भित्त्वोदीर्णा पङ्कजतन्तुद्युतिसूक्ष्मा ।
या पश्यन्तीमध्यमवैखर्यभिधाना प्रोता यस्यां मौक्तिककल्पा लिपिवर्णाः ॥

तां भ्रूमध्ये बिन्दुविभेदान्तरमार्गाज्ज्योतिर्लेखां सूक्ष्मरुचिं व्योमनि यान्तीम् ।
ध्यायन् देवीं पद्मशशाङ्कामृततोयैर्नित्याक्लिन्नां तन्मनसा स्याज्जपनिष्ठः ॥ ४५ ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पर्शरतिर्घ्रेयपरो वाप्यश्नन् गच्छन् यः प्रलपन् कर्म च कुर्वन् ।
ध्यायन्नेवं मानसजप्याभिरतिः स्यादस्याज्ञायां तिष्ठति विश्वं किमुतान्यत् ॥

भोगैश्वर्यं वाञ्छति चेत् तत् खलु विन्देद् वागैश्वर्यं वाप्यथ वाचस्पतितुल्यम् ।
योगैश्वर्यं चाष्टगुणं स्यादणिमाद्यं नानैश्वर्यं नेच्छति चेन्मोक्षमपीयात् ॥ ४७ ॥

मातृकामालिन्यधिकारः ।

---

शक्तिः स्वान्तोऽनुग्रहवान् सूक्ष्मयुतोऽग्निः कण्ठी वह्निर्वह्निगतोऽत्रिः स्वयमात्रिः ।
साक्षो वाली तेऽन्तगयोगेश्वरिशब्दो वर्मास्त्रान्ते ठाविति गौरीमनुरुक्तः ॥

अष्टिश्छन्दस्तावदिमेऽर्णाः खलु मन्त्रे स्वाद्यर्णाभ्यां जातियुताङ्गान्यपि षट् स्युः ।
गौरी देवी दैवतमुक्तास्य मुनिः स्याद् वामो देवः सिध्यति लक्षत्रयजापात् ॥

अथ शक्वर्या—

दीक्षामाचार्यान्मनुनापि समवाप्यादौ मूलाङ्गैः स्नात्वा शिवभवनमसंबाधम् ।
संप्राप्यार्घ्याद्यैः शिवमपि च शिवःशिष्टा लब्धानुज्ञोऽस्मान्मनुयजनमथातिष्ठेत् ॥
[असंबाधा ।

पूजागृहद्वाराद् बहिः क्षेत्रपालमुभयतो जयाविजये चोपरि द्वारश्रियं द्वारान्तर्वास्तुपुरुषं च स्वनाम्ना नमोन्तमभ्यर्च्यान्तः प्रविश्य स्वासने आसीनो मौनी नियमितमरुता शुद्धिं कृत्वा, भूतानां तदनु कृतकरन्यासो विन्यस्ताङ्गोऽङ्गैः सकलनिजवपुश्चार्घ्यं त्वापूर्य, इभास्यं वरुणादिशि गुरूनैशे पूजयेत् । तद् यथा — गं गणपतये नम इति गणपतिं, गुं गुरुभ्यो नमः परमगुरुभ्यो नमः । ओं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । पूर्वाचार्येभ्यो नमः । पूर्वसिद्धेभ्यो नमः । योगिनीभ्यो नमः । योगिनीभ्य इत्यभ्यर्च्य, मध्ये कल्पकवृक्षाय नमः । तस्याधो रत्नसिंहासनाय नमः । ईं आधारशक्तये नमः । उं कूर्माय । अं अनन्तासनाय । ऋं धर्माय । ॠं ज्ञानाय । ऌं

वैराग्याय। लं ऐश्वर्याय। कं कन्दाय। नं नालाय। हां पद्माय। सं केसरेभ्यः। हं कर्णिकायै क्षं पत्रेभ्यः। इति नेमान्तमभ्यर्च्य, ओं सां प्रभायै। ओं सीं ज्ञानायै। ओं सूं वाचे। ओं सें वागीश्वर्यै। ओं सैं ज्वालिन्यै। ओं सों वामायै। ओं सौं ज्येष्ठायै। ओं सं रौद्र्यै। ओं सः (गौं?) गौरीमूर्तये। इति दलाग्रेष्वष्टशक्तीर्नवर्मी कर्णिकायामभ्यर्च्य मूलेन देवीं ध्यात्वावाहयेत्।

अचिररुचिरुचिं प्रभामयविग्रहां
सकलशशिमुखीं त्रिलोचनसुन्दरीम्।
अभयवरकरां धृताङ्कुशपाशिनीं
विधृतशशिकलां स्मरेदपराजिताम्॥ ५१॥ अपराजिता।

दिक्ष्वङ्गानि विदिक्ष्वस्त्रं विन्यस्य नयनं पुरः।
केसराग्रेषु दिक्ष्वेता वेदशक्तीर्दलाग्रगाः॥ ५२॥

स्वां(?) सुभगायै। स्वीं(?) ललितायै। सूं कामिन्यै। सें काममालिन्यै। तथा कोणदलाग्रेष्वनङ्गरूपादिशक्त्यष्टकं द्वन्द्वशोऽर्चयेत्। अनङ्गरूपायै अनायै। मदनातुरायै पवनवेगायै। भुवनपालिन्यै सर्वशिशिरायै। अनङ्गमदनङ्गमदनायै अनङ्गमेखलायै।

बहिरिह वृतिगा भवन्ति हि मातरस्तदनु दिगधिपाः पुरन्दरपूर्वकाः।
स्वगणपरिवृताः सहायुधवाहना वृतिषु पृथगिमान् यजेन्निजनामभिः॥ ५३॥

सुभगायै नमः इत्यैशान्यां निर्माल्यधारिणीमर्चयेत्। (लुपंजाशैहि? सुभगायै) विद्महे। काममालिन्यै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्। इत्यनया गौरीगायत्र्या शक्तिबीजेन चोपचारैरर्चयेत्।

कुसुमपरिमलैः सुगन्धिविलेपनैरगरुपुरधूपैः सुधूपकदीपकैः।
मधुररसभरैः फलैरपि मोदकैर्यजतु भगवतीं तथा घृतपायसैः॥ ५४॥

नवकनकनिभां श्रियै धृतपङ्कजामभयवरकरां निधिद्वयसेविताम्।
स्मरतु समुकुरां धृताञ्जनतूलिकां कनकहरिधृते सरोजवरासने॥ ५५॥

[illegible] धनुषा शरमसिफलके ।
सममिह दधतीं दितिसुतमथनीं [illegible] स्मररिपुविजये ॥ प्रहरणकलिता ।

वसुदलकमले सुनिहितकलशे [illegible]विभवं यज गिरितनयाम् ।
दशशतदशकं कृतजपहवनैः स्नपयतु नृपतिं स भवति विजयी ॥ ५७ ॥

जपहुतयजनैरनुदिनमिह यो भजति हि गिरिजां त्रिभुवनवरदाम् ।
स भवति भुवने बहुधनपशुमान् क्षिति[illegible] रमते ॥ ५८ ॥

हुतवहवदने यदि [illegible] घृतमधुपयसा नवसितकमलैः ।
पयसि च चरुणा प्रयजति नचिराद् [illegible] स भवति धनवान ॥

अश्वत्थजाश्च वटजा [illegible]
त्वौदुम्बरीः खदिरजाः समिधः सहस्रम् ।
[illegible] स्त्रियो वा
काले वसन्ततिलके मधुरैर्जुहोतु ॥ ६० ॥ वसन्ततिलकम् ।

स्वाद्वक्तरक्तकुसुमैर्वशयेत् समस्तं नन्द्यादिवर्तहवनाल्लभते तनूजान् ।
रक्तोत्पलैरपि च वेतसजाभिरिष्टां वृष्टिं पशूंश्च पयसाथ तिलैश्च सर्वम् ॥

क्षुद्रेश्वर[illegible] राज्यलक्ष्मीम् ।
दूर्वापयस्तिलघृतैर्हवनात् तथायुर्नीरोगतां च लभते स्म जलाभिषेकात् ॥

वामोरुवह्निपुरसंपुटमध्यशक्तौ [illegible]द्वयं विलिखितं निशया निशायाम् ।
मन्त्रं विधाय जपतस्तु करेण रामा वामेन सा समभियात्यपरेण चान्यो(म्?) ॥

सिंहोन्नतं समधिरुह्य रथं घनाभां शङ्खारिचापशरवज्रगदात्रिशूलम् ।
खड्गं च चर्म दहनं दधतीं त्रिणेत्रां स्वैक्यं स्मरञ् जपतु भीतिषु निर्भयः स्यात् ॥
[वसन्ततिलकमेव, सिंहोन्नतमित्यन्ये ।

ताम्बूलिकालिखितनामबहिष्ठशक्तेः पाशाङ्कुशावृतिरसाश्रिगताङ्गषट्के ।
स्यात् स्वस्तिकं निशि जपेल्लिपिशक्तिपाशान् दीपेऽङ्कुशं च तपनादुपयात्यभीष्टम् ॥

---

१. 'श', २. 'न्यः'; ३. 'यं', ४. 'लके च सि', ५. 'लि' ख. पाठः

शक्ति[illegible] वेदबीजैः [illegible] ।
प्राङ्भिश्च[1] [illegible] सजीवे लेख्यं प्रभञ्ज्य मधुरेष्ववदतो वशे स्यात् ॥

## गौरीविधानाधिकारः ।

---

अथ महाशक्तिरुच्यते —

शक्तिं नमो ब्रह्मशब्दो [illegible] च ।

[illegible][2] विगशोध (?) गौरि[3] गान्धारि त्रिभुवनशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुदुहे वाक् वाक्कामाय ठठ ।

अजोऽस्यार्षिरतिनिचृच्छन्दो गौरी (च) देवता ॥ ६७ ॥
मनुदिग्वसुवस्वाशारुद्रसंख्यैर्निजाक्षरैः ।
अङ्गानि षड् भवन्त्यस्याः सिध्येत् प्रागयुतं जपात् ॥ ६८ ॥

अतिशक्वर्याम् —

अमृतजलनिधिपुलिनभुवि कमले [illegible] ।
अरुणमणिरुचिममृतकिरणमुखीं वर[illegible] ॥ ६९ ॥

[शशिकला, चन्द्रावर्तेत्यन्ये ।

धृतपाशाङ्कुशां गौरीं रक्ताकल्पां त्रिलोचनाम् ।
पीनोत्तुङ्गस्तनीं दिव्यरूपामावाह्य पूजयेत् ॥ ७० ॥
अङ्गैर्मातृभिराशेशैरायुधैश्च वृतित्रये ।
उपचारैः स्वबीजाभ्यां नित्यमिष्ट्वा शतं जपेत् ॥ ७१ ॥

मधुरगिलितचरुसितकमलयुतं मनुहुतभुजिहुतमिह विभवकरम् ।
जपदशशतमुषसि यदि स कुरुते स्रजमलिततिरिव तमनुसरति मा ॥ ७२ ॥

[माला, स्रगित्यन्ये ।

मधुराक्तैस्तु जुहुयात् सलोणतिलतण्डुलैः ।
वशयेत् पुरुषान् सर्वान् स्त्रियश्चाभीष्टमश्नुते ॥ ७३ ॥

प्रतिदिनमुदयति गलमितसलिले सवितरि भगवति नियमितमनसा ।
प्रैयजतु[5] जपरतिरगपतितनयां श्रियमुपगमयति मणिगुणनिकरैः ॥ ७४ ॥

[मणिगुणनिकरः ।

---

१. 'प्रोद्भिश्च', २. 'गि', ३. 'गौरीं धात्रि भु' क. ग. पाठः ४. 'कः' क. पाठः,
५. 'प्रजयतु' क. ग. पाठः

वादित्रावस्थितां देवीं ध्यात्वाराध्य शतं जपेत् ।
पूर्वाह्णे यं समुद्दिश्य स स वश्योऽस्य जायते[1] ॥ ७५ ॥
वार्णादर्वाक् साध्यनाम कर्मयुक्तं प्रयोजयेत् ।
वश्यकर्मणि जप्यादौ सद्यः सिद्धिः प्रजायते ॥ ७६ ॥

इति निजमनुभेदान्मूर्तिभेदैरुपास्या
स्फुरति जगति गौरीशक्तिरेकैव नित्या ।
दिशति च फलमिष्टं मातृकामालिनीयं
निखिलदुरितशान्तिं कुर्वती पार्वती वः ॥ ७७ ॥ मालिनी ।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
नित्यादिपटलस्त्रयोविंशः[2] ।

---

## अथ चतुर्विंशः पटलः ।

सकलभुवनसर्गस्थित्यपायप्रवृत्तिं शतधृतिहरिरुद्रास्तन्वते यां प्रविष्टाः ।
स्फुरति हि खलु विश्वं यामुपाश्रित्य मायां रजतमिव च शुक्तिं सास्तु दुर्गा श्रियै वः

जातवेदसपूर्वाणां पञ्चानां स्यादृचामृषिः ।
मरीचिः काश्यपश्छन्दस्त्रिष्टुब् दुर्गा च देवता ॥ २ ॥
जातवेदाग्निरित्यन्ये दैवतं परिचक्षते ।
ऋक् तृतीयातिदुर्गाख्या छन्दस्तस्या विराड् भवेत् ॥ ३ ॥

ग्रहमुनिरसवारैर्नागलोकः स्ववर्णैः
षडपि च पृथगासां जातिभाजोऽङ्गमन्त्राः ।
वपुषि च भवसंख्यान्[3] विन्यसेन्मन्त्रवर्णा-
स्तदनु च धृतिसंख्यैः स्वैः पदैश्चाङ्गषट्कम् ॥ ४ ॥

चरणयुगलगुल्फं जङ्घिका जानुरूरू स्मरगृहकटिकोष्ठं हृत् स्तनं पार्श्वपृष्ठम् ।
उपगलगलकांसं दोः प्रबाहुः प्रकोष्ठं मणितलमुखनासं कर्णदृङ्मस्तकं कम् ॥
एतान्यक्षरस्थानानि ।

स्मृतमिह तु पदानां कं ललाटाक्षिकर्णं स्वधररसनकण्ठं बाहुहृन्नाभिदेशाः ।
कटिरपि मदनोरू जानुजङ्घाङ्घ्रयोऽमी श्रवणनयनयोर्द्वे स्थानमेकैकमन्यत् ॥

---

१. 'जाययेत' ख. पाठः. २. 'शतिः' क. पाठः. ३. 'ख्या वि' ख. पाठः.

स्वविहितकर्मपरो गुरोः परितोषणै-
रुदगयने विधिवत् स तेन तु दीक्षितः ।
मनुमुपलभ्य ततः कृतस्नपनादिको
भुवि सुविलिततले लिखेदरविन्दकम् ॥ ७ ॥ अरविन्दकम्
चक्रपद्ममथ वा द्विकरं भुवि भद्रकं
पञ्चवर्णरजसा विलिखेदतिसुन्दरम् ।
साधकाह्वययुतां भुवनाधिपकर्णिकां
दौर्गबीजसहितैश्च षडश्रिभिरन्विताम् ॥ ८ ॥ सुन्दरम् ।
तत्र वज्रासनाख्यं तदासनं स्वाख्यया यजेत् ।
प्रकृतिं त्रिगुणैर्बिम्बमूर्तिभिः पङ्कजं तथा ॥ ९ ॥
तत्पीठकोणगाः पूज्या धर्माद्याः शक्तिपङ्कजम् ।
गुणसूर्यादिकन्दाद्यैर्यजेदङ्गैस्तथा वृतिम् ॥ १० ॥

जयायै विजयायै भद्रायै भद्रकाल्यै सुमुख्यै दुर्मुख्यै व्याघ्रमुख्यै सिंहमुख्यै दुर्गायै ।

यजेच्छक्तीर्दलाग्रस्था नवमीकर्णिकाश्रिताः ।
मन्त्रपादांश्च तानष्टौ पश्चाद् बाह्ये[2] यथोच्यते ॥ ११ ॥
माता मातास्मैसा(?)[3] वामे संख्यास्वौर्णा भवन्ति हि ।
पादास्ते च पृथक् तत्त्वैर्युक्ता वह्नेश्च मूर्तिभिः ॥ १२ ॥

तद्यथा —

ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्भूतैः सप्तधातुषडूर्मिभिः ।
षट्कोशविषयप्राणैर्युक्ताः पादाः पृथक् क्रमात् ॥ १३ ॥
जातवेदा हुताशश्चाप्यग्निर्वैश्वानरस्तथा ।
सप्तजिह्वो हुतवहो हुतवर्त्मा देवमुखः ॥ १४ ॥

इति मूर्त्यष्टकम् ।

जातवेदादिपादान्ते चतुर्थ्यन्तैस्तु मूर्तिभिः(?) ।
ज्ञानेन्द्रियादिसंयुक्तं नमोन्तं तान् क्रमाद् यजेत् ॥ १५ ॥

---

१. 'त् तत्पीठ' ख. पाठः २. 'ह्यौ' ग. पाठः. ३. 'न्म' ख., ४. 'भा' क, 'मे' ग. पाठः. ५. 'स्व' ख. पाठः.

पादावरणबाह्यस्थाः स्ववर्णाद्यास्तु शक्तयः ।
रुद्रसंख्याः प्रतिदिशं पूज्याः स्युर्जागतादिकाः ॥ १६ ॥
जागता तपनी वेदगर्भा दहनरूपिणी ।
सेन्दुखण्डा सुम्भहन्त्री ततः ख्याता नमस्करा ॥ १७ ॥
वागीश्वरी मदवहा सोमरूपा मनोजवा ।
मरुद्वेगा तथा रात्रिस्तीव्रकोपा यशोवती ॥ १८ ॥
तोयात्मिका च नित्या च दयावत्यपि हारिणी ।
तिरस्क्रिया वेदमाता ततश्च दमरप्रिया ॥ १९ ॥
समाराध्या नन्दिनी च परा रिपुविमर्दिनी ।
षष्ठी च दण्डिनी तिग्मा[२] दुर्गा गायत्रिसंज्ञिता ॥ २० ॥
निरवद्या विशालाक्षी [illegible] च वेदनी ।
वेदना वह्निगर्भा च सिंहवाहा च धुर्वया[३](?) ॥ २१ ॥
दुर्विषह्या रिरंसा च तापहारिण्यथ स्मृता ।
त्यक्तदोषा निस्सपत्ना चेति मन्त्रार्णशक्तयः ॥ २२ ॥
एताश्चैकैकशोऽनेकशक्तिभिः पृथगावृताः ।
पीठबाह्ये चतुर्दिक्षु पूज्याः स्वाख्यानमोन्तकम् ॥ २३ ॥
पञ्चमावरणे मातृर्दिक्षु याम्ये गणेश्वरम् ।

**अथाष्टयां —**

हेमनिभं त्रिणेत्रमरुणवसनकुसुमै-
भूषितमेकदन्तामिभवदनमुरुगलम् ।
पाशमथाङ्कुशं च दधतमपि फलरदे
नौमि शशाङ्कमौलिमृषभगजविलसितम् ॥ ऋषभगजविलसितम्
यजेद्देशे गुरून् नाम्ना शुक्लान् शुक्लाम्बरादिकान् ॥ २५ ॥

**तारम् —**

तामिमां रुद्रसम्भूतां दुर्गामावाहयाम्यहम् ।
यस्याः सिंहा रथे युक्ता व्याघ्राश्चैवानुयायिनः ॥ २६ ॥

अभयं मेऽस्तु दुर्गा दुर्गरूपा दधातु तामिमां देवर्षिभिश्च पूजितां देवीं दुर्गां शरणमहं प्रपद्ये नमः ।

---

१. 'ह्रो', २. 'यु' ख. पाठः. ३. 'दु' क. पाठः.

एवमुच्चार्य दुर्गैर्दीनादित्यमण्डलात् ।
आवाह्य पूजयेत् पद्मे ध्यायन्नुक्तस्वरूपिणीम् ॥ २७ ॥
शङ्खं खेटं चापं तर्जीं सव्येऽन्यस्मिन् चक्रं खड्गम् ।
बाणं शूलं चाबिभ्राणां दोर्भिस्त्र्यक्षां भास्वन्मौलिम् ॥ २८ ॥
चन्द्रोत्तंसां सालङ्कारां रक्ताकल्पां सिंहारूढाम् ।
युद्धोन्नद्धैः कन्यावृन्दैर्युक्तां दुर्गां देवीं वन्दे ॥ २९ ॥ युद्धोन्नद्धां ।
दुर्गायै कात्यायन्यै गौर्यै चण्डिकायै सुवर्णवर्णायै सर्वनिष्कलायै ।
अङ्गमन्त्रं पूर्वं यजेत् ।

अथ लोकाधिपान् स्वासु दिक्षु संपूज्य सायुधान् ।
निर्माल्यधारिणीमैशे सिंहिकामभिपूजयेत् ॥ ३० ॥
मुख्योपचारैस्तामिष्ट्वा जपेल्लक्षचतुष्टयम् ।
व्रत्याशनो ब्रह्मचारी निशासु जुहुयादपि ॥ ३१ ॥
तिलशामीलसिद्धार्थक्षीरान्नसमिधश्चरुम् ।
पृथग् घृतं च जुहुयाद् भवभावमितं क्रमात् ॥ ३२ ॥
अशक्तौ मनसैवेष्ट्वा हुताद् द्विगुणितं जपेत् ।
ततः सिध्यति मन्त्रोऽयं विनियोगफलप्रदः ॥ ३३ ॥

**मन्त्रपूजाद्यधिकारः ।**

---

अरुणरुचिं धृतपाशवराङ्कुशां तु दुर्गां
हुतभुजि तामभिचिन्त्य जुहोति चन्दनार्द्रैः ।
वकुलभवैर्विकचैः सुमनोभिरर्धमासात्
खलु वशयेत् सकलं नृपतिं च वाणिनीं वा ॥ ३४ ॥ वाणिनी ।
मधुरैर्लोणपुत्तल्या साध्याङ्घ्रिरजसा(सुःतु) यत् ।
तन्नक्षत्रागवह्नौ यद्धुतमाकर्षणं स्मृतम् ॥ ३५ ॥
अत्यष्टौ —
अरिदरगदाश्चाब्जं दोर्भिः क्रमाद् दधतीं स्थिता-
मरुणकमले तापिञ्छाभां विचित्रविभूषणाम् ।

---

१. 'द्वा । का' क. पाठः.   २. 'ज्याधि' ख. पाठः.

कनकवसनां चन्द्रापीडां स्मरञ्जुहुयाज्जले
सलिलकुसु[1]मैर्गन्धैर्विन्देदसौ हरिणीं श्रियम् ॥ ३६ ॥ हरिणी ।

स्फटिकधवलां शुक्लाकल्पां महौघजले स्थिता-
मभयवरदे चाबिभ्राणां स्मरन्नङ्कुशम् ।
मधुरमिलितैर्जुह्वद् वृष्टिं स्मरन् नवतण्डुलै-
र्जपतु च जले स्थित्वा नाभेर्मिते लभतेऽयुतम् ॥ ३७ ॥

अयोमुष्टिगदाहस्ता पीता पीताम्बरादिका ।
माहिषाक्तपुलाकाक्षैः स्तम्भयेत् संस्मृताहुतैः ॥ ३८ ॥

सशूलमुसला धूम्रा द्वेषा राजीघृताप्लुतैः ।
निम्बपत्रैः सकार्पासबीजैर्विद्वेषयेद्धुतात् ॥ ३९ ॥

सैव तर्जनिकाशूलहस्ता मरिचमाहिषैः ।
विषपत्रैश्च राजीभिर्होमादुच्चाटयेदरीन् ॥ ४० ॥

शूलहस्ताग्निसङ्काशा म[3]रीचोन्मत्तराजिभिः ।
[4]तीक्ष्णतैलान्वितैर्होमाद् दुर्गेषा मोहयेत् परान् ॥ ४१ ॥

असिगुणकरां कृष्णां ध्यायन्नरुष्करजार्दिता
रिपु[5]हंसमिधो हुत्वा शत्रून् नयेद् यमसादनम् ।
मरिचभसमिद्राजीराजीघृताप्लुतहिङ्गुभि-
र्विषतरुभवैः काष्ठैश्चैत्यैर्निशास्वरिमारणम् ॥ ४२ ॥

विषाक्षशितिमत्तजा महिषराजितैलोक्षिता
जुहोतु समिधः पृथग् दशशतं तु कालाष्टमीम् ।
प्रभृत्यपि दिनान्ततः परिलुठन् स पृथ्वीतले
विलापपरमो व्रजेद् यमपुरं तु पक्षादरिः ॥ ४३ ॥ पृथ्वी ।

प्रतीच्य कुसुमान्विते मरिचचूर्णमिश्रे जले
रिपोरुडुतरूद्भवां प्रतिकृतिं रुषा क्वाथयेत् ।

---

१. 'णीश्रि' क., 'णीवाश्रि' ख. पाठः. २. 'न्' क. ख. पाठः. ३. 'रि' क. ग. पाठः. ४. 'जिष्णुतै' ग. पाठः. ५. 'भ' ख. पाठः.

निशीथसमये हृतामनुविलोमतः पुत्तलीं
सतीक्ष्णविषरूषितां जपतु तापयन् मारयेत् ॥ ४४ ॥

भागपुत्तलिकां शत्रोर्हिङ्गुसव्योषजीरकैः ।
अब्ध्यप्सु क्वाथयन् क्ष्वेलयष्ट्या सन्ताड्य मारयेत् ॥ ४५ ॥

दिगम्बरमधोमुखं रविरथाश्वबन्धाहिना
निगीर्णचरणं स्मरन् दहनवायुबिम्बे रिपुम् ।
जलं क्षिपतु तज्जपन् स न भवेत् तथार्द्राम्बरः
सतीक्ष्णघृतवद्धुतान्मरिचकैश्च तिष्ठन् क्रमात् ॥ ४६ ॥

दिनेशदिवसेऽङ्गणे लिखितचक्रपद्मे शिवां
यजेद् विभवसारतः स्वरुणमाल्यगन्धादिभिः ।
स्वयं च सितराजिभिश्चरुतिलाज्यगव्यान्नकै-
र्जुहोतु विकिरेद् बलिं त्वरुणतोयपिण्डान्वितम् ॥ ४७ ॥

सहस्रमयुतं तु वा प्रयुतमर्बुदं कार्यतो
जुहोत्वथ चतुष्पथे क्षिपतु सर्वमग्न्यादिकम् ।
गृहामयभयं हरेत् सकलदुःखशान्तिर्भवेत्
स साध्ययजनं हुतं सकलकामसम्पत्करम् ॥ ४८ ॥

पञ्चगव्यचरुं साज्यं हुत्वा सम्पातशेषितम् ।
सुसम्प्राश्यापमृत्युघ्नमारोग्यं स्याच्च पावनम् ॥ ४९ ॥

पलाशफलकातले मुनिविभक्तधावत्पुटे
स कर्म च तदाह्वयं लिखतु मध्यकोष्ठे पुनः ।
विदिक्षु भुवनाधिपान्[1] भवपुटेषु मन्त्राक्षरान्
जपादिविधिना खनेद् यदि भवेत् स्वकीयाभिभूः ॥ ५० ॥

सिंहमेषधनुर्मासे सितज्ञेन्द्वर्कभूदिने ।
विशाखमूलविष्ण्वग्निप्राजापत्ययमर्क्षके ॥ ५१ ॥

कृत्वा नवोक्तकुण्डानि तेष्वाधायानलान् समम् ।
प्राच्यामिष्ट्वा महादुर्गां शङ्खादीन्यायुधान्यपि ॥ ५२ ॥

कुण्डोपान्तेषु सम्पूज्य त्रिशूलं मध्यतो यजेत् ।
आज्येनार्कसहस्रं तु सावित्र्या त्रिष्टुभा पृथक् ॥ ५३ ॥

---

१. 'व' क. पाठः. २. 'पां' ख. पाठः.

हुत्वा सम्पातयेत् तेषु [illegible] ।
बलिं विकीर्य विप्रेन्द्रान् भोजयेच्च कुमारिकाः ॥ ५४ ॥

गुरुं च होतॄञ्जपितॄन् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।
पुरग्रामगृहादीनां नवदिक्षु यथाक्रमम् ॥ ५५ ॥

तैरथ गव्यपात्रनिहितैर्भुवि समविहितै-
ग्रामपुरादिरक्षणविधिर्भवति हि सुचिरम् ।
तत्र तु वंशपत्रपतिता इव जलकणिकाः
न स्थितिमवाप्नुवन्ति विपदः स्फुटपवनधुताः ॥ वंशपत्रपतिता ।

ब्रह्मतरुं विदार्य नवधा नवदिशि पतितै-
स्तैः सुकृतायुधैर्नवविधैर्निगदितविधिना ।
ग्रामपुरादिबाह्यनिहितैश्च तदवनविधिः
स्याज्जलधिगमार्द्रसिकतैर्विधिरपि च परः ॥ ५७ ॥

परशब्देन सिकताविधिरप्ययमेवेत्यर्थः ।

सितपाषाणकैश्चापि नवभिर्बिल्वसंमितैः ।
संस्कृत्यायुधवद् दिक्षु क्षिपेद् रोगादिशान्तये ॥ ५८ ॥

वारे भानोर्गगनवसनो नन्ददुर्गाग्रहाणां
दिक्ष्वादद्यान्नवसु मनुना शर्करास्तावतीस्ताः ।
मध्ये रात्रौ विषतरुदले न्यस्य संपातहोमा-
न्मन्दाक्रान्ता दृषदि जपिताः सैन्यचाटाय शस्ताः ॥ मन्दाक्रान्ता ।

लक्ष्मीकामो मधुरमिलितं क्षीरिणां वै समिद्भिः
शालीव्रीहिप्रवरचरुभिः क्षीरबिल्वैः क्रमोक्तैः ।
अष्टौ तद्वच्छतमनुदिनं तत्प्रतिद्रव्यमग्नौ
हुत्वा विन्देत् सलिलकुसुमैस्तोयगेयांशुबिम्बे ॥ ६० ॥

नाभिदघ्नजले तिष्ठन् दुर्गां ध्यात्वार्थधारया ।
स्वात्मानमभिषिञ्चन्तीं सिक्त्वाद्भिः श्रियमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

---

१. 'मपरायोग्यानि' ख. पाठः.

आशास्वष्टास्वपि हुतवहान्मूर्तिभिश्चापि मध्ये
वह्निं प्राच्यां दिशि भगवतीं सम्यगावाह्य चेष्ट्वा ।
ध्यायन् हुत्वा शकलशतकं तेष्वथैकैकमग्रा-
वीतीः सर्वा हरति च भयं प्राप्नुयाच्चैव कामान् ॥ ६२ ॥

भिन्नो खण्डैर्मधुरमिलितैर्वाम्रपर्णैश्च हुत्वा
रागक्षुद्रं हरति जुहुयात् पैप्पलैर्गोष्ठशान्त्यै ।
गोमूत्राक्तैर्ग्रहरिपुरुजो हन्त्यपामार्गजेध्मैः
पत्राग्राढ्यैरवति तु हुतात् साज्यमौदुम्बराणाम् ॥ ६३ ॥

मातङ्गानां वटफलहुतात् स्यान्मदः पल्लवैस्तै-
स्ते वश्याः स्युः सततमपि तान् मार्जयेत् पञ्चगव्यैः ।
धान्यैर्धान्यं सुलभमपि चाप्यन्नमन्नेन होमा-
ल्लक्ष्मीपुष्पैर्घृतमधुयुतैः प्राप्नुयाच्चापि लक्ष्मीम् ॥ ६४ ॥

सितासितारुणैः सूत्रैर्वेष्टिता गव्यरूषिताः ।
वटजाः समिधो हुत्वा रक्ताम्भोऽन्नबलिं क्षिपेत् ॥ ६५ ॥

सर्वं चतुष्पथे क्षिप्तं क्षुद्ररोगादिशान्तिकृत् ।

कृत्वा शत्रोर्गगनकपिलागोमयेनाथ देहं
त्वग्न्यालिप्तं जपतु तपनस्योदयादार्धरात्रात् ।
छित्वारण्ये सविषमथ तत्कापिलेनोद्यान्तं
कृष्णाष्टम्यां यदिह जुहुयान्मृत्युमेत्यस्य शत्रुः ॥ ६६ ॥

आत्मरक्षार्थमात्मानं सनःपर्षदिति स्पृशेत् ॥ ६७ ॥

होमदानाभिषेकाद्यैरात्मा रक्ष्यो विशेषतः ।

त्रिकोणे कुण्डेऽग्नौ परनरमिते क्ष्वेलतरुजां
तनुं शत्रोस्तुल्यां मधुमलविचित्राङ्गमुभगाम् ।
अधोवक्त्रां बद्ध्वा शिखरिणि वने क्ष्वेलसमिधां
निशीथे साहस्रं कटु घृतसहस्रं च जुहुयात् ॥ ६८ ॥ शिखरिणी ।

---

१. 'चं', २. 'न्नो' ख. पाठः. ३. 'द्वि' क. पाठः. ४. 'व' ख पाठः.

चतुश्चत्वारिंशद्दिनपरिमितात् पूर्वमवधे-
रिर्मृत्योर्वक्रं प्रविशति स चेज्जीवति यदा ।
क्षणाज्जातं वत्सं सलिलपरिधौतं त्वथ तु गो-[1]
घृतासिक्तं हुत्वा प्रतिकृतिमपीत्थं स न भवेत् ॥ ६९ ॥

यावत् तद् भस्मसाद् भूयात् तावन्मन्त्रं जपेत् पुनः ॥ ७० ॥

अत्रात्मरक्षा कर्तव्या पञ्चगव्याभिषेकतः ।
विप्रेभ्यो गोशतं दद्यात् प्रायश्चित्तं तु तत्स्मृतम् ॥ ७१ ॥

भवेदुत्सादोऽरेर्विषशिखरिपक्षाङ्गहवनात्
फलैः स्तम्भः पर्णैर्विषविलुलितैश्चाटनमरेः ।
तथा द्वेषः पुष्पैश्चरुतिलघृतैः शान्तिरुदिता
समन्त्रस्नानाद्यैर्विहितनिजरक्षो जपतु तम् ॥ ७२ ॥

ॐ । प्रसीदतां जातवेदा दुर्गा च वरदा मम ।
तयोः प्रसादात् सर्वत्र वाञ्छितं मम सिध्यतात् ॥ ७३ ॥
इत्युपस्थानमन्त्रः ।

अथापरः प्रकारोऽत्र त्रिष्टुभः कथ्यतेऽधुना ।
दैवतं जातवेदोऽग्निः प्राग्वच्छेषं विधीयते ॥ ७४ ॥

त्रिकालस्नायी स्यान्नियमितकथो द्वादशदिनं
पयो यावद् भिक्षां फलमपि यदिष्टं चरतु तत् ।
चरेच्चाग्नेयाख्यं व्रतमिह सहस्रं त्वथ जपे-
च्चरुं चैवाग्नेयं सघृतमिह निर्वाप्य जुहुयात् ॥ ७५ ॥

सहस्रं वा शतं विप्रान् भोजयेद् दश वान्ततः ।
देवमग्निं स्मरंस्तेभ्यो लब्धाशीर्घृतमुत्सृजेत् ॥ ७६ ॥

ॐ । प्रीयतां जातवेदोऽग्निः सफलं चास्तु मे व्रतम् ।
मन्त्रोऽयं फलतां शीघ्रं सिद्धिश्चैवास्तु शाश्वती ॥ ७७ ॥
इति व्रतं समापयेत् ।

---

1. 'गौ' क. पाठः.

उदन्वद्गामिन्यां विधिवदवगाह्याथ हृदये
स्मरन्नग्निं मन्त्रं जपतु च निमग्नो दशशतम् ।
भवेत् प्रायश्चित्तं सकलदुरितघ्नं दशदिनैः
श्रियं पश्येद् देवीं सितकमललक्षाज्यहवनात् ॥ ७८ ॥

धान्यैर्धान्यं भवेद्धुत्वा कुब्जैर्बिल्वैः श्रियं धनम् ।
गोमयाज्यमयीं जुह्वद् गुलिकां पशुमान् भवेत् ॥ ७९ ॥

सिद्धार्थमधुरैर्वश्यं तथा वटसमिच्छतैः ।
शमीसमिद्भिः शान्तिः स्यादन्नमौदुम्बरीहुतात् ॥ ८० ॥

क्षीरे सवर्णवत्सायाः शुक्लायाः पायसं पशोः ।
हुत्वा शेषाशनो मासैस्त्रिभिर्विन्देच्छ्रियं सुखी ॥ ८१ ॥

त्रिसन्ध्यं यद्वश्यं जपतु चिरमायुर्गदहरं
श्रियं रक्षां पुत्रान् जयमपि च दैवात् स लभते ।
समृद्धान् सर्वार्थानपि स लभते मोक्षमथ चेत्
सहस्रं निष्कामो हृदयकमले ध्यानपरमः ॥ ८२ ॥

चोरादिभिर्न बाध्येत तं जपन् यदि गच्छति ।
अभ्यस्ताः शर्कराः क्षिप्ताश्चोरव्यालादिभञ्जनाः ॥ ८३ ॥

शुद्धो वाचा जपेन्मन्त्रमशुद्धो मनसा जपेत् ।
ध्यायन् दुर्गां तथा देवमग्निं चाभीष्टमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥

इति खलु जातवेदसमनुश्रुतिसारतया
फलति हि वाञ्छितार्थमखिलं स्मरतोऽपि सदा ।
य इह जपादिभिर्भवति तं स भवेन्न चिरात्
त्रिभुवनसम्पदाख्यकमलामुखनर्तकटकम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
त्रैष्टुभादिपञ्चदुर्गापटलश्चतुर्विंशः ।

अथ पञ्चविंशः पटलः ।

श्रोत्रं ते युगलं साक्षः श्वेतो लाङ्गलिसंस्थितः ।
काणपार्श्वे सकर्णोऽग्निः साक्षी श्वेतश्च किं पदम् ॥ १ ॥
स्वापिषीति भयं शब्दो मेऽन्ते स्यात् स्मृतुसंस्थितन् ।
शडि यक्यं फयक्यं हाटन्मे भगवति यफ श ठठ ।
मन्त्रोऽयं वनदुर्गायाः स सप्तत्रिंशदक्षरः ॥ २ ॥
अत्यारण्याह्वयोऽस्यर्षिरत्यनुष्टुप् च कीर्तिता ।
छन्दः स्याद् वनदुर्गैव देवता सकलेश्वरी ॥ ३ ॥
ऋतुयुगभोगिभिर्वसुरसैश्चतुरः क्रमशः
प्रमितनिजार्णकैस्तु रचयेत् पृथगङ्गमनून् ।
षडपि च जातिभिर्वपुषि तान् पृथगर्णगणान्
पुनरपि विन्यसेत् स्वहृदयादिषडङ्गमतः ॥ ४ ॥
द्विचरणसन्धयो दश गुदं भगपार्श्वयुगा-
न्युदरहृदौ स्तनौ गलमथांसयुगं भुजयोः ।
षडपि च सन्धयो वदनघोणदृशः श्रवणा-
विति ह पृथग् भ्रुवोश्च निदधातु च केऽर्णगणम् ॥ ५ ॥
गुरुवरदीक्षितो जपतु लक्षमसौ विधिवत्
तिलचरुगोघृतैरयुतमग्निमुखे जुहुयात् ।
प्रतिदिवसं यजेदपि जपेच्च गुरौ शिवयोः
स भवति भक्तिमान् यदि हरावपि सिद्धिमियात् ॥ ६ ॥

मन्त्रोद्धाराद्यधिकारः ।

अथ धृतौ —
ध्यायेदुद्यानं कुसुमितलतावेल्लितोन्मत्तभृङ्गं
नानापुष्पाढ्यैर्हिमगिरितटे कल्पवृक्षैरुपेतम् ।
तन्मध्ये पीठं नवमणिमयं सिंहपादं च दिव्यं
रक्तं तत्राब्जं स्मितवसुदलं कर्णिकाकेसराढ्यम् ॥ कुसुमितलतावेल्लितम् ।

---

१. 'यो', २. 'न्युदद', ३. 'युगलं भु', ४. 'ल्लि । तत्र' ख. पाठः.

तत्र वज्रासनाख्यं तदासनस्वाख्यया यजेत् ।
प्रकृतिं त्रिगुणैर्बिम्बं मूर्त्तिभिः पङ्कजं तथा ॥ ८ ॥

किञ्जल्केष्वङ्गैर्वृतिरथ ततः शक्तिभिः स्याद् दलाग्रे-
ष्वार्याद्याश्चक्रं दरशरधनुःखेटखड्गान् दधत्यः ।
रक्तालेपाढ्याः करधृतगुणाश्चापरासृक्कपाला
रक्ताङ्ग्यः सर्वा बहिरथ वृती मातृभिर्लोकपालैः ॥ प्राग्वत् ।

आर्या दुर्गा तथा भद्रा भद्रकाली तथाम्बिका ।
क्षेम्या च वेदगर्भा चाप्यष्टमी क्षेमकारिका ॥ १० ॥

नमोन्तमेताः स्वाख्याभिरिष्ट्वाथावाहयेच्छिवाम् ।
तत्पद्मकर्णिकामध्ये चित्रे वेरेऽथ वा स्थले ॥ ११ ॥

जलजफलके शार्ङ्गं तर्जन्या वामतोऽन्यत्र चक्रं
त्वसिमपि शरं वा शूलं दोर्भिर्बिभ्रतीं चाङ्गलेग्वाम् ।
मरतकरुचिं सिंहस्थां देवीं रक्तगन्धाम्बराद्यैः
कटकमकुटैस्त्र्यक्षां हाराद्यैर्भूषितां नौमि दुर्गाम् ॥ १२ ॥ अङ्गलेखा।

एवंरूपां जयाद्यर्थी रक्षाभ्यर्थी च पूजयेत् ।
श्रीकामो राज्यकामो वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् ॥ १३ ॥

कनकरुचिरां हेमाब्जासीनां शङ्खचक्रे दधाना-
मभयवरदां शुक्लाकल्पां तां दिव्यरूपां त्रिणेत्राम् ।
कनकमणिभिर्मुक्ताहाराद्यैर्भूषितां चारुमौलौ
धृतशशिकलां दुर्गां वन्देऽहं कन्यकावृन्दमध्ये ॥ १४ ॥ प्राग्वत् ।

अनयोर्मार्गयोरेकमाश्रित्याराधयेच्छिवाम् ।
प्राङ्गणादौ रवेर्बिम्बाद् द्वादशान्ताद् गृहादिषु ॥ १५ ॥

मूलेनावाह्य चाप्यङ्गैरर्घ्याद्यैरुपचारकैः ।
बहिर्दिक्षु यजेदष्टौ शङ्खादीन्यायुधक्रमात् ॥ १६ ॥

मातृरष्टौ च लोकेशान् तेषामस्त्रावृतिं तथा ।
निर्माल्यधारिणीमैशे सिंहिकां चाभिपूजयेत् ॥ १७ ॥

एवं सम्पूज्य होमान्तमशक्तौ मनसापि वा ।
जपन् ध्यायन् महादुर्गां सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

पूजाधिकारः ।

---

अथ वा शत्रुसैन्यादिनिग्रहे परमेश्वरीम् ।

अतिधृतौ —

शङ्खं चर्म धनुः कपालमुसले मुष्टिं गदामङ्कुशं
चक्रं खड्गशरौ त्रिशूलकुलिशप्रासाग्निपाशान् भुजैः ।
त्र्यक्षां तां दधतीं स्मरेद् घननिभां व्याघ्राजिनात्ताम्बरां
सिंहस्थामहिभूषणां रिपुवधे शार्दूलविक्रीडिताम् ॥ शार्दूलविक्रीडितम् ।

अथवा —

सिंहस्थां कथितास्त्रषोडशभुजां विद्युत्प्रभाभीषणां
रक्ताकल्पभुजङ्गहारवलयां त्र्यक्षां कुमारीगणैः ।
सन्नद्धां विविधायुधैः परिवृतां दुर्गां तथा मातृभि-
र्ध्यायेत् तां कुपितां महासुरवधे शस्त्रास्त्रधारामुचम् ॥ २० ॥

ध्यात्वैनां तु यजन् यथाभिलषितं यो वेदलक्षं जपे-
द्धुत्वा व्रीहितिलाज्यदुग्धचरुभिर्मन्त्रोऽस्य सिध्येत् ततः ।
उद्दिश्यापि जुहोति वा दशशतं येनायुतं वार्बुदं
लक्षं वापि समीहितं तदखिलं प्राप्नोति भक्तः स चेत् ॥ २१ ॥

स्वैक्यं शूलकरां स्मरन् जपतु तां संस्पृश्य सर्वामयां-
स्तर्जन्या शमयेत् तु नाभिसलिले विन्देदभीष्टं जपेत् ।
राजीजर्तिलगव्यबिल्वसमिधां होमो ह्यपस्मारहृ-
च्छुङ्गोपेतवटैधसामपि हुताद् व्याधिग्रहादीन् हरेत् ॥ २२ ॥

रविवारादिकं शस्तं सर्वेषां काम्यकर्मणाम् ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां प्रारभेत् क्रूरकर्म यत् ॥ २३ ॥

तीक्ष्णाज्यायुतहोमसाधितशरैस्त्रिंशद्भिरस्तैः पृथक्
शत्रूणां पृतना प्रयाति विलयं भीत्या दिशो विद्रुता ।

---

१. 'ता व्या' ख. पाठः.

तद्वत् प्राक्पटलोदितेन विधिना संसाधिताः शर्कराः
शत्रूणां नवदुर्गयापि शिबिरं प्रोच्चाटयेयुर्ध्रुवम् ॥ २४ ॥
उच्चाटोऽश्विदलैः स्वयं निपतितैर्हुत्वाङ्घ्रिपांसुप्लुतैः
स्तम्भस्तत्कुसुमैः समिद्भिरपि च स्यादर्धरात्रे मृतिः ।
तत्कल्कसां प्रतिमां रिपोः सुनिहितप्राणां पुनः खण्डितां
हुत्वा कृष्णचतुर्दशीनिशि तथा काकारिरक्तार्दिताम् ॥ २५ ॥
यद्वा नित्यसमिद्भिराज्यमिलितं हुत्वेभशान्तिर्भवेत्
तत्पुष्पैर्मधुरार्दितैस्तु करिणो वश्या भवन्ति ध्रुवम् ।
मत्तास्तच्छदनैश्च गव्यमसकृत्संमन्त्र्य तां मार्जयेद्
रक्षेत् पायसगव्यतण्डुलघृतैर्नित्याहुताद् वर्धयेत् ॥ २६ ॥

छित्त्वा ब्रह्मतरोरूर्ध्वे त्यक्त्वाधोंशं तु पञ्चधा ।
तत्रैव भित्त्वा तुल्यांशं क्रमादाशासु पञ्चसु ॥ २७ ॥
पातयित्वा तु पुण्यर्क्षे शङ्खं चक्रं च नन्दकम् ।
शार्ङ्गं गदां च कृत्वांशैः पञ्चगव्यघटेषु तान् ॥ २८ ॥
संस्थाप्य कुण्डाद् बाह्ये तु यथा दिक्षु क्रमात् पृथक् ।
प्रतिकुण्डं सहस्रं तु हुत्वाज्यं गव्यमेव च ॥ २९ ॥
प्रत्याहुत्येषु संपात्य स्पृष्ट्वा तावज्जपेन्मनुम् ।
निखनेद् ग्रामगेहादेः सर्वरक्षाकरं भवेत् ॥ ३० ॥

अथ कृतौ—

साध्याख्यार्णैर्विदर्भं लिखतु मनुममुं पत्रे रविदिने
चक्री मृत्पुत्तलीके हृदि निशि निहितं स्पृष्ट्वा जपतु तम् ।
सप्ताहं वा त्रिसन्ध्यं मदनपरवशामिष्टां सुवदना-
माकर्षेदेष पुंसामपि विधिरुदितस्तुल्यो वशकरः ॥ ३१ ॥ सुवदना ।
पद्मैर्हुत्वा नरेन्द्रं वशयति खलु विप्रं वा समधुरैः
कल्हारैर्वैश्यमन्यं सलवणमधुना ग्रामं च नगरम् ।
जातीभिर्दूर्वयायुर्घृतमधुकमलैरर्थं च लभते
दध्ना पुष्टिं तु धान्यैरपि पशुपयसा धान्यानि च पशून् ॥ प्राग्वत् ।

१. 'थ' क. ग. पाठः. २. 'ङ्क' ख. पाठः.

प्राङ्गणेऽर्कवारके दिनेशमण्डलं लिखेद् रजोऽवभासि
तस्य मध्यतोऽम्बुजं वसुच्छदः सकेसरं सकर्णिकं च ।
द्वादशारकं षडश्रबाह्यतस्तु संक्रान्तिप्रसंख्यनेमि
मातुलप्रभावृतं तु वत्सरात्मकं समानवृत्तमेव ॥ ३३ ॥ वृत्तम् ।

प्रोक्तमण्डलेऽनलं निधाय मुष्टिदर्भकैः परिस्तृतेऽथ
बाणखड्गवेष्टितेऽस्य पूर्वतस्तथा यजेच्छिवां जुहोतु ।
आज्यलाजपायसैरनित्यकैर्यथार्हकं सहस्रकं च
लोहिताङ्गपिण्डकैः समन्त्रकं बलिं क्षिपेद् बहिर्दिशासु ॥ प्राग्वत् ।

तावज्जपेत् कुमारीश्च ब्राह्मणान् भोजयेदपि ।
संपूज्य हेमवसनैर्दत्त्वाचार्याय दक्षिणाम् ॥ ३५ ॥

अभयं प्रार्थयेद् देवीमग्निं विप्रान् कुमारिकाः ।
ग्रहरोगादिशान्तिं वा यद् यदिष्टं तदाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

रविवारं समारभ्य सप्ताहं पक्षमेव वा ।
हुत्वैवं विजयी राजा स्यादापद्भ्यो विमुच्यते ॥ ३७ ॥

एकाक्षान्तोऽम्बुमान् दीर्घः सानन्ता पृथिवी ततः ।
चण्डदुर्गापदान्ते यैर्हृदयान्तो बलैर्मनुः ॥ ३८ ॥

त्रैलोहीं सुविहितां तु वा कनकजां कृत्वा शुभां मुद्रिकाः
हुत्वाज्यं दशगुणं सहस्रमथ वा लक्षं तु संपातिताम् ।
तां गव्ये विनिहितां जपेदपि तथा सम्पूजितां धारयन्
दीर्घायुर्बहुधनो भवेदपि रणे मत्तेभविक्रीडितः ॥ मत्तेभविक्रीडितम् ।

हैमाद्यं कलशमहितं तु कमले भद्राह्वये पूरितं
तीर्थाद्भिः कुसुमगन्धहेममणिभिः सर्वैः फलैरौषधैः ।
अर्धास्ते दिनकरे सजागरजपो रात्रौ दिनेशोदये
तत्स्नानाद् विगतकल्मषो गतरुजः श्रीमान् स जीवेच्चिरम् ॥ प्राग्वत् ।

प्रोक्तेऽस्मिंश्चाभिषेके यजति विधिवन्मुद्रिका साधने वा
देवीमावाह्य तस्मिन् संवृतिसहितां चेशकोणादिबाह्ये ।

---

१ 'षं' क. पाठः. २. 'स्व', ३. 'वा क्ृ', ४. 'सं' ख. पाठः.

क्षेत्रेशस्कन्दशास्तॄनपि गणपतिं कन्यकाश्चैव विप्रा-
निष्ट्वा भोज्यैश्च वस्त्रैः कनकमणिभिश्चित्रमालाक्षताद्यैः ॥ चित्रमाला ।

अथ प्रकृतौ —

उत्तानाग्नैः पयोक्तैर्ज्वरमुपशमयेच्चापमृत्युं गळूची-
र्हुत्वा बिल्वं समूलं शकलफलसमित्पल्लवैः स्यात् समृद्धिः ।
न्यग्रोधाश्वत्थनित्याखदिरकसमिधां चायुधैः सैन्यभङ्गः
शुक्लां ध्यायन् सुपीतां कनकसरसिजस्रग्धरां वारुणां ताम् ॥ स्रग्धरा ।

स्नात्वोपोष्यैकरात्रं जपतु तदयुतं तद्दशांशं शतं वा
हुत्वा रक्तान्नपिण्डैर्बलिमपि विकिरेन्निस्स्वपेच्चापि रात्रौ ।
ॐ । छित्वा तु संशयं देवि! सर्वज्ञे! सर्वसाक्षिणि! ।
सत्यं दर्शय मे स्वप्ने स्वयमागत्य चेप्सितम् ॥ ४३ ॥

नमः स्वप्नदुर्गायै ।

इत्थं सम्प्रार्थ्य देवीं शुभमपि परमं यत् त्रिकालानुबद्धं
पश्येत् स्वप्नेऽर्थजातं विधिरयमुदितः स्वप्नदुर्गाभिधेयः ।
न्यग्रोधाधो रजन्यामरुणवटसमिद्धोमतो मासमात्राद्
यक्षीं पश्येत् समृद्ध्यै नवकनकनिभां चिन्तयेच्चण्डिकां ताम् ॥ ४४ ॥

वश्याकृष्टौ च रक्तां ज्वलदनलनिभां मारणे पीतवर्णां
स्तम्भे द्वेषे च धूम्रामथ विषहरणे शुक्लवर्णां तु मुक्तौ ॥ ४५ ॥

अथ वा सर्वकृत्येषु श्यामां सवरदाभयाम् ।
सशङ्खचक्रां तिष्ठन्तीं महिषोपरि चिन्तयेत् ॥ ४६ ॥

दुर्गामन्त्रं जपेद् यस्तमिह बहुविधाः पीडयेयुर्ग्रहाद्या-
स्तच्छान्त्यै मातृकाब्जैः कमल(?)लिपिविधिना भद्रके न्यस्तकुम्भैः ।
युक्तैर्लिख्यौ[1]षधीभिः सहफलकुसुमैर्हेमरत्नाष्टगन्धै-
र्लिप्यर्णैः[3] शक्तिरुद्रैर्गगनसरसिजात् पूरितैश्चाभिषिञ्चेत् ॥ ४७ ॥

हुत्वा तैर्न्यासमन्त्रैर्घृततिलचरुभिर्गव्यलाजैस्तदाज्यं
गव्यं सम्पात्य रक्षां क्षिपति च कलशेष्वेषु तन्न्यासनद्धम् ।

---

१. 'क्ता', २. 'प्यौ', ३. 'र्णैः' ख. पाठः.

आद्यैः[1] क्षान्तैश्च सिञ्चेत् क्रमपरिपठितैरायुरारोग्यलक्ष्मी-
विन्देन्नश्यन्ति विघ्नग्रहगदविपदः साधयेदप्यभीष्टान्[2] ॥ ४८ ॥

**वनदुर्गाधिकारः ।**

---

काळः खं सोक्ष्यथोमज्जा स्यान्मर्दनिपदं मनुः ।
ठद्वयान्तोऽष्टवर्णोऽयं दुर्गाहृदयसंज्ञितः ॥ ४९ ॥

ओं महिषहिंसिके नमः । महिषशत्रो ! शार्वि ! हुं फट् ठठ । महिषं हेषय हेषय । हुं महिषं हन हन देवि ! । हुं महिषसूदनि ! फट् ।

अङ्गानीमानि पञ्च स्वैर्जातिभिः सह कल्पयेत् ।
ऋषिः स्याच्छाकवत्साख्यश्छन्दः प्रकृतिरुच्यते ॥ ५० ॥
दुर्गैव देवता स्वार्णलक्षाभ्यासेन सिध्यति ।
कृष्णाष्टम्यामुपोष्याथ नवम्यादि जपेदिमम् ॥ ५१ ॥

जलभवखेटके धनुरपीह गदां दधतीं भुजैः शिवां
रथपदनन्दकौ शरमथाङ्कुशकमरुणाम्बरादिकाम् ।
मरकतरोचिषं त्रिणयनां मकुटादिविभूषितां स्मरे-
न्महिषशिरोगतां महिषमर्दनिकामखिलार्थसिद्धिदाम् ॥ सिद्धिदा ।

लब्ध्वा मन्त्रं गुरोः स्नातः शस्तदेशाश्रयाशनः ।
निर्वर्त्य सन्ध्यां पूजार्थं तद्गृहद्वारपान् यजेत् ॥ ५३ ॥

तद् यथा — दुर्गापरिवारेभ्यो नम इति सर्वतः । क्षेत्रपालाय नमः । चण्डिकायै नमः । अम्बिकायै नमः । वास्तुपुरुषाय नमः । इत्युभयतः । द्वारश्रियै नम इत्यूर्ध्वोदुम्बरे ।

नाराचमस्त्रं क्षिप्त्वान्तः प्रविश्यासीन आसने ।
कृतात्मशुद्धिर्न्यस्ताङ्गः स्वमूलाङ्गार्घ्यशोधितैः ॥ ५४ ॥
द्रव्यैर्गणेशं च गुरुं यजेदप्यासनादिकम् ।

ओं संप्रकृतये नमः इत्यधो भूमेः । ओं वं वज्रासनाय नम इति सिंहासनम् । ओं अं आर्यायै । ओं ऋं प्रलयायै । ओं ॠं महाप्रलयायै । ओं एं सृष्ट्यै नम इति सिंहपादचतुष्टयम् ।

---

१. 'द्यै' ख. पाठः. २. 'साध्ये थम' क. पाठः.

सत्त्वं रजस्तमः कन्दनालपद्मानि नामभिः ॥ ५५ ॥

सूर्यसोमाग्निबिम्बानि कहरीशान् दलादिकान् ।
अङ्गानि केसराग्रेषु दलाग्रेष्वथ मध्यतः ॥ ५६ ॥

प्रभां मायां जयां सूक्ष्मां विशुद्धां चापि नन्दिनीम् ।
सुप्रभां विजयां सर्वसिद्धिदां चाप्यनुक्रमात् ॥ ५७ ॥

दीर्घस्वरादिकं चेष्ट्वा,
ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय नमः इति तत्कर्णिकोपरि ।

ततो यथोक्तरूपाढ्यां दुर्गामावाह्य मूलतः ।
शस्तोपचारैरभ्यर्च्य बहिरावरणान् यजेत् ॥ ५८ ॥

तद् यथा — दुर्गायै वरवर्णिन्यै आर्यायै कनकप्रभायै कृत्तिकायै अभयप्रदायै कनकायै सुरूपिण्यै ।

दीर्घस्वरादिकाश्चैता पीठबाह्ये नमोन्तकम् ।
व्युत्क्रमेणार्चयेद् द्वारकोणाशास्त्रायुधाष्टकम् ॥ ५९ ॥

याद्यष्टार्णादिकं चेष्ट्वा वीथ्यां विघ्नं सरस्वतीम् ।
मातृगुरून् गुहं चैव दिक्ष्वथैशेषु सिंहिकाम् ॥ ६० ॥

निर्माल्यधारिणीः पूज्यास्ततो लोकाधिपाः क्रमात् ।
काल्याद्या द्वन्द्वशः पूज्या बाह्ये द्वारचतुष्टये ॥ ६१ ॥

कालीं करालीं वरदां मदिरां विन्ध्यवासिनीम् ।
सुप्रभां सिंहवक्त्रां चाप्यष्टमीं दैत्यमर्दिनीम् ॥ ६२ ॥

इष्ट्वैवं परिवारैः स्वैर्होमान्तमुपचारकैः ।
द्वादशान्ते हृदब्जे वा ततो देवीं विसर्जयेत् ॥ ६३ ॥

पूजाधिकारः ।

---

तिलघृतपायसैः सकलवश्यकरं कमलैः श्रियं जयं
विषसमिदूषणैः क्षपितराजिघृतैर्हवनादरेर्मृतिम् ।

---

१. 'भि', २. 'र्ये', ३. 'थ' ख. पाठः.

द्विजकुसुमैर्लभेत कुलपुष्टिमनित्यकजैर्जयेदरीन्
घृतसितसर्षपैर्गदहरं सहितैर्हरितालिकाङ्कुरैः ॥ ६४ ॥ प्राग्वत् ।

दुर्गाहृदयाधिकारः ।

---

ज्वलैपदवीप्सितादुपरि शूलिनि दुष्टपदे ग्रहान्वित-
स्तदनु च पारत्राणमथोऽस्त्रमिति त्रिदशाक्षरो मनुः ।

ओं शूलिनि ! दुर्गे ! हुं फट् । ओं शूलिनि ! वरदायै हुं फट् । ओं शूलिनि ! विन्ध्यवासिनि ! हुं फट् । ओं शूलिन्यसुरमर्दिनि ! युद्धप्रिये ! त्रासय त्रासय हुं फट् । ओं शूलिनि ! देवसिद्धपूजिते ! नन्दिनि ! रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि ! हुं फट् ।

इति ह तदङ्गकैर्भवति दीर्घतमा मुनिरुत्तरा ककुप्
स्वयमथ शूलिनी यदधिदैवतमक्षरलक्षकं जपेत् ॥ ६५ ॥

गुरुमुखलब्धमनुर्नियताशनवाङ् नदीपतिसङ्गमे
त्वपरमुखेऽथ शिवेऽप्यथवा वनमञ्जरीसुरभौ गिरौ ।
जपतु यजेदपि तां हरिपीठगतेऽम्बुजेऽङ्गवृतिर्भवेद्
वसुदलशक्तिवृतिस्त्वथ हेतिवृतिर्दिशामधिपैर्वृतिः ॥ ६६ ॥ वनमञ्जरी ।

तत्र वज्रासनाख्यं तदासनं स्वाख्यया यजेत् ।
प्रकृतिं त्रिगुणैर्बिम्बमूर्तिभिः पङ्कजं तथा ॥ ६७ ॥

ओं दुर्गायै, ओं वरदायै, ओं विन्ध्यवासिन्यै, ओं असुरमर्दिन्यै, ओं युद्धप्रियायै, ओं देवसिद्धपूजितायै, ओं नन्दिन्यै, ओं महायोगेश्वर्यै इत्यष्ट शक्तयः ।

अरिदरखड्गगदाशरकार्मुकशूलपाशकरां शिवां
शतमखनीलरुचिं मुकुटादिविभूषणैः समलङ्कृताम् ।
अयुगदृशं सुमुखीं मृगराजगतां लसत्कनकाम्बरां
स्मरतु जपादिषु तामथवा सचतुर्भुजां कनकप्रभाम् ॥ प्राग्वत् ।

---

१. 'लद्दपि वी' २. 'तः' ख. पाठः.

देवीमेवंविधां ध्यात्वा हृदयाद् वार्कमण्डलात् ।
मूलेनावाह्य चाङ्गैः स्वैरुपचारैस्तु पूजयेत् ॥ ६९ ॥

देव्याश्चतुर्दिशं दूतीश्चतस्रः पीठगा यजेत् ।
पीतां शङ्खारिगदिनीमुद्यतैककरां जयाम् ॥ ७० ॥

पाशदण्डधरां याम्ये सस्फोटां विजयां सिताम् ।
सुभद्रां पश्चिमे श्यामां शङ्खाद्यष्टभुजान्विताम् ॥ ७१ ॥

शूलकात्यायनीं शुक्लां धृतकुम्भद्वयामृताम् ।
सिञ्चन्तीममृताम्भोभिर्देवीं कुम्भपरिच्युतैः ॥ ७२ ॥
निर्माल्यधारिणीमैशे सिंहिकां चाभिपूजयेत् ।

अथाकृतौ —

नित्यविधानतस्तु कुसुमैः सुगन्धवरधूपदीपचरुभि-
भक्तिभरावनम्रशिरसा[1] प्रणम्य कुरुते स्म पूजनविधिम् ।
मद्रकगीतवाद्यमधुरैश्च नृत्तबलिभिः शिवाचरणयो-
र्यस्त्विह साधयेन्मनुमिमं न तस्य भुवनेऽस्ति वस्त्वसुलभम् ॥ मद्रकम् ।

## पूजाधिकारः ।

---

उत्कृतिलक्षकं जपति चेज्जगत् स निखिलं वशे स्म कुरुते
यक्षपिशाचभूतभुजगानभीष्टमिह कारयेद् वचनतः ।
मत्तगजाश्वयोधबहुलं च सैन्यमपि वारयेद् युधि जयेद्
यत्र निधिर्निधानमवनौ स पश्यति सुखेन तच्च लभते ॥ प्राग्वत् ।

स्वैवयतः शूलिनीं ध्यात्वा स्वस्थावेशो भवेज्जपात् ॥ ७५ ॥
विषग्रहामयादींश्च मोचयेद् दर्शनादपि ।
सिताम्बरे लिखेद् देवीं दुर्गां साष्टभुजायुधाम् ॥ ७६ ॥
वामनाभिर्जयाद्याभिर्युक्तां तां पूजयेज्जपेत् ।
शीघ्रं सिध्यति मन्त्रोऽयमथ बाणेऽर्चयेदिमाम् ॥ ७७ ॥

---

१. 'कपरा' ग. पाठः.

तद्वैधात् परसैन्यानामुच्चाटनकरं परम् ।
स्वैक्यं ध्यानादिना शत्रुं जयेत् संमोहयेदपि ॥ ७८ ॥
तिलराजीहुतात् सर्वां मारयेच्चितिकानले ।
तज्जपितं सिताश्मकुपितः क्षिपेत् कपिवयांसि कालयति त-
स्लब्धमनेन खे पशुमयं निखातमपि सैन्यमार्गनिहितम् ।
वत्सरहोमतः समधुरैस्तिलैर्भवति शक्तिमान् दशशतैः
पिप्पलकेध्मकैस्तु वशयेज्जुहोत्यभिमतं लभेत सघृतम् ॥ प्रागवत् ।
यथेह वनदुर्गाया विनियोगोऽनुकीर्तितः ॥ ८० ॥
तुल्यो महिषमर्दिन्याः शूलिन्याश्चासु संमतः ।

शूलिन्यधिकारः ।

---

तार[1] दुर्गेद्वयं रक्तं संवर्तोऽग्निठयुग्मकम् ॥ ८१ ॥
ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्रं देवता स्वयम् ।
खड्गदुर्गानिजाङ्गैः षडङ्गानि च यथाक्रमम् ॥ ८२ ॥
पुरारिगिरिसंख्यैः तैः सर्वेणाप्यस्त्रमन्त्रतः ।

अथ विकृतौ —

अवतु सशङ्खचक्रमसिना त्रिशूलमपि या दधच्छ्रुतिभुजै-
र्नवघननीलकान्तिररुणाथवा त्रिणयना निसुम्भमथनी ।
कनकविभूषणा भगवती पिशङ्गवरमालागन्धवसना
चटुलगतैर्यथाश्वललितमृगेन्द्रमधिरुह्य वो विजयिनी ॥ अश्वललितम् ।

मनुमुपलभ्य देशिकमुखान्निजैक्यमभिचिन्त्य तां जपतु त-
स्करितुरगाकुले युधि तथा भयेषु विषमेषु वादविषये ।
स भवति निर्भयश्च विजयी यजेदधिगतामिमां प्रतिदिनं
सितनवमीविशेषयजनाज्जपाच्च खचरोऽणिमादिगुणभाक् ॥ प्रागवत् ।
तिलाज्यसर्षपैर्हुत्वा लक्षं विद्याधरो भवेत् ॥ ८५ ॥

---

१. 'तां' क. ग. पाठः. २. 'कभू' क. पाठः. ३. 'दि' ख. पाठः.

मन्त्रितेष्वादिवेधेन पलायन्त्यरयो मृगाः।
चोरव्याघ्रादिभिश्चासौ जपन् ध्यायन् न पीड्यते ॥ ८६ ॥
निरावरणमेवैनां खड्गदुर्गां तु साधयेत् ॥ ८६३ ॥

इत्थं प्रोक्ता दुर्गामन्त्राः सकलविषगदुरितभयशमना
यस्त्वेतेषामेकं वेष्टं विधियजनहवनमननजपपरः।
संसाध्यादौ भक्त्या युक्तः प्रतिदिवसमपि भजति यदिह शिवां
मत्ताक्रीडा नित्यं लक्ष्मीः श्रयति खलु तमुपगतसुखविभवैः॥ मत्ताक्रीडा।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
पञ्चविंशः पटलः।

---

## अथ षड्विंशः पटलः।

ताराम्भसी सुधाशब्दः सोष्टोऽग्निरथ ठद्वयम्।
कथितो वसुधारायां मूलमन्त्रः स्वराक्षरः ॥ १ ॥
साग्निहोत्रोऽम्बिकोऽथ स्यात् ततो काली हरान्तगः।
श्रीकरीति त्रयो वर्णा धनधान्यपदे ततः ॥ २ ॥
पृथक् करिपदोपेते वह्नेर्जाया च कीर्तिता।
मन्त्रोऽयं वसुधारायाः साध्यसंज्ञस्तु सिद्धिदः ॥ ३ ॥
पूर्वोऽत्र मूलमन्त्रः स्यात् सप्तार्णस्तेन पूजयेत्।
द्वितीयं साधयेन्मन्त्रं जपहोमक्रियादिभिः ॥ ४ ॥
ऋषिर्बुद्धमुनिश्छन्दश्चोष्णिगप्यतिशक्करी।
देवता वसुधाराख्या लक्ष्मीर्विश्वाभिपूजिता ॥ ५ ॥

ओं वसुधारे ठठ हृदयम्। ओं श्रीः वसु ठठ उपहृदयम्। ओं वसुश्रिये ठठ उपहृदयस्योपहृदयम्। ओं वसु ठठ ललाटे। ओं वसुश्रिये ठठ शिरसि। ओं वसु स्वाहा वषट् शिखायाम्। ओं वसुस्वाहा वौषट् अशेषाङ्गकवचम्। ओं वसु स्वाहा फट् अस्त्रम्।

जपेत् तु पूर्वसेवार्थं साध्यमन्त्रं त्रिलक्षकम् ।
सन्ध्यासु चार्धरात्रे च [illegible] स्मृतः ॥ ६ ॥

विशुद्धदेहः शुद्धात्मा मौनी शुद्धाम्बरादिकैः ।
[illegible] तु विम्बमालिप्य[2] वर्तुलम् ॥ ७ ॥

पञ्चबुद्धान् प्रणम्यादौ [illegible] तथा ।
अक्षोभ्यवैरोचनकौ रत्नसम्भवमेव च ॥ ८ ॥

अमिताभं तथामोघसिद्धिं तारादिनामभिः ।
पद्मपाणिश्च मैत्रात्मा गगनादिगजाह्वयः ॥ ९ ॥

समन्तभद्रसंज्ञश्च तथा यक्षाधिपाह्वयः ।
ततः स्यान्मञ्जुघोषाख्यस्तथा विष्कम्भकाह्वयः ॥ १० ॥

त्रांबीजोत्थं हिरण्याद्रिं ध्यायेदतिमनोहरम् ।
तस्योपरि तथारामं कल्पवृक्षैरलङ्कृतम् ॥ ११ ॥

तन्मध्ये मणिभिर्दिव्यैश्चितं हैमस्थलं[3] स्मरेत् ।
तत्र यङ्कारजं पद्मं स्मृत्वा तत्र स्थितः स्वयम् ॥ १२ ॥

'ओं स्वभावशुद्धाः सर्वसमाः । सर्वशुद्धोऽहम्'

इति मूर्धादिपादान्तं त्रिवारं विन्यसेत् सुधीः ।
मैत्रीं सुधीषु सर्वेषु करुणां दुःखितेषु च ॥ १३ ॥

पुण्यशीलेषु सन्तोषमुपेक्षां पापकर्मसु ।
भावयेत् प्राणिवर्गेषु सदा सन्तुष्टमानसः ॥ १४ ॥

ओं हुं त्रां आं खं हुं —

अङ्गुष्ठादितलान्तं तु त्रिवारं विन्यसेदिति ।

ओं सर्वतथागतानां सर्वसिद्धयः संपद्यन्ताम् । सर्वतथागताश्चाधितिष्ठन्ताम् ।

नाभिहृन्मस्तकेष्वेतैः क्रमात् कुर्यात् त्रिरञ्जलिम् ॥ १५ ॥

ओं वसुधारे ! अभितिष्ठस्व माम् ।

अनेनाञ्जलिना मूर्ध्नि न्यस्तेनैनां प्रणम्य तु ।

---

१. 'कम्', २. 'ल' क. पाठः. ३. 'हे' क. ग. पाठः.

ओं समये! सौम्ये! समयङ्करि! महासमये[1]! नमः ठठ ।

बद्ध्वा समयमुद्रां [illegible] दर्शयेत् ॥ १६ ॥

तथैव वज्रमुद्रां च दर्शयेत् साध्यविद्यया ।
ततो हिरण्य[illegible] ॥ १७ ॥

मूलं विन्यस्य संपूज्य स्वशिरः प्रोक्षयेत् तु तैः ।
पूजाद्रव्यं तथा [illegible] ॥ १८ ॥

अर्धः[2] कल्पतरोर्ध्यात्वा रत्नसिंहासनाम्बुजे ।

ओं श्रिये, श्रीकरि! धनकरि! धान्यकरि! एह्येह्यागच्छ भगवति वसुधारे! ठठ ।

अनेनावाहयेद् देवीं [illegible]पिणीम् ॥ १९ ॥

अथ संकृतौ —

हेमनिभां पीवरकुचकलशां चन्द्रमुखीमलिकुलरुचिकेशीं
　कञ्चुलिकाङ्गीं कुवलयनयनां चारुभुजां तनुतरवरमध्याम् ।
हेमकिरीटां कनकमणिमयैराभरणैः शुचिनिवसनगन्धै-
　रञ्चितमाल्यैरधिगतवपुषं कान्तिमतीं प्रणमत वसुधाराम् ॥ २० ॥

[कान्तिमती, तन्वीति केचित् ।

तिष्ठन्तीं विनिधायाङ्घ्रिं वसुवर्षिघटीमुखे ।
आकुञ्चिताङ्घ्रिजानुस्थवामपाणिस्थडाडिमाम् ॥ २१ ॥

रत्नवर्षिघटीगर्भमुत्पलं चापरे करे ।
स्यन्दमानार्थधाराढ्यनालनिर्गतवल्लरीम् ॥ २२ ॥

इत्थं ध्यात्वा तु तां देवीं मूलेनावाह्य मण्डले ।
मूलमन्त्रेण चार्घ्याद्यैरुपचारैर्यजेत् क्रमात् ॥ २३ ॥

अमिताभाह्वयं बुद्धं कल्पवृक्षमधोम्बुजे ।
पीतवर्णं ध्यानानिष्ठं शिखिनं मुण्डितं स्मरेत् ॥ २४ ॥

---

१. 'ये ठठ'. २. 'थ' ख. ग. पाठः. ३. 'न्', ४. 'यु' ख. पाठः.

तत्पार्श्वगं तथा शुक्लं[1] भास्वराब्जे कपर्दिनम्[2] ।
शङ्खा[illegible]ढ्यं पद्मे[3] लोकेश्वरं स्मरेत् ॥ २५ ॥

वामपार्श्वे वज्रपाणिं श्यामं वज्रधरं तथा ।
किरीटादिविभूषाढ्यं पद्मे नाभिस्थपाणिनम् ॥ २६ ॥

ओं सं ठठ । ओं धां ठठ । ओं रं ठठ । ओं वसुधे! ठठ । ओं वसुन्धरि! ठठ । ओं वसुमति! श्रिये ठठ । ओं वसुधारि! ठठ ।

दिग्विदिक्ष्वभिपूज्यैतास्तत्पङ्कजदलाग्रगाः ।
मध्ये मूलेन देवीं तां तत्पार्श्वे श्रीमहाश्रियौ ॥ २७ ॥

श्रीरूपे पङ्कजे पूज्ये वसुवर्षिषटीकरे ।

ओं चक्ररत्नाय नमः[4] । ओं मणिरत्नाय नमः । ओं असिरत्नाय नमः । ओं अश्वरत्नाय नमः । ओं स्त्रीरत्नाय नमः । ओं पुरुषरत्नाय नमः । ओं गजरत्नाय नमः ।

सप्तैतान्यपि रत्नानि पद्मस्थान्यग्रतो यजेत् ॥ २८ ॥

तेषामुभयतो यक्षनागराजाभिधानकान् ।
ऊर्ध्वतो देवपुत्रांश्च प्रणतान् सेवयागतान् ॥ २९ ॥

इत्थं सपरिवारां तां यजेद् गन्धादिभिः क्रमात् ।
मुद्राभिर्वक्ष्यमाणाभिर्वसुधाभिरनुक्रमात् ॥ ३० ॥

अन्तःस्थाङ्गुष्ठयुग्मा तु मुद्रा समयसंज्ञिता ।
तस्यास्तर्जादिमोक्षेण तिस्रः पुष्पादिसंज्ञिताः ॥ ३१ ॥

कनिष्ठानखमारोप्य ज्येष्ठाग्रं वज्रलक्षणम् ।
मुक्तशेषाङ्गुलिः[6] प्रोक्ता दीपमुद्रेति देशिकैः ॥ ३२ ॥

बद्ध्वाञ्जलिं तु पात्राभं पार्श्वस्थाङ्गुष्ठयोगतः ।
नैवेद्यमुद्राथ मिथो निर्गताग्राङ्गुलिर्भवेत् ॥ ३३ ॥

सामान्यमुद्रा सर्वत्र प्रणामविषये स्मृता ।
तृतीयपर्वमध्याभ्यां तर्जाभ्यां कुञ्चितं स्पृशेत् ॥ ३४ ॥

---

१. 'क्ला', २. 'नाम्' ख. पाठः. ३. 'द्म', ४. 'मः । ओम् अ' क. पाठः. ५. 'वा', ६. 'लीः' क. पाठः.

किञ्चिद् [illegible] ।
अर्धरात्रे जपेन्मन्त्रं साध्यं पञ्चदशाक्षरम् ॥ ३५ ॥

मूलेन सप्तवर्णेन पूजयेत् तां यथाविधि ।
मासाच्च वित्तं लभते षण्मासाद् धनदो भवेत् ॥ ३६ ॥

प्राह्णे नित्यं जपेन्मन्त्रं निशीथे जुहुयात् तिलैः ।
राजानं वशयेदिष्टमर्थं[1] तस्माल्लभेत च ॥ ३७ ॥

सिद्धार्थैरथवा हुत्वा शुभ्रैर्भूपो वशे भवेत् ।
ह्रस्वश्रीर्वायुरोष्ठस्थो दीर्घमाद्यन्ततः करी[2] ॥ ३८ ॥

ढणचषि ढान्यचषि पुष्पिकरि ऋद्धिकरि अविघ्नकरि सर्वकरि ठठ ।

द्वात्रिंशदर्णो मन्त्रोऽयं प्राग्वदङ्गादिकं स्मृतम् ।
प्राग्वत् पूजाजपध्यानैर्वसुधारेष्टदा भवेत् ॥ ३९ ॥

अथान्यः साध्यमन्त्रस्य पूर्वोक्तस्योच्यते विधिः ।
क्षीरोदहेमपुलिने कल्पकोद्यानमण्डिते ॥ ४० ॥

हेमपक्षिमृगाकीर्णे चिन्तयेत् स्वर्णमण्डपम् ।
दशयोजनविस्तारं शतयोजनमायतम् ॥ ४१ ॥

मण्डपं तदुपेन्द्रेण देव्यर्थं निर्मितं धिया ।
स्तम्भैर्दिव्यैर्मणिमयैरष्टोत्तरसहस्रकैः ॥ ४२ ॥

युक्तं वैडूर्यसोपानं स्फाटिकान्तरकुट्टिमम् ।
पद्मिनीशतसङ्कीर्णं दिव्योद्यानैश्च शोभितम् ॥ ४३ ॥

तोरणच्छत्रकलशप्रदीपाङ्कुरचामरैः ।
शङ्ख[3]स्फटिकचक्राङ्कध्वजदर्पणमण्डितम् ॥ ४४ ॥

अन्यैश्च मङ्गलैर्युक्तं मुक्तादामावलम्बितम् ।
तन्मध्यदेशे ध्यात्वाथ रत्नसिंहासनं पुनः ॥ ४५ ॥

तस्योपरि महत् पद्मं सहस्रदलशोभितम् ।
तत्कर्णिकास्थितां देवीं वसुधारां विचिन्तयेत् ॥ ४६ ॥

---

१. 'र्थं' ख. पाठः. २. 'रिः' क. ग. पाठः. ३. 'शङ्खस्वस्तिक' क. ग. पाठः.

तद्यथा —

कल्पतरुमूले रत्नहरिपीठे [illegible] नैकशतपत्रे
सुस्थितपदाब्जां [illegible] तुङ्गकुचकुम्भां चारुमुखचन्द्राम् ।
हारमणि[illegible] तां
चित्रवसनाढ्यां [illegible] नौमि वसुधाराम् ॥ मणिमाला ।

देवीमेवंविधां ध्यात्वा तस्या [illegible] ।
मु[illegible] धनेश्वरम् ॥ ४८ ॥

वामतश्चामराग्र्येण [illegible] सन्ततम् ।
वीजयन्तीं समृद्धिं च दिव्यरूपां [illegible] ॥ ४९ ॥

ओं धर्माय नमः । ओं बुद्धाय नमः । ओं सङ्घाय नमः । ओं सागर-निर्घोषाय नमः । ओं वज्ररक्षाय नमः । ओं तरुणिने नमः । ओं आर्यावलोकेश्वराय नमः । ओं प्रज्ञायै नमः । ओं सरस्वत्यै नमः । ओं सर्वबोधि-सत्त्वेभ्यो नमः ।

एतान् सिंहासनस्याधो दशदिक्षु यजेत् क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रैः प्रागुक्तैर्विन्यस्याशां च बन्धयेत् ॥ ५० ॥

एवं सपरिवारां तामभिपूज्य यथाविधि ।
मौनी शुचिर्जपेन्मन्त्रं सत्यमेव वदेत् सदा ॥ ५१ ॥

विशेषेणास्य मन्त्रस्य सत्योक्त्या लभते फलम् ।
जपाद् दशांशं जुहुयात् पद्मैराज्यविमिश्रितैः ॥ ५२ ॥

ततः श्रीमान् भवेन्मन्त्री नित्याभ्यासार्चनाहुतैः ।
पूर्वोदिताभिर्मुद्राभिर्मन्त्रैः पूर्वोदितैः क्रमात् ॥ ५३ ॥

अर्धरात्रे तथा प्रातः श्रियं विन्देद् यजन् जपन् ।
बिल्वच्छायोषितो बिल्वसमिद्भिर्वाथ तत्फलैः ॥ ५४ ॥

नित्यं हुत्वाष्टसाहस्रं षण्मासाद् राज्यभाग् भवेत् ।
पक्षं पयोव्रतो नित्यं प्रातः सन्तर्प्य यो जपेत् ॥ ५५ ॥

---

१. 'यवरवा', २. 'य' क. पाठः. ३. 'य सर' ख. ग. पाठः.

अर्धरात्रे च तां ध्यायन् धनधान्यपतिर्भवेत् ।
प्रातरष्टौ सहस्रं च सन्तर्प्य सलिलैः शुभैः ॥ ५६ ॥
मासेन तु समृद्धिः स्याद् वशयेच्च जगत्त्रयम् ।
ध्यायन् सम्पूजयेन्नित्यं जपन् [illegible] ॥ ५७ ॥
महतीं श्रियमाप्नोति वर्षमात्रान्न संशयः ।
दूर्वाभिरायुरारोग्यं पद्मैर्बिल्वैः श्रियं धनम् ॥ ५८ ॥
जुह्वदाप्नोति वस्त्राणि नवाज्यैराज्यसंप्लुतम् ।
चन्दनेनार्धरात्रे तु समालिप्य तु मण्डलम् ॥ ५९ ॥
पुष्पैर्विकीर्य विविधैस्तस्मिन्नावाह्य पूजयेत् ।
घृतदीपशतं दत्त्वा गन्धाद्यैरर्चयेत् क्रमात् ॥ ६० ॥
अर्धरात्रं समारभ्य यावत् स्यादरुणोदयः ।
जपेत् सजागरो मन्त्रं वसुधारामनुस्मरन् ॥ ६१ ॥
ततस्तु हेमधाराग्रे नरस्थूला पतिष्यति ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाभिदघ्नजले स्थितः ॥ ६२ ॥
जपन् सप्तदिनाद् वृष्टिं लभते [illegible] ।
पञ्चप्रादेशमात्रे तु पटे देवीं यथाविधि ॥ ६३ ॥
संलिख्य तूक्तरूपाढ्यां पूजयेत् सिद्धिभाग् भवेत् ।
प्रातश्चैवार्धरात्रे च चन्दनालिप्तमण्डले ॥ ६४ ॥
सम्पूज्यैनां जपन् जुह्वद् यथोक्तं फलमश्नुते ।

वसुधाराधिकारः ।

---

तारं च हृदयं नाभिर्दोर्मध्यं सलिलं ततः ॥ ६५ ॥
त्वक्स्थो षढि भौतिकाण्ड्वे[3] मीनोऽरण्यैर्धराणकौ(?) ।
उमाकान्तः सदृक् चाथ धरेणौ ठद्वयं मनुः ॥ ६६ ॥

---

१. 'ध्यायेद् ध' ख. पाठः. २. 'र्प्य', ३. 'ण्ड्यो' क. ग. पाठः.

[illegible]दिरयं [illegible] ।
[illegible] स्ववर्णकैः ॥ ६७ ॥

अङ्गानि रचयेत् पञ्च जातिभाञ्जि यथाक्रमम् ।
ऋषिर्वराहश्छन्दोऽपि निचृद् भूमिश्च देवता ॥ ६८ ॥

लक्षं पुरस्क्रिया होमो दशांशं [illegible] ।
सिध्येन्मन्त्रस्त्वयं नित्यपूजाविधिरथोच्यते ॥ ६९ ॥

मेरौ कल्पतरोर्मूले हेमभूरत्नपीठके ।
ध्यात्वा सिताम्बुजं तस्मिन् देवीमावाह्य पूजयेत् ॥ ७० ॥

तद्यथा —

आधारशक्तिं कूर्मं [illegible]मेव च ।
धर्मादिकान् गुणान् सूर्यसोमाग्न्यविपमण्डलैः ॥ ७१ ॥

तत्कर्णिकायां भूबीजमिष्ट्वा तद्बिम्बतारकम् ।
मूलेनावाहयेत् तस्मिन् धरणीं दिव्यरूपिणीम् ॥ ७२ ॥

अथाभिकृतौ —

श्यामलवर्णां कोमलमूर्तिं [illegible]वयसं
हेमकिरीटां स्वाभरणाढ्यां करधृतकमलककुवलययुगलाम् ।
क्रौञ्चपदालीं चित्रपटान्तस्तरलितसुरसरिदुपमितवसनां
पिञ्जरगन्धस्रक्परिबर्हां प्रणमत भुवमिह मुररिपुदयिताम् ॥ क्रौञ्चपदा ।

ध्यात्वैवं धरणीं देवीमुपचारैर्यजेत् क्रमात् ।
अङ्गैश्च वासुदेवाद्यैर्दिक्षु पद्मदलाग्रगैः ॥ ७४ ॥

जलाग्निमरुदाकाशान् कोणपत्रेष्वनुक्रमात् ।
श्वेतरक्तासितस्वच्छवर्णान् प्रोक्ततनून् यजेत् ॥ ७५ ॥

देव्याः पार्श्वगता दूतीश्चलश्च कोणगा यजेत् ।
चामरं मुकुरं चैव रत्नभूष[illegible]समुद्गकम् ॥ ७६ ॥

ताम्बूलककरङ्कं च वहन्तीर्हे[illegible]सन्निभाः ।
कुलशैलान् समुद्रांश्च नदीवृक्षौषधीरपि ॥ ७७ ॥

---

१. 'स', २. 'तो' क. पाठः.

दीपांश्च नामधेयैः स्वैः प्रणवादिनमोन्तकैः ।
तद्बाह्ये लोकपालांश्च स्वगायुधवाहनान् ॥ ७८ ॥
तद्बाह्ये दिग्गजानष्टौ यजेदैरावतादिकान् ।
इत्थं सपरिवारां तामुपचारैर्यथोदितैः ॥ ७९ ॥
सम्पूज्य दधिशाल्यन्नं सघृतं सोपदंशकम् ।
निवेद्य सपूपफलं दध्यन्नं वा सुसंस्कृतम् ॥ ८० ॥
वह्नावपि सामावाह्य कुण्डे वा स्थण्डिले शुभे ।
साज्येन चरुणा नित्यं हुत्वा देवीं प्रवाहयेत् ॥ ८१ ॥

कामयेद् वसुधां तु यां शुचिना भृगुवासरेवरुदयाहृतेन्मृदा
मिश्रितं जुहुयात् पयस्त्वथवा घृतपायसमष्टसहस्रमितं तथा ।
आत्मसाद् भवतीह भूर्नचिरान्नदसायविमि(श्रितः श्र)सरोजकुमुद्वतीं
स्वादुसिक्तनवोत्पलैर्हवनेन धनान्यपि राज्यपदं लभते नृपः ॥ कुमुद्वती ।

होमान्तेऽनेन विकिरेद् बलिं [illegible] ।
विशेषाद् विष्णुभक्तस्य मन्त्रोऽयं सर्वकामधुक् ॥ ८२ ॥

## भूहृदयाधिकारः ।

---

श्रीकामशक्तिबीजात्मा त्रिवर्णस्त्रिपुटामनुः
स्वबीजैर्दीप्सितैः कुर्यात् षडङ्गानि यथाक्रमम् ॥ ८४ ॥

सागरोदरहेमभूपुलिने सुरपादपमूलगपीठसरोरुहे
वेदसंख्यदले स्थितां त्रिदशं नवहेमरुचिं[3] मकुटादिविभूषिताम् ।
षड्भुजां धृतपुण्डरीकयुगां सहपाशमथाङ्कुशपुष्पधनुश्शरान्
बिभ्रतीमरुणाम्बरादियुतां [illegible] भुवनेश्वरीम् ॥ प्राग्वत् ।

स्वाङ्गावृतिः स्यात् प्रथमा केसरेषूत्तरादिषु ।
दलाग्रेषु च दूत्यस्ता रचिताञ्जलिका यजेत् ॥ ८६ ॥
घृणिन्यै । सूर्यायै । आदित्यायै । प्रभावत्यै ।

---

१. 'उन्मद' क. पाठः. २. 'भूः', ३. 'चिरम' ख पाठः.

इत्याराध्याथ तां देवीं निवेद्यान्तं यजेत् क्रमात् ।
भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं श्रीमान् स वशयेज्जगत् ॥ ८७ ॥

बिल्वपत्रफलाद्यैस्तु मिश्रैर्हुत्वा धनी भवेत् ।
सापामार्गास्थिचूर्णैस्तु मधुरैर्वशयेज्जगत् ॥ ८८ ॥

अथ श्रीशक्तिकामानां बीजेशीं कथिताम्बुजे ।
प्रोक्तरूपादिकां [illegible] पूजयेच्छ्रियै ॥ ८९ ।

अङ्गावृतिः स्यात् प्रथमा पद्मबाह्ये षडाश्रिषु ।
हृल्लक्ष्मी[illegible] स्मरं चैव रतिं यजेत् ॥ ९० ॥

पद्माद्यैरष्टनिधिभिस्तद्बाह्ये [illegible] ।
योषिद्रूपैश्च लोकेशैर्यजेत् परिवृतां क्रमात् ॥ ९१ ॥

श्रीकरं यजनं चैतद् विशेषात् सर्ववश्यदम् ।
त्रीण्येतान्येव बीजानि कलायां योजयेत् क्रमात् ॥ ९२ ॥

बिन्दौ व्योम्नि समायोज्य ध्यायन् सिन्दूरलोहितम् ।
त्रैलोक्यं वशयेन्मन्त्री जपध्यानरतः सदा ॥ ९३ ॥

बिल्वशम्यर्कसमिधो जपापुष्पाणि च क्रमात् ।
जुहुयान्मधुराक्तानि जगद्वश्याय च श्रियै ॥ ९४ ॥

## त्रिपुटाधिकारः[3] ।

---

तारमोष्ठं च खं साक्षं पार्श्वं रक्तं च मेश्वरी ।
ठद्वयान्तो दशार्णोऽयमुमामन्त्रस्तु वश्यदः ॥ ९५ ॥

अयुतं प्रजपेदादौ दशांशाज्यं जुहोतु च ।

उत्कृतौ —

अश्वारूढां देवीं त्र्यक्षां लसदरुणमणिरुचिनिभां भुजङ्गविजृम्भितं
पाशं क्षिप्त्वा साध्यां बद्ध्वा स्मरशरशतविवशतनुं निजैक्यगतामुमाम् ।

---

१. 'स्तं बाह्ये' क. पाठः. २. 'नां'. ३. 'रा'. ४. 'नां' ख. पाठः.

आकर्षन्तीं रक्ताकल्पामपि सुरुचिरकनकमयीं करेण तु यष्टिका-
माधून्वानां ध्यात्वा देवीमपर इव हि मनसिशयो जपन् वशयेज्जनम् ॥९६॥
[भुजङ्गविजृम्भितम् ।

मधुरत्रयसंयुक्तं रक्तपुष्पैर्जुहोति चेत् ॥ ९७ ॥
स्ववशे कुरुते सर्वमाकृष्टिर्लवणाद् भवेत् ।
यत्राङ्गकल्पना नोक्ता तत्र शक्त्याङ्गकल्पना ॥ ९८ ॥
शस्ता स्याच्छक्तिमन्त्राणामृष्याद्यं च पुरोदितम् ।

**आकृष्टिशक्त्यधिकारः ।**

---

हृन्नाभिभुजमध्यं च पत्यर्णौ च महेश्वरि ॥ ९९ ॥
शब्दः स्यादथ केशान्तौ मेषौ पूर्णोऽथ ठद्वयम् ।
तारादिरेष धृत्यर्णो मन्त्रोऽन्नाधिपसंज्ञितः ॥ १०० ॥
वर्णसाहस्रजप्येन सिध्येद्धोमाद् दशांशतः ।

नृत्यन्तं कनकसदसि मृडमविरतमगदुहितरमनुपश्यन्ती-
मन्नाद्यं विविधरसवदभिमतधनममलवसनमपि विप्रेभ्यः ।
यच्छन्तीं रुचिरवपुषमरुणवसनकुसुमरुचिरशुभवेषाढ्यां
ध्यात्वोमां यजति जपति यदि धनपतिरखिलदुरितमपवाह्य स्यात् ॥
[अपवाहकम् ।

प्राह्णे नित्यं जपेन्मन्त्रं शुचिरष्टोत्तरं शतम् ॥ १०२ ॥
सहस्रं वाचिरेणैव सोऽन्नाद्यधनवान् भवेत् ।

**अन्नपूर्णाधिकारः ।**

---

हृदयसहितदेवियुग्मं महादेवि देवादिदेवीत्यथो सर्वशब्दो भवे-
ञ्जनदुःखपदयोः स्वकारोऽस्तु मध्ये विषं दीर्घकालामपश्चात्तकश्चापठीः ।

---

१. 'नान्या ध्या' ख. पाठः. २. 'क्त' क. ख. पाठः. ३. 'षौ', ४. 'लमपि' ख. पाठः.

इत्याराध्याथ तां देवीं निवेद्यान्तं यजेत् क्रमात् ।
भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं श्रीमान् स वशयेज्जगत् ॥ ८७ ॥

बिल्वपत्रफलाद्यैस्तु मिश्रैर्हुत्वा धनी भवेत् ।
[illegible]र्ण्ैस्तु मधुरैर्वशयेज्जगत् ॥ ८८ ॥

अथ श्रीशक्तिकामानां बीजेशीं कथिताम्बुजे ।
[illegible] देवीमासीनां पूजयेच्छ्रियै ॥ ८९ ।

अङ्गावृतिः स्यात् प्रथमा पद्मबाह्ये षडश्रिषु ।
[illegible]ः स्मरं चैव रतिं यजेत् ॥ ९० ॥

पद्माद्यैरष्टनिधिभिस्तद्बाह्ये चाष्टमातृभिः ।
योषिद्रूपैश्च लोकेशैर्देवेन् परिवृतां क्रमात् ॥ ९१ ॥

श्रीकरं यजनं चैतद् विशेषात् सर्ववश्यदम् ।
त्रीण्येतान्येव बीजानि कलायां योजयेत् क्रमात् ॥ ९२ ॥

बिन्दौ व्योम्नि समायोज्य ध्यायन् सिन्दूरलोहितम् ।
त्रैलोक्यं वशयेन्मन्त्री जपध्यानरतः सदा ॥ ९३ ॥

बिल्वशम्यर्कसमिधो जपापुष्पाणि च क्रमात् ।
जुहुयान्मधुराक्तानि जगद्वश्याय च श्रियै ॥ ९४ ॥

## त्रिपुटाधिकारः[3] ।

---

तारमोष्ठं च खं साक्षं पार्श्वं रक्तं च मेश्वरी ।
ठद्वयान्तो दशार्णोऽयमुमामन्त्रस्तु वश्यदः ॥ ९५ ॥

अयुतं प्रजपेदादौ दशांशाज्यं जुहोतु च ।

उत्कृतौ —

अश्वारूढां देवीं त्र्यक्षां लसदरुणमणिरुचिनिभां भुजङ्गविजृम्भितं
पाशं क्षिप्त्वा साध्यां बद्ध्वा स्मरशरशनविवशतनुं निजैक्यगतामुमाम् ।

---

१. 'स्तं बाह्ये' क. पाठः. २. 'नां', ३. 'रा'. ४. 'नां' ख. पाठः.

आकर्षन्तीं रक्ताकल्पामपि सुरुचिरकनकमयीं करेण तु यष्टिका-
माधून्वानां ध्यात्वा देवीमपर इव हि मनसिशयो जपन् वशयेज्जनम् ॥९६॥
[भुजङ्गविजृम्भितम् ।

मधुरत्रयसंयुक्तैः रक्तपुष्पैर्जुहोति चेत् ॥ ९७ ॥
स्ववशे कुरुते सर्वमाकृष्टिर्लवणाद् भवेत् ।
यत्राङ्गकल्पना नोक्ता तत्र शक्त्याङ्गकल्पना ॥ ९८ ॥
शस्ता स्याच्छक्तिमन्त्राणामृष्याद्यं च पुरोदितम् ।

आकृष्टिशक्त्यधिकारः ।

---

हृन्नाभिर्भुजमध्यं च पत्यर्णौ च महेश्वरि ॥ ९९ ॥
शब्दः स्यादथ केशान्तौ मेषौ पूर्णोऽथ ठद्वयम् ।
तारादिरेष धृत्यर्णो मन्त्रोऽन्नाधिपसंज्ञितः ॥ १०० ॥
वर्णसाहस्रजप्येन सिध्येद्धोमाद् दशांशतः ।

नृत्यन्तं कनकसदसि मृडमविरतमगदुहितरमनुपश्यन्ती-
मन्नाद्यं विविधरसवदभिमतधनममलवसनमपि विप्रेभ्यः ।
यच्छन्तीं रुचिरवपुषमरुणवसनकुसुमरुचिरशुभवेषाढ्यां
ध्यात्वोमां यजति जपति यदि धनपतिरखिलदुरितमपवाह्य स्यात् ॥
[अपवाहकम् ।

प्राह्णे नित्यं जपेन्मन्त्रं शुचिरष्टोत्तरं शतम् ॥ १०२ ॥
सहस्रं वाचिरेणैव सोऽन्नाद्यधनवान् भवेत् ।

अन्नपूर्णाधिकारः ।

---

हृदयसहितदेवियुग्मं महादेवि देवादिदेवीत्यथो सर्वशब्दो भवे-
ज्जनमुखपदयोः स्वकारोऽस्तु मध्ये विषं दीर्घकालाग्निपञ्चान्तकश्चाषढीः ।

---

१. 'नान्याध्या' ख. पाठः. २. 'क्त' क. ख. पाठः. ३. 'षे.', ४. 'लमपि' ख. पाठः.

शशिशकलयुतं कुरुद्वन्द्वकं वह्निजाया च देव्यास्त्रयस्त्रिंशदर्णो मनु-
र्वशयति हि जगद् यथा चण्डवृष्टिप्रयातोऽखिलं ध्यानजप्यादिभिः श्रीकरैः
[चण्डवृष्टिप्रयाताख्यो दण्डकः ।

रसवेदद्वैश्चाग्नि[illegible]परिसंख्यया ॥ १०४ ॥
स्वार्णैरस्त्रान्तमङ्गानि कृत्वोमां वश्यकर्मणि ।
पाशाङ्कुशाम्बुजद्वन्द्वकरां रक्तां त्रिलोचनाम् ॥ १०५ ॥
ललिताङ्गीं स्मरेद् वाथ श्रियै लक्ष्मीस्वरूपिणीम् ।
ज्ञात्वाष्टोत्तरसाहस्रं जपेन्नद्यां पुरस्क्रिया ॥ १०६ ॥
स्यात् सप्तकृत्वः सलिलमभिमन्त्र्य शिवां स्मरेत् ।
मुखं प्रक्षालयेन्नित्यमेतत् सर्वानुरञ्जकम् ॥ १०७ ॥
प्राग्वन्मन्त्रिततैलेन गन्धैर्वा कुङ्कुमादिभिः ।
मुखमालिप्य यान् पश्येत् सर्वानेव वशं नयेत् ॥ १०८ ॥
तत्पृष्टकुसुमं मालां गन्धं वश्याय धारयेत् ।
ग्रामराजकुलादीनां प्रवेशेऽपि जपेदिमम् ॥ १०९ ॥
इष्टार्थं साधयेत् सद्यः स्त्रीपुंसोश्च समो विधिः ।
यन्नामयुक्तं मन्त्रेण जपापुष्पैर्मधुप्लुतैः ॥ ११० ॥
जुहोत्यष्टोत्तरशतं सहस्रं वापि वश्यकृत् ।
जपेद् वा नामसंयुक्तं यस्य तं तं वशं नयेत् ॥ १११ ॥
प्रातः स्नात्वां तु पञ्चम्यां सैकतस्थण्डिले श्रियम् ।
कृताञ्जलिभवैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकैः ॥ ११२ ॥
यजेद् गन्धादिभिर्विन्देद्धेमवस्त्रादिकं धनम् ।

## देवीमन्त्राधिकारः ।

---

हृदयं भगवत्यन्ते मातङ्गेश्वरिशब्दयुक् ॥ ११३ ॥

---

१. 'रम्' ख. पाठः. २. 'रन्' क. ख. पाठः.

सर्वशब्दो जनयुतो मनोहरिपदं ततः ।
मुखराजि सर्वाद्यं सर्वराजवशङ्करि ॥ ११४ ॥
सर्वस्त्रीपुरुषान्ते च सर्वदुष्टमृगं ततः ।
सर्वसत्त्वस्य चाप्यन्ते वशङ्करियुतं पृथक् ॥ ११५ ॥
अमुकं वशशब्दान्ते मानयेति च ठद्वयम् ।
उद्धृत्य रथवर्णोऽयं मातङ्गीमनुरीरितः ॥ ११६ ॥
महाकालीपरिचरा देवी मातङ्गिका स्मृता ।

अपिच —

नमोन्ते कर्णवर्णः[2] स्यादेकनेत्रे ह्रयं ह्रशा ॥ ११७ ॥
सोमेश्वरस्थः श्वेतोऽथ चण्डान्ते मातङ्गिसुन्द् ।
मातङ्गीसर्वशब्दान्ते वशीकारिणि ठद्वयम् ॥ ११८ ॥
मन्त्रोऽयमपि मातङ्ग्या भवेदुच्छिष्टसंज्ञितः ।
द्वयोर्ध्यानं समानं स्याद् विनियोगो वशोकरः[3] ॥ ११९ ॥

मरतकमणिकोमलश्यामलाङ्गीं सुकेशालकां कुन्दमन्दस्मितास्याम्बुजां
कुवलयदलनीलनेत्रोत्पलां पक्वबिम्बाधरां पीनतुङ्गस्तनीं सुन्दरीम् ।
किसलयमृदुपाणिपादां विनीलाम्बरां (शुक्लां ?) शङ्खभूपोल्लसच्चारुदिव्याकृतिं
प्रणमत कलगीतवीणास्वनाकृष्टविश्वामराद्यां तु मातङ्गिकां भूतये ॥ प्राग्वत् ।

ध्यात्वा देवीं तु मातङ्गीं कथनं सन्ध्ययोर्जपेत् ।
निशास्वयुतजापेन सिद्धमन्त्रो भविष्यति ॥ १२१ ॥
सर्वानपि वशे कुर्यात् स्त्रीपुंसोश्च समो विधिः ।
रात्रौ भुक्त्वा द्वितीयेन ध्यस्वोच्छिष्टान्धसा बलिम् ॥ १२२ ॥
मन्त्रेण जपितं दद्याद् वशयेत् सकलं जगत् ।
राजद्वारे सभायां वा यं यं वीक्ष्य जपन् व्रजेत् ॥ १२३ ॥
स वश्यो भवेत् सद्यो दत्त्वा पुष्पादिकं तथा ।
लाणं त्रिमधुरैः पिष्ट्वा कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम् ॥ १२४ ॥

---

१ 'यम् । मन्त्रोऽय' ग. पाठः. २. 'र्णा' ख. पाठः. ३. 'रे' क. ग. पाठः

जुहुदष्टोत्तरशतं तथा तं वशयेज्जनम् ।
शालिपिष्टप्रतिकृतिं खादेत् समन्त्र्य विद्यया ॥ १२५ ॥

वशयेत् सप्तदिवसैः पादमारभ्य दक्षिणम् ।
काकं कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ भित्त्वास्य मध्यतः ॥ १२६ ॥

क्षिप्त्वा तु लवणं बद्ध्वा कृष्णसूत्रेण वेष्टितम् ।
दग्ध्वा चितानलेऽभ्यस्तं सहस्रं यत्र दीयते ॥ १२७ ॥

स स दास इवास्येष्टं कुर्यान्मन्त्रप्रभावतः ।
यद्वान्नौषधगन्धाद्यं यः स्वैर्मन्त्रेण दीयते ॥ १२८ ॥

तं तां वा वशयेत् सद्यो नात्र कार्या विचारणा । [शक्तयः

इति ह निगदिता यथा मुख्यशो मुख्यतन्त्रोदिताः शक्तिविद्यास्त्विमा या महा।
सकलदुरितदोषदौर्गत्यदौर्भाग्यरोगग्रहक्ष्वेलपीडात्ययाध्यादिदुःखापहाः ।
सुकृतविभवकाममोक्षार्थिनां प्रार्थितार्थाप्तये कामदोहाः सदा कामधेनूपमा।
मृतिजननतरङ्गपूर्णार्णवोर्णोद्भवाम्भोधिसन्तारनावो जयन्तीह सौख्यप्रदाः ॥ अर्णः।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
वसुधारादिपटलः षड्विंशः ॥

---

## अथ सप्तविंशः पटलः ।

पुरस्तारकं व्योमदीर्घादिबिन्दुप्लुतं शक्तिबीजं च शुक्रं ससर्गम् ।
समुद्धृत्य सूर्यायनत्यन्तमुक्त्वा भवेन्मूलमन्त्रस्तु सौरो नवार्णः ॥ १ ॥

ओं अं ब्रह्मतेजो ज्वल हृदयाय नमः । ओं अं विष्णुतेजो(प्र?)ज्वल अर्काय शिरसे स्वाहा । ओं अं रुद्रतेजो भूर्भुवः सुवरों ज्वालिनि शिखायै वषट् । ओं अं महेश्वरतेजः शूलिनि हुं कवचाय हुम् । ओं अं सत्यसदा-

---

१. 'तद्व', २. 'स्तु' ३. 'ला' ख. पाठः. ४. 'आं' क. पाठः.
५ 'अं ब्रह्मतेजोज्वल म' ख. पाठः.

शिवतेजः कपर्दिनि अस्त्राय फट् । ओं हं शिवतेजः शक्तिनेत्रत्रयाय वौषट् ।

अङ्गानीमानि सूर्यस्य स्वास्त्रशुद्धे करद्वये ।
ज्येष्ठाद्यङ्गुलिषु न्यस्य क्रमादस्त्रं तलद्वये ॥ २ ॥
शीर्षास्यहृदुपस्थेषु पद्योर्दिक्षु च क्रमात् ।
तान्यङ्गान्येव विन्यस्य हृदयादिषु च क्रमात् ॥ ३ ॥
पूजाजपादिकं कुर्यात् सिद्धिमिष्टां स विन्दति ।
अस्यर्षिः शुष्किकश्छन्दो जगती देवता रविः ॥ ४ ॥
समुद्रगायां नद्यां तं पर्वताग्रेऽथ वा यजेत् ।
यथावद्वर्णलक्षं तु पुरश्चर्याविधौ जपेत् ॥ ५ ॥
तद्दशांशेन बैल्वैश्च पालाशौदुम्बरैरपि ।
एधोभिः पैप्पलैश्चाज्यदधिमध्वभिघारितैः ॥ ६ ॥
विधिवज्जुहुयाच्छक्त्या ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।
अथैवं सिद्धमन्त्रस्य विनियोगा भवन्ति हि ॥ ७ ॥
ब्राह्मणादींस्तु पालाशैः पिप्पलोदुम्बरैः क्रमात् ।
अपामार्गैस्तु वशयेदेधोभिः शूद्रवत् स्त्रियः ॥ ८ ॥
सर्वान् वर्णान् वशे कुर्यादपामार्गैर्घृतप्लुतैः ।
नद्यां समुद्रगामिन्यामूर्ध्वबाहुर्जले स्थितः ॥ ९ ॥
नाभिदघ्नेऽष्टसाहस्रं जपन् नित्यं धनी भवेत् ।
मण्डले सवितुर्विष्णुं हेमवर्णं चतुर्भुजम् ॥ १० ॥
शङ्खचक्राम्बुजगदाहस्तं ध्यायन् जपेदपि ।
सर्वान् कामानवाप्नोति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम् ॥ ११ ॥
अनेनैव समुद्दिष्टं यद् यत् स्यादभिवाञ्छितम् ।
मन्त्रेणानेन लभते जपध्यानहुतादिभिः ॥ १२ ॥
अस्य मन्त्रस्य चान्येषां सामान्येनार्चनाविधिः ।
कथ्यते सूर्यमन्त्राणां यथावदिह सङ्ग्रहात् ॥ १३ ॥

तद्यथा —

ओं । तेजस्विनं तथा सूर्यमादित्यं तिग्मतेजसम् ।
वैकुण्ठं चैव तारादिं पृथक् पृथगुदीर्य तु ॥ १४ ॥
आवाहयामीत्युक्ताः स्युर्मन्त्रास्त्वावाहने रवेः ।
ओं । भूर्भुवः सुवः सूर्यादिः स्थापनामन्त्र ईरितः ॥ १५ ॥
महाबलाय स्वाहेति दद्यादर्घ्यं यथाविधि ।
हृदयेन तथा पाद्यं दद्यादाचमनीयकम् ॥ १६ ॥
मूलेन स्नापयेद् देवं सौरैः सूक्तैश्च शक्तितः ।
मूलेन वस्त्राभरणं कवचेनोपवीतकम् ॥ १७ ॥
पाद्याचामौ यथापूर्वं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् ।
गन्धं खद्योतकायेत्यस्य स्वाहान्तं पुष्पमप्यथ ॥ १८ ॥
सहस्रकिरणायेति धूपं च शिरसा रवेः ।
शिखया दीपमप्यथ नैवेद्यममृतात्मने ॥ १९ ॥
जपित्वा सूर्यगायत्रीमुपचारैस्तथार्चयेत् ।

ओं पिङ्गलाय नमः ।

अन्तः प्रविश्योपविश्य कृत्वा तु प्राणसंयमम् ॥ २० ॥
अस्त्रशुद्धकरोऽङ्गानि हृदयादीनि विन्यसेत् ।
आत्मानं भास्करं ध्यायन् यथोक्तार्घ्यं तु पूरयेत् ॥ २१ ॥
साष्टाङ्गं विन्यसेत् तत्र मूलाङ्गान्यर्चयेदपि ।
तत्प्रोक्षितात्म[2]स्थानार्चाद्द्रव्यचकः कुशै[3]स्ततः ॥ २२ ॥

गं गणपतये नमः । ओं गुं गुरुभ्यो नमः ।

इति दक्षिणतो विघ्नं गुरुं चोत्तरतो यजेत् ।
तं प्रभूतासनं पीठं तारवर्गादिपूर्वकम् ॥ २३ ॥
स्वनाम्नाभ्यर्च्य तत्पादांश्चतुरोऽथ हरीन् यजेत् ।
विमलं सारमाराध्यं सुखं परमपूर्वकम् ॥ २४ ॥

---

१. 'स्तु वाचं' क. ग. पाठः. २. 'त्व', ३. 'चै' ख. पाठः. ४. ... ।
...ारवि' क. पाठः.

ताराबिन्द्वन्तवर्गादियुक्तागन्धाभिर्नमोन्तकम् ।
तथैव परमात्मानं सूर्यपद्मासनं तथा ॥ २५ ॥

दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां बिभ्रतीं विमलामपि ।
अमोघां विद्युतां चाष्टदिग्दलेषु क्रमाद् यजेत् ॥ २६ ॥

सप्तमस्य द्वितीयं तु स्वरैर्दीर्घैर्विभेदितम् ।
सबिन्दुमादौ शक्तीनां नमश्चान्ते नियोजयेत् ॥ २७ ॥

नवमीं कर्णिकायां च तारादिं सर्वतोमुखीम् ।
इष्ट्वाथ प्रस्फुरन्मुद्रां दर्शयेदथ भास्करम् ॥ २८ ॥

वृत्तस्वतेजोबिम्बस्थं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ।
प्रोक्तमूर्तिधरं देवं सञ्चिन्त्य स्थिरधीर्हृदा ॥ २९ ॥

पुष्पैरञ्जलिमापूर्य खषोल्कं मूलसंयुतम् ।
उच्चार्य द्वादशान्ताब्जात् तदावाहनमुद्रया ॥ ३० ॥

आवाह्य स्थापयेत् पद्मे स्थापन्या सुसमाहितः ।
सन्निधान्या सन्निधाप्य रुद्ध्वा तन्निष्ठुराख्यया ॥ ३१ ॥

धेन्वा प्ररोच्याथार्घ्यादीन् दत्त्वा चैव खषोल्किना ।
साङ्गमूलेन चाराध्य पद्मं बिम्बं च दर्शयेत् ॥ ३२ ॥

स्नानवस्त्रोपवीतादि दत्त्वाङ्गानि यजेत् क्रमात् ।
हृदयादीनि वह्नीशरक्षोवायुदलेष्वथ ॥ ३३ ॥

मध्ये नेत्रं ततश्चास्त्रं दिग्दलेषु सजातिभिः ।
वरदाम्भोजहस्ताः स्युर्हृदयाद्याः सुभूषिताः ॥ ३४ ॥

रक्ताभाः स्मेरवदनास्तदस्त्रं योषिदाकृति ।
विद्युत्पुञ्जनिभं रौद्रमुग्रदंष्ट्रं विचिन्तयेत् ॥ ३५ ॥

धेनुमुद्रां हृदादीनां दर्शयेद् गोवृषं दृशः ।
त्रासनीमपि चास्त्रस्य पुनर्गन्धादिभिर्यजेत् ॥ ३६ ॥

---

१. 'सा' ख. ग. पाठः. २. 'त्कं सु सलं यु' ख पाठः. ३ 'ष।' क. पाठः.

प्रागादिदिक्षु सोमं च बुधं चैव बृहस्पतिम् ।
पूजयेद् भार्गवं चाग्निरक्षोवाय्वीशदिग्गतान् ॥ ३७ ॥

अङ्गारकं शनैश्चारं राहुं केतुमिति ग्रहान् ।
नामादिस्वहृद्यार्णैर्बिन्द्वन्तैश्च नामभिः ॥ ३८ ॥

शुक्लोऽरुणः कांस्यनिभः पीतः श्वेतस्तथा सितः ।
कृष्णोऽङ्गारनिभो धूम्रः सोमाद्याः स्युर्नव ग्रहाः ॥ ३९ ॥

द्विभुजास्ते च वामोरुस्थितैतद्वरपाणयः ।
साक्षमालाभयकरा दक्षिणे सुविभूषिताः ॥ ४० ॥

वन्दन्या तु प्ररोच्यैतान् गन्धाद्यैरथ भास्करम् ।
निवेद्यान्तं तु संपूज्य ग्रहांश्चैव यथाक्रमम् ॥ ४१ ॥

पद्माख्यां बिम्बमुद्रां च दर्शयित्वाभिनन्दयेत् ।
यथाशक्ति जपित्वाथ दत्त्वार्घ्यं तु विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥

संहृत्य मुद्रया मन्त्रान् साङ्गं देवं ग्रहानपि ।
हृदये द्वादशान्ते वा सूर्यबिम्बे नियोजयेत् ॥ ४३ ॥

तन्निर्माल्यादिकं सर्वं तेजश्चण्डाय दापयेत् ।
तारवर्गादिपूर्वेण स्वनाम्नैवैशगोचरे ॥ ४४ ॥

स्वाख्याभिस्तु चतुर्थ्या च सर्वेषां स्यान्नमोन्तकम् ।
षण्मुद्राः सूर्यपूजायां दर्शनीयास्तु ता यथा ॥ ४५ ॥

पद्माकारावाभिमुख्येन पाणी मध्येऽङ्गुष्ठौ शायितौ कर्णिकावत् ।
पद्माख्येयं सैव संलग्नमध्या स्पृष्टाङ्गुष्ठा बिम्बसंज्ञा तु मुद्रा ॥ ४६ ॥

प्राग्वत् पाण्योर्लग्नयोरङ्गुलीनामग्रेऽङ्गुष्ठोच्चालनान्निष्ठुरा स्यात् ।
बद्ध्वा मुष्टिं दक्षिणामास्फुरन्त्यौ मुक्त्वा तर्जामध्यमे गोवृषाख्या ॥ ४७ ॥

अन्योन्यग्रथितसमाङ्गुलीकपाण्योस्तर्जाग्रद्वयसमवेतमध्यमाग्रे ।
व्यत्यस्तेऽप्यथ तदनामिके कनिष्ठायुक्ताग्रे भवति हि धेनुसंज्ञमुद्रा ॥ ४८ ॥

---

१. 'द्वो', २. 'ब', ३. 'तं', ४. 'दै' ख. पाठः.

बद्ध्वा दक्षिणहस्तेन मुष्टिमुत्सृज्य तर्जनीम् ।
तर्जन्या वामतल(सं)ताडनात् त्रासनी भवेत् ॥ ४९ ॥

प्रयोजनतिलकाधिकारः ।

---

तारं सान्तं बिन्दुयुतं कान्तं बिन्दुसमन्वितम् ।
द्वितीयस्य द्वितीयं च षोत्कायेति समुद्धरेत् ॥ ५० ॥
मन्त्रोऽयं कथितः साङ्गो भास्करस्य षडक्षरः ।
याज्ञवल्क्योऽस्य ऋषिः स्याद् गायत्री छन्द एव च ॥ ५१ ॥
देवता सविता साक्षात् प्राग्वत् पूजादिकं स्मृतम् ।
विनियोगस्तु पूर्वोक्ततुल्योऽस्यापि विधीयते ॥ ५२ ॥
विशेषः स्वार्णलक्षं तु पुरश्चर्याविधौ जपेत् ।
तद्दशांशं हुतं प्राग्वत् कृत्वा सिद्धमनुर्भवेत् ॥ ५३ ॥
अणिमादिगुणावाप्तिर्जपस्यातिशये भवेत् ।

षडक्षराधिकारः ।

---

सपष्ठानुग्रहो दण्डी वह्निजो लकुलीश्वरः ॥ ५४ ॥
सङ्ग्रामविजयाख्योऽयं सूर्यमन्त्रोऽखिलार्थदः ।
स्वयं दीर्घस्वरैर्युक्तः षडङ्गान्यस्त्रमन्त्रतः ॥ ५५ ॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं स्वार्णान्यङ्गानि च न्यसेत् ।
षष्ठं तु तलयोर्मूलं जपन् हस्तद्वयेन तु ॥ ५६ ॥
विन्यस्य व्यापकं चाथ मूर्धास्यहृदयेष्वपि ।
गुह्ये चरणयोर्मूलमङ्गानि हृदयादिषु ॥ ५७ ॥
विन्यस्य तु यथाकल्पं स्नात्वा नित्यमुपासयेत् ।
संपूजयेद् रविं प्राग्वन्मण्डले वार्कमण्डले ॥ ५८ ॥
अर्घ्याद्यं तु निवेद्यान्तमर्चयित्वा जुहोतु च ।
ध्यायन् सूर्यं जपेल्लक्षं प्राग्वद्धुत्वा प्रसिध्यति ॥ ५९ ॥

---

१. 'स्व', २. 'स्या' ख. पाठः.

अथ वश्येऽरुणं ध्यायेद्धेमाभं शान्तिके श्रियै ।
पीतं संस्तम्भने कृष्णं क्षुद्रे शुक्लं च मुक्तये ॥ ६० ॥

अपिङ्गलं च विजये पद्महस्तं रविं स्मरेत् ।
जपहोमादिना प्राग्वत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

## सङ्ग्रामविजयाधिकारः ।

सत्वक् सङ्ग्रामविजयो मन्त्रो मार्ताण्डभैरवः ।
दीर्घस्वरैः स्वैर[2]ङ्गानि ह्रस्वैः स्वैः पञ्चमूर्तयः ॥ ६२ ॥

सूर्यश्च भास्करो भानू रविश्चाथ दिवाकरः ।
पञ्चैता मूर्तयस्तस्य मार्ताण्डस्य भवन्ति हि ॥ ६३ ॥

सर्वत्र बिम्बपुटितो[3] मन्त्रोऽयं सर्वसिद्धिदः ।
पार्श्वात् तृतीयो वह्निस्थः साक्षी बिम्बं हि बिन्दुमत् ॥ ६४ ॥

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं पञ्चमूर्तीस्तु विन्यसेत् ।
मध्यादिकं कनिष्ठान्तमङ्गमन्त्राणि च न्यसेत् ॥ ६५ ॥

मूलेन व्यापकं चापि मूर्धादिचरणान्तकम् ।
मूर्तौ शीर्षास्यहृद्गुह्यपादेषु क्रमशो न्यसेत् ॥ ६६ ॥

स्वावकाशेष्वथाङ्गानि विन्यस्य रविवत् स्वयम् ।
प्राग्वत् पीठे विभूत्यादिमण्डलाब्जे स्मरन् यजेत् ॥ ६७ ॥

शक्तीर्दीप्तादिकाश्चापि पुनर्दूतीचतुष्टयम् ।
उषां प्रभां च सन्ध्यां च प्रज्ञां दिक्पत्रगा यजेत् ॥ ६८ ॥

स्वाख्याद्यर्णैः सदीर्घेन्दुखण्डैरिष्ट्वा ततो रविम् ।
आवाहयेत् ततः पद्मे वक्ष्यमाणाकृतिं स्मरन् ॥ ६९ ॥

सिन्दूरारुणमष्टबाहुमरुणैराकल्पकैर्भासुरं
वामाङ्कार्धनिवेशितस्वदयितं त्र्यक्षैश्चतुर्भिर्मुखैः ।
सत्पाशाङ्कुशमक्षसूत्रममलं युक्तं कपालं क्रमात्
खट्वाङ्गं जलजं दधानमथ तच्चक्रं च शक्तिं स्मरेत् ॥ ७० ॥

---

१. 'द्र', २. 'स्वेनाङ्ग' ख., 'स्से' ग. पाठः. ३. 'तौ', ४. 'द्य' ख. पाठः.

एवं ध्यात्वा समावाह्य संपूज्य विधिवद् रविम् ।
उपचारैर्यथापूर्वं शक्त्या शक्त्यनुरूपतः ॥ ७१ ॥
चतुर्लक्षं जपेन्मूलं पुरश्चरणसिद्धये ।
अर्घ्यं च विधिवद् देयं गोमयालिप्तमण्डले ॥ ७२ ॥
शुद्धदेशे नदीतीरे देवागारेऽथ वा गृहे ।
प्राङ्गणे गोमयालिप्ते हस्तवृत्ते तु मण्डले ॥ ७३ ॥
न्यस्ताङ्गः सूर्यमावाह्य संपूज्य च यथाविधि ।
प्रस्थपूर्णं तु सौवर्णं ताम्रं वा चषकं शुभम् ॥ ७४ ॥
धूपितं सादितं दर्भेष्वासाद्यापूर्य वारिभिः ।
रक्तचन्दनकाश्मीररोचनाचन्दनाक्षतैः ॥ ७५ ॥
कर्पूरागरुदर्भैश्च श्यामाकतिलसर्षपैः ।
वेणुबीजयवाशालीजपाबन्धूकडाडिमैः ॥ ७६ ॥
संरक्तकरवीरैश्च मिश्रयित्वा तदम्भसि ।
सबिम्बमूलसाङ्गैश्च विन्यस्य द्वादशान्ततः ॥ ७७ ॥
सहंसचेतनं गन्धपुष्पधूपार्चितं पुनः ।
धेन्वामृतीकृतं शस्त्ररक्षितं चावकुण्ठितम् ॥ ७८ ॥
कवचेनाब्जबिम्बाभ्यां मुद्राभ्यां सम्प्ररोच्य तु ।
उद्यन्तमुदितं वाथ पश्यन् मार्तण्डमण्डलम् ॥ ७९ ॥
तस्मिन् यथोक्तविधिना ध्यात्वा भानुं त्रयीमयम् ।
सम्पूज्य विधिनोद्दिष्टैरुपचारैस्तु मानसैः ॥ ८० ॥
जपित्वाथ नमस्कृत्य जानुभ्यामवनौ स्थितः ।
हस्ताभ्यामर्घ्यपात्रं तं गृहीत्वानासमुद्धृतम् ॥ ८१ ॥
ध्यात्वा परामृतं तं च भानुमूर्तेस्तु मूर्धनि ।
दद्यादर्घ्यं तु मूलेन साङ्गेन तु नमोन्तकम् ॥ ८२ ॥
ततस्तदमृताप्लावसमाह्लादितविग्रहम् ।
ध्यायेद् देवं तु बिम्बस्थं मूर्तिमन्त्रांश्च मण्डले ॥ ८३ ॥

---

'रक्त' क. पाठ.

संयोज्याथ क्षमस्वेति विसृज्याङ्ग्निकरं पुनः ।
प्रक्षाल्याचम्य देवार्चाभवनान्तः प्रविश्य तु ॥ ८४ ॥
हैरण्ये वाथ ताम्रे वा पद्मे प्रादेशसंमिते ।
आवाह्य पूजयेत् सूर्यं द्रव्यैः स्वविभवार्जितैः ॥ ८५ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यद्यदिष्टं तदाप्नुयात् ।
जपेच्च नित्यमयुतं सहस्रं शतमेव वा ॥ ८६ ॥
पूजाहोमनमस्कारजपातिशयभक्तितः ।
अणिमादिगुणावाप्तिरचिरेणास्य जायते ॥ ८७ ॥
नृमांसतैलैर्व्याघाततिलैर्लक्षं जुहोति चेत् ।
अविज्ञातं निधिं गूढं लभतेऽस्य प्रभावतः ॥ ८८ ॥
गोघृतव्रीहिबिल्वाज्यैर्हुतैश्च लभते निधिम् ।
पद्मकिञ्जल्कगन्धाश्मकुक्कवाकुशिखाः समाः ॥ ८९ ॥
गजेलण्डोद्भूतं छत्रं तन्मदोऽलक्तसारकम् (?) ।
मृतचीरं सितार्कस्य तूलवर्तीकृतं समम् ॥ ९० ॥
नृकस्थनरतैलेन वर्तिकां दीपयेन्निशि ।
यत्र स्यान्निधिसन्देहस्तत्रोच्चैर्दीपदर्शनात् ॥ ९१ ॥
अधोज्वालागता वर्ती निधानं दर्शयेत् स्फुटम् ।

**मार्ताण्डभैरवाधिकारः ।**

---

शिवोत्तमस्तु सप्राण उमाकान्तो हशान्तभाक् ॥ ९२ ॥
सवामश्रवणं शुक्लं साक्षिरक्तश्च मारुतः ।
अनन्तः सूक्ष्मयुक्तोऽत्रिः सत्वक्सर्गस्तथापढी ॥ ९३ ॥
याजुषोऽष्टाक्षरः सौरस्तारादिः सर्वसिद्धिदः ।
छन्दोऽस्य देवी गायत्री देवभागस्तथा मुनिः ॥ ९४ ॥
दैवतं सविता देवो धर्मकामार्थमोक्षदः ।

---

१. 'श', २. 'लं', ३. 'जकुण्डोद्गतच्छात्र', ४. 'धि', ५. 'त्वस' ख. पाठः.

ब्रह्मतेजोज्वालामणि[1] हुं फट् ठठ । विष्णुतेजोज्वालामणि[2] हुं फट् ठठ । रुद्रतेजोज्वालामणि[3] हुं फट् ठठ । महेश्वरतेजोज्वालामणि[4] हुं फट् ठठ । सत्यतेजोज्वालामणि[5] हुं फट् ठठ ।

शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु हृन्नाभिस्मरजानुषु ॥ ९५ ॥
पादयोश्चापि मात्रार्णान् बुभुक्षुः सृष्टये[6] न्यसेत् ।
मुमुक्षोर्विपरीतोऽस्मान्न्यासः संहारसंज्ञितः ॥ ९६ ॥

अथ प्रातर्द्विजः स्नात्वा कृतसान्ध्यविधिः स्थितः ।
नाभिदघ्नोदके ध्यायन् सूर्यं न्यस्ताङ्गविग्रहः ॥ ९७ ॥

अष्टकृत्वोऽष्टकृत्वस्तु जपित्वाञ्जलिना जलम् ।
अभिषिञ्चेत् स्वमूर्धानं नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ९८ ॥

श्रियं प्राप्नोति नचिराद् धनधान्यसुखास्पदम् ।
पुरश्चर्यां विनाप्येषं पूजाहोमजपादिभिः ॥ ९९ ॥

फलत्येव द्विजातीनां स्ववर्णाश्रमधर्मिणाम् ।
योऽष्टलक्षं जपन् मन्त्रं नाभिदघ्ने जले स्थितः ॥ १०० ॥

पूजाजपार्घ्यहोमाद्यैर्यद्यदिष्टं स साधयेत् ।
कुण्डे वा स्थण्डिले चाग्निमाधायावाह्य भास्करम् ॥ १०१ ॥

वेदिकाग्निमुखादूर्ध्वं पालाशैराज्यसेचितैः ।
एधोभिरष्टसाहस्रैर्हुत्वा स्याद् ब्रह्मवर्चसम् ॥ १०२ ॥

औदुम्बरैः स्यादन्नाद्यं बैल्वैर्लक्ष्मीस्तथाम्बुजैः ।
दधिमध्वाज्यसिक्ताभिर्दूर्वाभिर्हुतमायुषे ॥ १०३ ॥

आज्याक्तलाजैः कन्यायै तिलाज्यैः पापशान्तये ।
श्वेतारुणहरिद्राभकृष्णसूत्राभिवेष्टितैः ॥ १०४ ॥

खादिरैस्तु क्रमाद् वर्णान् वशयेद् ब्राह्मणादिकान् ।
तत्तद्वर्णैस्तु कुसुमैर्वासांसि लभते हुतैः ॥ १०५ ॥

---

१, २, ३, ४, ५. 'णिं' क. पाठः. ६. 'स्पृ' ख, ग. पाठः. ७. 'षु ख. पाठः.

शुचावनालये देशे सुलिप्ते चाथ वर्तुले ।
बिम्बे नवघटे भानुं सम्यगावाह्य पूजयेत् ॥ १०६ ॥
अष्टोत्तरशतं साज्यं पायसं जुहुयादपि ।
जपेदष्टसहस्रं च द्वादशाहं घटं स्पृशन् ॥ १०७ ॥
भोजयित्वा द्विजान् भक्त्या वृष्टिमिष्टां स विन्दति ।
तिस्रो रात्रीरुपोष्याथ रविं संपूज्य शक्तितः ॥ १०८ ॥
पायसं जुहुयादष्टसहस्रं घृतमिश्रितम् ।
भोजयित्वा द्विजान् भक्त्या पायसाज्येन शक्तितः ॥ १०९ ॥
द्वादशाहं तु वा पक्षं मासं मासत्रयं तु वा ।
ततः पत्नीमृतुस्नातां हुतशेषं तु वाशयेत ॥ ११० ॥
मन्त्रेणाष्टशतं[2] लब्धं ततः पुत्रं स विन्दति ।
कलशे पूर्ववद् भानुमावाह्याभ्यर्च्य भक्तितः ॥ १११ ॥
सगन्धरत्नकनकवस्त्रमाल्याद्यलङ्कृते ।
जपित्वा जुहुयादष्टसहस्रं तेन सेकतः ॥ ११२ ॥
ग्रहापमृत्युरोगादेः शान्तिः सद्योऽस्य जायते ।
पयोव्रतो जपेद् वर्षं वर्षे त्र्यर्षाण्यथापि यः ॥ ११३ ॥
खेचरत्वादयस्तस्य गुणाः सिध्यन्त्ययत्नतः ।
सावित्रीं यो यथोद्दिष्टां जपन् संपूजयेद् रविम् ॥ ११४ ॥
नित्योक्तमार्गहोमाद्यैः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
उद्यन्नुद्येति पूर्वायां छन्दोऽनुष्टुब् भवेदृचः ॥ ११५ ॥
ऋषिश्च देवता प्राग्वद् विनियोगाश्च पूर्ववत् ।

इत्थं यथावदुदितैरिह सूर्यमन्त्रैर्नासाध्यमस्ति खलु वस्तु जगत्त्रयेऽपि ।
यस्मादतः सवितरि प्रणिधाय भक्तिं सिद्धिं प्रसिद्धिविभवां[3] च लभेत मुक्तिम् ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
सूर्यपटलः सप्तविंशः ।

---

१. 'भक्त्या पायसाज्येन शक्तितः । द्वा' ख. पाठः. २. 'तं' ख. पाठः. ३. 'व लभते च मुक्तिम्' क. ग. पाठः.

### अथ अष्टाविंशः पटलः।

शिवमादौ नमस्कृत्य शिवमन्त्रं षडक्षरम् ।
वक्ष्ये पञ्चाक्षरं चान्यान् [illegible] कृत्स्नशः ॥ १ ॥

तारं मेषं विषं सर्गि शिवायेति षडक्षरः ।
तारहीनः स एवायं मन्त्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥ २ ॥

विप्रादिभिस्त्रयीयोग्यैः सेव्यो मन्त्रः षडक्षरः ।
स्त्रीशूद्राद्यैस्तथा सेव्यो मन्त्र[illegible]भवेत् ॥ ३ ॥

अस्यैव प्रणवस्थाने प्रासादं विनियोजयेत् ।
मुख्यः षडक्षरोऽयं स्यात् सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदः ॥ ४ ॥

अत्र वातुले शिवज्ञानविधायां —

वेदाद्यन्तं विष्णुयुक्तं बिन्दुनादसमन्वितम् ।
तद्वीजं शक्तिपञ्चम्यां दीर्घमन्त्रे नियोजयेत् ॥ ५ ॥

तारेण सम्पुटीकृत्य न्यासेषु च जपादिषु ।
विप्राद्यैरेष सेव्यः स्यात् स्त्रीशूद्राद्यैरतारकम् ॥ ६ ॥ इति ।

खं सानुग्रहसर्गीशं प्रासादं स्यात् सबिन्दुकम् ।
शिवमन्त्रोऽप्ययं विश्वसृष्टिस्थित्यादिकारणम् ॥ ७ ॥

त्रिविधानामपि ह्येषामृषिं छन्दोऽपि दैवतम् ।
न्यासाद्यं विनियोगांश्च समानं गुरवो विदुः ॥ ८ ॥

अत्र कालोत्तरे —

नादाख्यं यत् परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
मुक्तिदं परमं दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९ ॥

सान्तं सर्वगतं शून्यं मात्राद्वादशकस्थितम् ।
ह्रस्वा ब्रह्मसमाख्याता दीर्घा ह्यङ्गानि षण्मुख! ॥ १० ॥

अपिच —

षष्ठं त्रयोदशान्तं च पञ्चमे विनियोजयेत् ।
शिवं तं तु विजानीयान्मन्त्रमूर्तं सदाशिवम् ॥ ११ ॥ इति ।

---

१. 'म्यां', २. 'ख्या' ख. पाठः.

तस्माद् दीर्घैः स्वरैस्तेन प्रासादस्याङ्गकल्पना ।
तत्राप्यङ्गान्तमेव स्याद्ब्रह्माणि पञ्च हि ॥ १२ ॥
सप्रासादषडर्णस्य हृदाद्यैः स्वाक्षरैः सह ।
बिन्द्वन्तैर्हृदयादीनि स्वस्वजात्या भवन्ति हि ॥ १३ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वामदेवो भवेदृषिः ।
पङ्क्तिश्छन्दः शिवो दैवं सामान्येन प्रकल्पितम् ॥ १४ ॥
शिवतत्त्वं हि तारस्य प्रासादस्य सशक्तिकम् ।
पञ्चभूतादिभूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥
मनो बुद्धिरहङ्कारः पुरुषः प्रकृतिस्तथा ।
रागो विद्या कला कालो नियतिस्त्वथ मायया ॥ १६ ॥
शुद्धविद्येश्वरौ तद्वत् सादेशः शक्तिरित्यपि ।
सप्तैव पञ्चकान्येषु पञ्चार्णेषु स्थितानि हि ॥ १७ ॥
उक्ताद् विलोमतः पञ्चवि[2]शच्चत्वस्थितिः स्मृता ।
ईशानपुरुषाघोरवामसद्यास्तु नादयः ॥ १८ ॥
बुभुक्षूणां मुमुक्षूणां सद्योजातादयः क्रमात् ।
शुक्लं पीतं तथा कृष्णं धूम्रं हेमं तथारुणम् ॥ १९ ॥
वर्णानि षण्णां वर्णानां विज्ञेयानि यथाक्रमम् ।
गायत्रं चैव गायत्रमनुष्टुप् त्रिष्टुभौ तथा ॥ २० ॥
बृहती च विराडुक्ता छन्दांसि च यथाक्रमम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरयो ब्रह्मा स्कन्दश्च देवताः ॥ २१ ॥
हृदये चैव पूर्वादिवक्त्रेषु स्थानमीरितम् ।
पाण्योर्मुखेषु देहे च वर्णानि क्रमशो न्यसेत् ॥ २२ ॥
अङ्गमन्त्राणि च पुनर्हृदाद्यङ्गेषु विन्यसेत् ।
स्यात् ब्रह्मचारिणां सृष्टिः स्थितिः स्याद् गृहमेधिनाम् ॥ २३ ॥
वनस्थानां मुमुक्षूणां संहारन्यास ईरितः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य न्यसेद् वामकरस्य तु ॥[3] २४ ॥

---

१. 'स्वर' क. पाठः. २. 'वि' ख. पाठः. ३. '[illegible]' क. पाठः.

अङ्गुष्ठान्तं तदा सृष्टिर्विपरीतस्तु संहृतिः।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं मन्त्रवर्णास्तु हस्तयोः ॥ २५ ॥
विन्यस्य स्थितयेऽङ्गानां मन्त्राण्यपि तथा न्यसेत्।
तारं प्रासादसंयुक्तं विन्यस्य तलयोस्ततः ॥ २६ ॥
मन्त्राक्षराण्यङ्गुलीषु चाङ्गान्यस्त्रं तलद्वये।
ततस्तु हृदये तारं प्रासादमपि विन्यसेत् ॥ २७ ॥
प्राग् दक्षिणोदक्पाश्चात्यमुखेषूर्ध्वमुखेऽपि च।
न्यासः षडक्षरस्य स्यात् तथा पञ्चाक्षरस्य तु ॥ २८ ॥
विना तलं च हृदयमङ्गुलीष्वासनेषु च।
नकाराद्यैस्तु पञ्चार्णान् न्यसेदङ्गानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥
ताराद्यन्तपुटं स्वार्णं न्यसेदङ्गुलिपर्वसु।
आद्यन्तपर्वणोस्तारं मध्ये मन्त्राक्षरं न्यसेत् ॥ ३० ॥
स्त्रीशूद्राणां विना तारं स्वार्णाङ्गैर्न्यास ईरितः।
व्यापकं चैव मूलेन न्यसेदामस्तकाङ्घ्रिकम् ॥ ३१ ॥
देहे मूर्धास्यकण्ठेषु हृद्गुह्याङ्घ्रिषु च न्यसेत्।
सृष्टौ विलोमात् संहारे स्थितौ हृदयगुह्ययोः ॥ ३२ ॥
पादशीर्षास्यकण्ठेषु षड्वर्णानथ पञ्च चेत्।
न्यसेत् कण्ठं विनान्येषु स्थानेष्वर्णान् यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥
हृदयादिषडङ्गानि स्वस्थानेषु स्वजातिभिः।
अस्त्रान्तमेवं विन्यस्य दिशाबन्धनमाचरेत् ॥ ३४ ॥
विघ्नेशो मातरो दुर्गा क्षेत्रेशश्च स्वनामभिः।
छोटिकाभिर्नमोन्ताभिर्नियोज्या दिशि दिक्क्रमात् ॥ ३५ ॥
स्ववर्णलक्षजापेन दशांशतिलहोमतः।
शिवार्चया च भक्त्यास्य पुरश्चर्या प्रसिध्यति ॥ ३६ ॥
पुरश्चर्यां विनाप्येष भक्तस्य यजतः शिवम्।
जपहोमातिशयतः सदाभ्यासाच्च सिध्यति ॥ ३७ ॥

---

१. 'हृतिम्', २. 'या', ३. 'श्रो' ख. पाठः.

पूजादौ च जपादौ च प्राणायामत्रयंत्रयम् ।
चत्वारिंशत्समावृत्तिः पञ्चार्णस्य तु मानसी ॥ ३८ ॥
प्राणायामोऽपि वर्णानां वृद्धिह्रासक्रमात् स्मृतः ।
सबिन्दुनादं प्रासादं शतकृत्वो धिया जपेत् ॥ ३९ ॥
एकार्णानां तथान्येषां निर्दिष्टः प्राणसंयमः ।
बीजं चाष्टोत्तरशतं तज्जपान्ते जपेदपि ॥ ४० ॥
नद्यां शिवालये तीर्थे पर्वतेऽग्नेश्च संनिधौ ।
गुरुसूर्येन्दुदीपानां साहस्रफलदो जपः ॥ ४१ ॥

अपिच —

एकस्त्वेकगुणो गेहे गोष्ठे दशगुणो जपः ।
नद्यां शतगुणः शम्भोः ॥ ४२ ॥
स्वयंभुलिङ्गसान्निध्ये जपो लक्षगुणः स्मृतः ।
देवह्रदेषु तीर्थेषु पर्वताग्रेऽम्बुधेस्तटे ॥ ४३ ॥
पुण्यक्षेत्राश्रमाद्येषु जपः कोटिगुणो भवेत् ।
प्राग्याम्याप्योत्तराशास्यो जपेद् वश्याभिचारयोः ॥ ४४ ॥
पौष्टिके शान्तिके मुक्त्यै प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
अङ्गुलीभिश्च रेखाभिः पुत्रजीवैः प्रवालकैः ॥ ४५ ॥
स्फाटिकैश्चैव पद्माक्षैः सौवर्णैरथ मौक्तिकैः ।
कुशानां ग्रन्थिभिश्चाथ रुद्राक्षैश्च यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥
एकैकस्माद् दशगुणं जपन् फलमवाप्नुयात् ।
अङ्गुष्ठेनाक्षसूत्रस्य कर्षणं मोक्षदं स्मृतम् ॥ ४७ ॥
शत्रुनाशाय तर्जन्या श्रियै मध्यमया स्मृतम् ।
अनामया कनीयस्या शान्तिके पौष्टिके स्मृतम् ॥ ४८ ॥
साङ्गुष्ठमेव सर्वाभिः कर्षणं सर्वकामदम् ।

मन्त्रसाधनाधिकारः ।

शिवस्य पूजां निर्वर्त्य ततः कुर्वन् जपादिकम् ॥ ४९ ॥
मन्त्रं संसाधयेत् सिद्ध्यै विनियोगांस्ततः परम् ।
स्नात्वा सन्ध्यां समाप्यादौ यागागारं गतः शुचिः ॥ ५० ॥
मौनी सूर्यं समाराध्य समाचम्योपविश्य तु ।
आत्मशुद्धिं विधायाथ भस्मदिग्धस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥ ५१ ॥
तिलकी चन्दनेनाथ पुष्पारोपितमस्तकः ।
सामान्यार्घ्योक्षितद्वारस्तेन विघ्नं सरस्वतीम् ॥ ५२ ॥
गङ्गां च यमुनां नन्दिमहाकालौ यजेत् क्रमात् ।
ऊर्ध्वोदुम्बरके शाखामध्ये दक्षिणवामतः ॥ ५३ ॥
मूले द्वारश्रियं चोर्ध्वे पार्ष्णिघातत्रयेण तु ।
भौमांस्तालैरान्तरिक्षान् छोटिकाभिर्दिविस्थितान् ॥ ५४ ॥
विघ्नान् निवार्य स्वास्त्रेण नाराचास्त्रात् प्रसूनकम् ।
अन्तः क्षिप्त्वा विशेदन्तर्वामशाखामुपाश्रितः ॥ ५५ ॥
देहल्या ज्वलदस्त्रेण कुसुमं विनिधाय तु ।
स्वाख्यया ब्रह्मवास्त्वीशौ स्वं चानन्तासनं यजेत् ॥ ५६ ॥
मौनी तस्मिन् निविष्टोऽथ सकलीकृतविग्रहः ।
हृत्पद्मे स्वे शिवज्योतिर्भ्रूमध्ये तु धिया ततः ॥ ५७ ॥
नाभिकुण्डानले हुत्वा हविर्भिर्द्वादशान्तजैः ।
सति लिङ्गे तु सामान्यमर्घ्यं दत्त्वाभिपूज्य तु ॥ ५८ ॥
निर्माल्यमपनीयास्त्रादुपचारोक्तमार्गतः ।
संक्षाल्याशून्यशिरसं शिवमावाह्य पूजयेत् ॥ ५९ ॥
आधारशक्तिं विन्यस्य शुक्लां कूर्मशिलोपरि ।
अनन्तं चासनीभूतं धर्मादीन् मण्डलानि च ॥ ६० ॥
पद्मं च शक्तीर्वामादीः शिवमूर्तिं च मध्यतः ।
ध्यायेत् प्रासादबीजोक्तां मूर्तिं विद्यामयीं विभोः ॥ ६१ ॥

---

१. 'त्रि', २. 'ता', ३. 'क' ख. पाठः.

पञ्चब्रह्मोक्तवक्त्रं दशभुजसहितं वेदबाहुं त्रिणेत्रं
दुर्धूरार्धेन्दुगङ्गाफणिगणविलसत्सत्कपर्दं दधानम् ।
खट्वाङ्गं शूलशक्ती वरदमभयहृद्दं दक्षिणैर्दोर्भिरन्यै-
र्नागं रुद्राक्षमालां डमरुकसहितं चोत्पलं बीजपूरम् ॥ ६२ ॥

धवलवपुषमब्जे संनिविष्टं त्रिणेत्रं वरदमभयमेणं चापि टङ्कं दधानम् ।
युगभुजमहिगङ्गाचन्द्रचञ्चत्कपर्दं भुजगवलयहारं कृत्तिवस्त्रं प्रपद्ये ॥६३ ॥

प्रासादपञ्चषट्सप्तवस्वर्णमनुपूजने ।
मूर्तिद्वयमिदं प्रोक्तं तयोरेकां समाश्रयेत् ॥ ६४ ॥

पञ्चवक्त्रो दशभुजो दशार्णस्य सदाशिवः ।
शक्त्या वामाङ्कगतया मनोन्मन्या समन्वितः ॥ ६५ ॥

ध्यात्वा पूज्य शिवो लिङ्गे निष्कले सकलेऽथ वा ।
स्थिरे वा चललिङ्गे वा क्षणिके वाप्यभावतः ॥ ६६ ॥

कानि तानि क्षणिकानि ।

सैकतं मार्त्तिकं पैष्टं चान्नजं फलजं तथा ।
गन्धजं नावनीतं च गोमयं चाष्टमं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

यथोपपत्त्या क्षणिकं लिङ्गं कृत्वा सवेदिकम् ।
तस्मिन्नावाह्य चेष्टेशं निरपेक्षं विसर्जयेत् ॥ ६८ ॥

उद्वासितशिवे लिङ्गे चण्डमिष्ट्वा विसृज्य तु ।
क्षणिकं पीठसहितमगाधाम्भसि निक्षिपेत् ॥ ६९ ॥

मनसा हृदयाम्भोजे वह्नौ वा सूर्यमण्डले ।
जले वा स्थण्डिले वापि यथायोगं यथारुचि ॥ ७० ॥

एवं मूर्तिं समावाह्य विद्यादेहं च तद्गतम् ।
ब्रह्मभिः पञ्चवेदाष्टत्रयोदशकलाष्टकैः ॥ ७१ ॥

ईशानपुरुषाघोरवामदेवैः क्रमोदितैः ।
सद्योजातेन शक्त्यन्तो विद्यादेहो धरादिकैः ॥ ७२ ॥

---

'स' ख. पाठः. २. 'कु' क. पाठः. ३. 'द' ग. पाठः. ४. 'का:' क. पाठः.

शिवमूर्तीश्च शक्त्यन्ताः शुद्धविद्यान्तमासनम् ।
ध्यात्वैवमासनं मूर्तिं विद्यादेहं च साधकः ॥ ७३ ॥
यथोपचारपटले प्रोक्तमावाहयेच्छिवम् ।
स्थापनं संनिरोधं चाप्यवकुण्ठं प्ररोचनम् ॥ ७४ ॥
अमृतीकरणं च स्यादुपचारोक्तमार्गतः ।
अङ्गानि ब्रह्मवक्त्राणि तारहृद्बीजनामभिः ॥ ७५ ॥
नमः स्वाहा स्वधा वौषड् वषडित्यस्य मस्तके ।
पुष्पाञ्जलिं समायोज्य ध्यात्वा देवं सदाशिवम् ॥ ७६ ॥
भोगाङ्गानि तदङ्गेभ्यो दीपेभ्य इव दीपकाः ।
समानीयानलेशानरक्षोवायुदलेष्वथ ॥ ७७ ॥
विन्यस्य नेत्रं पुरतः शिवास्त्रं दिग्दलेष्वथ ।
पूजयेत् तु शिवाङ्गानि वराभयकराणि तु ॥ ७८ ॥
तत्रास्त्रं ज्वलनप्रख्यं स्त्रीरूपं च चतुर्भुजम् ।
ध्यात्वैवमेकावरणप्रासादे संयजेच्छिवम् ॥ ७९ ॥

एकावरणाधिकारः ।

---

पञ्चाक्षरादिमन्त्राणां पञ्चावरणसंवृतः ।
पूजनीयः शिवो नित्यं भोगमोक्षफलेच्छुभिः ॥ ८० ॥
तत्राप्यङ्गैर्ब्रह्मभिश्च प्रथमावरणं स्मृतम् ।
द्वितीयं चाष्टविद्येशैर्नन्दीशाद्यैस्तृतीयकम् ॥ ८१ ॥
चतुर्थमपि लोकेशैस्तदस्त्रैः पञ्चमा वृतिः ।

तद्यथा —

अङ्गैश्च ब्रह्मभिश्चाद्यं प्रोक्तमावरणं हि तत् ॥ ८२ ॥
विद्येश्वरान् यजेदष्टौ पीठप्रान्तेऽम्बुजाद् बहिः ।
अनन्तसूक्ष्मौ च शिवोत्तमश्च स्यादेकनेत्रश्च शिखण्डिसंज्ञः ।
श्रीकण्ठनामा च ततस्त्रिमूर्तिरथै[1]रुद्रोऽपि च दिग्विदिक्स्थाः ॥८३॥

---

१. 'श्च' ख. पाठः.

ऐन्द्राद्यमाग्नेयादिकं चेति यावत् ।

प्राच्यां नन्दिमहाकालौ याम्ये भृङ्गिविनायकौ ॥ ८४ ॥
पश्चिमे तु वृषस्कन्दौ देवीपण्डौ तथोत्तरे ।

द्वारावरणस्तृतीयः ।

इन्द्राद्यैर्दशलोकेशैश्चतुर्थावरणं स्मृतम् ॥ ८५ ॥

इन्द्राय सुराधिपतये सायुधवाहनपरिवाराय रुद्रपार्षदे नमः । तत्पार्षदेभ्यो नमः इत्यादि ।

स्थिरलिङ्गं यदा पूज्यं तत्र लोकाधिपावृतौ ।
इन्द्रात्[2] प्राच्यां तु वृषभं शयानं नामतो यजेत् ॥ ८६ ॥
यमात् पश्चिमतो विघ्नं वीरभद्रं च पश्चिमे ।
मातरः स्युस्तयोर्मध्ये सप्त पूज्याः स्वनामभिः ॥ ८७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराह्यैन्द्री तु चामुण्डीत्यथासामग्रतः पुनः ॥ ८८ ॥

मातृभ्यो नमः । सर्वमातृभ्यो नमः । सर्वमातृगणेभ्यो नमः इत्यभ्यर्च्य,

निर्ऋतेर्दक्षिणे शास्ता तत्पुत्रश्चाथ सत्यकः ।
प्रभा देवी दक्षिणतो दुर्गा वायोस्तु पूर्वतः ॥ ८९ ॥
धनदात् पश्चिमे स्कन्दश्चण्डेशश्चैव गोचरे ।
क्षेत्रपालं च चण्डात् प्राक् तानिष्ट्वा[3]वृतिं यजेत् ॥ ९० ॥
वृषाद्याः क्षेत्रपालान्ताः पूज्या लिङ्गं स्थिरं यदा ।
न चले स्थण्डिले पूज्याः पूज्या वेत्यपरे जगुः ॥ ९१ ॥
वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशाङ्कुशौ गदाम् ।
त्रिशूलं पद्ममित्यस्त्रैः पञ्चमी तु वृतिर्भवेत् ॥ ९२ ॥
इत्थं सपञ्चावरणमिष्ट्वा शम्भुं तथानले ।
घृतेनान्नेन च तिलैर्हुत्वान्नेन बलिं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥

---

१. 'श्च तत्त्वाव', २. 'न्द्र', ३. 'नि दृष्ट्वा' ख. पाठः

यथा —

रुद्राश्चाप्यथ मातरोऽपि च गणा यक्षाश्च[1]पूर्वादिगाः
शर्वाद्या ग्रहदैत्यराक्षसवरा नागाश्च मध्ये ततः।
नक्षत्राणि तदन्तरालविदिशास्[2]वीशादिका राशयो
विश्वे क्षेत्रपतिः प्रदक्षिणवशाद् दुर्गा च तेभ्यः क्षिपेत् ॥ ९४ ॥

द्वितीयमण्डले चापि शक्राद्या दश लोकपाः।
तेभ्यश्च तद्बहिः क्षेप्यो मन्त्रेणानेन वै बलिः ॥ ९५ ॥

ओं वायसादिभ्यः समयभेदिभ्यः ठ ठ ।

बलिमन्त्रांस्तु संहृत्य प्राङ्गणे कृतमण्डले ।
ये रुद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ॥ ९६ ॥
सौम्याश्चैव तु ये केचित् सौम्यस्थाननिवासिनः ।
मातरो रौद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥ ९७ ॥
सर्वे सुप्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ।
सिद्धिं यच्छन्तु मे क्षिप्रं भयेभ्यः पान्तु मां सदा ॥ ९८ ॥

ताभ्यस्तेभ्यो नम इति बलिं निक्षिप्य,

ततोऽद्भिः पाणिपादं तु प्रक्षाल्याचम्य वाग्यतः ।
प्रदक्षिणनमस्कारस्तुतिभिस्तं प्रसाद्य तु ॥ ९९ ॥
निवेदितान्नं निर्माल्यं सति चण्डे निवेदयेत् ।
तत् क्षिपेत् सलिलेऽग्नौ वा शिल्पिकर्मकरादयः ॥ १०० ॥
दास्यो वापि तदश्नीयुस्तदन्ये चेत् [3]पतन्ति ते ।
यथोपचारमार्गेण चक्रवर्त्युपचारतः ॥ १०१ ॥
गीतनृत्तादिविभवैर्मनसा चाभिनन्दितम् ।
तदग्रे तु जपेन्मन्त्रं जपपूजादिकं ततः ॥ १०२ ॥
मन्त्रैर्गुह्यातिगुह्याद्यैर्देवपादे समर्पयेत् ।

यथा —

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥ १०३ ॥

---

१ 'द्यं' क. ग. पाठः. २. 'न्वी' क. ख. पाठः. ३. 'पतिते' ख. पाठः.

सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थि(तम्?ता ।)
यत्किञ्चित् कर्म हे देव! सदा सुकृतदुष्कृतम् ॥ १०४ ॥
तन्मे शिवपदस्थस्य हुं क्षं क्षपय शङ्कर! ।
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥ १०५ ॥
शिवो यजति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव हि ।
साङ्गमूलाङ्गमित्येभिरर्पयेच्चुलुकाम्बुभिः ॥ १०६ ॥
अथास्य सिद्धमन्त्रस्य विनियोगा भवन्ति हि ।
मन्त्रः प्रच्यवते वीर्याद् विनियोगं विना यतः ॥ १०७ ॥
एकादशजपात् स्नानप्रोक्षणा[1]चोदकादिकम् ।
आयुरारोग्यदं नृणामघदोषापहं च तत् ॥ १०८ ॥
दूर्वातिलाज्यच्छिन्नानां लक्षहोमोऽपमृत्युजित् ।
सर्वरोगग्रहक्लेशहरमायुर्विवर्धनम् ॥ १०९ ॥
पर्वताग्रे महानद्यां जपाच्चायुरवाप्नुयात् ।
आदित्याभिमुखो लक्षं जपंश्चाष्टोत्तरं शतम् ॥ ११० ॥
जुहुत् साज्यांस्तिलान् रोगान् जयेच्चायुश्च विन्दति ।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थमालभ्यापि जपेत्[2] तथा ॥ १११ ॥
अष्टोत्तरशताल्लब्धसौख्यं वा लजं पिबेत् ।
औदरैर्मुच्यते रोगैर्विषमप्यमृतं भवेत् ॥ ११२ ॥
आदित्याभिमुखः स्थित्वा नाभिदघ्ने जले जपेत् ।
सहस्रं वा शतं नित्यमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ ११३ ॥
नद्यम्भःपूरितं कुम्भं यथावद्युतं जपेत् ।
स्पृष्टाभिषेकस्तेन स्याद् ग्रहरोगापमृत्युजित् ॥ ११४ ॥
स्वबीजसम्पुटं[5] कुक्षौ न्यस्तं शूलादिनाशनम् ।
ब्राह्मीं घृतरसं वापि चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥ ११५ ॥
आमोक्षाज्जपितं पीत्वा प्रज्ञाश्रुतधरो भवेत् ।
आर्द्राकृष्णचतुर्दश्यां तथा कृष्णाष्टमीषु वा ॥ ११६ ॥

---

१. 'भा', २. 'सर्वेति यः' ख. पाठः. ३. 'न्ना', ४. 'पा' क. ग. पाठः.
५. 'टं क्षितौ' ख. पाठः.

ग्रहणे विष्वयनयोर्मासं प्राक् समुपोषितः ।
पूजयेद् भस्मदिग्धाङ्गः शिवं शक्त्या जपेदपि ॥ ११७ ॥
पलं श्वेतवचाचूर्णं कपिलाज्यं चतुष्पलम् ।
मन्त्रेणायुतमालब्धं पीत्वा सर्वज्ञतामियात् ॥ ११८ ॥
पौर्णमास्यां यदा माघसंक्रान्तिः सा सरस्वती ।
प्राक् त्रिरात्रोषितस्तस्यां शिवमिष्ट्वा यथाविधि ॥ ११९ ॥
जपेद् रात्रावनशनो भस्मदिग्धो नदीतटे ।
प्रातः स्नानादिकं कृत्वा गव्याज्यं भस्मनिश्रितम् ॥ १२० ॥
पलाशपत्रगं स्पृष्ट्वा जपित्वाष्टसहस्रकम् ।
पीत्वा तत्पञ्चगव्यं वा ज्ञानं प्रज्ञां च विन्दति ॥ १२१ ॥
हंसवागीश्वरीबीजैः संपुटं तु षडक्षरम् ।
लक्षत्रयं जपेद् ध्यात्वा सर्वज्ञो नचिराद् भवेत् ॥ १२२ ॥
एवं षडक्षरं मन्त्री हंसवागीश्वरीयुतम् ।
त्र्यत्यादेशाशनो भक्त्या लक्षाणां दशकानि तु ॥ १२३ ॥
जपेत् क्रमेणाणिमादीन् प्राप्य विद्याधरो भवेत् ।
बिल्वच्छायागतो नित्यमयुतं प्रजपेच्छुचिः ॥ १२४ ॥
तत्फलं जुहुयात् साज्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अलक्ष्मीमपकृष्याथ मासेन धनवान् भवेत् ॥ १२५ ॥
मासौ मासांश्च षड्वाब्दं य एवं जुहुयाज्जपन् ।
संपूजयन् शिवं भक्त्या श्रिया स धनदो भवेत् ॥ १२६ ॥
पलाशकुसुमैः पुत्रः स्याद्धुर्धुरस्तत्समिद्धुतात् ।
उत्पातशत्रुबाधानां सद्यः शान्तिर्भविष्यति ॥ १२७ ॥
ग्रहपीडासु हुत्वाष्टसहस्रमयुतं जपेत् ।
साध्यैस्तिलैर्भवेच्छान्तिर्दुःस्वप्नेऽष्टशतं हुतात् ॥ १२८ ॥
ग्रहणे लिङ्गमभ्यर्च्य ध्यात्वेष्टमयुतं जपेत् ।
लभते तद्भवां शान्ति तथा वायुतहोमतः ॥ १२९ ॥
सर्वत्र लिङ्गमभ्यर्च्य कुर्यात् कर्माणि संनिधौ ।
आभिचारकशान्तिः स्यात् त्रिसन्ध्यं जपहोमतः ॥ १३० ॥

तच्च प्रतिसृतं कर्म शत्रुमेवाभिगच्छति ।
विषरक्तसमासिक्तैः स्याद् विद्वेषो विभीतकैः ॥ १३१ ॥

तीक्ष्णतैलहुताल्लक्षान्म्रियते ह्यमरोऽप्यरिः ।
वामोरुलिखितं नाम मन्त्रर्णान्तरितं क्रमात् ॥ १३२ ॥

निशया निशि वामेन तलेनाच्छाद्य तज्जपेत् ।
आकर्षयेत् स्त्रियं ध्यायन् पाशाकर्षणविह्वलाम् ॥ १३३ ॥

अनेनैव प्रयोगेण पुंसां चाकर्षणं स्मृतम् ।
चतुर्दशीषु कृष्णासु षट्सु तीरे पयोनिधेः ॥ १३४ ॥

सैकतं लिङ्गमभ्यर्च्य निराहारोऽयुतं जपेत् ।
षट्स्वेवापरसन्ध्यासु सप्तम्यामथ मण्डले ॥ १३५ ॥

पद्ममध्येऽभिपूज्येशं तस्य दक्षिणतो यजेत् ।
वीरभद्रं च विघ्नेशं जपापुष्पैस्तु मातृभिः ॥ १३६ ॥

जपापुष्पायुतं चाग्नौ जुहुयाच्च तदग्रतः ।
ततः स मातृभिर्विघ्नं वीरभद्रं च पश्यति ॥ १३७ ॥

ततोऽभीष्टं वरं लब्ध्वा मोदते देववच्चिरम् ।
बाणपुष्पायुतैर्हुत्वा युद्धे विजयमाप्नुयात् ॥ १३८ ॥

यद्वर्णपुष्पैर्जुहुयात् तद्वर्णं लभतेऽम्बरे ।
पाञ्चगव्यं चरुं प्राश्नन् पञ्चलक्षं जपेन्मनुम् ॥ १३९ ॥

पातकेभ्यश्च पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
पर्वताग्रं समारुह्य त्रिःस्नायी व्रत्यभोजनः ॥ १४० ॥

यमैः सनियमैर्युक्तः कोटिसंख्यं षडक्षरम् ।
जपेद्यः पूजयेल्लिङ्गं मौनव्रतधरः शुचिः ॥ १४१ ॥

सोऽनेनैव शरीरेण खेचरः कामरूपधृक् ।
अणिमादिगुणैश्वर्यं लब्ध्वा सिद्धैश्च सामरैः ॥ १४२ ॥

वन्द्यमानो गणेशैश्च पूज्यमानः स सर्ववित् ।
सर्वलोकाभिगामी स्यात् सर्वान् देवांश्च पश्यति ॥ १४३ ॥

---

१. 'न्त्रे' ख. पाठः. २. 'यां' क. पाठः. ३. 'च जपाग्र', ४. 'बु' ख. पाठः.

कोटित्रयं जपेदेवं यस्त्वसौ साधकोत्तमः ।
प्रत्यक्षतामियात् तस्य सहाम्बः परमेश्वरः ॥ १४४ ॥
बहुनात्र किमुक्तेन सांबस्येशस्य तुष्टये ।
नैतेषां शिवमन्त्राणामन्यो मन्त्रोऽस्ति कश्चन ॥ १४५ ॥
स्ववर्णाश्रमधर्माणामाचाराणां च पालकः ।
दीक्षितो गुरुणा मन्त्रं स साधयितुमर्हति ॥ १४६ ॥
विभीतककरञ्जार्कस्नुहिच्छायां न संश्रयेत् ।
पलण्डुलशुनालाबुगृञ्जनानि तुषोदकम् ॥ १४७ ॥
मत्स्यमांसानि मद्यं च ककुभाण्डं तथाल्लुपम् ।
कांस्याशनं च शार्ङ्गेष्टं नालीशाकं सिलिन्ध्रकम् ॥ १४८ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितादिकम् ।
अस्नानाद्यशुचिस्पृष्टं शावसूतकभोजनम् ॥ १४९ ॥
गणान्नं गणिकान्नं च क्षत्रविट्शूद्रभोजनम् ।
प्रतिलोमानुलोमानामन्नानि च विवर्जयेत् । १५० ॥
अदृष्ट्वा चाप्यसंपूज्य लिङ्गं नाद्यान्न वा पिबेत् ।
गोगुर्वागमवेदानां शिवभक्तद्विजन्मनाम् ॥ १५१ ॥
सच्छात्राणां च देवानां निन्दां दूरेण वर्जयेत् ।
इष्टापूर्तं यथाशक्ति कुर्वन् नित्यं जितेन्द्रियः ॥ १५२ ॥
यथोक्तं फलमाप्नोति मन्त्रैरेभिस्तु मानवः ।

**विनियोगाधिकारः ।**

---

तारं प्रासादबीजं च शिवायेति नमोन्तकम् ॥ १५३ ॥
शिवस्य मूलमन्त्रोऽयं सप्तवर्णोऽखिलार्थदः ।
प्रासादोक्ताङ्गबीजान्ते शिकाराद्यक्षराणि तु ॥ १५४ ॥

१. 'यु', २. 'गु' ख. पाठः. ३. 'स' क. ग. पाठः. ४. 'प्र' ख. पाठः.

संयोज्य जातियुक्तानि तस्याङ्गानि भवन्ति हि ।
सानुस्वारं तु खं नेत्रमन्त्रोऽपि स्यात् सजातिकः ॥ १५५ ॥

दधीचश्चैव गायत्रमृषिश्छन्दश्च दैवतम् ।
शिवश्च साधनाद्यं च विनियोगश्च पूर्ववत् ॥ १५६ ॥

सतारः शक्तिबीजादिः प्रोक्तो मन्त्रः षडक्षरः ।
शैवाष्टाक्षर उद्दिष्टो धर्मकामार्थमोक्षदः ॥ १५७ ॥

प्रासादादिस्वषड्वर्णैः प्रासादोक्ताङ्गपूर्वकैः ।
स्वस्वजातिसमायुक्तैरस्याप्यङ्गानि षड् वि(दः?दुः) ॥ १५८ ॥

ऋषिः शिलादो बृहती छन्दो दैवं शिवः स्वयम् ।
अस्यापि साधनाद्यं तु विनियोगाश्च पूर्ववत् ॥ १५९ ॥

शैवाष्टाक्षराधिकारः[3] ।

---

अस्यैवाष्टाक्षरस्यान्ते चिन्मन्त्रं योजयेद् यदा ।
मन्त्रो दशाक्षरः शैवः कल्पवृक्ष इवेष्टदः ॥ १६० ॥

सबिन्दुखं भृगुः सर्गी चिन्मन्त्रोऽयं हि कीर्तितः ।
अष्टाक्षरोक्तान्यङ्गानि षडस्यापि भवन्ति हि ॥ १६१ ॥

सनत्कुमारः पङ्क्तिश्च पार्वतीसहितः शिवः ।
ऋष्याद्याः साधनाद्याश्च विनियोगाः पुरोदिताः ॥ १६२ ॥

षण्मन्त्राणामपि ह्येषां सामान्यं देशिका विदुः ।
षडेते हि महामन्त्राः मूलमन्त्राः शिवस्य हि ॥ १६३ ॥

नैषामसाध्यं कोऽप्यस्ति पुरुषार्थो हि वाञ्छितः ।
इतीमे समासात् समालोक्य कल्पांस्तथा शैवमन्त्राः षडेव प्रधानाः ।
तथा सारभूताः श्रुतीनां कृतीनां हितायोपदिष्टाः समस्ता विशिष्टाः ॥ १६४ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
**अष्टाविंशः पटलः ।**

---

१. 'भा' क. पाठः. २. 'क्षिम्' ख. पाठः. ३. 'ला' क. पाठः. ४. 'कां' ख. पाठः.

## अथैकोनात्रिंशः पटलः ।

वामदो[1]र्मध्यमः साघी सदण्डस्तारपूर्वकः ।
ससर्गश्च भृगुस्त्र्यर्णः प्रोक्तो मृत्युञ्जयो मनुः ॥ १ ॥

ऋषिः कहोलश्छन्दोऽस्य दैवी गायत्रमुच्यते ।
विनियोगो मृत्युजये दैवं मृत्युञ्जयः शिवः ॥ २ ॥

बिन्द्वन्तावस्य मध्यान्त्यौ[2] षडङ्गा[3]न्यायतैः[4] स्वरैः ।
बीजानि त्रीणि करयोर्ज्येष्ठाद्यङ्गुलिपर्वसु ॥ ३ ॥

कनिष्ठादिषु चाङ्गानि तलयोरस्त्रमन्त्रतः ।
पादादिकं तु गुह्यान्तं प्रथमार्णं तु विन्यसेत् ॥ ४ ॥

गुह्यादिकं तु कण्ठान्तं द्वितीयं बीजमप्यथ ।
तृतीयमपि कण्ठादिमूर्धान्तं विनिधाय तु ॥ ५ ॥

हृदादिस्वावकाशेषु षडङ्गान्यपि विन्यसेत् ।
लक्षत्रयं पुरश्चर्याजपस्तस्माद् दशांशतः ॥ ६ ॥

छिन्नाः क्षीराज्यमध्वाक्ता जुहोति चतुरङ्गुलाः ।
ध्यायन् मृत्युञ्जयं स्वैक्यं यजांश्चित्रादिके जपेत् ॥ ७ ॥

पायात् पाण्डरपुण्डरीकपटयोरूर्ध्वाधरोत्फुल्लयोर्मध्ये
संपुटचन्द्रमण्डलगतो षोडशाब्दबालाकृतिः ।
स्वासीनः शरमौक्तिकाक्षिवलये शूलं दधत् षड्भुजो
दक्षेऽन्यत्र सुधाकपालकलशौ मुद्रां च मृत्युञ्जयः ॥ ८ ॥

अपिच —

श्वेताकल्पो लसन्मुक्ताहारिहारविभूषणः ।
त्रिणेत्रो[5] धृतबालेन्दुजटामकुटभूषणः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वाधश्चन्द्रबिम्बस्थकलाजालामृताम्बुभिः ।
श्च्योतत्सुधाम्बुधाराभिः स्लाव्यमानः समन्ततः ॥ १० ॥

कर्णिकास्यान्तबीजं स्यात् तयोर्मध्येन्दुबिम्बयोः ।
चिन्तयेद् वारुणं बीजं तस्माच्च्योतत्सुधाम्बुभिः ॥ ११ ॥

---

१. 'म' क. पाठः. २. 'न्तौ', ३. 'ङ्गो', ४. 'तः', ५. 'त्रो धवाणेन्दु' ख. पाठः.

प्लाव्यमानं स्मरन् स्वैक्यं मृत्युञ्जयशिवं स्मरेत् ।
प्रणवं पद्मयोर्नाले द्वितीयार्णं दलानि च ॥ १२ ॥
अनुलोमविलोमस्य मनोर्मध्ये स्वनाम च ।
प्रयोजनं चाप्युच्चार्य जपेदिष्टार्थसिद्धये ॥ १३ ॥
तथैव होमे स्वाहान्तं हुत्वेष्टं लभते फलम् ।
छिन्नाभिर्मधुराक्ताभिर्हुत्वा मृत्युं निवर्तयेत् ॥ १४ ॥
दूर्वाभिरायुषे तद्वदारोग्यं पायसेन च ।
काश्मर्यसमिधां होमः सर्वरोगहरो भवेत् ॥ १५ ॥
तिलाज्यपायसच्छिन्नाहोमान्नश्यत्युपद्रवः ।
पायसक्षीरसिद्धार्थहवनाज्जयमाप्नुयात् ॥ १६ ॥
स्तम्भनं बुसराजीभिर्द्वेषं निम्बसमिद्दलैः ।
वैभीतकैस्तथोच्चाटं मारणं विषवृक्षजैः[1] ॥ १७ ॥
राजीतैलविषोन्मिश्रैः क्षुद्रेषु हवनं मतम् ।
क्षीराज्यमधुसिक्तं स्यात् शान्तिकेष्वपि पौष्टिके ॥ १८ ॥
वश्याय लोणमधुरैः श्रियै कमलपायसैः ।
जुहुयात् कोटिजाप्येन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ १९ ॥
पूजां च कुर्याच्छैवोक्तक्रमात् प्रोक्तशिवासने ।
स्वाङ्गैर्द्वारेशलोकेशैरस्त्रैश्चावरणैः क्रमात् ॥ २० ॥
चित्रादिमूर्तौ हृदये सूर्यबिम्बेऽथ वा जले ।
उपचारैर्यथाशक्ति यजंस्तत्सिद्धिमश्नुते ॥ २१ ॥
भृगुखं शुक्लमग्निस्थं ततो ज्वलनमृत्युभिः ।
नाशनायाग्निजायान्तो मन्त्रवर्णो मनुरुद्धृतः ॥ २२ ॥
मृत्युजित्संज्ञितोऽस्यापि ऋष्याद्यं पूर्वचोदितम् ।
दक्षिणास्यो जपेदेनं सन्ध्ययोर्मृत्युशान्तये ॥ २३ ॥
कथितत्र्यर्णमन्त्रादिमिमं सप्तदशाक्षरम् ।
जपेत् तु साधनाद्यं च विनियोगैश्च[2] पूर्ववत् ॥ २४ ॥

---

१. 'वृ' ख. पाठः. २. 'गं च' पाठः.

ध्यानं च पूर्ववत् तत्र विशेषस्तूपदिश्यते।

धवलकमलचन्द्रद्वन्द्वमध्योपविष्टं हरिणपरशुपाणिं साक्षमालाकपालम्।
अमृतकिरणचूडं पाण्डराकल्पवर्णं स्रवदमृतजलार्द्रं नौमि मृत्युञ्जयेशम्॥

मृत्युञ्जयाधिकारः।

---

मन्त्रस्त्रैयम्बकः श्रौतो मृतसञ्जीवनं स्मृतम्॥ २६॥
ऋषिर्वसिष्ठो भगवान् भार्गवश्चेति केचन।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता स्याद् रुद्रस्त्रैयम्बपूर्वकः॥ २७॥
षडङ्गानि स्वयं रामवेदाष्टनवपञ्चकैः।
त्रिभिश्चापि निजैर्वर्णैः पादाङ्गुल्यग्रसन्धिषु॥ २८॥
पादसन्धिद्वये जान्वोर्गुह्ये मूले तथोदरे।
पृष्ठे च हृदये कण्ठे बाह्वोः सन्ध्यङ्गुलीष्वपि॥ २९॥
वक्त्रघ्राणाक्षिकर्णभ्रूयुगलेष्वपि मूर्धनि।
द्वात्रिंशद्वर्णविन्यासं बिन्द्वन्तं पृथगाचरेत्॥ ३०॥
शिरोभ्रूनेत्रवदनकण्ठहृन्नाभिषु क्रमात्।
गुह्योरुजानुपादेषु पदान्येकादश न्यसेत्॥ ३१॥

ध्यानं च—

आसीनः पुण्डरीके दधदमृतमयं पूर्णकुम्भं निजाङ्के
पाणिभ्यां पुस्तकाक्षस्रजमपि सुधया पूर्णकुम्भौ सिताङ्गम्।
कुम्भाभ्यां सौधवर्षैर्धृतशशिशकले मूर्ध्नि सिञ्चन् कपर्दी
शुक्लाकल्पोऽष्टबाहुः प्रहसितवदनो रक्षतात् त्र्यम्बको वः॥३२॥

अथाष्टावरणा पूजा कर्तव्या त्र्यम्बकस्य तु।
शिवासने तु शैवोक्ते निजाङ्गैः प्रथमावृतिः॥ ३३॥
क्ष्मावह्नियजमानार्कजलवाय्विन्दुपुष्करैः।
अष्टाभिर्मूर्तिभिः शम्भोर्द्वितीयावरणं स्मृतम्॥ ३४॥

तृतीयाद्यास्तु षष्ठ्यन्ता वृतयोऽष्टाभिरष्टभिः ।
अष्टाभिश्चाष्टभिर्ज्ञेया रैमारात्र्यादिशक्तिभिः ॥ ३५ ॥

कास्ता द्वात्रिंशच्छक्तयः—

रैमा रात्रिः प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णोषा पूरणी सुधा ।
तृतीयावरणे चाथ विश्वा विद्युच्च पाण्डरा ॥ ३६ ॥
प्रह्वा सारा च सन्ध्या च शिवा चैव निशाष्टमी ।

चतुर्थावरणे—

आर्द्रा प्रज्ञा परा मेधा कान्तिः शान्तिर्धृतिः स्मृतिः ॥ ३७ ॥
इत्यष्टौ शक्तयः प्रोक्ताः पञ्चमावरणस्य तु ।
परोमा पावनी पद्मा शान्ता मोघा जयामला ॥ ३८ ॥
शक्तयोऽष्टाविति प्रोक्ताः ष(ष्ठा?ष्ठा)वरणगोचराः ।
इन्द्राद्यैर्दशलोकेशैः सप्तमी तु[3] वृतिर्भवेत् ॥ ३९ ॥
अष्टमी च हि वज्राद्यैः कर्णिकायां शिवः स्वयम् ।
किञ्जल्कमध्येष्वङ्गानि केसराग्रेऽष्टमूर्तयः ॥ ४० ॥
दलगा मूलमध्याग्रतदग्रेषु च शक्तयः ।
एभिरावरणैः शम्भु(मु?रु)पहारोदितक्रमात् ॥ ४१ ॥
पूज्यः स्याद्धृदये चित्रे लिङ्गे वा स्फाटिके शुभे ।
कलशेऽप्येवमावाह्य सम्पूज्य विधिवच्छिवम् ॥ ४२ ॥
सामग्र्या दीक्षितं विप्रं शिष्यं तेनाभिषिच्य तु ।
तस्मै मन्त्रं जलोपेतं दद्यात् सोऽपि च साधयेत् ॥ ४३ ॥
नित्यं सम्पूजयेच्छम्भुं व्रत्याशी विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मचर्यपरः पूर्वं जपेल्लक्षमनन्यधीः ॥ ४४ ॥
बैल्वाः पालाशखदिरन्यग्रोधसमिधस्तिलाः ।
सिद्धार्थपायसक्षीरदधिदूर्वाः पृथक् क्रमात् ॥ ४५ ॥

---

१.] 'रा', २. 'रा' ख. पाठः. ३. 'ति' क. पाठः. ४. 'षु' ख. पाठः.

दश द्रव्याणि तैरष्टावष्टोत्तरसहस्रकम् ।
आवाहितशिवे हुत्वा शक्त्या विप्रांस्तु भोजयेत् ॥ ४६ ॥
अयुतं वेदविदुषां सहस्रं शतमेव वा ।
गुरुं चाराधयेच्छक्त्या हिरण्यवसनादिभिः ॥ ४७ ॥
ततः सिद्धोऽस्य मन्त्रोऽयं सर्वकामप्रदो भवेत् ।
येन शुक्रः पुरा देवैर्निहतान् युधि दानवान् ॥ ४८ ॥
मन्त्रेण जीवयामास [1]कचमङ्गिरसः सुतम् ।
येन वज्रास्थिदेहोऽभूद् दधीचो[2] मनुनामुना ॥ ४९ ॥
तेन त्रैयम्बकेनास्ति नासाध्यं भुवनत्रये ।
बिल्वानामयुतैर्लक्ष्मीं पलाशैर्ब्रह्मवर्चसम् ॥ ५० ॥
एधोभिः खादिरैः पुष्टिं धनधान्यं वटोद्भवैः ।
अथ मृत्युञ्जयं चापक्षयं कृष्णतिलैर्हुतैः ॥ ५१ ॥
शत्रुक्षयं च सिद्धार्थैः पायसेनायुषे श्रिये ।
क्षीरेण क्षुद्ररोगादिशान्तिर्लक्ष्मीकरं तथा ॥ ५२ ॥
दूर्वाभिरायुरारोग्यं दध्ना चान्नेन सम्पदम् ।
प्रतिमासं जन्मदिने दूर्वाभिः पायसेन च ॥ ५३ ॥
विंशतिं च शतं हुत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
काश्मर्यैः पायसेनायुः स्यात् सर्वत्र घृतं प्लुतम् ॥ ५४ ॥
नाभिदघ्नजले स्थित्वा प्रत्यहं चायुषे जपेत् ।
सप्ताभिमन्त्रितं नित्यमन्नं क्षीरं तथौषधम् ॥ ५५ ॥
त्रिसन्ध्यं सलिलं च स्यात् पीतमायुर्विवर्धनम् ।
पायसं वाथ दध्यन्नं हुतं पर्वसु पुष्टिदम् ॥ ५६ ॥
[3]कन्यां तु लभते लाजैर्लाजैः कन्यास्य दीयते ।
न्यग्रोधपिप्पलप्लक्षैः क्रमादौदुम्बरैरपि ॥ ५७ ॥
ब्राह्मणाद्यान् वशे कुर्यात् क्षीराज्यमधुसेचितैः ।
तिलसिद्धार्थदूर्वान्नैरार्द्रायामायुषे हुतैः ॥ ५८ ॥

---

१. 'कवच गिर' क. पाठः. २. 'ची' ख. पाठः. ३. 'तस्यां तु' क. पाठः.

जन्मर्क्षे जुहुयादाज्यं कृसरं गुलपायसम् ।
शेषेण भोजयेद् विप्रान् वशयेद् देवतामपि ॥ ५९ ॥

सा चास्येष्टं वरं दद्यात् किं पुनर्मानवो भुवि ।
शमीसमिद्भिरार्द्रायां सहस्रं पायसेन वा ॥ ६० ॥

हुत्वा तद्भस्मना फाले त्रिपुण्ड्रं सर्ववश्यदम् ।
पयसाक्तवर्षैर्हुत्वा निशायां वशयेद् ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यां हुत्वापामार्गपायसैः ।
तद्भस्मपुण्ड्रं शिरसि क्षितं तु वशयेत् स्त्रियम् ॥ ६२ ॥

तैलार्द्रखादिरैर्द्वेषमुच्चाटं च विभीतकैः ।
वेतसैर्लभते वृष्टिं मारयेद् विषवृक्षजैः ॥ ६३ ॥

नामाङ्कितैस्तु सर्वत्र समिद्भिः क्षुद्रकर्मसु ।
जुहुयान्नामकर्माढ्यं मन्त्रान्ते विनियोजयेत् ॥ ६४ ॥

सिद्धार्थैः शर्कराभिर्वा जपितैस्त्रिसहस्रकम् ।
गृहग्रामपुरादीनां रक्षायै दिक्षु निक्षिपेत् ॥ ६५ ॥

रज्वालु(?)पक्कृतया त्वैकाहद्वैहिकालिकम् ।
दिनसंध्याग्रथितया हस्ते बद्ध्वा ज्वरं हरेत् ॥ ६६ ॥

जन्मर्क्षेष्वपि सङ्क्रान्त्यां कलशं विधिपूरितम् ।
साधितं जपहोमाभ्यां सिक्तं स्यादायुषे श्रिये ॥ ६७ ॥

तथा तेनाभिषिक्ता स्त्री वन्ध्या सूते सुतं शुभम् ।
आयुरारोग्यविजयश्रीसौभाग्यप्रदो हि सः ॥ ६८ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामार्द्रायां वाष्टमे[1] तिथौ ।
अविशेषोदितदिने प्रयोगोऽनेन सिद्धिदः ॥ ६९ ॥

नद्यां समुद्रगामिन्यां शाकमूलफलाशनः ।
जपेदेकादिलक्षाणि स विन्देदणिमादिकान् ॥ ७० ॥

भ्रत्याशनस्तु निष्कामः पर्वताग्रे यजञ् शिवम् ।
लक्षत्रयं जपित्वा तु मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ७१ ॥

---

१. 'मी' ख. पाठः.

बहुनात्र किमुक्तेन भजतां मनुनामुना ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु दुर्लभो नास्ति कश्चन ॥ ७२ ॥

त्रैयम्बकाधिकारः ।

गायत्र्यनुष्टुभौ त्रिष्टुप् त्रयं चैकत्वमागतम् ।
त्रिमन्त्रः शतवर्णोऽयं सूर्यरुद्राग्निदैवतः ॥ ७३ ॥
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च मारीचः काश्यपः स्वयम् ।
ऋषयोऽमी यथापूर्वं छन्दस्तत् त्रितयं स्मृतम् ॥ ७४ ॥
स्वयमेव षडङ्गानि जातियुक्तैर्निजाक्षरैः ।
तत्रातिजगतीरुद्रविकाराष्टिप्रसंख्यया ॥ ७५ ॥
द्वाविंशत्या तथा कृत्या षडङ्गानि यथाक्रमम् ।
लक्षमस्य पुरश्चर्या शक्त्या हुत्वाज्यपायसम् ॥ ७६ ॥
द्विजांश्च भोजयेच्छक्त्या सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत् ।
गायत्र्याद्यं शान्तिकादौ पौष्टिकेऽनुष्टुबादिकम् ॥ ७७ ॥
गायत्र्याद्यं सौरपीठे शैवे तत्र्यम्बकादिके ।
दुर्गापीठे त्रैष्टुभाद्यं वह्निपीठेऽथ वा यजेत् ॥ ७८ ॥
सूर्यस्त्रैयम्बकश्चाद्ये दुर्गा वा ध्येयदेवता ।
अङ्गैर्वृतिः स्यात् प्रथमा प्रह्लादिन्यादिशक्तिभिः ॥ ७९ ॥
वृतित्रयं च वृतयश्चतस्रस्तु रमादिभिः ।
जागताद्यादिरेकैाथ लोकेशैर्दशमी वृतिः ॥ ८० ॥
दूर्वाच्छिन्नाघृतैरायुर्लक्ष्मीं पद्मोत्पलैर्हुतैः ।
बिल्वैः श्रियं तिलैः शान्ति पापरोगेति (?) विद्विषाम् ॥ ८१ ॥
प्रातर्नित्यं जपेद् भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
गायत्रियादिमन्त्राणां ये ये कल्पाः पुरोदिताः ॥ ८२ ॥
तेषूक्ता येऽस्य सामान्याः प्रयोगैर्बहुविस्तराः ।

शताक्षराधिकारः ।

१. 'सम्' क. पाठः. २. 'ब्दं', ३. 'के' घ. पाठः. ४. 'मो' ग. पाठः. ५. 'म्यादि', ६. 'गो' ख. पाठः.

तारं नमो नाभिगकारकुम्भौ ते दक्षिणामूर्तिरदं चतुर्थ्या ।
मह्यं च मेधां प्रयुतं च यच्छ वह्निप्रियेत्याकृतिवर्णमन्त्रः ॥ ८३ ॥

अत्रिश्चान्तिकमक्षियुक् चरमस्यान्तः सदीर्घो विषं
षष्ठान्तं त्वथ रेफिवामचरणं ये तुभ्यमित्यक्षरैः ।
हतपूसणिहालिणे ध्यानै धातृणि षटांशज नमोरुद्राय शम्भवे ।
द्वात्रिंशद्गणिताक्षरो मनुरयं स्याद् दक्षिणामूर्तये
तारान्तादिनिरुद्धशक्तिसहितः षट्त्रिंशदर्णो भवेत् ॥ ८४ ॥

ऋषिः शुकोऽनयोर्ज्ञेयो ब्रह्माद्यस्येति केचन ॥ ८५ ॥

छन्दोगायत्रमाद्यस्य परस्यानुष्टुबुच्यते ।
देवता दक्षिणामूर्तिः सर्वज्ञत्वं द्वयोः फलम् ॥ ८६ ॥

स्वार्णैः षड्भिस्तथा षड्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां त्रिभिस्तथा ।
द्वाभ्यामपि षडङ्गानि प्रथमस्य स्वजातिभिः ॥ ८७ ॥

ऋत्विग्वि(?)वसुमातङ्गभूतरामनिजाक्षरैः ।
अस्त्रान्तं जातियुक्तानि द्वितीयेऽङ्गानि कल्पयेत् ॥ ८८ ॥

अङ्गुष्ठादितलान्तं तान्यङ्गानि करयोर्न्यसेत् ।
व्यापकं चापि मूलेन ततो देहेऽक्षराण्यपि ॥ ८९ ॥

यथा —

शिरोललाटभ्रूमध्यदृक्छ्रोत्रघ्राणयुग्मयोः ।
मुखे गले च भुजयोर्हृदि नाभौ च गुह्यके ॥ ९० ॥

ऊर्वोश्च जङ्घयोः पद्भ्यामर्णद्वाविंशतिं न्यसेत् ।
शिरोललाटदृक्श्रोत्रनासागण्डद्वये मुखे ॥ ९१ ॥

सन्ध्यष्टकेषु भुजयोर्गलहृन्नाभिषु क्रमात् ।
कट्यां गुह्ये चोरुजान्वोर्नलकाङ्गुलिसन्धिषु ॥ ९२ ॥

द्वात्रिंशदक्षरन्यासं कृत्वाथ व्यापकं पुनः ।
कृत्वा तु तारशक्तिभ्यां षडङ्गान्यपि विन्यसेत् ॥ ९३ ॥

---

१. 'स्वरे', २. 'भूदृक्' ख. पाठः.

द्वितीयस्य —

वेदन्यग्रोधमूले मुनिभिरभिवृतं गाढपर्यङ्कबद्धं
शुक्लाकल्पं त्रिणेत्रं भसितसितरुचिं व्याघ्रचर्माम्बराढ्यम् ।
व्याख्यामुद्रां च टङ्कं हरिणमृजुभुजे जानुरूढे कुसुम्भं
बिभ्राणं जाटजूटाहितशशिशकलं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥ ९४ ॥

इदं ध्यानं द्वितीयानुष्टुभः ।

अन्वासीनं मुनीन्द्रैः कनकपटमधोबद्धपर्यङ्कबद्धं
व्याख्यार्थं भूतिगौरं चलदमरनदीचन्द्रचञ्चत्कपर्दम् ।
त्र्यक्षं रुद्राक्षमालोत्पलकलितकरं जानुरूढैकबाहुं
कृत्तिं चित्रां वसानं प्रणमत सततं दक्षिणामूर्तिमीशम् ॥ ९५ ॥

ततः सुरसरित्प्रख्यः सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
त्रत्याशनो जपेल्लक्षमेकलिङ्गे शिवालये ॥ ९६ ॥
दक्षिणामूर्तिमाश्रित्य भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
जुहुयात् तद्दशांशेन क्षीराज्यक्लपितांस्तिलान् ॥ ९७ ॥
भित्तौ पटे वा चित्रस्थं यजेद् देवं शिवासने ।
एकावरणमार्गेण शिष्यैस्तु मुनिभिर्वृतम् ॥ ९८ ॥
मुख्योपचारैरर्घ्याद्यैर्मनसा वाप्यसंभवे ।
जपेत् प्रतिदिनं मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ९९ ॥
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि व्याकरोति करोति च ।
जपध्यानातिशयतः सर्वज्ञो जायते स्फुटम् ॥ १०० ॥

मृत्युञ्जयं शिवमुपास्य जयन्ति मृत्युं सञ्जीवनं मनुमुपास्य जयन्ति कालम् ।
मन्त्रेण दक्षिणशिवं यजतां मुखाब्जे सारस्वतं वहति धाम सरस्वतीव ॥ १०१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ मन्त्रसारे
एकोनत्रिंशः पटलः ।

अथ त्रिंशः पटलः ।

शुक्लं च नादबीजं चाप्यन्त्योऽनुग्रहबिन्दुमान् ।
भृगुः खमथ वह्निस्थं शुक्लं भौतिकबिन्दुमत् ॥ १ ॥

षष्ठाक्षरं स्याच्छुक्लं च खं शुक्लं साग्न्यनुग्रहम् ।
बिन्दुमन्नवमं बीजमघोरेभ्यः समुद्धरेत् ॥ २ ॥

ह्रौंबीजं च समुद्धृत्य अथ घोरेभ्य इत्यपि ।
एकोनविंशत्यर्णोऽयं पार्श्वं साग्न्योष्ठबिन्दुमत् ॥ ३ ॥

घोरघोरतरेभ्यश्च खं सानुग्रहबिन्दुमत् ।
सर्वतः शर्वसर्वेभ्यः प्रोङ्कारस्तदनन्तरम् ॥ ४ ॥

नमस्तेअस्तुरुद्रान्ते रूपेभ्य इति चोद्धरेत् ।
व्योमांमौ बिन्दुमत्पश्चाद् वाग्भवं मान्मथं तथा ॥ ५ ॥

शक्तिं श्रियं ततः शुक्लं सानुग्रहविसर्जनम् ।
उद्धृत्याघोरमन्त्रः स्याच्चतुःपञ्चाशदक्षरः ॥ ६ ॥

तारादिर्वैदिकेऽप्यस्मिन् विज्ञेयः स्याद् द्विजातिभिः ।
तारं च लोहितः साग्निः स्फुरशब्दैश्च वीप्सितः ॥ ७ ॥

दन्ती शिवोत्तमश्चाग्निस्तौ चाषढिभुजङ्गकौ ।
अणुषूभकतः प्रकतः कह कह वमघातयेति च वीप्सितम् ।
वर्मास्त्रे चेत्यघोरास्त्रो द्विचत्वारिंशदक्षरः ॥ ८ ॥

अस्यैव बीजमन्त्रश्च कथ्यते द्वादशाक्षरः ।
पार्श्वं साग्न्योष्ठचन्द्रार्धं खं साग्न्योऽकारबिन्दुकम् ॥ ९ ॥

वाग्भवस्मरहृल्लेखा श्रीप्रसादसरस्वती ।
अस्त्राय फडिति प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ॥ १० ॥

द्विचत्वारिंशदर्णेन संयोज्य द्वादशाक्षरम् ।
चतुष्पञ्चाशदर्णं स्यादघोरास्त्रमपि स्फुटम् ॥ ११ ॥

एवं ह्यघोरमन्त्रश्चाप्यघोरास्त्रं च कीर्तितम् ।
सहपाठे द्वयोर्वर्णा भवन्त्यष्टोत्तरं शतम् ॥ १२ ॥

द्वयोरपि षडङ्गानि पृथक् स्वार्णैर्भवन्ति हि ।
ऋषिर्द्वयोर्गालवः स्याच्छन्दस्तु बृहती मता ॥ १३ ॥
अघोरमूर्तिस्तु शिवो देवता स्याद् द्वयोरपि ।
सा[1]धनाद्यं द्वयोस्तुल्यं नान्योन्यं तौ हि मुञ्चतः ॥ १४ ॥
अघोरं साधयन्नस्त्रं तद्दशांशं जपेदपि ।
साधयंश्चाप्यघोरास्त्रमघोरं च जपेत् तथा ॥ १५ ॥
आदिस्थनवै[2]बीजे स्यादघोरेभ्योऽथ ह्रीं च हृत् ।
अथ घोरेभ्य इति च प्रेंशिरो जातिसंयुतम् ॥ १६ ॥
घोरघोरतरेभ्यः खमौ बिन्दुसहितं शिखा ।
सर्वतः शर्वसर्वेभ्यः प्रोङ्कारः कवचं भवेत् ॥ १७ ॥
नमस्त इत्यादिभिः स्यान्नेत्रमेकादशाक्षरैः ।
परिशिष्टैः पञ्चबीजैरस्त्रं सर्वत्र जातिभिः ॥ १८ ॥
युतानि स्युरघोरस्य षडङ्गानि निजाक्षरैः ।
अघोरास्त्रस्य चाङ्गानि निजवर्णैर्भवन्ति हि ॥ १९ ॥
रसर्तुवेददिङ्नागवसुसंख्याक्षरैः क्रमात् ।
स्वस्वजातियुतानि स्युरङ्गानि षडनुक्रमात् ॥ २० ॥
स्वयम्भुवि तथार्षे वा एकलिङ्गेऽथ वा सुरे ।
पश्चिमा वदने लिङ्गे पुरश्चर्यां समाचरेत् ॥ २१ ॥
ह्रस्याशनो यजञ्छम्भुं त्रिः स्नायी नियतेन्द्रियः ।
लक्षं जपेदघोरं चाप्यघोरा[3]स्त्रं च भक्तितः ॥ २२ ॥
तद्दशांशेन जुहुयात् तिलानाज्यविमिश्रितान् ।
अशक्तः स्वार्णसाहस्रं जपेद्धुत्वा दशांशतः ॥ २३ ॥
जपन् द्वित्रिचतुर्लक्षं महतीं सिद्धिमश्नुते ।
साष्टत्रिंशत्कलामूर्तमञ्जनाभं चतुर्मुखम् ॥ २४ ॥
अष्टादशभुजं रौद्रं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
वसानं चर्म वैयाघ्रं गजचर्मोत्तराम्बरम् ॥ २५ ॥

---

१. 'ध्वनाद्यस्य द्व', २. 'य', ३. 'रं चास्त्रम' ग. पाठः.

खट्वाङ्गदन्तौ शूलं च कपालाङ्कुशपाशकान् ।
हलप्रासशरेष्वासखड्गखेटाक्षमालिकाः ॥ २६ ॥
पद्मं दण्डं डमरुकमभयं वरदं क्रमात् ।
अष्टादशभुजैर्हेतीन् बिभ्राणं दक्षिणेतरैः ॥ २७ ॥
दंष्ट्रादन्तुरभीमास्यं पिङ्गश्मश्रुजटाधरम् ।
उष्णीषकुण्डलादीनि नूपुरान्तानि यानि वै ॥ २८ ॥
भूषणानि भुजङ्गेन्द्रैः क्लृप्तानि दधतं विभुम् ।
वसानं चर्म वैयाघ्रं मुण्डमालाविभूषितम् ॥ २९ ॥
लूतावृश्चिकसंमिश्रकण्ठालम्बितभूषणम् ।
दष्टाधरोष्ठं वृत्ताक्षं भ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥ ३० ॥
अघोराक्षररूपैश्च रुद्रैः शक्तिभिरावृतम् ।
षोडशारस्य चक्रस्य मध्यपद्मोदरस्थितम् ॥ ३१ ॥
वक्ष्यमाणैस्तथा[1] रुद्रैर्भैरवैर्मातृभिर्वृतम् ।
दक्षिणाभिमुखं देवं तदस्त्रं तस्य पश्चिमे ॥ ३२ ॥
ध्यात्वा जपादिकं कुर्याद् भित्तावालिख्य[2] वा पटे ।

अघोर[3]ध्यानम् —

अघोरास्त्रं तथा ध्यायन् भिन्नाञ्जनगिरिद्युतिम् ॥ ३३ ॥
स्पष्टदष्टाधरोष्ठं तं लसद्दंष्ट्रोत्कटाननम् ।
संरक्तगन्धवसनमाल्यभूषणभूषितम् ॥ ३४ ॥
अष्टबाहुं धृतोदग्रसप्तायुधविभूषितम् ।
शूलमूलं च वेतालं खड्गं डमरुकं क्रमात् ॥ ३५ ॥
दक्षिणैरितरैर्दोर्भिः कपालं चाप्यधस्तनात् ।
घण्टां खेटं शूलमध्यं बिभ्राणं चोत्तरोत्तरैः ॥ ३६ ॥
वृत्तपिङ्गत्रिणयनं भ्रुकुटीकुटिलोत्कटम् ।
ज्वलदग्निशिखाकारं पिङ्गलोर्ध्वशिरोरुहम्[4] ॥ ३७ ॥

---

१. 'णं तथा', २. 'ख्य' ग. पाठः ३. 'रास्त्रम्' ख. पाठः. ४. 'मुद्रं' ग. पाठः.

नूपुरे कटिसूत्रे च तथैवोदरबन्धने ।
कटकाङ्गदयोः कण्ठे कर्णकुण्डलयोरपि ॥ ३८ ॥

द्वौ द्वावहीन्द्रौ दधतं युद्धसन्नद्धविग्रहम् ।
लूतावृश्चिकसंसक्तकण्ठालम्बितमालकम् ॥ ३९ ॥

वामपादं पुरस्कृत्य रक्ताब्जेऽष्टदले स्थितम् ।
ग्रहरोगभयक्षुद्रनिखिलारिनिबर्हणम् ॥ ४० ॥

कल्पानलसहस्रार्कभासुरं भक्तवत्सलम् ।
ध्यायेद्[२] देवमघोरास्त्रं पूजाहोमजपादिषु ॥ ४१ ॥

अथेष्ट्वा विघ्नराजानं गुरूनात्मानमेव च ।
आधारशक्तिं चानन्तमासनं धर्मपूर्वकान् ॥ ४२ ॥

सोमसूर्याग्निबिम्बानि ब्रह्मादींश्च तदीश्वरान् ।
तामस्याद्याः कलाः शक्तीरिष्ट्वाघोरासनं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

तस्मिन्नघोरमूर्तिं तां विद्यादेहं च तद्गतम् ।
विन्यस्यावाहयेद् शैवं हृत्पद्मद्वादशान्तगम् ॥ ४४ ॥

ज्योतिस्तत्परमं देवं सूक्ष्मं चैतन्यविग्रहम् ।
आवाह्य मूर्तिं हृत्पद्मे स्थापनादिक्रमेण तु ॥ ४५ ॥

उपचारोक्तमार्गेण नैवेद्यान्तं यजेत् सुधीः ।
हुत्वाग्नौ च बलिं हृत्वा परिक्रम्य प्रदक्षिणम् ॥ ४६ ॥

स्तुतिपूर्वं नमस्कृत्य तत्पुरः प्रजपेन्मनुम् ।
एवं संसाधयेन्मन्त्रं दत्त्वा तु गुरुदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥

### मन्त्रसाधनाधिकारः ।

---

अथ सिद्धेन मन्त्रेण विनियोगान् समाचरेत् ।
धर्मार्थकामकृत्येषु यद्यदिष्टं हि मन्त्रिणः ॥ ४८ ॥

---

१. 'ष्टच्छदे स्थि', २. 'ये दे' ग. पाठः.

तस्मिन् नासाध्यमस्तीह घोराघोरास्त्रमन्त्रयोः ।
तयोरेकतरेणेष्टं जपार्चाद्यैः प्रसाधयेत् ॥ ४९ ॥

विशेषाद् राजकार्येषु परचक्रभयादिषु ।
ग्रहभूतादिपीडासु क्षुद्ररोगभयेषु च ॥ ५० ॥

अपमृत्युभये तद्वदनावृष्ट्यतिवृष्टिषु ।
महोत्पातेषु जातेषु नरस्त्रीगजवाजिनाम् ॥ ५१ ॥

उपसर्गेषु मारीषु तत्तत्पीडोपशान्तये ।
अघोरयागः सामान्यः समासादिह कथ्यते ॥ ५२ ॥

शुचौ देशे विविक्ते तु तत्तत्कार्यानुसारतः ।
मण्डपं[1] वा प्रपां कृत्वा क्षिप्त्वा वास्तुबलिं तथा ॥ ५३ ॥

पुण्याहं वाचयित्वादौ स्वस्ति वाच्यं द्विजातिभिः ।
सुविलिप्ते[2] स्थले विघ्नानुत्सार्येष्ट्वा गणेश्वरम् ॥ ५४ ॥

स्थण्डिलं तण्डुलैः शुक्लैरष्टद्रोणैस्तु शालिजैः ।
तदर्धैश्च तिलैः कृत्वा तन्मध्ये षोडशच्छदम् ॥ ५५ ॥

शुक्लं रजोभिः कृत्वाब्जं मध्ये कुम्भं निधाय तु ।
समापूर्याम्भसा गन्धहेमरत्नफलाक्षतैः ॥ ५६ ॥

तस्मिन्नघोरमावाह्य साधकोऽङ्गावृतिं यजेत् ।
अङ्गैर्वृतिः केसरेषु तदग्रेऽष्टायुधैर्वृतिः ॥ ५७ ॥

कलाभिर्भीषणाद्यैस्तु तृतीया तु वृतिर्भवेत् ।
दलमूलेषु ब्राह्म्याद्या असिताङ्गादिभैरवैः ॥ ५८ ॥

दलमध्यगतैः पूज्या चतुर्थी मातृकावृतिः ।
पञ्चमी तु दलाग्रस्थैर्भैरवेशादिभैरवैः ॥ ५९ ॥

श्रीकण्ठाद्यर्णरुद्रैश्च षष्ठी तच्छक्तिभिर्वृतिः ।
सप्तमी लोकपालैश्च तदस्त्रैर्वीथिगा वृतिः ॥ ६० ॥

बाह्या वृतिः षोडशभिर्वृषाद्यैरष्टमी[3] स्मृता ।
एवं सास्त्रमघोरेशं लिङ्गे चित्रे पटे तथा ॥ ६१ ॥

---

१. 'लं', २. 'अ', ३. 'भिर्वाद्यै' ख. पाठः.

संपूज्य दद्यान्नैवेद्यमुत्तमाद्यं स्वशक्तितः ।
वादित्रगीतनृत्तैश्च परितोष्य महेश्वरम् ॥ ६२ ॥

प्राच्यां प्रागुत्तरे वाथ कृते कर्मानुसारतः ।
कुण्डे शिवाग्नौ वेदाश्रे साघोरास्त्राङ्गतत्कलाः ॥ ६३॥

अघोरं देवमावाह्य संपूज्य जुहुयात् ततः ।
प्रागुत्तरेण कुण्डस्य शान्ति[1]कुम्भस्थमर्चयेत् ॥ ६४ ॥

पलाशबैल्वप्लक्षाश्च वटोदुम्बरपैप्पलाः ।
समिधो घृतसंसिक्ताः शाल्यन्नं पायसं घृतम् ॥ ६५ ॥

कृष्णांस्तिलान् वेणुयवान् शालिसि[2]द्धार्थलाजकान् ।
क्षीरं मधु तथैकैकं पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥ ६६ ॥

अघोरेण तथास्त्रेण हुत्वाङ्गैस्तद्दशांशतः ।
अर्धरात्रे बलिं दद्याद् भूतक्रूरेण देशिकः ॥ ६७ ॥

अर्घ्याम्बुगन्धपुष्पाद्यैरिष्ट्वाथ विकिरेद् बलिम् ।
कलाद्यावरणेभ्यश्च देवताभ्यो यथाक्रमम् ॥ ६८ ॥

आवरणदेवतानामानि यथा —

तामसी मोहनी रात्रिर्निष्ठा व्याधिश्च मारणी ।
क्षुधा तृष्णेत्यघोरस्य शक्तयोऽष्ट कलाश्रिताः ॥ ६९ ॥

भाषणो भैरवो भीमो रौद्रश्चोग्रो भवस्तथा ।
घोरो घोरतरश्चाष्टौ दलमध्यस्थिताः क्रमात् । ७० ॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चाथ कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराह्यैन्द्री च चामुण्डी चण्डिका चाष्ट मातरः ॥ ७१ ॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधेशोन्मत्तकावपि ।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः ॥ ७२ ॥

ब्राह्म्याद्याश्चासिताङ्गाद्याः पूज्याः स्युर्दलसन्धिषु ।
भैरवेशस्तथोन्मत्तः क्रूरो मार्ताण्डकोपनौ ॥ ७३ ॥

---

१, 'न्ति', २. 'द्धि' ख. पाठः.

भीमश्चाप्यथ संहर्ता कालश्चण्डोऽथ भद्रकः ।
उग्रो भवश्च पातालो व्योमेशश्च क्षितीश्वरः ॥ ७४ ॥
अधीशश्चा[1]थं पत्राग्रगताः षोडश भैरवाः ।
श्रीकण्ठाद्यास्तथा रुद्राः पूर्णोदर्यादिशक्तयः ॥ ७५ ॥
पूर्वोक्ताः स्युस्तथेन्द्राद्या वज्राद्याश्चैव हेतयः ।
वृषो विघ्नो वीरभद्रः शास्ता देवी प्रभा ततः ॥ ७६ ॥
सत्यकः श्रीसरस्वत्यौ ज्येष्ठा शङ्खोऽथ षण्मुखः ।
विशाखो नैगमेषश्च दुर्गा चण्डेश्वरस्तथा ॥ ७७ ॥
क्षेत्रपालश्च पूर्वादिदिग्विदिङ्मध्ययोगतः ।
एवमावरणान्यष्टावघोरयजनेऽर्चयेत् ॥ ७८ ॥
दद्याद् देवस्य चाङ्गेभ्यो नैवेद्यं तूपपत्तितः ।
कलाद्यावरणेभ्यस्तु बलिं भूमौ विनिक्षिपेत् ॥ ७९ ॥
तद्बाह्ये दिग्विदिक्स्थाः स्युर्गणास्तेभ्यो बलिं क्षिपेत् ।

तद्यथा —

आदित्या मरुतः साध्या गन्धर्वाः पितरस्तथा[2]॥ ८० ॥
रुद्राश्च राक्षसा नागाः सिद्धविद्याधराः सुराः ।
सुपर्णप्रेतकूश्माण्डवसवो यक्षकिन्नराः ॥ ८१ ॥
भूता विनायका विश्वे पिशाचाश्चाश्विनौ गणाः ।
योगिन्यश्चाथ डाकिन्यश्चतुर्विंशतिधा गणाः ॥ ८२ ॥
दिग्विदिङ्मध्यसंस्थास्ते षोडशोर्ध्वे चतुर्विधाः ।
अधश्चैते चतुर्धा स्युः पूज्यास्तेभ्यो बलिं क्षिपेत् ॥ ८३ ॥
तद्बाह्ये दशदिक्स्थेभ्यो गणेभ्यो विकिरेद् बलिम् ।

पूर्वस्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणा वज्रपाणयः श्वेताः श्वेताक्षाः श्वेतलोहिताः दिव्यन्तरिक्षभौमाः पातालनिवासिनश्च, तेभ्यस्ताभ्यो नमो नमः ठठ । आग्नेय्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः शक्तिपाणयो रक्ता

1. 'श्र', २. 'नो' ख. पाठः.

रक्ताक्षा रक्तलोहिता इत्यादि । याम्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणा दण्डपाणय कृष्णाः इत्यादि । ओं नैर्ऋत्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः खड्गपाणयः श्यामाः श्यामाक्षाः श्यामलोहिता इत्यादि । वारुण्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः पाशपाणयः शबलाः शबलाक्षाः इत्यादि । वायव्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः अङ्कुशपाणयः पीताः इत्यादि । ओं कौबेर्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः गदापाणयः सिताः सिताक्षाः सितलोहिता इत्यादि । ओम् ऐशान्यां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः शूलपाणयः कपिला इत्यादि । ऊर्ध्वायां दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः पद्मपाणयः सूक्ष्माः सूक्ष्माक्षाः सूक्ष्मलोहिता इत्यादि । ओम् अधस्ताद् दिशि शिवस्य भगवतो ये गणाः चक्रपाणयः धूम्रा धूम्राक्षा धूम्रलोहिता दिव्यन्तरिक्षभौमाः इत्यादि ।

एभिर्विकीर्य प्रीणाति मन्त्रैः पारिषदां बलिम् ॥ ८४ ॥
ततः स्नात्वा गुरुः शिष्यैः सहितोऽन्तः प्रविश्य तु ।
पूजयेल्लिङ्गकुम्भेशकुण्डस्थं परमेश्वरम् ॥ ८५ ॥

द्विजानेकादश वरान् भोजयेद्घृतपायसैम् ।
लिङ्गिनश्चार्थिनोऽन्यांश्च स्वयं च परिचारकैः ॥ ८६ ॥
भुक्त्वा स्वपेन्निशाशेषं पुनश्चैवं दिने दिने ।
चतुःषष्टिदिनान्यष्टचत्वारिंशद्दिनानि वा ॥ ८७ ॥
चतुर्विंशत्यहोरात्रं द्वादशाहमथापि वा ।
कार्यगौरवतः पूर्वं सङ्कल्प्यान्ते विशेषतः ॥ ८८ ॥
शिवमिष्ट्वा ततः पूर्णां हुत्वा शान्तिघटेन तु ।
स्नापयेद् यजमानं वा गजादीनथ सेचयेद् ॥ ८९ ॥
वह्निस्थं कुम्भगं चेशं विसृजेद्धृदयाम्बुजे ।
अथाचार्यादिकान् शक्त्या भूहेमवसनादिभिः ॥ ९० ॥
तोषयेद् यजमानोऽन्यान् ब्राह्मणान् लिङ्गिनोऽपि च ।
प्राप्नोत्यभिमतानर्थानघोरेशप्रसादतः ॥ ९१ ॥

घोराण्यघोरयागेन शाम्यन्त्यस्य न संशयः ।

अथाप्युदाहरन्ति —

"केवलं वाप्यघोरेशमघोरास्त्रमथापि वा ।
इष्टानेन विधानेन हुत्वा चेष्टानि साधयेत् ॥ ९२ ॥"

इति ।

सामान्ययागो निर्दिष्टो विशेषोऽप्यथ कथ्यते ॥ ९३ ॥

सामान्ययागाधिकारः ।

---

स्वयम्भुमार्षेयं वाथ लिङ्गं गोसंभवेन तु ।
सद्योदुग्धेन दुग्धेन शतप्रस्थमितेन तु ॥ ९४ ॥
स्नपयेच्चोत्तमां पूजामुपचारोदितक्रमात् ।
कृत्वा भूतबलिं दद्याद् रात्रावुक्तविधानतः ॥ ९५ ॥
पुनश्च पूजयेद् देवं लिङ्गे चित्रे पटे तथा ।
कूर्चेन संस्पृशन् लिङ्गमघोराष्टशतं जपेत् ॥ ९६ ॥
अघोरास्त्रं च कुण्डेऽथ दूर्वाज्यतिलपायसैः ।
यवैश्चाष्टोत्तरशतं पृथक् कृत्यं च संस्मरन् ॥ ९७ ॥
एकादश द्विजान् मृष्टं भोजयेच्च सदक्षिणम् ।
अघोरमूर्तिर्भगवान् साम्बो मे प्रीयतामिति ॥ ९८ ॥
एवं प्रवर्तयेद् यागं पञ्चविंशतिवासरान् ।
सविशेषं समाराध्य ततो यागं समापयेत् ॥ ९९ ॥
शाम्यन्ति घोरदुःखानि ग्रहरोगापमृत्यवः ।
उपसर्गास्तथा मारीपीडाः क्षुद्रकृताश्च याः ॥ १०० ॥
शाम्यन्त्यायुष्यमारोग्यमैश्वर्यं चास्य जायते ।
शक्तस्यायं समुद्दिष्टो यागस्य विधिरुत्तमः ॥ १०१ ॥
अशक्तस्य तु पादोनं तदर्धेनाथ वा स्मृतः ।
केवलं रोगशान्त्यर्थं दशप्रस्थघृतेन तु ॥ १०२ ॥

---

१. 'यो' ग पाठः. २. 'यो' ख. पाठः.

अभिषिञ्चेदघोरेण गव्येन ब्रह्मभिस्तु वा ।
रुद्रेण पावमानीभिः क्षीरेण तदनन्तरम् ॥ १०३ ॥
चन्दनागरुकर्पूरपिष्टेनालिप्य सर्वतः ।
अखण्डबिल्वपत्रैश्च सुगन्धिकुसुमैरपि ॥ १०४ ॥
कृष्णागरुविमिश्रेण कर्पूरेण पुरेण च ।
धूपयेद् घृतदीपांश्च ज्वालयेत् पायसादिकम् ॥ १०५ ॥
चतुर्विधं च नैवेद्यं दत्त्वा दशशतं जपेत् ।
अह्नि रात्रौ जुहोत्यस्त्रावष्टोत्तरशतं घृतम् ॥ १०६ ॥
तावत्यः समिधो बैल्वाश्चरोश्चैकादशाहुतीः ।
पूर्णां च भस्मना तेन लेपः सर्वगदापहः ॥ १०७ ॥
चत्वारिंशद्दिनान्येवमिष्ट्वा सर्वरुजो हरेत् ।

केवलरोगशान्तिः ।

---

गजाश्वानां पशूनां च रोगशान्तिरथोच्यते ॥ १०८ ॥
कुम्भयागं यथापूर्वं कृत्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्लिङ्गं गन्धफलाम्भसा ॥ १०९ ॥
त्रिसन्ध्यं स्नपयित्वाज्यं पायसं च निवेदयेत् ।
समिदाज्यक्षीरतिलपायसैर्जुहुयादपि ॥ ११० ॥
मृत्युञ्जयमघोरास्त्रं हंसं चाष्टशतं जपेत् ।
बलिं च विकिरेद् रात्रावेकविंशतिवासरान् ॥ १११ ॥
कुम्भाम्भो जपितं तत्तु पाययेद् गजवाजिनः ।
प्रत्येकं प्रोक्षयेत् तेन तेषां शान्तिर्भविष्यति ॥ ११२ ॥

गजाश्वादिशान्तिः ।

---

पौष्टिकं चेदभीष्टं स्यात् पश्चिमावदनं शिवम् ।
प्राग्वत् सङ्कल्प्य संपूज्य गव्यस्य नवसर्पिषः ॥ ११३ ॥

---

१. 'स' ग. पाठः.

पञ्चविंशतिभिः प्रस्थैरभिषिच्य विधानतः ।
उत्तमाद्युक्तपूजानां यथाशक्ति दिने दिने ॥ ११४ ॥
एकया पूजयेल्लिङ्गे कुम्भे चित्रे च भक्तितः ।
बिल्वपत्रैस्त्रिशूलाभैरखण्डैः पूजयेच्छिवम् ॥ ११५ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रातर्मन्त्रं जपेदपि ।
पलाशसमिधश्चाज्यं चरून् कृष्णतिलानपि ॥ ११६ ॥
जुहोत्यष्टोत्तरशतं चत्वारिंशद्दिनानि तु ।
दक्षिणां च यथाशक्ति दत्त्वा पुष्टिमनुत्तमाम् ॥ ११७ ॥
लभते द्वित्रिगुणितां महतीं पुष्टिमश्नुते ।

## पौष्टिकम् ।

---

स्वसैन्यरक्षणार्थं तु कुम्भयागं विधाय तु ॥ ११८ ॥
तस्याष्टौ परितः कुम्भान् भीषणाद्यैरधिष्ठितान् ।
सवस्त्रपल्लवफलहिरण्यानभिपूज्य तु ॥ ११९ ॥
प्राग्वल्लिङ्गं दशप्रस्थक्षीरेण च घृतेन च ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैरभिषिच्य विधानतः ॥ १२० ॥
चन्दनागरुकर्पूरैः सुपिष्टैः कुङ्कुमोत्तरैः ।
सपीठं लिङ्गमालिप्य शोभनैर्बिल्वपल्लवैः ॥ १२१ ॥
आपूर्य करवीराद्यैः सुगन्धिकुसुमोत्करैः ।
मालाभिर्हेमपट्टैश्च पट्टादिवसनैरपि ॥ १२२ ॥
पुरं सागरुकर्पूरं धूपं दद्याद् विशेषतः ।
घृतदीपान् निवेद्यं च यथाशक्ति प्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥
न्यग्रोधौदुम्बराश्वत्थप्लक्षाणां तु समिच्छतैः ।
पलाशदूर्वासिद्धार्थतिलाज्यघृतपायसैः ॥ १२४ ॥
पृथगष्टोत्तरशतं निशासु जुहुयात् क्रमात् ।
प्रतिकुम्भमघोरास्त्रं जपित्वाष्टौ सहस्रकम् ॥ १२५ ॥

कूर्चेण तत्कुम्भजलैः[1] सेनाधीशादिकान् स्वकान् ।
शस्त्राणि च गजाश्वादीन् सेचयेच्चाशिषो वदेत् ॥ १२६ ॥
स्वसैन्यरक्षणं च स्याद् विजयेच्च परान् रणे ।

**स्वसेनारक्षणम् ।**

न क्ष्वेलपीडा न च भोगिभीतिर्न क्षुद्ररोगारिजलाग्निबाधा ।
न प्रेतभूताद्युपसर्गदुःखं नेष्टैरघोरास्त्रविदो वियोगः ॥ १२७½ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
त्रिंशः पटलः ।

## अथ एकत्रिंशः पटलः ।

शिव एव हि सर्गान्तः शिवास्त्रं परिकीर्तितम् ।
षष्ठवर्गद्वितीयं तु चतुर्थाद्यार्धमात्रयुक् ॥ १ ॥
प्रथमात्[2] पञ्चमादाद्यौ संयोज्यैवं द्विवर्णकम् ।
अस्त्रं पाशुपतं चैतत् समस्तदुरितापहम् ॥ २ ॥
अस्यादौ स शिवास्त्रं[3] तु शिवबीजं नियोजयेत् ।
सर्वविघ्नहरं दिव्यं मुक्तिदं स्याज्जपादिभिः ॥ ३ ॥
अस्त्रयोरनयोश्चर्षिर्वामदेवस्तु देवता ।
शिव एव तु पङ्क्तिः स्याच्छन्दो लक्ष्मेण सिध्यति ॥ ४ ॥
विनियोगा ह्यघोरास्त्रे ये स्युस्तेऽप्यनयोः समाः ।

पाशुपतास्त्रशिवास्त्रयोः,

अष्टमाद्यं भूमियुक्तं तृतीयस्वरबिन्दुमत् ॥ ५ ॥
प्रथमं बीजमुद्दिष्टं षष्ठाद्यं स्याद् द्वितीयकम् ।
तृतीयमष्टमाद्यं तु पञ्चमस्वरसंयुतम् ॥ ६ ॥
वर्मास्त्रे चेति पञ्चार्णमस्त्रं पाशुपतं स्मृतम् ।
बिन्दुनादान्वितः प्राणः शुक्लं सर्गि च पाण्डरम् ॥ ७ ॥
ध्यायेद्धृदयपद्मस्थं चिन्मन्त्रो यः शिवात्मकः ।
प्रणवश्चैव तच्छन्दो महेशाय पदं ततः ॥ ८ ॥

1. 'स्ते' ख. पाठः. 2. 'मात' ग. पाठः. 3. 'रा' ख. पाठः.

विघ्नशब्दश्च हे चान्ते वाग्विशुद्धाय धीमहि ।
तन्नःपदान्ते रुद्रः स्यात् प्रकारान्ते तु चोदयात् ॥ ९ ॥
त्रयोदशस्वराढ्यं तु जलं वायुसमन्वितम् ।
षष्ठान्तं चोद्धरेदस्य पदस्यादौ च तारकम्[1] ॥ १० ॥
व्योमशब्दश्चतुर्थ्यन्तं विघ्नशब्दश्च हेयुतम् ।
शुक्लं षष्ठस्वरयुतमन्त्यं षष्ठान्त्यसंयुतम्[2] ॥ ११ ॥
सूक्ष्मशब्दश्चतुर्थ्यन्तं धीमहीत्यादिकं तथा ।
प्राग्वत् समुद्धृत्य भवेत् सावित्री शिवसंज्ञिता ॥ १२ ॥
अनयोर्विनियोगस्तु शिवपूजाविधौ स्मृतः ।

सावित्री —

मन्त्रं व्योमव्यापिसंज्ञं तु वक्ष्ये व्यक्तस्त्वेकाशीतिसंख्यैः पदैर्यः ।
वर्णानां चाप्यष्टषष्ट्युत्तराणि त्रीण्येवास्मिन् संख्यया वै शतानि ॥ १३ ॥
प्रथमं तु पदं तारं सप्तमान्त्यं त्वगन्वितम् ॥ १४ ॥
त्रयोदशस्वरोपेतमुद्धृत्यैवं तथा पुनः ।
षष्ठान्तं व्यापिने चेति द्वितीयं पञ्चवर्णकम् ॥ १५ ॥
व्योमशब्दश्च रूपाय सर्वव्यापिन इत्यपि ।
पञ्चाक्षरे पदे प्रोक्ते शिवायेति त्रियक्षरम् ॥ १६ ॥
अनन्तानाथशब्दैस्तं चतुर्थ्या चतुरक्षरे ।
पदेऽथानाश्रितायेति पञ्चार्णैरष्टमं पदम् ॥ १७ ॥
त्रिचतुर्वर्णकपदे चतुर्थ्या ध्रुवशाश्वते ।
योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिन इत्यपि ॥ १८ ॥
वसुबाणाक्षरे ध्यानाहाराय शरवर्णकम् ।
पञ्चाक्षरं तु तारादिर्मुख्यः षड्वर्णकं पदम् ॥ १९ ॥
सर्वप्रभव इत्यर्णैः पञ्चभिः स्यात् पदं ततः ।
शिवायेति त्रिवर्णः स्यादथेशानादिपञ्चकम् ॥ २० ॥

---

१. 'कः' ख. पाठः, २. 'ष्ठो' ग. पाठः.

उक्त्वा मूर्धाय वक्त्राय हृदयायेति चोपरि ।
गुह्याय मूर्तये चेति षट्सप्तमुनिसंख्यया ॥ २१ ॥

समुद्रोदधिसंख्यार्णैः क्रमात् स्यात् पदपञ्चकम् ।
तारं नमो वीप्सितं च पदं पञ्चाक्षरं भवेत् ॥ २२ ॥

षड्भिर्गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे वर्णद्वयं पदम् ।
अनिधनायपञ्चार्णैः सर्वविद्याधिपाय तु ॥ २३ ॥

सप्तार्णैः सर्वयोगाधिगतायेत्यष्टवर्णकम् ।
ज्योतीरूपायपञ्चार्णैः परमेश्वरपराय च ॥ २४ ॥

अष्टाक्षरैः परमात्मन्पदं स्याद् वेदवर्णकम् ।
अचेतना चेतनेति पदं सप्ताक्षरं स्मृतम् ॥ २५ ॥

व्योम्निद्वन्द्वं चतुर्वर्णं व्यापिन्युग्मं तथैव च ।
अरूपिन् वीप्सित षड्भिः प्रथमद्वितयं तथा ॥ २६ ॥

तेजोयुग्मं चतुर्वर्णं ज्योतिर्द्वन्द्वं तथैव हि ।
अरूप चाप्यनग्ने च अधूमेति त्रि[2]भिस्त्रिभिः ॥ २७ ॥

अभस्म चाप्यनादे च नात्रयं धूत्रयं तथा ।
[3]त्रियक्षराणि चत्वारि पदानीमानि वै विभो[4]ः ॥ २८ ॥

ताराद्यं भूर्भुवः स्वश्च द्वित्रि[5]र्वर्णानि वै क्रमात् ।
पदान्यनिधनेत्यर्णैश्चतुर्भिर्निधनं त्रिभिः ॥ २९ ॥

निधनो[6]द्भवपञ्चार्णं स्याच्छिवेत्यक्षरद्वयम् ।
द्वाभ्यां शर्वेति च पदं विज्ञेयमिह देशिकैः ॥ ३० ॥

महेश्वरेति श्रुत्यर्णं महादेवपदं ततः ।
सद्भावेश्वरपञ्चार्णं महाँतेजश्चतुष्टयम् ॥ ३१ ॥

पञ्चार्णं योगाधिपते मुञ्चद्वन्द्वं चतुष्टयम् ।
प्रथमाद्वितयं षड्भिः सर्वयुग्मं चतुष्टयम् ॥ ३२ ॥

---

१. ‘धा’ क. पाठः. २. ‘त्रि’ ख. पाठः. ३. ‘त्र्य’ ग. पाठः. ४. ‘भो’ ख. पाठः. ५. ‘व’, ६. ‘ना’ ग. पाठः. ७. ‘हादेवश्च’ ख. पाठः.

भवद्वन्द्वं चतुर्भिः स्याद् भवोद्भवचतुष्टयम् ।
अथाष्टवर्णं हि पदं सर्वभूतसुखप्रदम् ॥ ३३ ॥

सप्ताक्षरं सर्वपूर्वं सान्निध्यकर इत्यपि ।
ब्रह्मविष्णुरुद्रपरपदमष्टाक्षरं भवेत् ॥ ३४ ॥

अनर्चितानर्चितेति तथा संस्कृतवीप्सितम् ।
अष्टवर्णे पदे ज्ञेये पूर्वस्थितचतुष्टयम् ॥ ३५ ॥

साक्षिन्द्वन्द्वं चतुर्भिः स्याद् वेदार्णं तुरुयुग्मकम् ।
पतङ्गेति त्रिवर्णं स्यात् पिङ्गयुग्मं चतुष्टयम् ॥ ३६ ॥

ज्ञानद्वयं शब्दयुगं सूक्ष्मयुग्मं पदत्रयम् ।
पृथग् वेदाक्षराण्येव शिवशर्वद्वयं द्वयम् ॥ ३७ ॥

सर्वदेति त्रिभिर्वर्णैः पञ्चार्णैरोन्नमो नमः ।
शिवाय त्र्यक्षरपदं विज्ञेयं देशिकोत्तमैः ॥ ३८ ॥

तारपूर्वं नतिद्वन्द्वं पदं पञ्चाक्षरं स्मृतम् ।
एकाशीतिपदान्येवं विज्ञेयानि क्रमेण हि ॥ ३९ ॥

तारं सर्वात्मने जातिसहितं हृदयस्य तु ।
द्वितीयं पदमुच्चार्य सशिवब्रह्मशब्दयुक् ॥ ४० ॥

स्वजातियुक्तं तु शिरः शिखामन्त्रोऽपि कथ्यते ।
तृतीयं पदमुच्चार्य ज्वालिनीति द्विरभ्यसेत् ॥ ४१ ॥

जातियुक्ता शिखोक्ताथ चतुर्थं पदमुद्धरेत् ।
उक्त्वा पिङ्गलशब्दं तु वर्म स्याज्जातियोजितम् ॥ ४२ ॥

पञ्चमं पदमुच्चार्य शिवाघोरात्मके तथा ।
जातियुक्तं तदस्त्रं स्यादङ्गानीमानि पञ्च हि ॥ ४३ ॥

व्योमव्यापिमनोरस्य चन्द्रज्ञानोक्तमार्गतः ।
षडङ्गान्यपि दृष्टानि लिख्यन्ते तान्यनुक्रमात् ॥ ४४ ॥

ओं व्योमव्यापिशिव ओं नमः सर्वात्मने पराय परमेश्वराय योगाय योगसम्भवाय तुरु तुरु सत्य सत्य भवोद्भव वामदेवाय सर्वकार्यप्रशमन सदा-

१. 'स', २. 'पञ्चवर्णै', ३. 'ध्य भ' ख. पाठः.

शिव प्रसन्न नमोस्तु ते ठठ । हृदयाय नमः । शिव ब्रह्मशिरसे ठठ । ओं शिवहृदयज्वालिनि ठठ । ज्वालिन्यै शिखायै वषट् ।

शिवात्मकं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम् ।
आवर्तये महाघोरं कवचं पिङ्गलं शुभम् ॥ ४५ ॥

आयाहि पिङ्गल महाकवच शिवाज्ञया हृदयं बन्ध ज्वल घूर्ण शक्तिवज्रधर वज्रपाश वज्ररूप तमनुप्रविश्य सर्वदुष्टान् स्तम्भय हुं फट् पिङ्गलाय कवचाय हुम् । ओं ज्रुं सं ज्योतीरूपाय नेत्रत्रयाय वौषट् । पूर्ववदघोरास्त्रमेवास्त्रम् ।

शिवो हि देवतास्यर्षिः शक्तिर्गायत्रसंज्ञितम् ।
छन्दः स्मृतमतोऽन्यत् तु न मीमांस्यं कथञ्चन ॥ ४६ ॥

षष्ठाद्यं भूमिबीजस्थं पञ्चमस्वरबिन्दुयुक् ।
तोयं सर्गि जलं वायुर्द्वादशान्तयुतं तथा ॥ ४७ ॥

षष्ठान्तं व्यापिनेशब्दो हुतभुक्प्रियया‌न्वितः ।
तारादिर्दशवर्णोऽयं व्योमव्यापिशिवात्मकः ॥ ४८ ॥

तारः स्वरो द्वितीयश्च स्वरौ वेदर्तुसम्मितौ ।
व्योमव्यापी चतुर्थ्यन्तस्तारान्तोऽयं दशाक्षरः ॥ ४९ ॥

कृत्वा शिवास्त्रात् करयोः शुद्धिमङ्गुलिषु क्रमात् ।
न्यसेज्ज्येष्ठादिकरयोर्व्योमव्यापिदशाक्षरैः ॥ ५० ॥

शिरोक्षिकर्णघ्राणास्यकण्ठहृन्नाभिषु क्रमात् ।
गुह्ये च पादयोर्वर्णान् बिन्द्वन्तान् दश विन्यसेत् ॥ ५१ ॥

षडङ्गानि यथास्थानं विन्यस्य हृदयादिषु ।
कृत्वा शिवास्त्राद् दिग्बन्धं कुर्यात् पूजाजपादिकम् ॥ ५२ ॥

दीक्षां गुरोरवाप्यादौ निर्वाणां सामयीं तु वा ।
साधकीं वाभिषेकान्तां ततः संसाधयेन्मनुम् ॥ ५३ ॥

त्रिःस्नायी पूजयेल्लिङ्गे शिवं पञ्चावृतिक्रमात् ।
आसनादिक्रमात् प्रोक्तैरुपचारैस्तु शक्तितः ॥ ५४ ॥

आद्यावृतिः स्यान्मूर्त्यङ्गैर्विद्येशैरष्टभिः क्रमात् ।
नन्दीशाद्यैस्तृतीया स्याच्चतुर्थी दशलोकपैः ॥ ५५ ॥
तदस्त्रैः पञ्चमी प्रोक्ता यथैवोत्तरपद्धतौ ।

मन्त्रसाधनाधिकारः ।

---

एकाशीतिसहस्रं तु व्योमव्यापिमनुं जपेत् ॥ ५६ ॥
तद्दशांशं दशार्णं तु पलाशसमिधो घृतम् ।
तिलांश्च पायसं हुत्वा पुरश्चर्या प्रसिध्यति ॥ ५७ ॥
अपुरश्चरणोऽप्येष भक्तस्य यजतः शिवम् ।
मन्त्रः संसाधयेदिष्टं किं पुनः प्रोक्तजापतः ॥ ५८ ॥
आवहेन्महतीं सिद्धिं प्रोक्तां द्वित्रिचतुर्गुणम् ।
जपोऽणिमादींश्च गुणान् ददाति दशलक्षतः ॥ ५९ ॥
सप्तवारं जपाद् व्याधीन् सर्वानपि हरेन्मनुः ।
अष्टाभिश्च ग्रहान् सर्वानपस्मारान् दशाधिकैः ॥ ६० ॥
विषाणि पाठाद्धरति सदाशिवमनुः स्वयम् ।
स्वैक्यं सदाशिवं ध्यायन् कुर्यात् कर्माणि सिद्धये ॥ ६१ ॥
शान्तिकेषु स्मरेच्छुक्लं रक्तं पौष्टिकवश्ययोः ।
आकर्षणे च पीताभं स्तम्भे धूम्रं तु चाटने ॥ ६२ ।
कृष्णं तु मारणे शत्रुजये सूर्यप्रभं शिवम् ।
मुक्तये शङ्खकुन्देन्दुमृणालक्षीरसन्निभम् ॥ ६३ ॥
हृत्पद्मकोटरे ध्यायन् सदासौ मुच्यते भवात् ।
यद् यदिष्टं भवेत् कर्म तत्तद्धोमजपादिना ॥ ६४ ॥
संसाधयेदयत्नेन पक्षादर्वाङ् न संशयः ।
पल्लवाद्यैस्तु पटले[२] प्रोक्तद्रव्यादिभिर्हुतः ॥ ६५ ॥
नित्यमष्टोत्तरशतं तत्तत्कर्म प्रसाधयेत् ।

व्योमव्यापिप्रकरणम् ।

---

साजेशोऽनुग्रहः साग्निः काष्ठमोबिन्दुनादवान् ॥ ६६ ॥
पिण्डं स्याद्[1] बीजरत्नं तदाखिलार्थप्रसाधनम् ।
दीर्घस्वरैः स्वेनाङ्गानि जातियुक्तानि षट् क्रमात् ॥ ६७ ॥
ऋषिः स्यादाङ्गिराश्छन्दो दैवीगायत्रमस्य हि ।
वज्रं तु देवता ज्ञेयं[2] कालाग्निसदृशद्युति ॥ ६८ ॥
षट्कोटियुक्तं तीक्ष्णाग्रं शितधाराभिरन्वितम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रप्रत्यर्थिविदारणविधिक्षमम् ॥ ६९ ॥
लक्षजापः पुरश्चर्या दशांशं च तिलैर्हुतम् ।
चन्द्रेन्द्रबिम्बमध्यस्थं पिण्डं वज्राकृति स्मृतम् ॥ ७० ॥
ज्वालामालाकुलं पीतं स्तम्भनं सर्वविद्विषाम् ।
प्रतिवादिमुखे सैन्ये मत्तेभमहिषादिषु ॥ ७१ ॥
चन्द्रेन्द्रबिम्बबाह्यस्थं पिण्डं तज्जपितं स्मृतम् ।
पीतं ज्वालाकुलं सद्यस्तत्तत् संस्तम्भयेत् स्फुटम् ॥ ७२ ॥
वाय्वग्निसंयुतं ध्यातं पिण्डं संस्तम्भमावहेत् ।
ग्रहग्रस्ते तथा ध्यातं पिण्डं तन्मोक्षमावहेत् ॥ ७३ ॥
रोचनालिखितं त्वेतत् पटादौ यत्र पूज्यते ।
तद् गृहं ग्रहरोगाहिक्षुद्ररोगास्त्यजन्ति हि ॥ ७४ ॥
ऐन्द्रमण्डलगं पिण्डं स्तम्भयेदुद्यदायुधम् ।
आप्यमण्डलगं पिण्डमग्न्यनुग्रहवर्जितम् ॥ ७५ ॥
विषदष्टशिरोन्यस्तं विषं सद्यो विनाशयेत् ।
पद्मोदरेन्द्रबिम्बेऽपि पिण्डं पिण्डस्य मध्यतः ॥ ७६ ॥
नामजीवविदर्भं तु विलिख्यं स्याद् दलेष्वथ ।
पश्चिमोत्तरयाम्यप्राङ्मध्येऽर्णान् विपर्तेर्लिखेत् ॥ ७७ ॥
तारं संवर्तकः साक्षः पार्श्वं ठौर्विपतेर्मनुः ।
पञ्चार्णो विनियोगोऽस्य परस्तादिह लिख्यते ॥ ७८ ॥

---

१. 'से' क. ख. पाठः. २. 'ध्ये' क. ग. पाठः.

वाय्वग्निरक्षःशार्वेषु यादीन् वान्तान् सबिन्दुकान् ।
सबिन्दुवामनेत्रेण त्रिष्कृत्वो वेष्टयेद् बहिः ॥ ७९ ॥

भूर्जे गोमयतोयार्द्ररोचनापङ्कतो लिखेत् ।
हेमसूच्या तु पुष्यर्क्षे सिद्धयोगेऽथवा लिखेत् ॥ ८० ॥

संपूज्य जपहोमाभ्यामष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जातरूपहिरण्यैस्तु वेष्टितं गुलिकीकृतम् ॥ ८१ ॥

धृतं हस्तेऽथवा कण्ठे मूर्ध्नि वा सर्वकामदम् ।
आयुरारोग्यविजयश्रीसमृद्धिसुतप्रदम् ॥ ८२ ॥

भूतग्रहादिचोरारितोयाग्निभवभीतिहृत् ।
सिंहव्याघ्रगजादिभ्यो रक्षत्येनं सदा धृतम् ॥ ८३ ॥

कालात् तु वायुना नीते जीर्णपत्रे तु तल्लिखेत् ।
रहितं बिन्दुना चेन्दुमण्डलेन च यादिभिः ॥ ८४ ॥

विलिख्य काकपत्रेण कृष्णेनोच्चाटयेद् रिपून् ।
पिण्डं क्रोधाग्निपुटितमुच्चाटादिविधौ जपेत् ॥ ८५ ॥

खं सश्रोत्राग्निचन्द्रार्धं बीजं क्रोधाग्निसंज्ञितम् ।
निम्बच्छदे तथा काकमलदेहाग्निभिर्लिखेत् ॥ ८६ ॥

तदङ्गजैश्च विद्वेषस्तयोः स्यादुक्तधूपतः ।
विषमार्जारनकुलसर्पाश्वमहिषोद्भवैः ॥ ८७ ॥

रोमभिर्धूपयेद् द्वेषे निम्बपत्रविमिश्रितैः ।
क्रोधाग्निपुटितं पिण्डं लिखितं निम्बपत्रके ॥ ८८ ॥

विषेण रुधिरार्द्रेण चिताग्नौ मारणं हुतम् ।
पाशेनाद्यन्तसंरुद्धं दीर्घक्रोधाग्निसंपुटम् ॥ ८९ ॥

पिण्डं जपेच्छान्तिकेषु क्षुद्रशान्तौ विशेषतः ।
रोगादिशान्तये जप्यः पिण्डः स्यात् कुम्भसंपुटः ॥ ९० ॥

---

१. 'जतुरूप्यहि' क. पाठः. २. 'दः' क. पाठः.

चन्द्रमण्डलमध्यस्थंसुधामृतसितद्युतिः ।

पिण्डाधिकारः ।

---

संवर्तः सविषाग्नित्वक् सद्यान्तार्धेन्दुशेखरः ॥ ९१ ॥
बीजं चिन्तामणिर्नाम महारुद्रोऽस्य देवता ।
ऋषिस्तुम्बुरुसंज्ञोऽस्यच्छन्दो गायत्रमेव हि ॥ ९२ ॥
लक्षावृत्तिः पुरश्चर्या दशांशं च तिलैर्हुतम् ।
प्राणानुग्रहहीनं तं बीजं दीर्घस्वरैर्युतम् ॥ ९३ ॥
जातिभाञ्जि षडङ्गानि बिन्द्वन्तं नयनत्रयम् ।

तदप्यस्त्रान्तम् ।

शिवासनेऽरुणाम्भोजे स्थितो ध्येयोऽरुणद्युतिः ॥ ९४ ॥
शरशूलाग्निनागांश्च टङ्कं च करवालकम् ।
कपालं कार्मुकं बिभ्रदष्टबाहुं त्रिलोचनम् ॥ ९५ ॥
रक्ताकल्पः कृत्तिवासाः कपर्दी चन्द्रशेखरः ।
रौद्रः प्रसन्नवदनो ध्येयः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ९६ ॥
केसराग्रेषु चाङ्गानि देव्यो दिक्पत्रमध्यगाः ।
कोणच्छदस्था दूत्योऽस्य सर्वा ललितविग्रहाः ॥ ९७ ॥
जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ।
दुर्गा च सुभगा चैव कराली मोहनी तथा ॥ ९८ ॥
तद्बाह्ये दशलोकेशैर्विघ्नवीरेशमातृभिः ।
तदस्त्रैरपि तद्बाह्ये चतुरावरणैर्यजेत् ॥ ९९ ॥
उपचारैर्यथाशक्ति सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत् ।
विनियोगा भवन्ति स्म जपध्यानार्चनारतेः ॥ १०० ॥
ज्वलदग्निपुरस्थं तद् बीजं ग्रस्तशिरःस्थितम् ।
स्तोभकृद् ग्रहमोक्षं च करोति जपतः क्षणात् ॥ १०१ ॥
स्त्रीनामसहितं योनौ स्मृतं बीजं वशीकरम् ।
अग्निवायुपुरस्थं तद् बीजाग्निस्थः स्वयं स्मरेत् ॥ १०२ ॥

---

१. 'स्थं', २. 'ता' क. ख. पाठः. ३. 'ज', ४. 'द' ख. पाठः,

सर्वरक्षाकरमिदमात्मनो वा परस्य वा ।
कृष्णं कर्णे नयनयोः कुक्षौ मारे स्मृतं तु तत् ॥ १०३ ॥
बाधिर्यमन्धता शूलं बीजमापादयेत् स्फुटम् ।
बीजमग्निमयं देहे ध्यातं शत्रोस्तु दाहकृत् ॥ १०४ ॥
ह्र्याग्निवायुबिम्बस्थं स्मृतं योषिद्वशङ्करम् ।
चक्रीमूर्द्धैरवास्यस्थं यन्त्रं तन्नामबीजवत् ॥ १०५ ॥
वाक्स्तम्भनकरं शत्रोर्जृम्भा मोहादिभूगृहे ।
मधुरत्रयकुम्भस्थं क्षुत्पिपासाज्वरादिहृत् ॥ १०६ ॥
षट्कोणे मूर्ध्नि तद् ध्यातं दष्टस्याघोऽवतारितम् ।
पादान्तं त्रिरिदं सद्यो विषसंहरणं स्पृशेत् ॥ १०७ ॥
अनूर्ध्वाग्निविषं बीजममृतास्रावि पाण्डुरम् ।
कण्ठे वामकरे ध्यातं विषमृत्युजरापहम् ॥ १०८ ॥
षट्कोणमध्यगं बीजमग्निवाय्वादिवर्जितम् ।
अनूर्ध्वाग्न्यादिकं षट्सु कोणेष्वग्निसमन्वितम् ॥ १०९ ॥
बहिर्भूमण्डलोपेतं भूर्जे रोचनयार्चितम् ।
पिण्डयन्त्रोक्तविधिना गुलिकीकृत्य साधितम् ॥ ११० ॥
चिन्तामणिसमं ह्येतत् प्राग्वत् सर्वार्थसाधकम् ।
प्रणवोऽथ वचः शब्दः कर्णी नाभिस्ततो जलम् ॥ १११ ॥
रुद्रस्वरस्थं नत्यन्तो गुहमन्त्रः स्वराक्षरः ।
विश्वामित्रोऽस्य तु मुनिरुष्णिग् छन्दस्तु दैवतम् ॥ ११२ ॥
षण्मुखोऽर्णायुतजपं पुरश्चर्यादशांशतः ।
तिलाज्यहोमं कुर्याच्च पूजां चोक्तविधानतः ॥ ११३ ॥
षण्मुखो वैकवक्त्रो वा द्वादशाक्षभुजो गुहः ।
चतुर्बाहुर्द्विबाहुर्वा रक्ताकल्पविभूषितः ॥ ११४ ॥

१. 'वा' ख. पाठः. २. 'र्णि' ग. पाठः. ३. 'ह्रा' ख. पाठः. ४. 'रक्तो त्पलवि' क. ग. पाठः.

युवा कुमारो बालो वा स्कन्दो ध्येयः सिताननः ।
पाणिभ्यां पङ्कजेऽधस्तादूर्ध्वे शक्तिं च कुक्कुटम् ॥ ११५ ॥
बिभ्रच्चतुर्भुजः स्कन्दो ध्येयः पद्मासने स्थितः ।
दक्षिणे पङ्कजं शक्तिं मातुलुङ्गं च वामतः ॥ ११६ ॥
पाशं चतुर्भुजो बिभ्रदेकवक्त्रो युवा गुहः ।
अभयं पङ्कजं शक्तिं दक्षिणे वरतोमरे ॥ ११७ ॥
कुलिशं षड्भुजो बिभ्रदुपविष्टोऽम्बुजासने ।
स्थितोऽपि षण्मुखो ध्येयस्त्वेकवक्त्रोऽथवा भवेत् ॥ ११८ ॥
अभयं शक्तिशूलेषून् कुलिशं चाङ्कुशं करैः ।
दक्षिणे धारयंस्तद्वत् कटिस्पर्शिवरप्रदम् ॥ ११९ ॥
दण्डं च तोमरं चापं घण्टां पाशं च वामतः ।
अधोहस्तात् प्रभृत्यूर्ध्वं स्याद् द्वादशभुजो विभुः ॥ १२० ॥
स्नात्वा मूलाङ्गमन्त्रैस्तु कृतसन्ध्याविधिः शुचिः ।
धौताङ्घ्रिहस्तः स्वाचान्तो द्वारि द्वाःस्थाविमौ यजेत् ॥ १२१ ॥
शक्तिपाणये नमः । वज्रपाणये नमः ।
प्रविश्यान्तरुपासीनो विघ्नेशं च गुरुं यजेत् ।
कृतात्मयागस्तिलकी मूलाङ्गाढ्योदकेन तु ॥ १२२ ॥
स्वशिरोर्चाक्षितिद्रव्यप्रोक्षणादिविशुद्धितः ।
भद्रके मण्डले शक्तिमनन्तासनगात्रकान् ॥ १२३ ॥
धर्मादीन् कन्दनालाब्जैः सत्त्वाद्यान् मण्डलानि च ।
ब्रह्मादींश्चापि विद्याद्याः शक्तीर्याद्यैर्नवाक्षरैः ॥ १२४ ॥
क्षान्तैर्दीर्घस्वरार्धेन्दुयुक्तैः सङ्कल्प्य पूजयेत् ।
स्कन्दमूर्तिं यथोद्दिष्टां कर्णिकायां निवेश्य तु ॥ १२५ ॥
हृत्पद्माद् द्वादशान्ताद् वा ज्योतिः सौषुम्नमार्गतः ।
स्कन्दात्मकं समावाह्य मूर्तौ संस्थाप्य रोधयेत् ॥ १२६ ॥
संनिरुध्यावकुण्ठ्याथ प्ररोच्यामृततां नयेत् ।
अष्टोपचारैरर्घ्याद्यैरभिपूज्य यथाविधि ॥ १२७ ॥

---

१. 'मन्त्रादीन्' ग. पाठः.

अङ्गानि शक्तीः षण्मूर्तीः परिवारांश्च पूजयेत् ।
केसरेषु तदग्रेषु दलाग्रेषु च तद्बहिः ॥ १२८ ॥
अङ्गादीन् लोकपालांस्तांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

आवरणनामानि —

विद्या शान्तिः स्मृतिर्मेधा प्रज्ञा कान्तिर्द्युतिर्धृतिः ॥ १२९ ॥
व्यापिनी चेति बिन्द्वन्तास्तन्मध्ये नवमीं यजेत् ।
सनत्कुमारः स्कन्दश्च विशाखः षण्मुखस्तथा ॥ १३० ॥
नैगमेषो हेमचूडः षडिमान् पूजयेत् क्रमात् ।
प्राग्याम्यरक्षोवरुणवायुसोमदिशागतान् ॥ १३१ ॥
अग्नीशयोः शङ्खपद्मौ निधी च धनवर्षिणौ ।
चतुर्द्वारेष्वथ द्वौ द्वौ वीरसेनादिकान् यजेत् ॥ १३२ ॥
वीरसेनमहासेनौ भद्रसेनसुषेणकौ ।
चारुसेनश्च सेनानीः सेनान्तौ पूर्णचित्रकौ ॥ १३३ ॥

पूज्या इत्यर्थः ।

बाह्ये द्वादशराशिस्था द्वादशेज्या गणेश्वराः ।
बाणशाखौ भद्रसेनः सेनानीश्च भवात्मजः ॥ १३४ ॥
सुब्रह्मण्यः कार्तिकेयो गुहो वै कुक्कुटध्वजः ।
मयूरवाहनश्चैव गाङ्गेयश्च ततः परम् ॥ १३५ ॥
देवसेनापतिश्चैव द्वादशैते गणेश्वराः ।
तद्बाह्ये लोकपालास्तु पूज्याः सायुधवाहनाः ॥ १३६ ॥
विघ्नं च वीरभद्रं च याम्ये मातॄश्च पूजयेत् ।
वायोः समीपे दुर्गां च धूर्तसेनं तथैशतः ॥ १३७ ॥
एवं सपरिवारं तमिष्ट्वाग्नावपि पूजयेत् ।
तिलाज्यबैल्वचरुभिर्नित्यहोमः प्रशस्यते ॥ १३८ ॥

मन्त्रसाधनाद्यधिकारः ।

---

१. 'वै' ग. पाठः

चतुरश्रे षडश्रे वा कुण्डे सत्स्कन्दपावके ।
हुत्वा द्रव्यैर्यथोद्दिष्टैः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ १३९ ॥
समिद्भिर्बिल्वजाभिः श्रीः खादिरैः पुष्टिरुत्तमा ।
पशूनेधोभिराश्वत्थैः प्लाक्षैर्धान्यधनानि च ॥ १४० ॥
मेधां वाप्नोति विद्यां च पालाशैर्ब्रह्मवर्चसम् ।
अन्नेनान्नं तु साज्येन पायसेन श्रियं धनम् ॥ १४१ ॥
पुत्रजीवैस्तथा पुत्रांस्तिलैः सर्वार्थसम्पदः ।
यद्वर्णपुष्पैर्जुहुयात् तत्तद्वर्णाम्बराप्तये ॥ १४२ ॥
दूर्वाभिरायुः कमलैः श्रीर्युद्धे विजयः शरैः ।
सबुसैः सर्षपैः स्तम्भो द्वेषः कार्पासकोषणैः ॥ १४३ ॥
विषपत्रैस्तथोच्चाटो मारणं सविषैर्विषैः ।
कन्यां समधुरैर्लाजैः सिद्धार्थैररिनाशनम् ॥ १४४ ॥
सक्षौद्रलवणैर्वश्यं सर्वेषां भवति ध्रुवम् ।
चतुःषष्टिदिनं हुत्वा तदर्धं पक्षमेव वा ॥ १४५ ॥
कार्यगौरवतो मन्त्री हुत्वा तत्तदवाप्नुयात् ।
होमकर्मण्यशक्तानां जपस्तत्त्रिगुणो भवेत् ॥ १४६ ॥
चतुर्गुणो वा भक्तश्चेद् द्विगुणादपि साधयेत् ।
रत्नसिंहासने पद्मे शिशुं स्कन्दं शिवाङ्कगम् ॥ १४७ ॥
ध्यायंस्तत्फलरत्नौघैः शीर्यमाणैः स्वविग्रहम् ।
आपूर्यमाणं सञ्चिन्त्य जपतो मासमात्रतः ॥ १४८ ॥
धनसम्पत्समृद्धिश्च कुबेरस्येव जायते ।
कृत्तिकायां तथा षष्ठ्यां पूजाहोमजपादिकम् ॥ १४९ ॥
सविशेषं विधायाशु सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
शिवास्त्रवत् पाशुपतास्त्रमुक्तं व्योमाख्यविद्यापि च पिण्डबीजम् ।
तथैव चिन्तामणिबीजमस्मिन् षडुक्तमन्त्रः पटले समासात् ॥ १५०१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
एकत्रिंशः पटलः ।

---

१. 'णं' क. ग. पाठः. २. 'वर्षमे' ख. पाठः.

## अथ द्वात्रिंशः पटलः ।

शिवोत्तमान्त्यौ[1] तिथीशस्थाण्वनुसारिणौ च हृत् ।
पूजामन्त्रो ह्ययं शास्तुर्लकुलीशो तिथाशयुक्(?) ॥ १ ॥
सबिन्दुर्लोहितो रायगोप्त्रे नम इतीरितः ।
तारादिर्मूलमन्त्रोऽयं नवार्णः सर्वकामदः ॥ २ ॥
षष्ठवर्गाच्चतुर्थस्तु तारादिर्दीर्घबिन्दुमान् ।
भूताधिपतयेशब्दो नमोन्तोऽयं च तन्मनुः ॥ ३ ॥
अनेनार्घ्यादिभिः शास्ता पूजनीयो यथाविधि ।
भूतसेनश्चतुर्थ्यन्तो विद्महेपदयोजितः ॥ ४ ॥
भवपुत्रस्तथायान्ते धीमहे तन्न इत्यपि ।
शास्ता प्रचोदयादेषा गायत्री तारपूर्विका ॥ ५ ॥
रेवन्ताय च शास्त्रे च गोप्त्रे च प्रभवे तथा ।
दीप्त्रे चैव प्रशास्त्रे[2] चाङ्गानि[3] जातियुतानि षट् ॥ ६ ॥
शाम्बोऽस्यर्षिस्तुगायत्रं[4] छन्दः शास्ता तु देवता ।
लक्षजापः पुरश्चर्यादशांशाज्यतिलैर्हुतात् ॥ ७ ॥
सिद्धेनानेन मन्त्रेण सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
खड्गाय क्षुरिकायै च धनुषे च शराय च ॥ ८ ॥
हुंफडादिनमोन्ताश्च शस्त्रमन्त्रा यथाक्रमम् ।
भूतसिंहासनाम्भोजे शास्तारं कर्णिकागतम् ॥ ९ ॥
चतुर्भुजं सौम्यवक्त्रं श्यामलं कोमलाकृतिम् ।
वामोरुपादेनासीनं लम्बेतरपदाम्बुजम् ॥ १० ॥
शरचापौ तथा खड्गं क्षुरिकां दधतं भुजैः ।
पूर्णेन्दुवदनं चारुनीलकुञ्चितकुन्तलम् ॥ ११ ॥
हारिहाराभिरामाङ्गमाबद्धोदरबन्धनम् ।
किरीटचारुकेयूरकटकाङ्गुलिवेष्टनैः ॥ १२ ॥

---

१. 'न्त्यौ' ख. पाठः. २. 'श्च' क. ग. पाठः. ३. 'चाङ्गजा', ४. 'शाब्दो ऽस्य' ख. पाठः.

तथैव कटिसूत्रेण नूपुराभ्यां च बिभ्रतम् ।
नीलकौशेयवसनमाबद्धकरवालकम् ॥ १३ ॥

रक्ताकल्पं सुपीनांसं सर्वसौन्दर्यकेतनम् ।
वामतोऽस्य प्रभां देवीं रक्तामुत्पलधारिणीम् ॥ १४ ॥

अष्टवर्षाकृतिं चापि सत्यकं दक्षिणे सुतम् ।
ध्यात्वावाह्य तु शास्तारं देवं सावरणं यजेत् ॥ १५ ॥

तद्यथा —

ध्यात्वा तु सकलीकृत्य विघ्नद्वारं च पूजयेत् ।
क्षुरिकाखड्गपाणी द्वौ द्वाःस्थावुभयतो यजेत् ॥ १६ ॥

यक्षं विद्याधरं द्वारश्रियं चोपरि पूजयेत् ।
अस्त्रं क्षिप्त्वा प्रविश्यान्तर्देहल्यां विनिधाय तत् ॥ १७ ॥

वास्तुब्रह्मासनानीष्ट्वा मूलाङ्गैरर्घ्यमर्पयेत् ।
गन्धपुष्पकुशक्षीरतिलसिद्धार्थकाक्षतैः ॥ १८ ॥

अर्घ्यं स्याद् भूतनाथस्य तिलपुष्पाक्षताम्बुभिः ।
चन्दनं च निशा पाद्यमथ पद्मं च चन्दनम् ॥ १९ ॥

लवङ्गवारि चाचामं हृदा सर्वं तु दापयेत् ।
तिलकी सशिखापुष्पः शक्तिं पीठं धरात्मकम् ॥ २० ॥

प्रभूतसिंहासनाय सर्वशक्तिमयाय च ।
नम इत्यभिपूज्याङ्घ्रीन् धर्मादीन् भूतविग्रहान् ॥ २१ ॥

तमः सत्त्वं रजः पद्मं शक्तीर्गोप्त्र्यादिकास्तथा ।
ततो मूर्तिं मन्त्रदेहां प्रोक्तरूपायुधादिकाम् ॥ २२ ॥

सङ्कल्प्यावाहयेन्मूर्तौ तस्यां देवं चिदात्मकम् ।
आधारादुद्गतं सूक्ष्मं परं ज्योतिर्हृदम्बुजात् ॥ २३ ॥

आवाह्य स्थापयेद् देवं सन्निधीकृत्य रोधयेत् ।
प्ररोच्य चामृतीकृत्य तथैवार्घ्यादिभिः क्रमात् ॥ २४ ॥

उपचारैर्निवेद्यान्तं यजेदावरणानि च ।
अङ्गानि केसराग्रेषु गोप्त्र्याद्यादीर्दलमध्यगाः ॥ २५ ॥
तच्छक्तीश्च दलाग्रेषु स्कन्दादीन् पीठबाह्यतः ।
घोषवन्तं तु निर्माल्यधरमैशे समर्चयेत् ॥ २६ ॥
अश्वं तु वाहनं शास्तुर्गजं वा मुखमण्डपे ।
आर्यादीनर्चयेद् वीथ्यां लोकपालांस्तु तद्बहिः ॥ २७ ॥
तदस्त्राणि बहिस्तेषामित्यावरणसप्तकम् ।

आवरणनामानि —

गोप्ता च पिङ्गलाक्षश्च वीरसेनश्च शांभवः ॥ २८ ॥
त्रिणेत्रः शूलभृद् दक्षो भीमरूपस्तथाष्टमः ।
एतेऽष्टमूर्तयः शास्तुः पृथिव्यादिभिरन्विताः ॥ २९ ॥
गोप्त्री च पिङ्गलाक्षी च वीरसेना च शांभवी ।
त्रिणेत्रा शूलिनी दक्षा भीमरूपाष्टमी स्मृता ॥ ३० ॥
प्रभा तु नवमी तासामित्युक्ताः शास्तृशक्तयः ।
स्कन्दो गणपतिश्चाथ शाम्बो मधुकरस्तथा ॥ ३१ ॥
दिक्षु पूज्यास्तु कोणेषु खड्गश्च क्षुरिका धनुः ।
शरश्च नामधेयैः स्वैः पूज्याः स्युर्हुंफडन्तकैः ॥ ३२ ॥
आर्यः शास्ता महासेनः सेनानीर्भूतवल्लभः ।
रुद्रजो रूपवान् कामी वरदो लोकपावनः ॥ ३३ ॥
नीलाश्वः श्वेतमातङ्गः श्यामी पीतानुलेपनः ।
रक्तमालाधरः शूरो मायो मातृगणप्रियः ॥ ३४ ॥
कालवासा गणाध्यक्षः खड्गहस्तो धनुर्धरः ।
सहजायो जनावेशः साधुः संसाररक्षकः ॥ ३५ ॥
मधुमान् शम्बरश्चैते ह्यष्टाविंशतिभूतपाः ।
इन्द्राद्या लोकपालाश्च वज्राद्यान्यायुधानि च ॥ ३६ ॥
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्बल्यन्तं स्थिरबेरके ।
चले च स्थण्डिले गन्धपुष्पधूपैस्ततो धिया ॥ ३७ ॥

बलिं निवेद्यं वह्नौ च तमावाह्य जुहोतु च।
प्रदक्षिणनमस्कारस्तुतिजप्यैः प्रसादयेत् ॥ ३८ ॥

इदं हि यजनं शास्तुः श्रीपुष्टिविजयप्रदम्।
आयुरारोग्यविभवपुत्रसम्पद्विवर्धनम् ॥ ३९ ॥

**पूजाधिकारः।**

शास्तारं मृगयाश्रान्तमश्वारूढं गणावृतम्।
पानीयार्थं वनादेवं ध्यात्वा मृगयुरूपिणम् ॥ ४० ॥

मध्याह्ने सक्तुसंयुक्तं गृहीत्वाञ्जलिना जलम्।
विकीर्य नवभिर्मन्त्रैस्तद्गणानपि तर्पयेत् ॥ ४१ ॥

विश्रान्ताय ततस्तस्मै स्वकार्याणि निवेदयेत्।
प्रीतचेतास्तथेत्युक्त्वा स तु यात इति स्मरेत् ॥ ४२ ॥

सिध्यन्ति सर्वकार्याणि चिन्तितान्यप्ययत्नतः।
तथैवार्यादिभिर्मन्त्रैर्बलिं वास्मै हरेन्निशि ॥ ४३ ॥

भूतक्रूरेण साज्येन पुष्पाक्षतविमिश्रितम्।
महाशास्त्रे नमश्चेति भूताधिपतये तथा ॥ ४४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रपुत्राय पञ्चकेश्वरकाय च।
साधवे नम इत्येभिर्मन्त्रैर्वा बलिमाहरेत् ॥ ४५ ॥

पूर्वादिदिक्षु मध्ये च रक्षायै पुष्ट्यै श्रियै।
बौङ्काडीर्णां(?) जनाः सर्वे कोटिकोटिविभाजिताः ॥ ४६ ॥

भवन्तु सहिताः प्रीतास्तेभ्यस्ताभ्यो नमो नमः।

पूर्वादिगणेभ्यो भीमरूपेभ्यो भीमवक्त्रेभ्यो विविधाकृतिभ्यः स्थिरेभ्यश्चपलेभ्यो वरदेभ्यो बहुरूपेभ्यो विरूपेभ्यो भीमरूपेभ्यः सद्भ्योऽसद्भ्यः सदसद्भ्यः सर्वगणेभ्यो नमो नमः।

द्विरण्डोऽनन्तदण्डाढ्यः कर्णान्तो नाभिराषढी ॥ ४७ ॥
साक्षो मीनोऽथ पतये ह्यच मन्त्रो नवाक्षरः।

---

१. 'ति' क. ग. पाठः. २. 'क्ता' ख. पाठः. ३. 'या', ४. 'णञ्जणाः स' क. पाठः. ५. 'ताः प्रीता', ६. 'क्षे' ख. पाठः.

पूर्ववत् साधनाचाद्यैः फलं प्राग्वत् प्रयच्छति ॥ ४८ ॥

**शास्तृमन्त्राधिकारः ।**

---

अन्त्योऽनुग्रहदण्डाढ्यस्तारादिः क्षेत्रपाक्षरैः ।
भूमिः सदीर्घत्वङ्नत्या मन्त्रः क्षेत्रेशदैवतः ॥ ४९ ॥
आद्येनाङ्गानि दीर्घैस्तु स्वैर्युक्तानि षट् क्रमात् ।
पूर्वसेवार्णसाहस्रं छन्दो गायत्रमेव हि ॥ ५० ॥
ऋषिस्तु वटुको नाम क्षेत्रपालस्तु दैवतम् ।
कृष्णाष्टम्यादिभूतान्तं जपेन्नित्यं सहस्रकम् ॥ ५१ ॥
पुरश्चर्या भवेदस्य ध्यानं चाथ निगद्यते ।

पायादञ्जनपुञ्जकुञ्जरघटानीलाञ्जनाम्भोदवद्
दोर्भ्यां खण्डकपालमप्यथ गदां व्योमाम्बरो भीषणः ।
दंष्ट्रादन्तुरितास्यवृत्तकपिशस्त्र्यक्षोर्ध्वकेशालकः
सर्पाकल्पशिरःस्रगञ्चितवपुः क्षेत्रेश्वरो वश्चिरम् ॥ ५२ ॥

अन्यथान्ये —

व्यालम्बोर्ध्वजटाधरं त्रिणयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभं
दोर्द्वन्द्वात्तगदाकपालमरुणस्रग्वस्त्रगन्धोज्ज्वलम् ।
घण्टाशृङ्खलमेखलाध्वनिमिलद्धुङ्कारभीमं विभुं
वन्दे मण्डलिताहिकुण्डलधरं तं क्षेत्रपालं सदा ॥ ५३ ॥

एह्येहि दुष्ट ठलमरु भञ्ज हन विघ्न, महाभैरव! क्षेत्रपाल! बलिं गृह्ण ठठ ।

साध्येनानेन मन्त्रेण तत्कपाले बलिं हरेत् ॥ ५४ ॥
वामदोष्णाष्टदिक्स्थानामन्येषां चानलादितः ।
अनलश्चाग्निकेशश्च कालो घण्टारवस्तथा ॥ ५५ ॥
महाक्रोधाह्वयश्चाथ पिशिताशनसंज्ञितः ।
पिङ्गलाक्षोर्ध्वकेशश्च चतुर्थ्या ठवयान्तकाः ॥ ५६ ॥

---

१ 'लं व्यो' ख. पाठः,

पूज्याः स्युर्दिक्षु तेभ्यस्तु मध्यरात्रे बलिं क्षिपेत् ।
तनोति रक्षां विजयं समृद्धिं चाप्ययं बलिः ॥ ५७ ॥

प्राङ्गणे गोमयालिप्ते मन्त्रविन्यस्तविग्रहः ।
संरक्तगन्धपुष्पाद्यमाहृत्यार्घ्यजलोक्षितः ॥ ५८ ॥

अनन्तयोगपीठाय नम इत्यासनं यजेत् ।
तस्मिन्नावाह्य मूलेन क्षेत्रपालं यथोदितम् ॥ ५९ ॥

अर्घ्यादिभिश्च दीपान्तमुपचारैस्तमर्चयेत् ।
दिक्ष्वावाह्य चतुर्मूर्तीः कोणेष्वङ्गानि चाग्रतः ॥ ६० ॥

नेत्रमस्त्रं[1] पुनर्दिक्षु गन्धाद्यैर्विजनेऽर्चयेत् ।
अतिचारश्च राजा च कपाल्योख्यो महामनाः ॥ ६१ ॥

ते श्यामाः पर्वताकाराः सेष्वासा राक्षसोपमाः ।
ततस्तु बलिमन्त्रेण सव्यहस्तेन मन्त्रितम् ॥ ६२ ॥

दध्याज्यमिश्रं शाल्यन्नं सिद्धं कुडुबतण्डुलैः ।
दत्त्वाम्भस्त्रिस्तदन्नाधोत् त्रिः कपाले बलिं क्षिपेत् ॥ ६३ ॥

शिष्टेन मूर्तिभ्योऽङ्गेभ्यो बलिं क्षिप्त्वा सकृत्सकृत् ।
स्वैक्यक्षेत्राधिपो मूलमष्टोत्तरशतं जपेत् ॥ ६४ ॥

क्षेत्रपालबलिं त्वेवं यः कुर्याद् गृहरक्षणम् ।
श्रियं पुष्टिं धनं सौख्यं पशून् पुत्रांश्च विन्दति ॥ ६५ ॥

क्षेत्रपालबलिविधिः ।

---

वामकर्णोऽथ कुम्भस्थो मीनो रेफः फडन्तकः ।
चण्डेश्वरमनुस्त्र्यर्णो भजतां सर्वकामदः ॥ ६६ ॥

कर्णी मीनः सदृक्क्ष्वेषश्चण्डेश्वरपदं ततः ।
चतुर्थ्यन्तं तु वर्मास्त्रे चण्डेश्वरनवाक्षरः ॥ ६७ ॥

---

१. 'न्त्रं', २. 'ला' ख. पाठः.

अनयोर्मन्त्रयोस्तुल्यमृषिच्छन्दोधिदैवतम् ।
अङ्गानि च विधानं च साधनाद्यं च तत्समम् ॥ ६८ ॥
छन्दस्तु बृहती तद्वदृषिः स्याच्चण्डकौशिकः ।
चण्डेश्वरो दैवतं स्यादस्त्रान्ताङ्गानि पञ्च हि ॥ ६९ ॥
दप्तिषड्ज्वलफट् + + ज्वालिनीति तटेति च ।
सर्वज्वालिनिशब्दाः स्युः फडन्ता जातिसंयुताः ॥ ७० ॥
पञ्चाङ्गानि हृदादीनि क्रमेण परिकल्पयेत् ।
तान्यस्त्रशुद्धकरयोर्ज्येष्ठाद्यङ्गुलिषु न्यसेत् ॥ ७१ ॥
मन्त्राक्षराणि त्र्यर्णस्य सर्वेष्वङ्गुलिपर्वसु ।
पदानि पञ्चाङ्गुलिषु नवार्णस्यापि विन्यसेत् ॥ ७२ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां त्रिभिश्चैके नैकार्णेन पदान्यपि ।
शिरोहृच्चरणेष्वर्णांस्त्र्यर्णस्यान्यस्य मस्तके ॥ ७३ ॥
मुखहृद्गुह्यपादेषु विन्यसेत् पदपञ्चकम् ।
पञ्चाङ्गानि हृदाद्येषु स्वावकाशेष्वनुक्रमात् ॥ ७४ ॥
त्रिलक्षं चैकलक्षं च पुरश्चर्या द्वयोरपि ।
शिवनिर्माल्यकुसुमैर्होमश्चास्माद् दशांशतः ॥ ७५ ॥

**मन्त्रसाधनम् ।**

शालिपिष्टप्रतिकृतिं नदीसैकतगां क्रमात् ।
छित्त्वा छित्त्वा तु जुहुयात् पादमारभ्य दक्षिणम् ॥ ७६ ॥
विप्रं तेन वशं कुर्यादपामार्गेन्धनानले ।
चिताकाष्ठानले प्रोक्तपुत्तल्या राजवश्यकृत् ॥ ७७ ॥
वैश्यशूद्रावपि तथा वशे कुर्यान्न संशयः ।
तिलतण्डुलतीक्ष्णाज्यैर्हैमकोष्ठानले रिपोः ॥ ७८ ॥
उन्मादाय जुहोत्यस्य शान्तिः क्षीरेण खादिरे ।
प्रियङ्ग्वग्नौ तत्कुसुमैर्घृतेनाप्यथ वा हुतम् ॥ ७९ ॥
पुरक्षोभस्तु यद्वर्णैः कुसुमैरम्बराप्तये ।
साग्निवामाक्षदण्डोऽत्रिश्चतुर्थेन्द्रश्च तन्मनुः ॥ ८० ॥

आभिर्बीजस्वरैर्दीर्घैः षडङ्गानि यथाक्रमम् ।
ऋषिराङ्गिरसश्छन्दो गायत्रं देवता तथा ॥ ८१ ॥

इन्द्रोऽयुतं जपेत् तस्माद् दशांशाज्यतिलैर्हुतम् ।
पुरश्चर्योदिता तस्य ध्यानं चाथ निगद्यते ॥ ८२ ॥

पीतवर्णं चतुर्बाहुं वज्रपद्माङ्कुशाभयान् ।
दधतं चारुसर्वाङ्गं पीतकल्पविभूषणैः ॥ ८३ ॥

किरीटकर्णिकाहारकेयूराद्यैर्विभूषितम ।
हेममण्डपमध्यस्थं हेमसिंहासनाम्बुजे ॥ ८४ ॥

शच्या देव्या सहासीनं मरुद्भिश्चाप्युपस्थितम् ।
स्कन्दानलयमाद्यष्टलोकपालैर्निषेवितम् ॥ ८५ ॥

करगक्षयवासोभिरष्टबीजैः सबिन्दुभिः ।
आदौ तन्नामधेयानि नमोऽन्ते च नियोजयेत् ॥ ८६ ॥

निर्माल्यभृतमैशान्यां स्वबीजादिनमोन्तकम् ।
ध्यात्वेष्ट्वा बहिरस्त्राणि वज्रादीन्यपि योजयेत् ॥ ८७ ॥

सुरेन्द्रं पूजयेदित्थं राज्याप्त्यै पुष्टये श्रियै ।
भद्रके मण्डले कुम्भे सम्पूज्यैवं शतक्रतुम् ॥ ८८ ॥

तेनाभिषिक्तो राज्यश्रीविजयार्थानुपाश्नुते ।
तिलाज्यपायसैर्हुत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ८९ ॥'

इन्द्रपूजाधिकारः ।

---

अथ जम्भलमन्त्रस्तु माणिभद्रपदात् परम् ।
महासेनपदं चाथ क्षयाधिपतये ततः ॥ ९० ॥

जम्भलाय जलेन्द्राय ठौ च स्याज्जाम्भलो मनुः ।
सङ्कृत्यर्णैस्तदङ्गानि

माणिभद्राय नमः । पूर्णभद्राय नमः । चेलिमालिने नमः । विकुण्डलिने नमः । नरेन्द्राय । चरेन्द्राय । एते षडङ्गमन्त्राः ।

---

१. 'भृ' ख. पाठः.

नेत्रान्तानि स्वजातिभिः ॥ ९१ ॥

आवृतिः केसरेष्वङ्गैर्दलाग्रेष्वर्थ शक्तिभिः ।
लोकेशैश्च तदस्त्रैश्च चतुर्थावरणे यजेत् ॥ ९२ ॥

ऐरावतं चतुर्दन्तमग्रतोऽश्वं च पृष्ठतः ।
उच्चैःश्रवसमश्वेशं पारिजातं प्रपूजयेत् ॥ ९३ ॥

कनिष्ठाद्यङ्गुलिन्यासो मूलपञ्चपदैः स्मृतः ।
ज्येष्ठादितर्जन्यन्तः स्यान्न्यासोऽङ्गानां तले दृशः ॥ ९४ ॥

कास्यहृद्गुह्यपादेषु विन्यस्य पदपञ्चकम् ।
अङ्गानि स्वावकाशेषु ध्यायेत् स्वैक्येन जम्भलम् ॥ ९५ ॥

श्वेतपद्मस्थितं सौम्यं पीताभं द्विभुजं प्रभुम् ।
रक्ताकल्पस्फुरन्मौलिमणिकुण्डलमण्डितम् ॥ ९६ ॥

हारकेयूरकटककटिसूत्राद्यलङ्कृतम् ।
त्रिपादं तुन्दिलं ध्यायेत् पूजादौ मन्त्रसिद्धये ॥ ९७ ॥

त्रिंशत्सहस्रं मूलं तु जपेच्चापि तदर्धतः ।
जुहुयाद् बिल्वपद्माज्यैस्तत्समिद्भिस्तदर्धतः ॥ ९८ ॥

हुत्वा तु तर्पयेन्नित्यं जम्भलं स तु मस्तके ।
प्राक् कारणेन केनापि चक्रेण हरिणा क्षतः ॥ ९९ ॥

क्षणतर्पणतस्तस्मिन् वेदना तस्य शाम्यति ।
तेन प्रीतोऽस्य यक्षेशो जम्भलोऽर्थं प्रयच्छति ॥ १०० ॥

षट्कोणमण्डलाम्भोजे ह्रीङ्कारेणाम्बुजं स्मरेत् ।
अङ्कारेणाब्जसोमं च जङ्कारात् तत्र जम्भलम् ॥ १०१ ॥

बीजपूरं च नकुलं दधानं तं चतुर्भुजम् ।
वामदक्षिणपार्श्वस्थे मण्डले चन्द्रसूर्ययोः ॥ १०२ ॥

सविद्युद्वर्षदम्भोदश्च्योतद्वर्षजलं मुहुः ।
पिबन्तौ चातकौ ध्यात्वा पार्श्वयोस्तस्य तर्पयेत् ॥ १०३ ॥

---

१. 'ज्ञा' ख. पाठः. २. 'मि' क. पाठः.

गं[1] गं पालय जलजलेन्द्राय ठठ ।

प्राग्वज्जम्भलमन्त्रोऽयं जपाद्यैरर्थसिद्धिदः ।

**जम्भलमन्त्राधिकारः ।**

---

खं चाग्निरौयुतो दण्डी मीनमेषौ च लोहितः ॥ १०४ ॥

अषढी ये च नत्यन्तः कौबेरोऽष्टाक्षरो मनुः ।

प्लूं पूर्णभद्राय । प्लुं विकुण्डलाय । क्लुं चेलिमालिने । युं वैं र-न्द्राय । नं नरेन्द्राय । नृं नलकूबराय ।

षडेते मूर्तयोऽङ्गानि स्युर्नेत्रान्तं स्वजातिभिः ॥ १०५ ॥

तुन्दिलो धनदः पीतः पीताकल्पाविभूषितः ।

चतुर्बाहुर्दधत् कुम्भौ रत्नपूर्णौ हिरण्मयौ ॥ १०६ ॥

करण्डौ चोर्ध्वबाहुभ्यां भद्रपीठाम्बुजोदरे ।

अङ्गानि केसराग्रेषु जम्भलाद्या दलाग्रगाः ॥ १०७ ॥

तद्बाह्येऽष्टौ च निधयः पूर्वादिक्रमयोगतः ।

जम्भलं च जलेन्द्रं च नरेन्द्रं चेलिमालिनम् ॥ १०८ ॥

विकुण्डलं पूर्णभद्रं माणिभद्रं चरेन्द्रकम् ।

निधी पद्ममहापद्मौ मकरः कूर्म एव च ॥ १०९ ॥

कुमुदश्चाप्यनन्तश्च नीलः शङ्खस्तथाष्टमः ।

वैश्रवणाय ठठ । पक्काशाय ठठ । पिङ्गलाय ठठ । विविधाय ठठ । कुबेराय ठठ । कुबेराधिपतये ठठ । भूः ठठ । भुवः ठठ । स्वः ठठ । भूर्भुवः स्वः ठठ ।

एभिर्वटसमिद्धोमे मासेन धनवान् भवेत् ॥ ११० ॥

तिलाज्यपायसाज्यैः[2] स्याद्धुतं लक्ष्मीसमृद्धये ।

मेदः साक्षिभुजः कर्णी सोमाकान्तश्च दारुकः ॥ १११ ॥

सद्दक् पिनाकी स्वाहेति कौबेरोऽयं षडक्षरः ।

भद्रासने कल्पतरोर्मूले पूज्यो धनेश्वरः ॥ ११२ ॥

---

१. 'गं गं. ठ पळयज' क., 'गं गावलाय ज' ग पाठः. २. 'यसस्याज्यैः' ख. पाठः.

पद्मप्रभां पद्महस्तां तस्य दक्षिणवामयोः ।
वचद्भुवं च नकुलं देव्योः पार्श्वगतौ सुतौ ॥ ११३ ॥
दूत्यौ चामरहस्ते चाप्यजितां चापराजिताम् ।
तदग्रादिचतुर्दिक्षु पूर्णभद्रादिकान् पुनः ॥ ११४ ॥
पूजयेत् ।
पूर्णभद्रं माणिभद्रं जम्भलं चेलिमालिनम् ।
पूर्णभद्रस्य पार्श्वस्थे देव्यौ श्रीः पुष्टिरेव च ॥ ११५ ॥
शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ कुबेरस्य तु पार्श्वयोः ।
जयां च विजयां चैव पूजयेद् द्वारपालिके ॥ ११६ ॥
विकुण्डलाद्यानिष्ट्वाथ सर्वेभ्योऽथ बलिं हरेत् ।
एवं मासेन धनवान् क्रमादब्दत्रयेण तु ॥ ११७ ॥
कुबेरसदृशः श्रीमान् स भवेन्नात्र संशयः ।
श्रीकण्ठोऽम्भोवामपादादिरग्निरावृत्योक्ताश्चाग्निजाया दशार्णः ।
मन्त्रः स्वार्णैर्द्वन्द्वशोऽङ्गानि कुर्यात् कौबेरोऽयं ज्ञानमात्रं त्रिकालम् ॥ ११८ ॥
एकादश्यां मन्दवारे न्यग्रोधाधोऽरुणोदये ॥ ११९ ॥
प्राग्वद् वैश्रवणः पूज्यो जपेच्चाष्टसहस्रकम् ।
प्रत्यहं मासमात्रं तु निशीथे जुहुयाद् घृतम् ॥ १२० ॥
ज्योतिष्मत्यास्तु तैलेन पक्षमङ्कोलतैलतः ।
सिद्धमन्त्रो भवेत् पश्चादयत्नेन दिने दिने ॥ १२१ ॥
यक्षः कर्णेऽस्य तु वदेत् त्रैकाल्यार्थमयत्नतः ।

कर्णयक्षाधिकारः ।

---

कर्णी[1] भृगुः पिनाकी भे कर्णशुक्लः प्रभेपदम् ॥ १२२ ॥
स्वाहान्तोऽष्टार्णको मन्त्रो देवतास्य तु यक्षिणी ।
प्रतप्तकनकप्रख्या नवयौवनशालिनी ॥ १२३ ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनी चारुधम्मिल्ला रुचिरालका ।
शारदेन्दुमुखाम्भोजा लोलेन्दीवरलोचना ॥ १२४ ॥

---

१. 'र्णी' क. ग. पाठः.

सुभ्रूः सुदन्तनासोष्ठा सुभुजा सुन्दरोदरी ।
सुपीनश्रोणिजघना सूरुजङ्घाङ्घ्रिपङ्कजा ॥ १२५ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरी चित्रवसनाभरणोज्ज्वला ।
प्रसाधनकराभ्यां तु दूतीभ्यां समुपस्थिता ॥ १२६ ॥
लेख्या चित्रपटे सम्यक् पूजनीया च यक्षिणी ।
वटाधो मासमात्रं तु त्रिलक्षं तं मनुं जपेत् ॥ १२७ ॥
मध्याह्ने बदरीपुष्पैः कदम्बकुसुमैस्तथा ।
माषान्नबलिपिण्डाभ्यां बलिं वैश्रवणाय तु ॥ १२८ ॥
निशासु प्रक्षिपेत् प्रोक्तमार्गेण जुहुयादपि ।
घृतेनाङ्कोलतैलेन पृथगष्टसहस्रकम् ॥ १२९ ॥
ततः प्रत्यक्षतां याति यक्षिणीष्टं ददाति च ।
तया वा रमतां कामं कारयेत् कर्म चेप्सितम् ॥ १३० ॥
लम्बोदरपदात् पूर्वं त्रिजगेति समुद्धरेत् ।
दीर्घाम्भो विषमेषौ च कर्णेति कथयेति च ॥ १३१ ॥
क्रमेण द्विर्द्विरुच्चार्य वर्मास्त्रे चाग्निजायया ।
मन्त्रः सङ्कृतिवर्णोऽयमिष्ट्वा भक्ष्यफलैस्तु तम् ॥ १३२ ॥
त्रिलक्षं तु जपेत् तस्य कर्णे कथयतीप्सितम् ।

हृत्कर्णशब्दश्च पिशाचिशब्दश्च (ह्रहर्णह ज्रहे ? सुवर्णवज्रवै)डूर्यमुक्ताभरणानिर्मलालङ्कृतशरीरिणि ! एह्येहि गच्छ त्रैकाल्यदर्शिनि मम कर्णे प्रविश्यातीतानागतवर्तमाने रुद्रो ज्ञापयति ठठ ।

लिङ्गं समभ्यर्च्य तदग्रतोऽमुं मन्त्रं जपेल्लक्षमथो तिलाज्यम् ।
पञ्चांशतोऽस्माज्जुहुयात् ततोऽस्मै कर्णे तु साक्षात् कथयेदभीष्टम् ॥ १३३ ॥

जाळ मोल पलके पट्टे मट्टे चोरघरट्टे णले जम्भे स्तम्भे मोहे हंसाहे ।

सिन्दूराभा विवस्त्रा मणिकनकमिलद्भूषणा मुक्तकेशी
पीनश्रोण्यूरुरम्या मणिमयरुचिमत्पादुकाक्रान्तपादा ।
शिञ्जन्मञ्जीरकान्ता तनुतरविलसन्मध्यतुङ्गस्तनी या
सुभ्रूनेत्राखिलेन्दुद्युतिमुखकमला हेलती[1] पातु युष्मान् ॥ १३४ ॥

---

१. 'ळी' ख. ग. पाठः.

भद्रकालीपरिचारां ध्यात्वेत्थं मन्त्रदेवताम् ॥ १३५ ॥

स्वैक्येनाशासु मध्ये च प्रक्षिपेन्नवशर्कराः ।
जपित्वाष्टोत्तरशतं चोरा न प्रविशन्ति तत् ॥ १३६ ॥

गृहमिति यावत् । चण्ड श्रीचण्डि । अमरभ्रमरभ्रमरच्छत्रधर पिङ्गलाक्षि कामरूपि अरण्यवासिनि खोट ठठ ।

कृष्णाष्टम्यादिभूतान्तं जपित्वेमं सहस्रकम् ।
पूर्वेद्युरधिवास्यैकां कन्यां तपनवासरे ॥ १३७ ॥

स्नातां विभूषितां प्रातर्वटुं वाभ्यर्च्य मन्त्रतः ।
चषकं मण्डले धान्ये संस्थाप्याभ्यर्च्य संस्पृशन् ॥ १३८ ॥

जपित्वाष्टोत्तरशतं ग्राहयेत् कन्ययाथ वा ।
गच्छेत्युक्त्वाक्षतक्षेपाद् गत्वा चोरं ग्रहीष्यति ॥ १३९ ॥

नमश्शब्दश्च कर्णश्च कालो दीर्घोऽथ भौतिकी ।
वायुश्च गिरिशब्दश्च स्वाहान्तोऽयं नवाक्षरः ॥ १४० ॥

सन्दिग्धचोरनामार्णान् मन्त्राक्षरविदर्भितान् ।
विलिख्य पत्राणि दहेच्चोरनाम न दह्यते ॥ १४१ ॥

द्वयोर्भे(?)फलके मन्त्रं साख्यं विलिखितं खनेत् ।
शास्तुरग्रे रक्तबलिं क्षिपेत् क्रुद्धः प्रसीदति ॥ १४२ ॥

उफा भट शैलर्वलिद्धि देवानुचराय महायक्षसेनाधिपतये । इदं मे कार्यं कथय कथापय तद्यथाज्ञापयति ठठ ।

कृष्णाष्टम्यादि जपतु सहस्रं त्वाचतुर्दशीम् ।
सिद्धमन्त्रस्ततः स्नात्वा सोपवासः स्वपेन्निशि ॥ १४३ ॥

जपन् कार्यं कथयति स्वप्ने तस्य शुभाशुभम् ।

अयुद्धे युद्धे युद्धषूभे ठ शुद्धयोगि महानिद्रे ठठ ।

इममर्कसहस्रं तु जपित्वा साधितेन तु ॥ १४४ ॥

अष्टसाहस्रजपितांस्तिलान् शुक्लांस्तु यद्गृहे ।
निशायां विकिरेत् तत्स्थान् नरान् निद्रा न मुञ्चति ॥ १४५ ॥

---

१. 'वर्णश्री', २. 'तां व' ख. पाठः. ३. 'वा' क. पाठः.

ओं भ्रमरेशि भ्रफ फटि ठ भ्रम विभ्रम मुञ्च मोचय ठठ ।

स्वैक्यं ध्यात्वा तु कृष्णां प्रततबहुभुजाचायुधां दीर्घकेशीं
स्वारूढां प्रस्वपन्तं मृगरिपुमथ तद्गेहमध्यस्थदुर्गाम् ।
केशैरावृत्य गेहं विकिरतु जपितान् सप्तकृत्वस्तु माषान्
प्रादक्षिण्येन निद्रा त्यजति न हि जनं तत्र सूर्योदयान्तम् ॥ १४६ ॥

हृदयान्ते भगवति केशान्तोऽङ्कुशशब्दयुक् ।
चालि फ वांचालि दशकालि चण्डकालि लकालि ठठ ।
कालीदैवत्यमन्त्रोऽयं रविसाहस्रसाधितः ॥ १४७ ॥

प्रातः स्नात्वा जपापुष्पैः कृत्वाङ्गुष्ठं सितेतरम् ।
कृतमण्डलके विप्रं कालीं चेष्ट्वा च कन्यकाम् ॥ १४८ ॥

तैलसेकात् तु साङ्गुष्ठे प्रस्तुतार्थे शुभाशुभम् ।
निरीक्ष्य सर्वं वदति मन्त्रस्यैव प्रभावतः ॥ १४९ ॥

ओं हियाढ षज फणाश ठठ ।

कलशस्थे समाराध्य पश्येत् प्राग्वत् तु दर्पणे ।

ओं कपालखट्वाङ्गडमरुकहस्ते निशिततीक्ष्णदंष्ट्रोत्कराले कुटिलपिङ्ग-काक्षि लम्बान्तकेशकलापे मृतशिरःकुण्डलालिङ्गितगण्डे सर्वभूतवशङ्करि सर्व-भूतमन्त्रशरीरे आगच्छ मायारूपधारिणि शूलं शूलं चालय इमं मानुषश-रीरं गृह्ण अनुप्रविश्य जृम्भ सर्वतोभये घटे दर्पणे तिलतैले कौमार्याङ्गुष्ठां (?) दर्शय महाभैरव राक्षसि स्वाहा ।

इयं तु कालीदैवत्या विद्या भैरवराक्षसी ॥ १५० ॥

अनयाङ्गुष्ठमाराध्य दर्पणं वा विधिक्रमात् ।
जपेत् त्रिकालसंबद्धं वस्तु सर्वं प्रदृश्यते[२] ॥ १५१ ॥

स्वस्ति ह्रिषां धौंजट प्रचतभषाकफान्त वडि च मण्डलोपजीवितस्य श्री-हनुमताज्ञापयति[३] मूषिकपतङ्गपिपीलिकशलभकरशुम्भकरीटगन्धिकादिकैर्न स्था-तव्यम् । आज्ञां व्यतिक्रममाणस्य शरीरनिग्रहं समावर्तयति ।

---

१. 'चा', २. 'ति' ख. पाठः. ३. 'ता' क. पाठः.

तस्य वानरसिंहस्य क्रममाणस्य सागरम् ।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥ १५२ ॥

हुं फण्णमः ।

अयं हनूमद्दैवत्यः सस्यरक्षाकरो मनुः ।
विलिख्य पत्रे तु मनुं वारेऽर्कस्य कुजस्य वा ॥ १५३ ॥
नीत्वा प्रदक्षिणं क्षेत्रे खनेत् कीटादिशान्तये ।

नमो भगवते चक्रकाफुण्डे हंसः चामुण्डे । अपिच विचय हंसः काली उच्चाटय हुं फट् ।

भस्माष्टोत्तरसाहस्रमादाय जपितं करे ॥ १५४ ॥

क्षेत्रे प्रदक्षिणं प्रास्य सस्यं किञ्चिद् विमुच्य तु ।

सस्यकीटादयो नश्यन्ति । खुषि खुषि प्रवेञ्जणि लुखेषिणि ठठ ।

साध्यां पश्यन् सुकेशस्पृग् जपेदाकर्षयेच्च ताम् ॥ १५५ ॥

स्त्री पुरुषं वेति यावत् ।

भूर्जे स्वनामान्तरितो मन्त्रोऽयं रोचनार्पितः ।
सितसूत्रावृतोऽश्वत्थकोटरस्थोऽस्य पुष्टिकृत् ॥ १५६ ॥
स साध्यनामन्यग्रोधकोटरस्थं वशं नयेत् ।

ओं हां शुगृहे खे हे हं हः ।

अनेन जपितान् व्रीहीन् भक्षयन्ति न मूषिकाः ॥ १५७ ॥
नालिकेरादिबन्धाच्च जपितारुणतन्तुना ।

ओं हि लषे वज्र ।

शमीभस्माम्भसा अनेन क्लिन्नदक्षिणपाणिना ॥ १५८ ॥
स्पृष्ट्वा वश्याः स्युरन्येन स्पर्शादुच्चाटिता नराः ।
पण्ये विकीर्णे तद्भस्म तद्विक्रयनिषेधकृत् ॥ १५९ ॥
तत्पुण्ड्रमुखमालोक्य दान्ताः स्युर्वृषभादयः ।

---

१. 'प्य' क. पाठः. २. 'प' क. ग. पाठः. ३ 'तम्', ४. 'हे हः क. पाठः. ५. 'क्षः' क. पाठः.

इत्थं हि शाम्तुः कथितं विधानं समन्त्रकं क्षेत्रपचण्डयोश्च ।
इन्द्रस्य यक्षेश्वरपूर्वकाणां त्रैकाल्यविज्ञानविशेषयुक्तम् ।। १६०३ ।।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे[1] मन्त्रपादे
शास्त्रादिपटलो द्वात्रिंशः ।

---

## अथ त्रयस्त्रिंशः पटलः ।

हृन्मेषरक्ते मुखवृत्तयुक्ते पाली सदीर्घे चरणावसानम् ।
त्वक् चाष्टवर्णौ[2] मनुरस्य बीजं रायान्तरस्थं चिहुरं सबिन्दु ।। १ ।।

तत्सप्तमानन्तमयी तु शक्तिराद्यन्तगोऽस्य प्रणवः प्लुतोऽर्चेः[3] ।
जप्यो मनुः सप्रणवो द्विजैः स्यात् स्त्रीशूद्रयोरप्रणवः स चोक्तः ।। २ ।।

चशब्देन सवर्णाम्बष्ठपाश्र्वप्रभृतीनामपि ।

अन्तः पदान्ते मुनिरस्य यामी देव्यादिगायत्रमथास्य दैवम् ।
छन्दो हि विष्णुः परमात्मनामा स्यात् पूर्वसेवा तु कृतेऽष्टलक्षम् ।। ३ ।।

त्रेतादिषूक्तद्विगुणादिसंख्यं प्रत्यर्णमृष्यादिकमुच्यतेऽस्य ।

गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रस्ततः परम् ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च काश्यपोऽत्रिरिहाष्टमः ।। ४ ।।

अगस्त्यश्च क्रमादेते वर्णानां समुदीरिताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ।। ५ ।।

त्रिष्टुब्जगत्यौ च विराट् च्छन्दांस्यष्टौ यथाक्रमम् ।
धरो ध्रुवस्तथा सोम आपोऽग्निर्वायुरेव च ।। ६ ।।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वर्णानां देवताः स्मृताः ।
सप्त भूरादयो लोका विष्णुलोकस्तथाष्टमः ।। ७ ।।

लोकाः स्युरष्टौ वर्णानां वर्णान्यपि वदाम्यहम् ।
शुक्लं स्वर्णनिभं कृष्णं संरक्तं कुङ्कुमप्रभम् ।। ८ ।।

पद्मकिञ्जल्कनीलाभे सर्ववर्णमिहाष्टमम् ।
गन्धादिपञ्चतन्मात्रा मनो बुद्धिरहङ्कृतिः ।। ९ ।।

---

१. 'रे पा' ख. पाठः. २. 'र्णौ', ३. 'श्च' क. पाठः.

अष्टाक्षराणां तत्त्वानि कथितानि यथाक्रमम् ।
षष्ठाद्ययोरुदात्तत्वात् स्वरितोऽन्त्यद्वितीययोः ॥ १० ॥
प्रचयस्त्रिचतुर्थाभ्यां निभृतः पञ्चमाक्षरः ।

क्रुद्धो महावीरपदे द्युशब्दः सहस्र इत्युक्तपदेन युक्ताः ॥ ११ ॥
स्वैर्जातिभिस्तानि यथा चतुर्थ्या पञ्चैवमङ्गानि भवन्ति युक्त्या ।
दुर्गागणेशौ गुरुवैनतेयौ वह्न्यादिकोणेषु भवन्ति देवाः ॥ १२ ॥
शंक्रादिषु क्षेत्रपतिः स्वनाम्ना दिग्बन्धने छोटिकया विधेयाः ।
न्यासः पुरस्तात् करयोश्च देहे पञ्चाङ्गविन्यासविधिश्च तेषाम् ॥ १३ ॥
सृष्टिः स्थितिः संहरणं च भेदाः स्युर्ब्रह्मचारिप्रभृतित्रयाणाम् ।
अस्त्रेण संशोध्य करौ स्ववर्णांस्तर्जादिकं दक्षिणतोऽथ वामे ॥ १४ ॥
न्यस्येत् तु तर्जान्तमथाङ्गमन्त्रान् ज्येष्ठादिकं वामकरे तदन्तम् ।
वर्णाङ्गमन्त्रोभयतस्तु तारः स्यान्मध्यपर्वस्विह वर्णमन्त्रान् ॥ १५ ॥
आद्यन्तपर्वस्वपि तारमेव न्यस्येत् समस्ताङ्गुलिषु क्रमेण ।
उक्तक्रमात् संहृतये विलोमन्यासः स्मृतोऽथ स्थितये तु पाण्योः ॥ १६ ॥
तर्जादिकं चापि कनिष्ठिकान्तं ज्येष्ठाद्यमङ्गेषु कनिष्ठिकान्तम् ।
काक्ष्यास्यहृन्नाभिकटिप्रदेशा जान्वङ्घ्रयश्चापि भवन्ति सृष्टौ ॥ १७ ॥
विलोमतः संहृतये स्थितौ[3] च न्यस्येत् तु नाभेर्हृदयान्तमर्णान् ।
करन्यासेऽङ्गुष्ठाभ्यामङ्गुलिषु तर्जाग्राभ्यामङ्गुष्ठयोर्न्यसेत् ।
स्यान्मध्यया मध्यमतर्जनीभ्यां साङ्गुष्ठयानामिकया च तर्जा ॥ १८ ॥
ज्येष्ठान्विता ज्येष्ठिकया कनिष्ठा निर्ज्येष्ठकाभिः सकलाङ्गुलीभिः ।
देहन्यासं कुर्यात् ।
इत्थं सदा न्यस्ततनुं विशुद्धं नरं तु नारायणमूर्तिभाजम् ॥ १९ ॥
विषा[4]भिचारारिरुजो ग्रहाद्या व्रजन्ति दूरेण विहाय भीताः ।
विन्यस्तमन्त्रोऽप्यशुचिर्यदा यद् धौताङ्घ्रिराचम्य पुनश्च मन्त्री ॥ २० ॥
स्नात्वाथवा न्यस्ततनुर्यथावत् पुनर्जपाद्यं विदधीत कृत्यम् ।

---

१. 'क्रमादि' ख. पाठः. २. 'द' क. पाठः. ३. 'यो स्थितौ', ४. 'वृ' ख. पाठः,

अष्टाक्षरं पञ्चकपञ्चसंख्यं संयम्य वायुं मनसा जपित्वा ॥ २१ ॥

प्राणस्य सम्यङ्नियमोऽयमुक्तस्तांस्त्रीञ्जपादौ तनुतां तथान्ते ।
शुश्रूषया वा महता धनेन प्राज्ञं गुरुं तद्विदमर्चयित्वा ॥ २२ ॥

तत्तोषकृन्मन्त्रमवाप्य तस्मात् तद्दक्षिणां स्वानुगुणां च दत्त्वा ।
कुर्वन् स्ववर्णाश्रमकर्म सर्वं पूजां च भक्त्या हरये यथोक्ताम् ॥ २३ ॥
नृत्याशनः शस्तयथोक्तदेशे संसाधयेन्मन्त्रमिमं यथावत् ।

नारदीये —

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ॥ २४ ॥

अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ।
गृञ्जनं चारनालं च शार्ङ्गाष्टा कांस्यभोजनम् ॥ २५ ॥

मन्त्रवीर्यतपोघ्नानि तस्मात् तानि विवर्जयेत् ।
कारञ्जीं न भजेच्छायां नाघ्रात् तत्पादुके स्पृशेत् ॥ २६ ॥

न वस्त्रान्तरमाच्छाद्य कदाचिज्जलमुत्तरेत् ।
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितादिकम् ॥ २७ ॥

नाश्नातु न दिवास्वप्नं न सेवेत परस्त्रियः ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥ २८ ॥
सन्तोषशौचस्वाध्यायतपांसीश्वरभावना ।
एतान् यमान् सनियमान् कुर्वन् मन्त्रांश्च साधयेत् ॥ २९ ॥
करञ्जं च पलण्डुं च मत्स्यमांसौ मधूनि च ।
छत्राकं जालपादानि नालीशाकालुकानि च ॥ ३० ॥
अलाबुतैलसिद्धं च तैलसिक्थं न भक्षयेत् ।
अक्षारलवणाशी स्यात् पुरश्चरणसिद्धये ॥ ३१ ॥
श्रेयस्विनां गुरूणां च सन्निधौ सत्यनुज्ञया ।
जपपूजादिकं कुर्यादन्यथा दोषकारकम् ॥ ३२ ॥

इति ।

---

१. 'ज्यां' ख पाठः　२. 'शं' क ग. पाठः.

मार्गादिशीर्षस्य तु पूर्वपक्षे तिस्रो नवम्याद्यमुपोष्य विष्णुम् ॥ ३३ ॥
संपूज्य चैकादशिकानिशायां प्रातश्च कुर्यादथ पूर्वसेवाम् ।
मन्त्राक्षराणां तु चतुर्गुणानि लक्षाणि जप्यानि ततो दशांशम् ॥ ३४ ॥
साज्यैस्तिलैर्वा कमलैर्जुहोतु कुर्यात् स्वशक्त्या द्विजभोजनं च ।
लक्षद्वयान्मन्त्रवरोऽस्य शुध्येत् पक्षैश्चतुर्भिश्च तथात्मशुद्धिः ॥ ३५ ॥
षड्भिस्तु लक्षैः पितृमातृशुद्धिः स्यादष्टलक्षैरपि मन्त्रसिद्धिः ।
जपाद् दशांशं जुहुयात् तिलाज्यैक्षीरान्नपालाशसमिद्भिरग्नौ ॥ ३६ ॥
होमे त्वशक्तो द्विगुणं जपेन स्यात् सिद्धमन्त्रो द्विजभोजनैश्च ।
संसाधयेन्मन्त्रमिमं तु नित्यं संपूजयेत् तं विभवानुसारम् ॥ ३७ ॥
स्नात्वा तु सान्ध्यं च समाप्य कृत्यं यागालयं प्राप्य कृताङ्घ्रिशौचः ।
आचम्य पूर्णार्घ्यकरः स्वमन्त्रैर्द्वाःस्थान् यजेदक्षतपुष्पगन्धैः ॥ ३८ ॥
चण्डं प्रचण्डं गरुडं च नाम्ना चक्रं तथैवोभयपार्श्वसंस्थान् ।
भूमावधोर्ध्वं च यजेत् तदूर्ध्वे द्वारश्रियं मध्यगतां यथावत् ॥ ३९ ॥
क्षिप्त्वान्तरस्त्रेण तु पुष्पमन्तः प्रविश्य यागालयबाह्यतोऽस्त्रात् ।
प्राकारमुद्भाव्य तथा निविष्टो निजासने वाग्यमवान् यथावत् ॥ ४० ॥
प्रागुक्तमार्गेण तु शोषणाद्यैः शुद्धात्मदेहो हृदयाम्बुजस्थम् ।
ध्यात्वा परं ज्योतिरथास्य मध्ये नारायणं तत्र यजेद्धियैव ॥ ४१ ॥
न्यासांस्तु कृत्वा सकलीकृतात्मा कृत्वोर्ध्वपुण्ड्रं सितचन्दनाद्यैः ।
फालादिगात्रेषु च केशवाद्यैः पुष्पाक्षतारूढशिरो धृतार्घ्यः ॥ ४२ ॥

फालादिष्विति —

फालोदरोरोगलपार्श्वबाहाकण्ठेषु वामोदरपार्श्वबाह्वोः ।
तदूर्ध्वकण्ठे त्वथ पृष्ठदेशे पश्चाद् गले च क्रमशो नमोन्तम् ॥ ४३ ॥

केशवाद्यैरिति, केशव-नारायण-माधव-गोविन्द- विष्णु- मधुसूदन-त्रिविक्रम-वामन-श्रीधर-हृषीकेश-पद्मनाभ-दामोदराख्याभिः । धृतार्घ्य इति, अर्घ्यं च यथा नारदीये —

---

१ 'शान्', २. 'प' क. ग पाठः. ३. 'ज्यं', ४. 'कार्य पू' ५. 'गाश्रे ग' ख. पाठः.

"सिद्धार्थमक्षतं चैव कुशाग्राणि तिला जलम् ।
यवं गन्धं फलं पुष्पमर्घ्यमष्टाङ्गमीरितम् ॥ ४४ ॥"

पाद्यं च दूर्वाम्बुजविष्णुपत्नीश्यामाकतोयैः परिपूर्य चेष्ट्वा ।
तक्कोलजातीफलसलवङ्गैरेलाम्बुभिश्चाचमनीयकं स्यात् ॥ ४५ ॥

संमार्जनीयं च निशाशिरीषावादित्यवर्तिन्यपि सर्वभद्रा ।
दर्भास्तथाम्भांसि च कुङ्कुमं च मूलाभिलब्धं स्नपने नियोज्यम् ॥ ४६ ॥

अस्त्रेण धौतेषु समूलतोयैः पूर्णेषु पात्रेषु सहाङ्गमूलम् ।
न्यसेत् सगन्धाक्षतपुष्पधूपैरर्घ्यादिकानि क्रमशोऽर्चयीत ॥ ४७ ॥

उशीरं कुङ्कुमं मांसी मुरं मूलं च चन्दनम् ।
कुष्ठं कृष्णागरुश्चेति गन्धोऽष्टाङ्गो हरिप्रियः ॥ ४८ ॥

सर्वमस्त्ररक्षितं कवचावकुण्ठितं च । तत्रार्घ्यं (दक्षिणकरे) पादयोः पाद्यं पृथक् पृथगाचमनीयं च मुखे संमार्जनीयं विशिष्टस्नपने योज्यम् ।

आपूर्य तोयैः शुचिभिस्तु पूतैरस्त्रेण लौहीमथ मार्त्तिकीं वा ।
न्यसेच्छुभां वर्धनिकां तु वामे स्याद् दक्षिणे वस्तु समस्तमन्यत् ॥ ४९ ॥

अस्त्रेणार्घ्यजलैः कूर्चेनावोक्ष्य मूलाङ्गैरभिमन्त्र्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावकुण्ठ्य सुरक्षितं पूजोचितं वस्तु समं निदधीत ।

अर्घ्यादिभिः प्रोक्ष्य शिरः स्वशुद्धिः पूजाक्षितौ द्रव्यगणे च शुद्धिः ।
प्लुतान्तमूलेन तु मन्त्रशुद्धिः स्यात् क्षालनेनापि च बेरशुद्धिः ॥ ५० ॥

विघ्नेशमिष्ट्वा निर्ऋतौ स्वनाम्ना पूर्वोत्तरे तु स्वगुरूंस्तथैव ।
तत्रैव वाचं परमं गुरुं च श्रीनारदं चाप्यथ पूर्वसिद्धान् ॥ ५१ ॥

अस्त्रेण निर्माल्यमपोह्य बेराद् दत्त्वामृतार्घ्यं त्वभिषिच्य तोयैः ।
शीर्ष्णा तु[1] पाद्याचमने च पीठमिष्ट्वा समावाह्य निधाय मन्त्रान् ॥ ५२ ॥

पुनस्तथार्घ्यादिभिरिष्टगन्धैः सपुष्पधूपाक्षतमर्चयित्वा ।
सुगन्धितैलेन च पञ्चगव्यैः संस्नाप्य चूर्णैरपनुद्य लेपम् ॥ ५३ ॥

संमार्जनीयेन विमृज्य देवं हारिद्रचूर्णेन च कुङ्कुमेन ।
सुगन्धिपुष्पाम्बुसुगन्धतोयैस्तथाभिषिञ्चेत् पुरुषादिसूक्तैः ॥ ५४ ॥

---

१. 'च' ख. पाठः.

ॐ । जितं ते पुण्डरीकाक्ष! नमस्ते विश्वभावन!।
सुब्रह्मण्य! नमस्तेऽस्तु नमः पुरुष! पूर्वज! ॥ ५५ ॥
अनेन चोपचारांस्तु दद्यान्मूलाङ्गसंयुतम् ।
आधारशक्तिं त्वथ कूर्मराजं शेषं च पृथ्वीमथ योगपीठम् ।
धर्मं तथा ज्ञानमनन्तरं च वैराग्यमैश्वर्यमपि क्रमेण ॥ ५६ ॥
सिंहाकृतींस्ताननलादिकोणेष्वधर्मपूर्वानपि दिग्गतेशान्[1] ।
रजस्तमःसत्त्वमयानि कन्दं नालं च पद्मं यजतु क्रमेण ॥ ५७ ॥
तत्पत्रतत्केसरकर्णिकासु व्याप्तानि सूर्याग्निनिशाकराणाम् ।
बिम्बान्यथात्मा च तथान्तरात्मा पूज्यस्तथा स्यात् परमात्मनामा[2] ॥ ५८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगाथ सत्यया ॥ ५९ ॥
प्रह्वीशा[3]नुग्रहा चाथ पूर्वतः केसराग्रगाः ।
तासां तु मध्येऽम्बुजकर्णिकायां यानुग्रहाख्या नवमी तु शक्तिः ।
आवाहयेत् तत्र ततो यथावत् सञ्चिन्त्य नारायणमप्रमेयम् ॥ ६० ॥
नीलाम्बुदश्यामलकोमलाङ्गः पूर्णेन्दुबिम्बद्युतिवक्त्रपद्मः ।
रत्नप्रभोद्भासिकिरीटरोचिस्संभिन्ननीलालकभाररम्यः ॥ ६१ ॥
सुभ्रूललाटायततुङ्गनासाव्याकोशपङ्केरुहपद्मनेत्रः ।
व्यालम्बिचार्वञ्चितकर्णपाशव्यासक्तनक्रोज्ज्वलकुण्डलश्रीः ॥ ६२ ॥
सन्निष्कभूषो[4]ज्ज्वलकम्बुकण्ठः पिनद्धरत्नाङ्गदयुग्मबाहुः ।
विचित्रवासःकटकाङ्गुलीयः सशङ्खपद्मोरुगदारिहस्तः ॥ ६३ ॥
सत्कौस्तुभोद्भासिविलोलहारः श्रीवत्सलक्ष्मीरुचिरोरुवक्षाः ।
माणिक्यबिम्बोपमशातमध्यव्यासङ्गिहेमोदरबन्धसौम्यः ॥ ६४ ॥
आपीतकौशेयविशेषरम्ये कटिप्रदेशे विपुले दधानः ।
रत्नप्रवेकाचितहेमसूत्रमाजानुलम्बां वनमालिकां च ॥ ६५ ॥
जङ्घाद्वयं चारुसुपीनवृत्तं पादाब्जयुग्मं च सुजातगुल्फम् ।
उत्तुङ्गरक्तां नखचन्द्रपङ्क्तिं वराङ्गुलीभिस्तनुकोमलाभिः ॥ ६६ ॥

---

१. 'षान्', २. 'त्मा', ३. 'चा', ४. 'मो' ख. पाठः.

शङ्खं च चक्रं जलजं च नक्रं दधत् तलैः पादकराम्बुजानाम् ।
सर्वाङ्गसौन्दर्यगुणैकलक्ष्मीं बिभर्ति यस्मात् पुरुषोत्तमोऽसौ ॥ ६७ ॥

सञ्चिन्त्य नारायणमूर्तिमेवं हृत्पङ्कजे स्वेऽचलदीपकल्पम् ।
हंसात्मकं तत् प्रणवोपगूढं ज्योतिः प्रदीपादिव दीपमन्यम् ॥ ६८ ॥

आदाय बुद्ध्या प्रणवं प्लुतान्तं सौषुम्नमार्गेण नयेदुदीर्य ।
संयोजयेत् खाम्बुरुहोदरस्थे ज्योतिर्मये ब्रह्मणि तत् ततोऽपि ॥ ६९ ॥

पुष्पाञ्जलौ स्वे विनियोज्य तस्मान्मूर्ते पुरोवर्तिनि मध्यनाड्या ।
नीत्वा नियुञ्जीत सतारहंसं बीजं सनादं हृदयाब्जमध्ये ॥ ७० ॥

कृत्वैवमावाहनमस्य मूर्तौ न्यसेत् करन्यासविहीनमर्णान् ।
मन्त्रस्य चाङ्गानि सहंसमूलात् सान्निध्यमस्मिन् विदधीत मन्त्री ॥ ७१ ॥

तद्द्वादशान्तामृतपूर्णचन्द्रबिम्बात् प्रवृत्तामृतधारयामुम् ।
तद्ब्रह्मनाड्यागतया निषिञ्चेत् सार्धेन्दुखड्गीशमुदीर्य तारम् ॥ ७२ ॥

पीयूषपूरैरिव पूर्णमन्तर्बाह्ये तथाह्लादितदिव्यदेहम् ।
ध्यात्वा यथावद् विहितोपचारैस्तं पूजयेदावरणानि चान्ते ॥ ७३ ॥

तद् यथा —

अङ्गानि पूर्वादिदलाग्रगाणि कोणच्छदाग्रेषु यजेत् तथास्त्रम् ।
द्वारेषु पूर्वादिषु वैनतेयं चक्रं च पद्मं च गदां क्रमेण ॥ ७४ ॥

कोणेषु पूज्यस्त्विह पाञ्चजन्यः शार्ङ्गं च याम्ये त्वथ नन्दकं च ।
द्वे चेषुधी पश्चिमतस्तु सौम्ये पूज्या स्वनाम्ना वनमालिका स्त्री ॥ ७५ ॥

लक्ष्मीं हरेर्दक्षिणपार्श्वसंस्थां भूमिं तु पुष्टाख्यकयास्य वामे ।
श्रीवत्समङ्कं मणिकौस्तुभं चाप्यग्रे यजेद् दक्षिणवामसंस्थौ ॥७६ ॥

इन्द्राग्निवैवस्वतराक्षसेशांस्तोयेश्वरं वायुमथोऽर्थनाथम् ।
ईशानमब्जोद्भवमप्यनन्तं सोमं च सौम्ये यजतु स्वनाम्ना ॥ ७७ ॥

तेषां तु बाह्ये कुलिशं तु शक्तिं दण्डासिपाशाङ्कुशसद्गदाश्च ।
शूलं च पद्मं च सुदर्शनं च लोकाधिपास्त्राणि यजेत् स्वनाम्ना ॥७८॥

अस्त्राणां बाह्ये कुमुदादीन् पूजयेत् ।

कुमुदं कुमुदाक्षं च पुण्डरीकं च वामनम् ॥ ७९ ॥

शङ्कुकर्णं सर्वनेत्रं सुमुखं सुप्रतिष्ठितम् ।
कोटिकोटिगणाधीशान् विष्णुभूतगणाधिपान् ॥ ८० ॥
सोमेशयोर्मध्यगतं विष्वक्सेनं च पूजयेत् ।
विष्णोर्निर्माल्यमखिलं पूजान्तेऽस्मै निवेदयेत् ॥ ८१ ॥

संपूज्य नित्यं विधिवद्यथोक्ते हुत्वा घृताद्यैरथ वैष्णवाग्नौ ।
शक्त्या द्विजाग्र्यानपि भोजयिष्यन् मन्त्रं जपेद्वा त्रिसहस्रसङ्ख्यम् ॥ ८२ ॥
एवं विधेयोदितपूर्वसेवासंसिद्धमन्त्रो विनियोगमिच्छन् ।
तैस्तैर्यथोक्तैर्हवनैर्जपैर्वा संसाधयेद् वाञ्छितमर्थजातम् ॥ ८३ ॥
कुण्डे यथोक्ते चतुरश्रके वा तत्रारणेयं मथितं तु वाग्निम् ।
संस्कृत्य तं वैष्णववह्निमार्गादावाह्य तस्मिंस्तु हरिं जुहोतु ॥ ८४ ॥
आयुष्करं तद्धरितालिकाग्रैर्लक्षत्रयं चाज्यतिलं जुहोतु ।
छिन्नासमिद्भिश्चतुरङ्गुलाभिः क्षुद्रापमृत्यून् मधुरैश्च हन्यात् ॥ ८५॥
अश्वत्थमालभ्य शनैर्दिनाद्ये जपेच्च तं मृत्युरुजां प्रशान्त्यै ।
लक्षद्वयं वा जपतस्तु काल्यं स्याद् दीर्घमायुश्च तथाभिषेकात् ॥ ८६ ॥
तोयं जपित्वाभिकृतिप्रसंख्यं पीत्वा त्रिसन्ध्यं स भवेच्चिरायुः ।
कुम्भाम्बु पूर्णं त्वयुतं जपित्वा बिम्बे विधानेन हरिं च तस्मिन् ॥ ८७ ॥
आवाह्य संपूज्य दशांशमाज्यं हुत्वाभिषिञ्चेदपमृत्युशान्त्यै ।
आलब्धमन्नाद्यमनेन भुक्तं नित्यं तदायुष्करमष्टसंख्यम् ॥ ८८ ॥
अन्यद् विषं वा सुजरं शतं तद् भुक्तं जपेदौषधमिष्टदं स्यात् ।
चन्द्रोपरागे त्रिदिनोपवासी यत् कापिलाज्यस्य चतुष्पलानि ॥ ८९ ॥
चूर्णं वचायाश्च पलं पिबेत् तत् प्रज्ञाकरं स्यादयुताभिलब्धम् ।
ब्राह्मीघृतं वापि तथैव पीतं सूर्यग्रहे स्यात् कविताकरं च ॥ ९० ॥
नित्यं जलं वाष्टशताभिलब्धं प्रज्ञकरं वत्सरमात्रतः स्यात् ।
तिस्रोऽथ रात्रीः समुपोष्य माघीं सङ्क्रान्तिमस्यां भसितावदिग्धम् ॥ ९१ ॥
ब्राह्मीघृतं पञ्चसहस्रसंख्यं प्रज्ञाकरं स्याज्जपितं निपीतम् ।
श्वेताम्बराढ्यः सितपङ्कजानां क्षीराज्यसेकादयुतं जुहोतु ॥ ९२ ॥

---

१. 'कृत त', २. 'ति' ख. पाठः. ३. 'न्नो' ग. पाठः. ४. 'मु' ख. पाठः.

लक्ष्मीमभीष्टां लभते चतुर्भिः कुम्भैश्च पूर्णैर्विधिनाभिषिक्तः ।
अन्नं तु विन्देत् सघृतान्नहोमादाज्येन कामान् लभते पशूंश्च ॥ ९३ ॥
बैल्वैः फलैर्वा मधुरत्रयाक्तैः पत्रैः समिद्भिश्च भवेत् कुबेरः ।
विष्णोस्तिथौ फल्गुनपूर्वपक्षे तिस्रो निशाः सम्यगुपोष्य विष्णुम् ॥ ९४ ॥
संपूज्य पद्मैर्मधुरावसिक्तैर्हुत्वा तु लक्षं लभते निधानम् ।
प्राह्णे च तिष्ठन् सममूर्ध्वबाहुर्लक्षं जपेद्वा धनवानसौ स्यात् ॥ ९५ ॥
बिल्वस्य मूले निवसन् फलैस्तैर्जुह्वत् सहस्रं प्रतिवासरं वा ।
अश्नन् धनी तत्फलमिश्रमन्नं मासैस्त्रिभिः स्यात् प्रजपन् धनेशः ॥ ९६ ॥
धेनोः सवर्णाकृतितर्णकायाः क्षीरे चरुं संस्कृतमाज्यसिक्तम् ।
हुत्वायुतं तच्चरुशेषमश्नन् हन्यादलक्ष्मीं लभते च लक्ष्मीम् ॥ ९७ ॥
यद्वर्णपुष्पाणि जुहोति साज्यं तद्वर्णवस्त्राणि लभेत मासात् ।
शाल्यादिधान्यानि घृतप्लुतानि प्राप्नोति हुत्वा खलु मासमात्रात् ॥ ९८ ॥
यो यानि बीजान्ययुतं जपित्वा शाल्यादिकानामपि वा तरूणाम् ।
क्षेत्रे वपेत् सस्यफलं समग्रं मूलानि चाप्नोति फलानि चैषाम् ॥ ९९ ॥
भूर्जांस्तु गोमूत्रकयावकान्नं लक्षं जपेत् पुत्रमसौ लभेत ।
हुत्वाथ वा गुग्गुलुमाज्यसिक्तं तन्मन्त्रिताम्भःस्नपनेन पत्न्याः ॥ १०० ॥
विप्रा वशे स्युस्तिलतण्डुलाभ्यां हुत्वा तु दध्योदनतो नरेन्द्राः ।
अन्नेन साज्येन विशोऽपि शूद्राः क्षीरान्नहोमेन वशे भवन्ति ॥ १०१ ॥
इष्टामपामार्गहुतेन योषां कन्यां तु लाजैस्तु समातुलुङ्गैः ।
त्रिस्वादुसेकं लवणेन चान्या वश्या भवन्त्यस्यं हुतैर्यथावत् ॥ १०२ ॥
देवासुरान् वा नरकिन्नरादीन् रक्षांसि नागान् विहगांश्च यक्षान् ।
साज्यादपामार्गहुतादभीष्टानश्वत्थवह्नौ स्ववशे करोति ॥ १०३ ॥
नारायणं पूजयतस्त्रिसन्ध्यमुद्दिश्य यान् यान् जपतोऽर्णलक्षम् ।
सर्वेऽपि लोका वशगा भवेयुर्दद्युर्यदिष्टं दृढभक्तियोगात् ॥ १०४ ॥
गोमूत्रसंसाधितयावकाशी स्नात्वा त्रिसन्ध्यं हरिमर्चयेद् यः ।
पूतोऽष्टलक्षैर्भवतीह विप्रः स्याद् ब्रह्महाद्यैर्द्विगुणैः क्रमेण ॥ १०५ ॥

क्रमेण क्षत्रियाद्यश्चाबुद्धिपूर्वसुरापस्तेनगुरुतल्पगाश्चेति यावत् ।

पूतस्तथा पञ्चभिरेव लक्षैस्तोये स्थितः स्यादिह पातकेभ्यः[1] ।
अन्ते तु गव्यान्यभिमन्त्र्य पीत्वा पूतस्त्रिलक्षरुपपातकेभ्यः ॥ १०६ ॥

सूर्येक्षणो वारिणि जानुदघ्ने स्थित्वाष्टसाहस्रजपाभिषिक्तः ।
तत्तद्दिनोपात्तमघं निहन्यात् स्यान्नाभिमात्रे जपतस्तु पुष्टिः ॥ १०७ ॥

शुक्लाब्जसूत्राणि मतङ्गसंख्यागुणानि चैक्यं[2] गमितानि मन्त्री ।
स्पृष्ट्वायुतं तज्जपितं निबद्धं स्यात् सर्वरक्षाकरमायुषे च ॥ १०८ ॥

पुंसां दक्षिणहस्ते वामकरे कण्ठे वा स्त्रीणाम् ।

क्रुद्धस्य शान्तिः पुरतो जपात् स्याद् वादे जयश्चाष्टसहस्रजापात् ।
राज्ञोऽथ वान्यस्य च दर्शनादौ मन्त्रं जपेदिष्टमसौ करोति ॥ १०९ ॥

स्नातो विशुद्धः कपिलाकरीषं ब्राह्मे मुहूर्तेऽम्बुजपत्रलब्धम् ।
अनिन्दुपर्वण्ययुतं जपित्वा द्वारे निखातं गृहरक्षकं तत् ॥ ११० ॥

तद्धोमयाद् वैष्णववह्निभस्म प्राग्वज्जपेत् स्याद् ग्रहरोगरक्षा ।
सिद्धार्थपालाशतिलाज्यहोमात् स्यात् सर्वरक्षा ग्रहरोगशान्तिः ॥ १११ ॥

राजीघृताक्ताः समिधोऽर्धरात्रे वैभीतकीर्दिग्वसनो वनान्ते ।
जुह्वद् रिपून् मारयतीह मासात् वैकङ्कतीः स्तम्भयते च सेनाम् ॥ ११२ ॥

इष्ट्वा हरिं गव्यघृतावसिक्तं नित्यं त्वपामार्गसमित्सहस्रम् ।
हुत्वा नरेन्द्रो[3] नवभिस्तु मासैर्जित्वेह शत्रून् वहते धरित्रीम् ॥ ११३ ॥

वामे तु पाणौ सलिलं गृहीत्वा दष्टं निषिञ्चेन्मनुजापलब्धम् ।
क्ष्वेलान् समस्तान् विनिहत्य रक्षेद् दूर्वाभिरामृज्य च लूतिकादीन् ॥ ११४ ॥

ध्यायेन्निजैक्यं गरुडाधिरूढं शङ्खारिपाशाङ्कुशशार्ङ्गबाणैः ।
गदासियुक्ताष्टभुजं जयार्थी नारायणं वैरिभियां च शान्त्यै ॥ ११५ ॥

क्षीरार्णवान्तःकनकान्तरीपे कल्पद्रुमोद्यानगमण्डपान्तः ।
सिंहासनाब्जोदरसन्निविष्टं ध्यायेच्छ्रियै श्रीधरणीसमेतम् ॥ ११६ ॥

गङ्गादिकानां सरितामुदीच्ये तीरेऽब्दमष्टाक्षरमन्त्रजापी ।
आश्चर्यशक्तिर्भवतीह सर्वान् कामानवाप्नोति च दीर्घमायुः ॥ ११७ ॥

---

१. 'भ्यः । सूर्ये', २. 'त्यं' ख. पाठः. ३. 'न्द्रा' क. ग. पाठः.

तिस्रो निशाः सम्यगुपोष्य कृष्णे पक्षे तु कार्ष्णे दिवसे तु कृष्णम् ।
संपूज्य तत्पादयुगं कराभ्यां स्पृष्ट्वा जपेत् सप्तदिनं धनार्थी ॥ ११८ ॥

इत्थमञ्जनचन्दनपादुकाखड्गादिकं च साधयितुं तत्तत् कार्यं साधयति ।

प्रातस्त्रिरात्रं समुपोष्य चेष्ट्वा विष्णुं सगोमूत्रकयावकाभ्याम् ।
पक्षं विनिद्रः सततं जपेद् यस्तस्येष्टदा व्योमचरा भवेयुः ॥ ११९ ॥

भूतोदकेनैव बलिं निशीथे दत्त्वा श्मशाने त्वथ सप्तरात्रम् ।
भूतादिकेभ्यस्त्रिसहस्रजापाद् भूताः पिशाचाश्च तदिष्टदाः स्युः ॥ १२०॥

न्यग्रोधमूले हरिमर्चयित्वा जुह्वत् सहस्राणि तु खादिरीणाम् ।
श्यामासु मासादुपयाति[1] यक्षी स्यादिष्टदा सा रमतां तया वा ॥ १२१ ॥

खादिरीणां समिधामित्यर्थः ।

आलिख्य चाशोकवनस्य मध्ये[2] यक्षं तथा तत्फलके तदीयैः ।
पुष्पैर्हरिं चापि[3] यजेत् त्रिसन्ध्यं हुत्वापि मासाद् वरदो हि स स्यात् ॥१२२॥

नागद्रुमाणां फलकेषु नागीरालिख्य या नागवनस्य मध्ये ।
इष्ट्वा हरिं तत्कुसुमैर्जुहोतु प्राप्नोति ताभ्यः स रसायनाद्यम् ॥ १२३ ॥

द्वारे बिलस्यासुरराजकन्यामालिख्य चाधाय विकङ्कताग्निम् ।
वैकङ्कतीनां समिधां तु लक्षं हुत्वासुरीतो लभते तदिष्टम् ॥ १२४ ॥

आर्द्राम्बरोऽथाम्बरगोचरेऽग्नौ यद्वैतसीनामयुतं जुहोतु ।
स्याद् वृष्टिरग्र्या समिधामथापि स्थित्वाप्सु तस्माद् द्विगुणं जपित्वा ॥१२५॥

शमीसमिद्भिर्विपदां प्रशान्त्यै जुहोतु कृष्णैः सघृतैस्तिलैर्वा ।
श्रियै च पुष्ट्यै घृतपायसाभ्यां जपन्[4] श्रियं पश्यति पर्वताग्रे ॥ १२६ ॥

क्षीराशनो वाक्षरलक्षजापी ब्रह्मावबोधं लभते च मुक्तिम् ।
लक्ष्मीं दृशा पश्यति पर्वताग्रे सम्पूज्य षण्मासजपेन भक्तः ॥ १२७ ॥

दध्याज्यमध्वक्ततिलैः सुकृष्णैर्हुत्वा त्रिलक्षं त्रिदशा वशे स्युः ।
व्रत्याशनो विष्णुगृहे जपेद् यः संवत्सरं मन्त्रमसक्तमेनम् ॥ १२८ ॥

---

१. 'न्ति' ख. पाठः. २. 'ध्ये इष्ट्वा हरिं' ग. पाठः. ३. 'पि सा तद्व' ख. पाठः. ४. 'प' क. पाठः.

विष्णुं दृशा पश्यति भक्तियोगाद् यजन् यथावच्छरदां त्रयेण ।
तिस्रो निशाः सम्यगुपोष्य विष्णुं सम्पूज्य तु द्वादशिकानिशायाम् ॥ १२९ ॥

ताक्ष्यं विधायारुणचन्दनेन संस्पृश्य तं मन्त्रमिमं जपित्वा ।
संस्पन्दमानं तमथाधिरूढः[1] प्राप्नोति तेनैव स विष्णुलोकम् ॥ १३० ॥

यं यं त्रिलोक्यामयमर्थजातं वाञ्छत्ययत्नादथ वा प्रयत्नात्[2] ।
मन्त्री समस्तं लभते जपाद्यैर्भक्तस्तु नारायणपादपद्मे ॥ १३१ ॥

इति परमरहस्यं प्रोक्तमष्टाक्षरस्य श्रुतिनिगदितमेतत् साधनाद्यं समासात् ।
हरिचरणसरोजे भक्तिभाजां जनानां प्रियहितमखिलार्थप्राप्तये हेतुभूतम् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
अष्टाक्षरपटलः त्रयस्त्रिंशः ।

---

## अथ चतुस्त्रिंशः पटलः ।

आदावुत्तिष्ठशब्दः श्रीरसर्गा ब्रह्मशोणिते ।
ठद्वयं चैव तारादिः श्रीकरोऽष्टाक्षरो मनुः ॥ १ ॥

ऋष्याद्या वामदेवश्च पङ्क्तिर्विष्णुश्च जातिभिः ।
अङ्गानि स्युर्द्विरुक्तानि भीषय त्रासयेति च ॥ २ ॥

प्रमर्दयेति रक्षेति हुङ्कारश्च यथाक्रमम् ।
करदेहाङ्गविन्यासं सृष्टिस्थित्यन्तभेदतः ॥ ३ ॥

अष्टाक्षरोक्तमार्गेण कुर्यादस्यापि मन्त्रवित् ।
क्षीराब्धौ हेमपुलिने दिव्योद्याने मनोरमे ॥ ४ ॥

अधस्तात् कल्पकतरोर्हेमसिंहासनाम्बुजे ।
ध्यायेत् ताक्ष्यसमारूढं तप्तहाटकसन्निभम् ॥ ५ ॥

शङ्खचक्रगदाब्जानि[6] धारयन्तं चतुर्भुजम् ।
दिव्यपीताम्बरधरं विचित्रमकुटोज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

विचित्रहारकेयूरनक्रकुण्डलमण्डितम् ।
नानारत्नप्रभोद्भासिकटकाङ्गुलिवेष्टनम् ॥ ७ ॥

---

१. 'वि' क. ग. पाठः. २. 'ढं', ३. 'प्य' क. पाठः. ४. 'या', ५. 'ना' ख. पाठः. ६. 'चक्रशङ्ख' क. ख. पाठः.

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं देवं ध्यात्वा सम्पूजयेद्धरिम् ॥ ८ ॥
अङ्गानि केसराग्रेषु दिक्पत्रेषु श्रियं रतिम्।
धृतिं कान्तिं यजेच्छक्तिं मूर्तीः कोणदलेष्वपि ॥ ९ ॥

वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानिति यावत्।

विष्वक्सेनं स्वदिक्संस्थं लोकेशान् स्वदिशास्वपि।
अस्त्राणि बाह्यावरणे संपूज्यैवं यथाविधि ॥ १० ॥
ततः कुण्डे तु वेदाश्रे वैष्णवेऽग्नौ जुहोतु च।
बिल्वक्षीरागसम्भूताः समिधश्चाम्बुजैरपि ॥ ११ ॥
सर्पिषा पायसेनापि सहस्रं पृथगष्टभिः।
जुहुयाच्च हिरण्याद्यैर्गुरुं सम्पूज्य शक्तितः ॥ १२ ॥
ततः सिद्धोऽस्य मन्त्रोऽयमिष्टान् कामान् प्रयच्छति।
आज्याक्ताभिस्तु दूर्वाभिर्मृत्युरोगान्निवर्तयेत् ॥ १३ ॥
भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या दीर्घं चायुरवाप्नुयात्।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठन् जपेदुद्बाहुरम्भसि ॥ १४ ॥
सहस्रं च जपेदष्टौ महतीं श्रियमाप्नुयात्।

अष्टाक्षरोक्तमखिलं विनियोगजातमस्यापि विष्णुहृदयस्य समानमुक्तम्।
तत्तत्तथैव जपहोमविशेषयुक्त्या संसाधनीयमिति तच्च समस्तमूह्यम् ॥ १५ ॥

विष्णुहृदयाधिकारः।

---

स्मरबीजं चतुर्थ्यन्तं कृष्णो गोपीपदं ततः।
जनशब्दोऽम्बुभूस्थौभूर्दीर्घो नाभिस्ततो मरुत् ॥ १६ ॥
अग्निपत्नी च मन्वर्णो मन्त्रो गोपालकः स्मृतः।
आद्यं बीजं तु तच्छक्तिर्ब्रह्माक्षो नारदो मुनिः ॥ १७ ॥
विराटच्छन्दस्तथा कृष्णो देवता बालविग्रहः।
छन्दो गायत्रमित्यन्ये लिख्यन्तेऽङ्गान्यनुक्रमात् ॥ १८ ॥

---

१. 'ति' क. पाठः. २. 'ध्वा का', ३. 'स्थां' पाठः.

आचक्राय विचक्राय सुचक्राय च जातिभिः ।
त्रैलोक्यरक्षणायेति चतुर्थ्या त्वसुरान्तकः ॥ १९ ॥
ह्रीनमाद्यैश्चतुर्वर्णैः केचिद् गोपमनुं[1] जगुः ।
तस्यापि तुल्यमृष्याद्यमङ्गाद्यं चैव साधनम् ॥ २० ॥
सिद्धसाध्यादिघटनं नक्षत्रघटनापि वा ।
नावेक्ष्या त्वस्य मन्त्रस्य सर्वेषां सिद्धिदो ह्ययम् ॥ २१ ॥
स्त्रीशूद्राणामपि ह्येष भक्तानामिष्टसिद्धिदः ।
अस्त्रसंशुद्धकरयोः कनिष्ठाद्यङ्गुलीष्वपि ॥ २२ ॥
तलयोश्चैव सर्वत्र मन्त्रार्णान् सृष्टये न्यसेत् ।
तद्विलोमेन संहारे स्थितये मध्यमादिकम् ॥ २३ ॥
अङ्गानि च कनिष्ठाद्यं ज्येष्ठाद्यं मध्यमादिकम् ।
करयोर्विन्यसेत् तुल्यं सृष्ट्यन्तस्थितिषु क्रमात् ॥ २४ ॥
मूर्ध्नि बिन्दौ दृशोर्घ्राणे श्रोत्रयोर्वदने गले ।
हृदि नाभौ स्मरे जान्वोर्जङ्घयोरपि पादयोः ॥ २५ ॥
देहे चतुर्दशार्णांस्तु विन्यसेत् सृष्टये क्रमात् ।
हृदयाद्यं स्थितिन्यासे पादाद्यं संहृतौ स्मृतम् ॥ २६ ॥
अङ्गानि हृदयाद्यानि स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत् ।
कृत्वा तु करयोर्न्यासं शरीरे व्यापकं तथा ॥ २७ ॥
देहन्यासं च पञ्चाङ्गं न्यासं कुर्याद् यथोदितम् ।
गुरूपदेशतो मन्त्रं लब्ध्वा तत्तोषकारकः ॥ २८ ॥
ध्यात्वा देवं यथाकालं पुरश्चर्यां समाचरेत् ।
भूभृन्नदीबिल्वमूलह्रदगोष्ठसुरालयाः ॥ २९ ॥
बोधिच्छायासमुद्रास्ते[2] तद्वत् स्थानानि साधने ।
अल्याशनः संयतात्मा स्नाने त्रैषवणे रतः ॥ ३० ॥
प्रत्येकमेषु स्थानेषु स्वार्णसाहस्रकं जपेत् ।
जपाद् दशांशं जुहुयात् पद्माज्यतिलपायसैः ॥ ३१ ॥

१. 'को' ख. पाठः. २. 'श्ले' क. ख. पाठः.

स्वर्णादौ पूजयेद् देवं कृष्णं विभवसारतः ।
भोजयेद् ब्राह्मणान् शक्त्या कृतपूर्वव्रतो भवेत् ॥ ३२ ॥

ध्यानं च —

बालं प्रत्यग्रनीलोत्पलदलजलदश्यामलं कोमलाङ्गं
व्याकोशाम्भोजनेत्रं कनकमणिलसद्भूषणं पीतवस्त्रम् ।
बर्हापीडं विचित्रोज्ज्वलमकरलसत्कुण्डलं चारुवक्त्रं
कृष्णं दोर्भिश्चतुर्भिर्धृतजलजगदापद्मचक्रं स्मरामि ॥ ३३ ॥

वन्यैर्नानाप्रसूनैर्विरचितरुचिमच्चित्रमौलिं विचित्रै-
र्बर्हामिश्रैः कदम्बैर्व्यतिकरितलसत्केसरोद्दामदाम्ना ।
कण्ठान्तालम्बिनोच्चैः परिगतवपुषं वेणुगानानुषक्तं
गोगोपीगोपवृन्दैः परिगतमपि वा चिन्तयेत् पीतवस्त्रम् ॥ ३४ ॥

श्रीवत्सोद्भासिवक्षःस्थलगतविलसत्कौस्तुभोद्भासिलक्ष्मी-
व्याप्तिमिश्रालोलहारं मधुकरनिकरानीलकेशालकान्तम् ।
ध्यायेत् पूर्णेन्दुबिम्बामलमुखकमलं फुल्लपद्मायताक्षं
देवं गोपालवेषं दिवि सुरमुनिभिर्वन्द्यमानं मुकुन्दम् ॥ ३५ ॥

## सामान्यसाधनाधिकारः ।

---

अथ त्रिकालं कृष्णस्य यथा ध्यानं निगद्यते ।
गवां सन्दोहनकृते वत्ससन्दोहमध्यगम् ॥ ३६ ॥
वेणुगानविनोदेन रममाणं विलासिनम् ॥ ३७ ॥
लिह्यमानं गोवत्सैर्गोपकन्याभिरावृतम् ।
ससुरासुरगन्धर्वमुनिविद्याधरादिभिः ॥ ३८ ॥
वृन्दशो दिवि देवेशं वन्द्यमानं स्मरन् यजेत् ।
चम्पकोत्पलपद्माद्यैर्वन्यैरन्यैः सुगन्धिभिः ॥ ३९ ॥
कुसुमैर्गन्धधूपाद्यैर्यथावदभिपूजयेत् ।
प्रातर्हिरण्यपात्रेषु दधि मूलं गुलं मधु ॥ ४० ॥
रसवन्नवनीतं च ताम्बूलं च निवेदयेत् ।
मध्याह्ने रत्नशैलेन्द्रशिखरेऽतिमनोरमे ॥ ४१ ॥

दिव्योद्याने कल्पवृक्षच्छायायां रत्नमण्डपे ।
रत्नसिंहासनाम्भोजकर्णिकायां चतुर्भुजम् ॥ ४२ ॥
यथोक्तरूपालङ्कारं कृष्णं ध्यायीत साधकः ।
संवृतं गोपकन्याभिर्दिव्यरूपाभिरच्युतम् ॥ ४३ ॥
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेव्यमानं सुरैरपि ।
उद्यानवृक्षच्छायासु चरित्वा यवसोदकम् ॥ ४४ ॥
सुतृप्ताभिस्तथा गोभिर्विश्रुताभिरवेक्षितम् ।
ध्यात्वैवं विधिनावाह्य वक्ष्यमाणविधानतः ॥ ४५ ॥
सुगन्धिवन्यकुसुमैश्चम्पकोत्फुल्लकुब्जकैः ।
संपूज्य हेमपात्रेषु निवेद्य घृतपायसैः ॥ ४६ ॥
दत्त्वा गोभ्यस्तथा ग्रासान् क्षमस्वेति प्रवा(ह?स)येत् ।
सायं बृन्दावने देवं रासमण्डलमध्यगम् ॥ ४७ ॥
अलङ्कृताभिरत्यर्थं गोपकन्याभिरावृतम् ।
क्रीडन्तं नृत्तगीताद्यैर्विनोदैर्विविधैर्विभुम् ॥ ४८ ॥
मल्लिकाजातिकुसुमैरिष्ट्वा तु घृतपायसम् ।
निवेद्य च शृतं क्षीरं दत्त्वा हस्तावसेचनम् ॥ ४९ ॥
मुखवासं तु ताम्बूलं विनिवेद्य प्रवा(ह?स)येत् ।

**त्रिषवणध्यानाधिकारः ।**

---

अथ सामान्ययजनं कृष्णस्येह निगद्यते ॥ ५० ॥
स्वाङ्गमूलैर्विधि[1]स्नातो गत्वा यागालयान्तिकम् ।
नामभिर्द्वारपालांश्च प्रागादिषु यजेत् क्रमात् ॥ ५१ ॥
धातारं च विधातारं गङ्गां च यमुनामपि ।
शङ्खपद्मनिधी तद्वद् द्वारशाखाग्रयोरपि ॥ ५२ ॥
मध्ययोर्मूलयोरिष्ट्वा तन्मध्ये च सुदर्शनम् ।
ऊर्ध्वोदुम्बरमध्ये तु नाम्ना द्वारश्रियं यजेत् ॥ ५३ ॥

---

१. 'के विधि' क. पाठः

भद्रं सुभद्रं याम्ये तु द्वारे द्वारश्रियं तथा ।
चण्डं प्रचण्डं लक्ष्मीं च पश्चिमे विजयां जयाम् ॥ ५४ ॥
लक्ष्मीं च प्रयजेद् द्वारे तारकाधीशदिग्गते ।
अस्त्राभिमन्त्रितं पुष्पं प्रक्षिप्यान्तः प्रविश्य तु ॥ ५५ ॥
तदस्त्रकुसुमं न्यस्य देहल्यां वास्तुपद्मजे ।
स्वासनं च समाराध्य शस्त्रवप्रं समन्ततः ॥ ५६ ॥
सङ्कल्प्य वर्मणा [1] गेहमवकुण्ठ्य निजासने ।
आसीनोऽथ विशुद्धात्मा शोषणाद्यैर्यथाक्रमम् ॥ ५७ ॥
विन्यस्य सकलीकृत्य कृष्णरूपी स्वयं जपन् ।
चिज्ज्योतिषि हृदम्भोजे स्वकीये कृष्णमव्ययम् ॥ ५८ ॥
आसनादिक्रमादिष्ट्वा मानसैरुपचारकैः ।
मूलाङ्गैरर्घ्यमापूर्य तज्जलोक्षितमस्तकः ॥ ५९ ॥
[2] आश्रयं द्रव्यचक्रं च तैः संशोध्यार्घ्यबिन्दुभिः ।
आत्मानमिष्ट्वा गन्धाद्यैः प्रवरैः कृष्णरूपिणम् ॥ ६० ॥
कृतोर्ध्वपुण्ड्रः कुसुमदूर्वालङ्कृतशेखरः ।
दक्षिणे विघ्नराजानमैशान्यां प्रयजेद् गुरुम् ॥ ६१ ॥
पृथिव्यादिमयं पीठं सङ्कल्प्याभ्यर्चयेदपि ।
आधारशक्तिं गन्धाद्यैरनन्तं च स्वनामतः ॥ ६२ ॥
धर्मादीनप्यधर्मादीन् प्रकाशात्मानमेव च ।
प्रवृत्तिरूपं मोहं च कालतत्त्वं च विद्यया ॥ ६३ ॥
मायातत्त्वं च संपूज्य सूर्यसोमाग्निमण्डलैः ।
प्रागादिकेसराग्रेषु शक्तीरपि समर्चयेत् ॥ ६४ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च सत्यया ।
प्रह्वीशानुग्रहा चैव पूज्यास्तु नव शक्तयः ॥ ६५ ॥
हेमादिप्रतिमायां वा पटे वा लक्षणान्विते ।
आवाह्याष्टाक्षरोक्तेन विधानेन यजेद्धरिम् ॥ ६६ ॥

---

१. 'दे' ख. पाठः. २. 'य' क. पाठः.

अङ्गानि केसराग्रेषु कोणेष्वस्त्रं च पूजयेत् ।
रुक्मिणीं सत्यभामां च लक्ष्मीं नाग्नजितीमपि ॥ ६७ ॥
सुनन्दां मित्रविन्दां च देवीं जाम्बवतीमपि ।
सुशीलां चैव पूर्वादिदलाग्रेषु क्रमाद् यजेत् ॥ ६८ ॥
पीठाद् बाह्ये मण्डपान्तः शङ्खादीन् द्वन्द्वशोऽर्चयेत् ।
चतुर्द्वारप्रदेशेषु क्रमाद् दक्षिणवामयोः ॥ ६९ ॥
शङ्खं चक्रं गदां शार्ङ्गं मुसलं नन्दकं तथा ।
पाशाङ्कुशौ च मध्ये प्राक् श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥ ७० ॥
अथ मण्डलबाह्ये तु वह्निकोणादिदेवताः ।
सरस्वतीं गणेशं च दुर्गां क्षेत्रपतिं क्रमात् ॥ ७१ ॥
प्रागादि नारदं कूर्मं पूर्वसिद्धान् गुरून् यजेत् ।
तेषां बाह्ये तु लोकेशान् तदस्त्राणि च तद्बहिः ॥ ७२ ॥
संपूज्य गन्धैः पुष्पाद्यैस्ततो देवं प्रवासयेत् ।
एवं प्रतिदिनं पूज्य त्रिकालं विभवे सति ॥ ७३ ॥
एवं साधितमन्त्रस्य सर्वकामा भवन्ति हि ।
विप्रादीन् वशयेद्धुत्वा वन्यपुष्पैश्च जातिभिः ॥ ७४ ॥
रक्तपुष्पैस्तथा नीलैरुत्पलैः सर्व एव हि ।
सतण्डुलैस्तिलैः पुष्पैर्हुत्वा तद्भस्मधारणात् ॥ ७५ ॥
योषितो वशयेदाज्यक्षीरमध्वभिघारितैः ।
कदम्बपुष्पैर्जुहुयाद् ध्यात्वा गोपालविग्रहम् ॥ ७६ ॥
कदम्बमूले गायन्तं सर्ववश्यकरं तु तत् ।
अन्नाद्यकामः श्रीपुष्पैः सिततण्डुलमिश्रितैः ॥ ७७ ॥
जुहोति चाप्यपामार्गैः सर्वलोकवशीकरम् ।
धनार्थी सितपद्माद्यैर्वस्त्रं तद्वर्णपुष्पकैः ॥ ७८ ॥
बादरीभिः समिद्भिस्तु साज्याभिः कन्यकाप्तये ।
मध्वक्तलवणैर्हुत्वा सर्वेषां स्याद् वशीकरम् ॥ ७९ ॥

१. 'ता' क. पाठः. २. 'हृ' ख. ग. पाठः. ३. 'लैः सर्वे' ख. पाठः.

गोसिद्धैर्गोरसैर्हुत्वा पञ्चैरन्नाद्यसम्पदः ।
दध्याज्यखादिरहुताद् व्यसनेभ्यो विमुच्यते ॥ ८० ॥

पुत्रार्थमश्वत्थतरोर्मूले कृष्णं स्मरन् यजेत् ।
गुरुपुत्रप्रदं लक्षं जपेत् तस्माद् दशांशतः ॥ ८१ ॥

घृतं तु जुहुयाद् भूत्यै नवनीतं जुहोतु च ।
प्रातः कुजदिने स्नातः श्रीभूमिसहितं हरिम् ॥ ८२ ॥

इष्ट्वायुतं जपित्वा तत् क्षेत्रं गत्वा तु तन्मृदम् ।
सप्ताभिमन्त्रितां प्राश्य तत्क्षेत्रं सप्तभिर्लभेत् ॥ ८३ ॥

पारिजातहरं कृष्णं ध्यात्वेष्ट्वा करवीरजैः ।
संसिद्धैर्जुहुयादाज्यैर्जयतीन्द्र इव द्विषः ॥ ८४ ॥

शङ्खादिनिधिसंयुक्तं द्वारकावासिनं हरिम् ।
ध्यात्वेष्ट्वा तण्डुलान् हुत्वा प्रतिष्ठां लभतेऽचिरात् ॥ ८५ ॥

पार्थाय गीतावक्तारं कृष्णं ध्यात्वाम्बुजैर्यजन् ।
धर्मं च मोक्षं प्राप्नोति दूर्वाहोमाच्चिरायुषम् ॥ ८६ ॥

आहर्तारं तु रुक्मिण्या ध्यात्वेष्ट्वा लाजगोघृतम् ।
जुहुयाच्च जपेदिष्टां कन्यां योषाश्च विन्दति ॥ ८७ ॥

पिबन्तं पूतनास्तन्यं स्वैक्यं ध्यात्वावलोकनात् ।
सर्वे ग्रहा विनश्यन्ति विषं कालीयमर्दनम् ॥ ८८ ॥

बृन्दावनगतं ध्यायन् वृष्टिकामस्तु वेतसैः ।
हुत्वा तु लभते वृष्टिं सप्तरात्रान्न संशयः ॥ ८९ ॥

व्याधीन् जयेच्चापमृत्युं छिन्नाज्यतिलहोमतः ।
साज्यपायसहोमेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ९० ॥

राज्ञः पुरोहितत्वार्थी शुक्लपुष्पैर्मधुप्लुतैः ।
हुत्वा तु लभते लक्षमन्यद् वा न चिराद् द्विजः ॥ ९१ ॥

इति निगदितमेतत् कृष्णमन्त्रस्य सम्यङ्
मुनिजनपरिदिष्टान् वीक्ष्य कल्पान् विधानम् ।

यजनजपहुताद्यैर्भक्तिमान् नित्यशोऽमुं
भजति यदि यदिष्टं प्राप्नुयाद् येन मन्त्री ॥ ९२ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे
मन्त्रपादे श्रीकराद्याक्षरगोपालो नाम
चतुस्त्रिंशः पटलः ।

---

अथ पञ्चत्रिंशः पटलः ।

नृसिंहानुष्टुभश्छन्दः सैव दैवं[1] नृकेसरी ।
विधिः प्रजापतिर्नाम्ना ऋषिरङ्गानि च स्वयम् ॥ १ ॥
कर्णं खान्तोऽग्निदण्डाढ्यः खड्गी वामाक्षि[2]संयुतः
वह्निर्दण्डी महाकालः खं दीर्घमयुतं जलम् ॥ २ ॥
सकर्णढान्तगैः[3] श्वेतश्चन्द्रखण्डविभूषितः ।
ज्वलन्तं लर्वटो पुच्छं + + + + + + + + + ॥ ३ ॥
नृलिंवं वीरनं हिष्णुं मृत्युंमृत्युं[4] नमाम्यहम् (?) ।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्चाप्यष्टाभिस्त्रिभिरेव च ॥ ४ ॥
पञ्चभिश्च ततोऽष्टाभिः स्वाङ्गैरर्णानि षट् क्रमात् ।
नक्षत्रसिद्धं बद्ध्वाद्यं नोपवासादिकं तथा ॥ ५ ॥
विधीयतेऽस्य मन्त्रस्य सिध्येद् भक्त्या जपादिभिः ।
बीजं चातिधृतिस्वार्णो लकुली बिन्दुमान् स्मृतः ॥ ६ ॥
धृतिस्वार्णः स्थितः सूक्ष्मः शक्तिर्बिन्दुयुता स्मृता ।
होमेष्वग्निप्रियान्तः स्याद् ध्यानं कर्मानुरूपतः ॥ ७ ॥
त्रिसन्ध्यमर्चयेद् देवं ब्रत्याहारो जितेन्द्रियः ।
शुचौ देशे समासीनो जपेल्लक्षमतन्द्रितः ॥ ८ ॥
गुरौ मन्त्रे च देवे च तुल्यभक्तिः शुचिः सदा ।
शक्तस्तिलाज्यं जुहुयादशक्तो द्विगुणं जपेत् ॥ ९ ॥
जपाद् दशांशं जुहुयान्मन्त्रः सिध्यति नान्यथा ।
अपुरश्चरणोऽप्येष मन्त्रो भक्तस्य सिध्यति ॥ १० ॥

---

१. 'दे', २. 'क्', ३. 'खः', ४. 'त्युं' ख. पाठः.

एकादशपदो मन्त्रो नेत्राक्षि[1]श्रुतिवह्निभिः ।
शराग्निरामदस्रैश्च वेदनेत्राश्विवर्णकैः ॥ ११ ॥
अस्त्रशुद्धकरः स्वार्णं न्यसेदङ्गुलिपर्वसु ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं तऊयोरपि विन्यसेत् ॥ १२ ॥
व्यापकं मूलतो देहे न्यसेदेवं पदानि च ।
मुखे मूर्ध्नि तथा घ्राणे नेत्रयोः श्रोत्रयोर्गले ॥ १३ ॥
हृन्नाभिकटिजान्वङ्घ्रिष्वेकादश यथाक्रमम् ।
मन्त्रन्यस्ततनुः कुर्याज्जपध्यानार्चनादिकम् ॥ १४ ॥

ध्यानं च—

अकलङ्कशरच्चन्द्रसहस्रधवलद्युतिम् ।
उत्फुल्लरक्तकमलनेत्राङ्घ्रिकरपल्लवम् ॥ १५ ॥
सिंहवक्त्रं लसद्दंष्ट्रं व्यात्तरक्तमुखाम्बुजम् ।
त्रिनेत्रं भ्रकुटीभीमं विद्युत्पिङ्गसटाच्छटम् ॥ १६ ॥
रक्तक्षौमोत्तरासङ्गं पीताम्बरधरं विभुम् ।
सशङ्खचक्रोर्ध्वकरं मकुटोल्लासिमस्तकम् ॥ १७ ॥
योगपट्टपिनद्धाङ्गं स्वासीनं पङ्कजासने ।
व्यत्यस्तपादयुग[2]लं जान्वारूढभुजद्वयम् ॥ १८ ॥
शशाङ्कशकलाकारनखोल्लासिकराङ्गुलिम् ।
कर्णावतंसविलसन्मणिकुण्डलमण्डितम् ॥ १९ ॥
नानामणिगणोद्भासिकर्णभूषणभूषितम् ।
शुक्लोपवीतसंसक्तमुक्ताहारैरलङ्कृतम् ॥ २० ॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं माणिक्योदरबन्धनम् ।
केयूररत्नवलयैरङ्गुलीयैश्च भूषितम् ॥ २१ ॥
नानारत्नप्रभोद्भासिकटिसूत्रविराजितम् ।
विचित्रवलयोल्लासिनूपुराङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ २२ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरतया भूषणानां विभूषणम् ।
दैत्येन्द्रदारणप्रीत्या प्रसन्नाननपङ्कजम् ॥ २३ ॥

---

१. 'क्ष' क. पाठः. २. 'ल' ख. पाठः

नृसिंहमेवं ध्यात्वा तु कुर्यात् पूजाजपादिकम् ।
स्वासीनं हृदयाम्भोजे मानसद्रव्यविस्तरैः ॥ २४ ॥

पूजयेन्मनसा योगी तदशक्तो बहिर्यजेत् ।
हैमीं मणिमयीं रौप्यां प्रतिमां ताम्रजां तु वा ॥ २५ ॥

कृत्वा चित्रपटे वापि सालग्रामेऽथवार्चयेत् ।
अभावे स्थण्डिले वापि पावके वार्कमण्डले ॥ २६ ॥

कुर्यान्नित्यार्चनं मन्त्री यथावदुपपत्तितः ।
शैली स्थिरा चेत् प्रतिमा विमाने सुप्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

राजराष्ट्रादिरक्षार्थं तत्र पूजां प्रवर्तयेत् ।
त्रिसन्ध्यं त्वेकसन्ध्यं वा विभवानुगुणं यजेत् ॥ २८ ॥

अपुरश्चरणोऽप्येष नित्यार्चनजपादिभिः ।
भक्तः स वाञ्छितानर्थान् लभत्येव न संशयः ॥ २९ ॥

अथ नित्यार्चनविधिः —

स्नात्वा सन्ध्यां च निर्वर्त्य मौनी प्राप्यार्चनागृहम् ।
क्षालिताङ्घ्रिकरः सम्यगाचान्तो द्वारपान् यजेत् ॥ ३० ॥

सपवित्रोत्तरासङ्गः संप्रोक्ष्यार्घ्यजलैः क्रमात् ।
द्वारशाखोर्ध्वगौ धातृविधातारौ च मध्यगे ॥ ३१ ॥

गङ्गा च यमुना चाधः शङ्खपद्मनिधी स्थितौ ।
ऊर्ध्वोदुम्बरगां द्वारश्रियं गजयुगान्तरा ॥ ३२ ॥

क्षिप्त्वान्तः कुसुमं स्वास्त्राद् विघ्नानुत्सार्य वाग्यतः ।
अन्तः प्रविश्य वास्त्वीशं ब्रह्माणं च स्वविष्टरम् ॥ ३३ ॥

उपविश्य पुरः प्रोक्तैः शोषणाद्यैर्विशोधयेत् ।
स्वैक्यं ध्यात्वा नरहरिं हृदयाब्जे च चिन्मयम् ॥ ३४ ॥

अस्त्रशुद्धकरोऽङ्गानि कराङ्गुलिषु विन्यसेत् ।
मूलेन व्यापकं चापि देहे रुद्रपदानि च ॥ ३५ ॥

1. 'च्या' ख. पाठः

प्रसारितौ करौ जान्वोरारोप्याधोमुखाङ्गुली ।
व्यत्यस्तौ चरणौ कृत्वा सिंहवद् व्यादिताननः ॥ ३६ ॥

नृसिंहमुद्रामेवं तु बद्ध्वा हृत्पद्मकोटरे ।
अङ्गुष्ठमात्रं नृहरिं ज्योतिर्मध्ये यजेद् धिया ॥ ३७ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्राणि कृत्वा तु पुष्पारोपितमस्तकः ।
अस्त्रक्षालितपात्रेऽर्घ्यमापूर्याथ कुशाक्षतम् ॥ ३८ ॥

प्राग्वत् तारं तु विन्यस्य जपित्वेष्ट्वा प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रां तदर्घ्याद्भिर्यागद्रव्याण्यवोक्ष्य तु ॥ ३९ ॥

स्वशिरो यागभूमिं च गणेशं नैर्ऋतेऽर्चयेत् ।
गुरूनैशे मुनींश्चापि पूजास्थानचतुर्दिशम् ॥ ४० ॥

प्राच्यां भद्रं सुभद्रं च याम्ये चण्डप्रचण्डकौ ।
पश्चाच्चलप्रचलकावुदीच्यां विजयं जयम् ॥ ४१ ॥

आधारशक्तिं मध्ये तु कूर्मानन्तौ ततो भुवम् ।
उत्तरोत्तरतः पृथ्वीं योगपीठं च पूजयेत् ॥ ४२ ॥

धर्मादीनप्यधर्मादींस्तमस्सत्त्वरजांसि च ।
तत्कन्दनालपद्मानि शुक्लकृष्णारुणानि तु ॥ ४३ ॥

सूर्यसोमाग्निबिम्बानि पत्रकेसरकर्णिकाः ।
दत्त्वार्घ्यमन्त्रान्निर्माल्यमपनीयाभिषिच्य तु ॥ ४४ ॥

आवाह्य तस्मिन् नृहरिं यथैवाष्टाक्षरोदितम् ।
अर्घ्यादिकं क्रमाद् दत्त्वा सान्निध्यं परिभावयेत् ॥ ४५ ॥

मन्त्रन्यासं ततः कृत्वा पुष्पधूपार्चितं ततः ।
मूलाङ्गवैदिकैर्मन्त्रैः पञ्चगव्यादिविस्तरैः ॥ ४६ ॥

गन्धाद्भिश्चाभिषिच्याम्भस्तद्वस्त्रेणापनीय तु ।
संस्थाप्यासनपद्मे[3] तु दत्त्वार्घ्यादित्रयं पुनः ॥ ४७ ॥

---

1. 'र्घा' ख. पाठः. २. 'स्त्रा' क. पाठः. ३. 'त्रे' ख. पाठः.

उपचारोक्तमार्गेण पूजयेत् तु विधानतः ।
अङ्गानि केसराग्रेषु वह्न्यादिष्वस्त्रमर्चयेत् ॥ ४८ ॥

श्रद्धां मेधां महाकामां भीमामथ महाननाम् ।
आर्द्रां दीप्तिं दलाग्रेषु पूर्वादिक्रमतो यजेत् ॥ ४९ ॥

मध्ये श्रियं ततः प्राच्यां गरुडं चाथ दक्षिणे ।
चक्रं तु सशरं शार्ङ्गमाप्ये सौम्ये गदां यजेत् ॥ ५० ॥

कोणेषु शङ्खं गरुडं ध्वजाग्रे वाहनं यजेत् ।

बाह्यावरणं —

चक्रं खड्गं च पद्मं च मुसलं चैव दक्षिणे ॥ ५१ ॥

शङ्खं गदां खेटकं च शार्ङ्गं देवस्य वामतः ।
तुष्टिं दक्षिणतः पुष्टिं वामे तत्रैव कौस्तुभम् ॥ ५२ ॥

श्रीवत्सं दक्षिणेऽभ्यर्च्य वनमालां च पूजयेत् ।
पीताम्बरं ब्रह्मसूत्रं नाभिपद्मं किरीटकम् ॥ ५३ ॥

भूषणानि च सर्वाणि स्वस्थानेषु च पूजयेत् ।
कुमुदं कुमुदाक्षं च पुण्डरीकं च वामनम् ॥ ५४ ॥

शङ्कुकर्णं सर्वनेत्रं सुमुखं सुप्रतिष्ठितम् ।
एतान् पूर्वाद्यष्टदिक्षु यजेत् स्वाख्यानमोन्तकम् ॥ ५५ ॥

लोकेशान् दश तद्बाह्ये सायुधादींस्तु पूजयेत् ।
ततो गुरुमृषिं छन्दो दैवतानि प्रणम्य तु ॥ ५६ ॥

इष्ट्वाक्षसूत्रं देवाग्रे जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः ।
जपपूजादिकं सर्वमर्पयेद् देवपादयोः ॥ ५७ ॥

नत्वा स्तुत्वा क्षमस्वेति तन्मूर्तौ तं विसर्जयेत् ।

## नित्यपूजाधिकारः ।

---

विनियोगांस्तु वक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥ ५८ ॥

---

१. 'स्वं स्वं स्था', २. 'षु पू', ३. 'न' ख. पाठः.

अत्याशनः शस्तदेशे जपकोट्याणिमादिभाक्[1] ।
महापातकिनां शुद्धिः कोट्या स्यादुपपातकात् ॥ ५९ ॥
लक्षेण पातकेभ्यश्च प्रयुतेन[2] विशुध्यति ।
अपमृत्युजयं वाञ्छन् हैमाद्यं तु घटं शुभम् ॥ ६० ॥
भारावरजलापूर्णं भद्रके विनिधाय तु ।
तीर्थाम्भोभिः सुवर्णेन नानारत्नाक्षतैः फलैः ॥ ६१ ॥
चतुःक्षीरत्वगम्भोभिः सुगन्धिकुसुमैर्नवैः ।
श्रीवृक्षाश्वत्थचूतानां पल्लवैः कूर्चसंयुतैः ॥ ६२ ॥
कुम्भवक्त्रे सुनिहितैः सतण्डुलपिधानकैः ।
सुसूक्ष्मनववस्त्राभ्यां वेष्टिते स्रग्विभूषिते ॥ ६३ ॥
आसनादिक्रमात् तस्मिन्नावाह्य नृहरिं विभुम् ।
ह्यष्टोपचारैराराध्य परिवारांश्च पूजयेत् ॥ ६४ ॥
सम्यगग्निं प्रतिष्ठाप्य[3] हुत्वा दशशतं घृतम् ।
सम्पात्य कुम्भे तु जपेत् कूर्चस्पृगयुतं मनुम् ॥ ६५ ॥
देवस्य महतीं पूजां कृत्वा विप्रांश्च भोजयेत् ।
उपोषितं शुचिस्नातं साध्यमौदुम्बरासने ॥ ६६ ॥
संस्थाप्य विन्यसेत् साङ्गं मन्त्रं तस्मिंस्तमर्चयेत् ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्वेदघोषपुरस्कृतम् ॥ ६७ ॥
अभिषिञ्चेदमुं सम्यक् सोऽपमृत्योर्विमुच्यते ।
मन्त्रिणे दक्षिणां दद्यान्निजां शक्तिमहापयन् ॥ ६८ ॥
भूतग्रहाभिभूतांश्च रोगिणश्चाभिषेचयेत् ।
तत्तत्पीडोपशमनं तेषां सद्यो भविष्यति ॥ ६९ ॥
सहस्रजपितं भस्म सर्वरोगहरं स्मृतम् ।
स्पृष्ट्वात्मानं जपेन्मन्त्रं शतं स्यादात्मरक्षणम् ॥ ७० ॥
चोरदुष्टमृगव्यालराजभूताद्युपद्रवे ।
स्वैक्यं ध्यात्वा जपं कुर्वन् तत्तद्भीतेर्विमुच्यते ॥ ७१ ॥

---

१. 'कान्', २. 'के', ३. 'प्रतिष्ठाप्य विन्यसेत्' ख. पाठः.

स्वयं नृसिंहो भूत्वारिं परिभ्राम्य मृगं स्मरन् ।
यस्यां दिशि क्षिपेत् तस्यां रिपोरुच्चाटनं भवेत् ॥ ७२ ॥

स्वयं नृसिंहः क्रुद्धः सन् मृगं शत्रुं विदारयन् ।
नखैर्जपेत् सहस्रं तु नित्यं मासेन मारयेत् ॥ ७३ ॥

मारयित्वा रिपुं मन्त्रं जपित्वा कलशेन तु ।
अभिषिक्तो विशुद्धः स्यादात्मरक्षा च तद् भवेत् ॥ ७४ ॥

विद्वेषोच्चाटनादीनि कृत्वा चैवं विशुध्यति ।
क्रूरं कर्माथ सौम्यं वा यद्यदिच्छति मन्त्रवित् ॥ ७५ ॥

तत्तत् स्वैक्यहरिध्यानाज्जपतः कर्म सिध्यति ।
कुण्डे वेदाश्रके वह्नावावाह्येष्ट्वा नृकेसरिम् ॥ ७६ ॥

जुहुयाच्चोदितैर्द्रव्यैरभीष्टफलमश्नुते ।
पूजां च कुर्याद् देवस्य शक्त्या विप्रांश्च भोजयेत् ॥ ७७ ॥

पुत्रञ्जीवेन्धनाग्नौ तु पुत्रार्थी तत्फलैर्हुतात् ।
सत्पुत्रं लभते तद्वत् पायसाज्यहुतादपि ॥ ७८ ॥

पूजां कृत्वा भगवतः पुत्रकामो यदा भवेत् ।
पुत्रञ्जीवेन्धनाग्नौ तु हुत्वा लक्षं पयो घृतम् ॥ ७९ ॥

पायसं च चरौ तस्मिन् संपात्याज्यं जपेदपि ।
दम्पती भोजयेत् तेन ब्राह्मणान् भोजयेदपि ॥ ८० ॥[1]
अचिरेण भवेत् पुत्रो दीर्घायुः कान्तविग्रहः ।
श्रीकामो बिल्वकाष्ठाग्नौ श्रीलताकुसुमाम्बुजैः ॥ ८१ ॥
बिल्वपत्रैः फलैर्हुत्वा घृताक्तैर्लभते श्रियम् ।
दूर्वाभिरायुराप्नोति क्षीराज्यहवनात् पशून् ॥ ८२ ॥
उपद्रवाणां शान्त्यर्थं दूर्वात्रिकसहस्रकम् ।
अयुतं वाप्सु जुहुयाच्छान्तिं गच्छन्त्युपद्रवाः ॥ ८३ ॥
अथ युद्धजयं वाञ्छन् विभीतकशरानले ।
समूलतूलपत्राग्रकल्पितानां तदेधसाम्[2] ॥ ८४ ॥

1. 'णानपि भोजयेत् ॥', 2. 'सा' ख. पाठः.

राजिस्नेहावसिक्तानामयुतं लभते जयम्।
शत्रूनभिमुखायातानेवं ध्यायन् जपेदपि ॥ ८५ ॥
इष्ट्वा दूर्वाक्षतैर्देवं पालाशाग्नौ घृतेन तु।
दूर्वाभिः पायसाज्येन हुत्वायुर्दीर्घमाप्नुयात् ॥ ८६ ॥
हुत्वा समिद्भिः पालाशैः साज्यैरारोग्यमाप्नुयात्।
वृष्ट्यै वैतसैः साज्यैः सक्षीरान्नं जुहोतु च ॥ ८७ ॥
जले स्थित्वा जपेन्मन्त्रं वृष्टिरिष्टा भविष्यति।
किमत्र बहुनोक्तेन यद् यदिच्छति मन्त्रवित् ॥ ८८ ॥
तत्तत् पूजाजपध्यानहुतैः प्राप्नोति भक्तिमान्।
मृद्वासने समासीन ऋजुकायः समाहितः ॥ ८९ ॥
ध्यायेत् कुण्डलिनीं नाभेरधस्ताच्चतुरङ्गुले।
सप्तव्यालोपमां दीप्त्या सूर्याभामष्टवर्तुलाम् ॥ ९० ॥
हेमाभां प्रणवं चास्यां दश नाड्यो विनिस्सृताः।
इडा पिङ्गा[1] सुषुम्ना च गान्धारी हस्तिजिह्विका ॥ ९१ ॥
सुयशालम्बुषा पूषा कुहूर्वै शङ्किनी तथा।
प्राणादिदशवायूनां मार्गभूतास्तु नाडयः ॥ ९२ ॥
ऊर्ध्वक्रमा सुषुम्नाख्या देहमध्ये व्यवस्थिता।
इडा वामेन संयाति पिङ्गला दक्षिणेन तु ॥ ९३ ॥
नाभिपद्मं सुषुम्ना तु गत्वा तत्कर्णिकां गता।
तत्र विद्युत्प्रभा देवी रमा प्रणवविग्रहा ॥ ९४ ॥
सूक्ष्माख्या चिन्मयी ध्येया विद्युल्लेखेव भास्वरा।
ततः सुषुम्नामार्गेण गता हृत्पद्मकर्णिकाम् ॥ ९५ ॥
मध्यमाख्यां रमाशक्तिं ध्यायेद् दीपशिखोपमाम्।
सार्धत्रिमात्रप्रणवहंसमन्त्रविभाविताम् ॥ ९६ ॥
ततश्चोर्ध्वं व्रजन्तीं तां ज्योतिर्लेखां सुषुम्नया।
भ्रूमध्ये बिन्दुमध्यस्थां प्रणवे वैखरीं रमाम् ॥ ९७ ॥

---

१. 'ङ्गला सु' ख. पाठः.

इन्दुरश्मिनिभां ध्यायेत् ततोऽपि च सुषुम्नया ।
निर्गत्य द्वादशान्ताब्जचन्द्रमण्डलमध्यगाम् ॥ ९८ ॥

तारवारुणबीजस्थां प्लाव्यमानां सुधामृतैः ।
अमृतादिकलाजालनिश्च्युतामृतधारया ॥ ९९ ॥

सुषुम्नयाधो भ्रूपद्महृन्नाभिकमलानि च ।
क्रमेणागत्य संप्राप्तां सूक्ष्मां कुण्डलिनीं पराम् ॥ १०० ॥

ततोऽप्यापादतलयोः पूरयन्तीं सुधामृतैः ।
पुनरूर्ध्वं यथाशक्ति गच्छन्तीं वामृतात् पुनः ॥ १०१ ॥

प्लावयन्तीं सुधाम्भोभिरापादतलमस्तकात् ।
चिन्तयेत् परमां लक्ष्मीं विश्वलोकविधायिनीम् ॥ १०२ ॥

विन्यसेच्चतुरो वेदान् बिन्दौ पूर्णसुधाभृतान् ।
हृत्पद्मे तान् वसन्तादीनृतूनमृतपूरितान् ॥ १०३ ॥

विन्यस्य नाभिपद्मे तु न्यसेदाहवनीयकम् ।
अन्वाहार्यं च विन्यस्य तथाग्निं गार्हपत्यकम् ॥ १०४ ॥

प्लाव्यमानांस्तु सुधया प्रणवेन विदीरितान्[1] ।
कर्मेन्द्रियाणि सव्ये तु न्यसेज्ज्ञानानि दक्षिणे ॥ १०५ ॥

तन्मात्रापञ्चकं चैव पञ्च भूतानि पादयोः ।
दक्षिणेतरयोर्न्यस्येदमृताप्लावितानि तु ॥ १०६ ॥

तत्रापि चरमां ध्यायेद् विद्युल्लेखानुसारणीम् ।
मनो बुद्धिमहङ्कारं प्रकृतिं पुरुषं तथा ॥ १०७ ॥

व्यापित्वेनाखिले देहे विन्यस्याथ नृकेसरिम्[2] ।
स्वैक्यं ध्यात्वामृताम्भोभिः प्लावयेदखिलं क्रमात् ॥ १०८

ततः पूजाजपध्यानहोमाद्यन्तं समाचरेत् ।
यन्त्रोक्तं फलमाप्नोति मन्त्रसिद्धिश्च जायते ॥ १०९ ॥

सामान्योऽयं हरिन्यासो मन्त्राणां नृहरेः स्मृतः ।
नृसिंहयन्त्रं वक्ष्यामि सर्वरक्षाकरं परम् ॥ ११० ॥

---

१. 'ता ।' ख. पाठः. २. 'र' क. ग. पाठः.

स्वर्णपट्टेऽथवा भूर्जे शुक्लपट्टेऽथवा[1] लिखेत् ।
रोचनाकुङ्कुमलघुकुष्ठकर्पूरचन्दनैः ॥ १११ ॥
सुपिष्टैः पङ्कजं शुक्लं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
अन्तरष्टदलं[2] बाह्ये द्व्यष्टपत्रं ततो बहिः ॥ ११२ ॥
द्वात्रिंशच्च दलं बाह्ये त्रिधा पाशेन वेष्टयेत् ।
अङ्कुशेन च संवेष्ट्य नृसिंहैकाक्षरं ततः ॥ ११३ ॥
कर्णिकायां लिखेत् तस्यां रक्ष्यनाम च संलिखेत् ।
अष्टाक्षराण्यष्टदले द्व्यष्टपत्रेषु च स्वरान् ॥ ११४ ॥
द्वात्रिंशद्दलमध्येषु मूलमन्त्राक्षराण्यपि ।
दलाग्रेषु ककारादीन् द्वात्रिंशद्वर्णकान् लिखेत् ॥ ११५ ॥
दलसन्धिषु 'ह्क्षेभि' परितो विलिखेत् त्रिधा ।
सपद्मपट्टसूत्राभ्यां गुलिकीकृत्य वेष्टयेत् ॥ ११६ ॥
लाक्षया[3] च सुवर्णेन समाच्छाद्याम्बुजो रे ।
विन्यस्तकलशे यन्त्रमवस्थाप्यासनादितः ॥ ११७ ॥
आवाह्याथ यजेत् सम्यग् जपेत् स्पृष्ट्वायुतं मनुम् ।
साध्यं तत्कलशाम्भोभिरभिषिच्य[5] गुलिं ततः ॥ ११८ ॥
कण्ठे शिरसि वा हस्ते बद्ध्वा विप्रांश्च भोजयेत् ।
भूतप्रेतपिशाचानामपस्मारादिविद्विषाम् ॥ ११९ ॥
रोगाणां च क्षयादीनां परिहारः कृतो भवेत् ।

यन्त्रविधिः—

बीजे नाम ततो लिख्याद् बहिर्वृत्तं च तद्बहिः ॥ १२० ॥

ओं हुं खे क्षे फट् जये ठठ ।

साध्याख्यान्तरितं मन्त्रमिमं तु परितो लिखेत् ।
पुनर्वृत्तं च षट्कोणे लिखेत् कोणेषु चानलम् ॥ १२१ ॥
कोणाग्रेषु महाकालं क्रोधं सन्धिषु बिन्दुमत् ।
पृथिवीमण्डलं बाह्ये चक्रमेतत् तु संलिखेत् ॥ १२२ ॥

---

१. 'क्षे', २. 'लं बाह्ये त्रि', ३. 'क्षा', ४. 'प' ख. पाठः. ५. 'तं क' क. ग. पाठः,

भूतप्रेतपिशाचादीन् धारणादेव नाशयेत् ।
शतावरीरजः प्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ॥ १२३ ॥
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ।
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रके तु दशैव तु ॥ १२४ ॥
पलानि चूर्णयित्वा तु प्रस्थं कृष्णतिलं तथा ।
पुराणशर्करायाश्च पलानां सप्ततिं क्षिपेत् ॥ १२५ ॥
पञ्चत्रिंशत्पलं क्षौद्रं तदर्धं गोघृतं स्मृतम् ।
एकीकृत्य तु तत्सर्वं स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ १२६ ॥
सप्तरात्रार्पितं प्रातर्नित्यमर्धपलं क्रमात् ।
अद्यान्नृसिंहमन्त्रेण मन्त्रितं ब्रह्मचर्यवान् ॥ १२७ ॥
षण्मासात् पलितघ्नं स्याज्जरां मृत्युं जयेदपि ।
तथाष्टदश कुष्ठानि क्षयान् सप्तविधानपि ॥ १२८ ॥
अशीतिवातजान् रोगानेकविंशतिपैत्तिकान् ।
श्लैष्मिका विंशतिरुजः सान्निपातांश्च नाशयेत् ॥ १२९ ॥
सेवमानश्चिरं जीवेन्नारसिंहं रसायनम् ।

नारसिंहानुष्टुबधिकारः[२] ।

---

तारं हृद्भगवच्छब्दश्चतुर्थ्यन्तो भवेत् ततः ॥ १३० ॥
दीर्घो मेषोऽनलः शुक्लः साक्षिदण्डस्ततो वियत् ।
दीर्घवायुस्ततश्चापि देवदानव इत्यपि ॥ १३१ ॥

भूगिटाशं प्रदीप्तसहस्रकोटिसहस्रसमतेजसे(?) वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकीर्णकेसरसटाय, क्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिस्वनघोषाय, सर्वमन्त्रान्तरनिर्घोषाय, सर्वमन्त्रान्तरहृदयाय, एह्येहि भगवन्! नारसिंह! पुरुष! परावर! ब्रह्म! सत्येन स्फुर विजृम्भ दर दारय सर्वपातालान् भ्रम गर्ज मुञ्च सिंहनाद विद्रावय आविश ग्रस सर्वयन्त्ररूपाणि सर्वपातालान् प्रथय सर्वतोऽनन्तज्वाल वज्रशतपञ्जरेण सप्त पातालान् परिवारय सर्वपातालान् सुरलोकवासिनीनामाकर्षय हृदयान्याकर्षय धुन शीघ्रं दह हन पच मथ शोषय निकृन्तय तावै-

---

१. 'त्र' क. ग. पाठः. २. 'भा' ख. पाठः. ३. 'वधावन्मे' क ग. पाठः.

न्मेऽखिलकन्यकान्वशमागतान् पातालेभ्यः आसुरिभ्यः फट् यन्त्ररूपेभ्यः फट् । सहांसय मां रक्ष भगवन्! नारसिंह! विष्णो! सर्वपापेभ्यः सर्वापद्भ्यः सर्वभयोपद्रवभयेभ्यश्च । ओं ह्रीं क्षि फट् कास्तु ते ह फट् ठठ । अस्याङ्गानि — नरसिंहक्रीडित सिंहविद्रावण सर्वयन्त्रान् हन भञ्जोच्चाटय हुं फट् ठठ हृदयम् । ओं नरसिंहोत्तमाङ्गरक्षणाय हुं फट् ठठ शिरः । ओं दंष्ट्रोत्कटाय हुं फट् ठठ शिखा । ओं नरसिंहारिविद्रावण हुं फट् ठठ कवचम् । ओं नमो भगवते नरसिंहाय वेदवेदनिवेदाङ्गे हुं फट् ठठ अस्त्रम् । ओं फणासहस्रभोगकुटिलपर्यङ्कायानन्ताय ठठ । आगच्छ भगवन्! विष्णो! ठठ आवाहनमन्त्रः । ओं नमः श्रीहिताय नमः पूजामन्त्रः । पूजितो यथासुखं नमः ।

चतुःशताक्षरो मन्त्रो नारसिंह इति श्रुतः ।
ऋषिर्यमोऽस्यातिच्छन्दो विष्णुरेवास्य दैवतम् ॥ १३२ ॥

पश्चिमाभिमुखं विष्णोरासाद्यायतनं शुचिः ।
जपेद् द्वादशसाहस्रं पुरश्चरणसिद्धये ॥ १३३ ॥

अङ्गमन्त्राणि विन्यस्य करयोरङ्गुलीष्वपि ।
देहे वाभ्यर्च्य नृहरिमष्टबाहुं त्रिलोचनम् ॥ १३४ ॥

स्तम्भान्निर्गत्य दितिजं भित्त्वा नखमुखासिभिः ।
तदान्त्रमालाविक्षेपरुधिरोक्षितविग्रहम् ॥ १३५ ॥

चक्रं खड्गं च मुसलं शङ्खं चर्म गदामपि ।
बिभ्राणं बाहुषट्कैश्च अधोहस्तद्वयेन तु ॥ १३६ ॥

हिरण्यकशिपुं भित्त्वा तदान्त्रोत्क्षेपभीषणम् ।
द्वारदेशे स्थितं रौद्रं जान्वोः क्षिप्त्वारिविग्रहम् ॥ १३७ ॥

गर्जन्तमतिगम्भीरमट्टहासभयानकम् ।
स्तूयमानं विरिञ्चाद्यैर्देवैर्मुनिगणैरपि ॥ १३८ ॥

ध्यात्वैवं चित्रपटके निरावरणमर्चयेत् ।
मनसा चोपचारैर्वा नित्यं मन्त्रं जपेदपि ॥ १३९ ॥

सिद्धमन्त्रो बिलं गत्वा जपेन्मन्त्रमथायुतम् ।
तत्र विघ्नान् बहुविधान् दृष्ट्वासौ निश्चलो जपेत् ॥ १४० ॥

---

१. 'हाय', २. 'दि' क. ग. पाठः. ३. 'स्त्र', ४. 'ध' क. ख. पाठः.

प्रविश्य तु बिलं धीरः पाताले सिद्धिमाप्नुयात् ।
असमर्थो[1] जपेन्मन्त्रं बिलद्वारे ततो बिलात् ॥ १४१ ॥
निर्गत्यासुरकन्याश्च प्रयच्छन्त्यस्य वाञ्छितम् ।
रसायनं रसं वाथ घटिकामेष विन्दति ॥ १४२ ॥
सदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षोगणादयः ।
मन्त्रिणं नोपसर्पन्ति प्रयच्छन्त्यपि वाञ्छितम् ॥ १४३ ॥

## पातालनरसिंहाधिकारः ।

---

नृसिंहैकाक्षरो मन्त्रो ब्रह्मा श्वेताग्न्यनुग्रहः ।
दण्डी स्याज्जगतीच्छन्दो मुनिरत्रिश्च दैवतम् ॥ १४४ ॥
महाविष्णुस्तदङ्गानि स्वयं दीर्घस्वरैर्युतः ।
ज्वलदग्निशिखाजालत्रिशिखावेष्टितं हृदि ॥ १४५ ॥
न्यस्तं हृदि दहेत् पापमपि जन्मान्तरार्जितम् ।
प्रणवान्तरितं मन्त्रं जपेद् विप्रः सुयन्त्रितः ॥ १४६ ॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां शिखरे पर्वतस्य च ।
जपेद् घृताशनो लक्षदशकं त्वथ वै क्रमात् ॥ १४७ ॥
भैक्षाहारः पङ्क्तिलक्षं पुरश्चरणसिद्धये ।
ध्यायेत् तुषारशैलाभं कुङ्कुमाभसटोच्छटम्[2] ॥ १४८ ॥
बालचन्द्रार्धदंष्ट्राग्रं सिंहवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
भ्रुकुटीकुटिलाभोगललाटमकुटोज्ज्वलम् ॥ १४९ ॥
चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाभयकरं विभुम् ।
सर्वाभरणचित्राङ्गं पीताम्बरविभूषितम् ॥ १५० ॥
हिरण्यवधसंक्रुद्धं दहन्तमिव दृष्टिभिः ।
स्वैक्यं ध्यात्वा नरहरिं मनसैव तमर्चयेत् ॥ १५१ ॥
पटे वा प्रीतमायां वा भक्त्या शक्तस्तु पूजयेत् ।
दशमात्रजपेनापि रोगापस्मृत्यो विमुच्यते ॥ १५२ ॥

---

१. 'र्थे' ख. पाठः. २. 'च्छदम्' क. पाठः.

मन्त्रस्यास्य सकाशे तु मन्त्राः प्रतिहताः परे ।
भस्मसाद् यान्ति भूतानि पिशाचाद्या न संशयः ॥ १५३ ॥
पुरश्चर्यां विनाप्येष सिध्येद् भक्तस्य वै जपात् ।
विषरोगग्रहारिभ्यः पीडा सद्यो विनश्यति ॥ १५४ ॥
लक्षमात्रजपात् सर्वे शमनं यान्त्युपद्रवाः ।
अनुष्टुप्प्रोक्तमार्गेण विनियोगाश्च कीर्तिताः ॥ १५५ ॥
वाराहस्य तु ये प्रोक्ता विनियोगाः परत्र तु ।
त एवास्यापि नृहरेः कोपशान्त्यै च तं जपेत् ॥ १५६ ॥
तारं + हृद्भगवते मेषोन्तायपदं तथा ।

सहस्रशीर्षाय क्षीरोदार्णवशायिने शेषभोगपर्यङ्काय गरुडवाहनाय वासुदेवाय नमः । पीतवाससे वासुदेवाय संकान्त प्रद्युम्नानिरुद्ध हयशिरो-वराह नारसिंह वामन त्रिविक्रम रामराम कृष्ण वरप्रद नमोऽस्तु ते । असुरदैत्यदानवयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचकूश्माण्डापस्मारसिद्धयोगिनीडाकिनी-रिटिघृणिब्रह्मराक्षसविनायक पूतनारेवतीस्कन्दपुरोगानुग्रहानार्यग्रहनक्षत्रग्रहा-नेतानन्यांश्च महाग्रहान् हन दह पच मथ प्रमथ गृह्ण आवेशय विध्वंसय वित्रासय विद्रावय सर्वायुध चक्रेण गदया वज्रेण शूलेन भस्मीकुरु सहस्र-बाहो सर्वप्रहरणायुधो नमः । ओं जय विजय अनन्तापराजिताप्रतिहत सहस्रनेत्र ज्वल प्रज्वल विश्वरूप मधुसूदन महापुरुष वैकुण्ठ नारायण गोविन्द पद्मनाभ हृषीकेश केशव दामोदर सर्वभूतवशङ्कर शङ्खचक्रगदाधर सर्वभूत नमो-ऽस्तु ते । सर्वनागप्रमर्दन सर्वासुरोत्सादन सर्वदेव महेश्वर सर्वग्रहनिवारण स-र्वयन्त्रप्रभञ्जन सर्वमुद्राप्रभेदन सर्वज्वरविनाशन सर्वबन्धविमोक्षद सर्वकार्यार्थ-साधन सर्वोपद्रवनाशन सर्वव्याधिविनाशन[1] सर्वशत्रुविनाशन नाशन सर्वदुष्टनि-वारण सर्वारिष्टप्रशमन सर्वदुःस्वप्ननाशन सर्वदेव[2] नमोऽस्तु ते । सर्वभूतापकर्षण जनार्दन देवदेव नमोऽस्तु ते । तथा पद्मोद्भवसंहितायामस्याङ्गानि दर्शितानि — भूतेश्वर जय जीवन् हुं फट् ठठ हृदयम् । तेजोमय जीवन् हुं फट् ठठ शिरः । अमृतोद्भवमकुटाय जय जीवन् हुं फट् ठठ शिखा । अमृते कृष्णरू-पार्थे जीवन् हुं फट् ठठ कवचम् । दम्पते जीवन् हुं फट् ठठ अस्त्रम् । सर्वते-जसामुत्कृष्टतेजसे वौषट् नेत्रम् । दर्शनमन्त्रेण दिग्बन्धनम् ।

१. 'च' क. पाठः. २. 'न सर्वदुष्ट' ख. पाठः.

ऋषिस्तु वामदेवोऽस्य विराट्च्छन्दोऽस्य दैवतम् ॥ १५७ ॥
विष्णुर्द्वादशसाहस्रं पुरश्चर्याकृते जपेत् ।
तद्दशांशं तिलाज्याभ्यां हुत्वा सिद्धमनुर्भवेत् ॥ १५८ ॥
मन्त्रस्मरणमात्रेण सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ।
ध्यात्वा नृसिंहं देवेशमनुष्टुप्प्रोक्तमार्गतः ॥ १५९ ॥
संपूज्य मन्त्रं तु जपेत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
युद्धे विजयमन्विच्छन् हुत्वा तेनायुतं घृतम् ॥ १६० ॥
कृतिवारं जपित्वामुं युद्धे विजयमाप्नुयात् ।
मन्त्रिणं मन्त्रसन्नद्धतनुं स्वैक्यं नृकेसरिम् ॥ १६१ ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या व्याघ्रसर्पादयस्तथा ।
शत्रुचोरादयश्चापि नोपसर्पन्ति तं भयात् ॥ १६२ ॥
जपित्वाष्टोत्तरशतं नाशयेत् तु मसूरिकाम् ।
स्वैक्यं ध्यायंस्तु नृहरिं पश्यन् घोरेण चक्षुषा ॥ १६३ ॥
जपित्वा दशसाहस्रमपस्मारं विनाशयेत्[1] ।
तद्वन्महाज्वरं हन्याद् विंशत्या नेत्ररोगनुत् ॥ १६४ ॥
त्रिपञ्चकजपध्यायी विषाणि जगतीजपात् ।
लक्षेण कुष्ठं हरति यक्ष्माणं च विनाशयेत् ॥ १६५ ॥
नन्द्यावर्तैर्हविष्याशी साज्यैर्हुत्वाप्नुयात् सुतम् ।
दधिमध्वाज्यसिक्ताभिर्दूर्वाभिरपमृत्युजित् ॥ १६६ ॥
पौर्णमास्यादितोऽनेन त्रिवारं जपितं घृतम् ।
अपौर्णमास्यां प्राश्नीयान्महामेधास्य जायते ॥ १६७ ॥
चतुर्विंशतिवारं तु जपित्वा स्याद् वशीकरम् ।
आज्येनाष्टसहस्रं तु हुत्वा तन्नामसंयुतम् ॥ १६८ ॥
अथाकर्षणकामस्तु जुहुयाद् गौरसर्षपैः ।
तैलाक्ताक्षसमिद्भिस्तु कृष्णाष्टम्यादितो निशि ॥ १६९ ॥
कृष्णाष्टम्यन्तहोमेन शत्रुं मारयति ध्रुवम् ।

---

१. 'येत् ॥ नन्द्या' क. ग. पाठः.

हुतैः पद्मायुतैर्लक्ष्मीं फलैर्बैल्वैश्च विन्दति ॥ १७० ॥
यां वा भुवं कामयते योगे वाराहसंज्ञिते ।
तां तु प्रदक्षिणीकृत्य हुत्वा ज्योतिष्मतीघृतम् ॥ १७१ ॥
संवत्सरान्तं तां भूमिं लभते नात्र संशयः ।
कृष्णाष्टम्यां शुक्रवारे नागयोगस्तु मैत्रभे ॥ १७२ ॥
सार्पे मुहूर्ते सार्पर्क्षे करणे नागसंज्ञिते ।
संयोगो नागयोगोऽयमथवा कारणर्क्षयोः ॥ १७३ ॥
पातालसाधनार्थाय दशलक्षं पयोघृतम् ।
हुत्वा पातालवासिभ्यः प्रभूतं लभते धनम् ॥ १७४ ॥
रसं रसायनं वार्थं घटिकां वा स विन्दति ।
छायायां वटवृक्षस्य हुत्वा ज्योतिष्मतीघृतम् ॥ १७५ ॥
अणिमादिगुणान् दिव्यानाप्नुयान्नात्र संशयः ।
आकाशगमनं वाञ्छन् तैलेनाङ्कोलजेन तु ॥ १७६ ॥
ज्योतिष्मत्याश्च लक्षाणां त्रीणि त्रीणि जुहोति च ।
त्रिरात्रोपोषितः पश्चाज्जपेन्मन्त्रं दिनत्रयम् ॥ १७७ ॥
रात्रौ समुद्रगामिन्यां कण्ठदघ्नोदके स्थितः ।
जपेत् पञ्चसहस्राणि ततस्तत्सलिलागतम् ॥ १७८ ॥
फलं वटस्य गृह्णीयान्निश्शङ्को भक्षयेत् तु तत् ।
आकाशगामी स भवेत् दीर्घायुर्नवयौवनः ॥ १७९ ॥

इत्थं नृसिंहमनवोऽथ यथाप्रधानान्
कल्पान् विचार्य बहुधा सुबहुप्रकारान् ।
सार्चाविधानविनियोगविशेषयुक्ताः
सन्दर्शिता नृहरिभक्तिमतां यथार्थम् ॥ १८० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे[1] मन्त्रपादे
नृहरिमन्त्रपटलः पञ्चत्रिंशः ।

---

१. 'तन्त्रसारे' क. पाठः.

## अथ षट्त्रिंशः पटलः ।

तारं च हृद्भगवते कुम्भदीर्घानलो वियत् ।
भुजङ्गो वामकर्णाढ्यो दीर्घं पार्श्वं ततो मरुत् ॥ १ ॥
तिस्रो व्याहृतयः[1] पार्श्वं तये भूपतिपूर्वकम् ।
स्वं मे देऽथ वियद्दक्षनेत्रं दापय ठद्वयम् ॥ २ ॥
महावराहमन्त्रोऽयमृष्याद्यं[2] पूर्ववत् स्मृतम् ।
व्याहृत्याद्यक्षरं बीजं ताभिरेवाङ्गकल्पना ॥ ३ ॥
जातियुक्ता व्याहृतयस्तिस्रस्तु हृदयादिकाः ।
मह[3]र्जनौ स्यात् कवचं तपः सत्येऽस्त्रमीरितम् ॥ ४ ॥
कराङ्गुलिषु चाप्येवं व्याहृतीः सप्त विन्यसेत् ।
मूलेन व्यापकं चाङ्गान्यङ्गेषु प्रणवादिकम् ॥ ५ ॥
पुरश्चरणसिद्ध्यर्थं लक्षं त्वत्याशनो[4] जपेत् ।
कालाम्बुदचयप्रख्यं वराहवदनं विभुम् ॥ ६ ॥
चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाभयवरप्रदम् ।
त्रैलोक्यपूर्णवपुषं सुस्थितं पङ्कजासने ॥ ७ ॥
किञ्चिदुत्थानपो[5]त्रोत्थदंष्ट्रासीनवसुन्धरम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मकुटादिविभूषणैः ॥ ८ ॥
भूषितं पीतवसनं स्वैक्यं ध्यात्वा जपादिषु ।
पूजयेन्मानसद्रव्यैः प्रतिमादिषु चार्चयेत् ॥ ९ ॥
यां भूमिमिच्छेत् संप्राप्तुं तां मृदं मधुरैस्त्रिभिः ।
भौमवारे गृहीत्वा तु जुहोतु मनुनामुना ॥ १० ॥
सप्तभौमदिनेष्वेवं द्विगुणं त्रिगुणं तु वा ।
हुत्वा तां लभते भूमिं नित्यं जप्यार्चनेन च ॥ ११ ॥
उक्तयोगेषु तां मृत्सां गृह्णीयाद् भक्षयेज्जपन् ।
आत्मसात् सा भवेद् भूमिः क्षेत्रद्रोहो विनश्यति ॥ १२ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन ग्रन्थगौरवकारिणा ।

---

१, 'त सिद्धान्तयः', २. 'दि' ख. पाठः. ३. 'ज्ज' क. ख. पाठः. ४. 'नो भवेद्', ५. 'पा' ख. पाठः.

यद् यदिष्टं भवेत् तस्य तत्तदुद्दिश्य जुह्वतः ॥ १३ ॥
जपतो ध्यायतश्चैवं[1] सिध्यत्येव न संशयः ।

**महावराहमन्त्राधिकारः ।**

---

द्विरण्डो वामकर्णाढ्यः सर्गी वाराहको मनुः ॥ १४ ॥
ऋषिः सांशिक[2]नामास्यच्छन्दो गायत्रमेव हि ।
विष्णुर्वै देवता दीर्घैः स्वैरङ्गानि च स्वयम् ॥ १५ ॥
शुक्लप्रतिपदारभ्य लक्षमाज्याशनो जपेत् ।
दशांशं जुहुयादाज्यं सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत् ॥ १६ ॥
ऋषिश्छन्दो दैवतानि ध्यानाद्यं च पुरोदितम् ।
महावराहमन्त्रोक्तो विनियोगोऽस्य चोदितः ॥ १७ ॥

**वराहैकाक्षरविधिः ।**

---

तारश्चाष्टाक्षरश्चादिदेवायेति पदं ततः ।

(भुसुरोत्तफाशँ ?) महते सर्वतेजसां निधये त्रिगुणाय गुणबाह्याय सर्वलिङ्गिने सर्ववर्णाय त्रिभुवनोत्पत्तिस्थितिप्रलयकर्त्रे सुरासुरपूजिताय व्यक्ताव्यक्ताय सर्वप्रहरणायुधाय सर्वारिविनाशनाय सर्ववरप्रदाय सर्वानुगतवत्सलाय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वमन्त्रविच्छेदनाय सर्वमन्त्रस्फोटनाय सर्वमुद्राप्रभञ्जनाय गरुडवाहनाय शङ्खचक्रगदाधराय महाशार्ङ्गधनुषे देवादिदेव नाराय[3]ण ज्वल प्रज्वल हन दह पच छिन्धि मारय उत्सादय शोषय स्तम्भय द्रावय आकर्षय विद्वेषय उच्चाटय सर्वशत्रून् विध्वंसय विनायकान् नाशय ग्रहांश्चूर्णय यातुधानान् वित्रासय नागान् मोहय सर्वविषं दह सर्वरोगान् पच अलक्ष्मीमपमार्जय लक्ष्मीमावाहय सौभाग्यं प्रयच्छ त्रैलोक्यं वशमानय सर्वकामान् सम्पादय सुरासुरानाह्वय भुवनानि संहर पर्वतांश्चूर्णय समुद्रान् शोषय पृथ्वीं धारयँ शान्तिपुष्टिकर! अमोघशक्ते देवादिदेव! नारायण! मां रक्ष ओं नमो नमः हुं फट् ठठ । अस्य करन्यासमन्त्रः । ओं नमो भगवते

---

१. 'व' ख. ग. पाठः. २. 'गि' क. पाठः. ३. 'यणाय' ख. पाठः. ४. 'न्द' क. ख. पाठः. ५. 'य सशा' ख. पाठः.

महावराहाय हुं फट् ठठ । ओं नमो भगवते वामनाय हुं फट् ठठ । ओं नमो भगवते त्रिविक्रमाय हुं फट् ठठ । ओं नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् ठठ । ओं नमो भगवते नारसिंहाय हुं फट् ठठ । इति पञ्चाङ्गानि । ओं नमो भगवते महावराहाय शशिकोटिकुटिलधवलदंष्ट्रोद्धृतवसुन्धराय महाघोषणाय घननिभनिहतहिरण्याक्षाय ब्रह्माण्डव्यापिने सुरासुरमायाय पुरुष गर्ज महाक्रोड ! नारायण ! हुं फट् ठठ । हृदयम् । ओं नमो भगवते वामनाय सहस्रशरीराय वञ्चितदैत्याधिपाय सर्वमायाधिपतये भक्तवत्सल ! बन्ध रक्ष मायानारायण ! हुं फट् ठठ । शिरः । ओं नमो भगवते त्रिविक्रमाय क्रमत्रयाक्रान्तत्रिभुवनाय पादाग्रधारितब्रह्माण्डाय बलिनियाम(या ? का)य सन्त्रस्तसुरासुरवीक्षितायादृष्टपर्यङ्काय गङ्गा(पिना?पता)कोज्वलचरणाय जय विजय महानारायण ! हुं फट् ठठ । शिखा । ओं नमो भगवते वासुदेवाय शङ्खचक्रगदाधराय दैत्यान्तकाय पीतवाससे गरुडवाहनाय यदुप्रवीराय चन्द्रप्रभाय बाणासुरबाहुवनदावाग्नये महाजलदश्यामाय लक्ष्मीदयित! विश्वरूप! नारायण! कुरु रक्ष वज्रायुद्धेद्य हुं फट् ठठ । कवचम् । ओं नमो भगवते नारसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे दुष्प्रेक्ष्याय महाकल्पाग्निरूपाय ज्वालामालिने पिङ्गलसटाय क्षुभिततडित्सहस्रसंपातितभीमरूपिणे दिनकरमण्डलसदृक्षाय स्वकरनखविदारितदैत्याधिपतिवक्षःस्थलाय क्षुभितसमुद्रमेघनादभीमबृंहितत्रिभुवनाय हुलु गर्ज गर्ज । अमोघशक्ते ! नृसिंह ! नारायण ! हुं फट् ठठ । अस्त्रम् ।

ऋषिस्तु नारदश्छन्दो ह्यत्युत्कृतिरुदाहृता ॥ १८ ॥
देवता च हृषीकेशः पुरश्चर्याकृते जपेत् ।
सहस्रपञ्चकं मूलमङ्गान्यस्माद् दशांशतः ॥ १९ ॥
घृताक्ताश्वत्थसमिधां सहस्रं जुहुयादपि ।
अङ्गानां तद्दशांशेन कृतपूर्वव्रतो भवत् ॥ २० ॥
ततः प्रत्यक्षतो देवं पश्येत् स्वप्नेऽथवा हृ[१]..म् ।

अर्चना —

स्नात्वा मूलाङ्गमन्त्रैश्च क्षालिताङ्घ्रिकरद्वयः ॥ २१ ॥
आचम्यार्चागृहद्वारि क्षेत्रपं परिवर्तकान् ।
चण्डप्रचण्डद्वारश्रीवास्त्वीशान् पूर्ववद् यजेत् ॥ २२

१. 'ण्डे' ख. पाठः.

शुद्धात्मा मन्त्रन्यस्तात्मा । ओं नमो भगवते । नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति गायत्र्या द्रव्यशोधनम् ।

अर्घ्यादीन्यनयापूर्य द्रव्याद्यं प्रोक्ष्य तज्जलैः ।
आधारशक्तिं कूर्मं चाप्यनन्तं पृथिवीमपि ॥ २३ ॥
योगपीठं च धर्मादीन् सत्त्वादीन् मण्डलानि च ।
पद्मं चात्मादिकाः शक्तीर्विमलाद्याश्च पूजयेत् ॥ २४ ॥
पद्ममध्ये सुपर्णं च तस्य स्कन्धे तथाम्बुजम् ।

ओं नमो देवादिदेवाय नारायणाय विश्वरूपायानन्तशक्तये लक्ष्मीदयित सुरासुरपूजितागच्छ सान्निध्यं कुरु ठठ ।

ध्यायेदष्टभुजं देवं गरुडे हेमसप्रभम् ॥ २५ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गं च मुसलं क्रमात् ।
पाशाङ्कुशौ चोभयतो दधतं पीतवाससम् ॥ २६ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मकुटाद्यैर्विभूषितम् ।
वनमालाधरं चारुस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २७ ॥
तारेण स्वहृदम्भोजात् परं ज्योतिश्चिदात्मकम् ।
आवाहयेद् यथापूर्वम्

ओं नमो नारायणाय सुप्रतिष्ठितो भव ठठ ।

अनेन स्थापयेदपि ॥ २८ ॥

पीठाष्टदिक्षु पूर्वाद्यं गणेशं च सरस्वतीम् ।
गुरुं च नारदं चेष्ट्वा विदिक्ष्वङ्गान्यनुक्रमात् ॥ २९ ॥
तद्बाह्यावरणे दूतीरष्टदिक्षु क्रमात् स्थिताः ।
पद्मां वाचं रतिं प्रीतिं तुष्टिं पुष्टिं यशस्विनीम् ॥ ३० ॥
शान्तिं च पुष्टिं मुकुरचामराग्र्यकरां यजेत् ।
तद्बाह्ये चापि शङ्खादीनष्टावष्टदिशं बहिः ॥ ३१ ॥
लोकेशान् सायुधगणान् विष्वक्सेनं च पूजयेत् ।

ओं नमः पुण्डरीकाक्षाय त्रैलोक्याधिपतये गृह्ण ठठ ।

अनेनार्घ्यं च पुष्पादीन् दद्यादष्टाक्षरेण तु ॥ ३२ ॥

---

१. 'धं', २. 'रं' ख. पाठः.

ओं नमः क्षीरोदार्णवस्थाय नमः ठठ ।

अनेन स्नापयेद् वस्त्रं भूषणाद्यं समर्पयेत् ।

ओं नमो देवादिदेवाय[1] मधुसूदनाय सुरभिगन्धविलेपनप्रियाय गृह्ण ठठ ।

गन्धं दद्यादनेनाथ

ओं नमो देवादिदेवाय गृह्ण ठठ ।

पुष्पैश्चानेन पूजयेत् ॥ ३३ ॥

ओं नमो हृषीकेशाय भक्तवत्सलाय गृह्ण ठठ ।

दद्यादनेन वै धूपं

ओं नमः परं ज्योतिषे ठठ ।

आरात्रिकमनेन च ।

ओं नमः परमवासुदेवाय गृह्ण ठठ ।

दद्यादनेन नैवेद्यं तथैवाचमनीयकम् ॥ ३४ ॥

स्वाख्याभिः परिवारांश्च पूजयेच्च मनुं जपेत् ।

आवाह्य देवं हुत्वाग्नौ

ओं नमो देवादिदेवाय श्वेतद्वीपप्रियाय गरुडवाहन आगच्छ ठठ ।

इत्यनेन क्षमापयेत् ॥ ३५ ॥

वटे जपित्वा हुत्वा च यक्षिणीं वशयेद् ध्रुवम् ।
पाताले कृतिसाहस्रैरमरानपि लक्षितः ॥ ३६ ॥

द्विगुणं तु कलौ होमजप्याद्यं सिद्धिदं स्मृतम् ।
अपमृत्युं जयेदाम्रपर्णगव्याज्यहोमतः ॥ ३७ ॥

सुधापूर्णे ह्रदे देवं स्थितं ध्यात्वामृताम्बुभिः ।
सिञ्चन्तं साध्यशिरसि ध्यात्वा हन्याद् विषादिकम् ॥ ३८ ॥

गन्धपुष्पादिकं यस्मै दद्यात् सप्ताभिमन्त्रितम् ।
स स वश्यो भवेदस्य शय्याजाप्येन चाङ्गना ॥ ३९ ॥

मन्त्राल्लब्धं तु निर्माल्यं हरेः शिरसि धारयन् ।

---

1. 'य सुर' ख. पाठः.

रक्षोभूतपिशाचाद्यैः सर्पाद्यैर्वा न बाध्यते ॥ ४० ॥
तेनालब्धाञ्जनेनाक्ष्णोः पश्येद् भूतादिकान्निधीन् ।
शृतं क्षीरं वचां चापि सप्तवाराभिमन्त्रितम् ॥ ४१ ॥
प्राश्य श्रुतधरो वाग्मी कविः प्राज्ञश्च जायते ।
स्वैक्यं ध्यायन् जपेद्देवं भयेभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ ४२ ॥

कल्पान् विचार्य बहुधा हरितन्त्रसिद्धान्
वाराहमन्त्रविषयोऽपि च मन्त्रराजः ।
सन्दर्शितो हवनसाधनयागयुक्तो
धर्मार्थकामफलवाञ्छितकल्पवृक्षः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे श्रीवराहराजो नाम षट्त्रिंशः पटलः ।

---

## अथ सप्तत्रिंशः पटलः ।

भृगुर्व्योम चं सानन्तं वह्निः शुक्लं ततोऽनलः ।
कवचास्त्रे च षड्वर्णस्तारादिः स्यात् सुदर्शनः ॥ १ ॥
अहिबुध्न्यमुनिश्छन्दो गायत्रं विष्णुदैवतम् ।
सुदर्शनः स्वयं वा स्यात् लिख्यन्तेऽङ्गानि च क्रमात् ॥ २ ॥
आविसुध्यश्च महासुदर्शनशब्दश्च चक्रजातियुता ।
ज्वालाचक्रं च तथा मन्त्रस्याङ्गानि च क्रमेण स्युः ॥ ३ ॥
हृदयान्ते तु चक्राय विद्महेति पदं ततः ।
ततः सहस्रज्वालाय धीमहे तन्न इत्यपि ॥ ४ ॥
अरिवारितप्रशब्दो गायत्री चोदयादिति ।
मन्त्राक्षराणि षट् चापि शक्रगोपारुणानि च ॥ ५ ॥
श्वेतं कृष्णं पिङ्गलं च पीतं विद्युत्प्राभारुणे ।
हृदयादिषडङ्गानि वर्णतः परिभावयेत् ॥ ६ ॥

---

१. 'ब', २. 'नश्च' ख., 'नचक्रश्च' ग. पाठः.

अस्त्रशुद्धकरः पाण्योर्वर्णान्यङ्गुलिषु न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादितलान्तं षड् मूलेन व्यापकं तनौ ॥ ७ ॥

काक्षिघ्राणास्यहृदयगुह्यजानुषु गुल्फयोः ।
तारादिकांस्तु तारान्तान्देहेऽर्णानाष्टसु न्यसेत् ॥ ८ ॥

कण्वश्च नारदो ब्रह्मा कौशिकव्यासगौतमाः ।
प्रत्यर्णमृषयो ज्ञेया इन्द्राग्नी देवते क्रमात् ॥ ९ ॥

अनुष्टुप् च विराडार्या[1] गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ।
छन्दांसि चाथ तत्त्वानि भूम्यादीनीश्वरश्च षट् ॥ १० ॥

ऐन्द्रीं दिशं सुचक्रेण बध्नामीति चतुर्दिशम् ।
ऊर्ध्वामप्यधरां तद्वद् बध्नीयाच्छोटिकास्त्रतः ॥ ११ ॥

कालचक्राय हुं फट् ।

गमनागमनाद्यन्ते रक्षायै साधको जपेत् ।

त्रैलोक्यरक्षकचक्राय ठठ ।

इममावश्यकादौ[2] च शयनाद्यादिके जपेत् ॥ १२ ॥

तारं हृद्भगवच्छब्दश्चतुर्थ्यर्थ[3] सुदर्शनः ।

फें वा क्रोडँ महाबलाय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष महाबलाय ठठ ।

इमं मन्त्रं जपित्वा तु सकृत् कुर्याज्जपादिकम् ॥ १३ ॥

दुर्गाविघ्नेश्वरगुरुक्षेत्रेशाननलादिषु ।
विन्यस्य नत्वा पूजाद्यं कुर्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥

चतुर्थमक्षरं बीजं शक्तिरिष्टाक्षरान्तगा ।
पुरश्चरणसिद्ध्यर्थमक्षारलवणाशनः ॥ १५ ॥

विष्णुं सुदर्शनं चेष्ट्वा द्विलक्षं विष्णुमन्दिरे ।
जपेत्ततो जले स्थित्वा लक्षमेकं पयोव्रतः ॥ १६ ॥

नद्यां समुद्रगामिन्यामुदग्वक्त्रो घृताशनः ।
लक्षं चाथ हविष्याशी लक्षं वाश्वत्थमूलगः ॥ १७ ।

---

१. 'नि मध्यादी' ख. पाठः. २. 'यः' क. पाठः. ३. 'र्थां' ख पाठः. ४. 'भवा' क.. 'फवा' ग. पाठः.

शाकाशी पर्वताग्रे तु लक्षं प्राग्वदनो जपेत् ।
एवं कृत्वा पुरश्चर्यामपामार्गसमित्तिलैः ॥ १८ ॥

घृतेन चरुणा चैव जुहुयादयुतं पृथक् ।
जपेदशक्तो द्विगुणं शक्त्या विप्रांश्च भोजयेत् ॥ १९ ॥

पूजां च नित्यं विधिवदरेः कुर्याद्धरेरपि ।
नैत्यकोक्तेन विधिना स्नानानुष्ठितनैत्यकः ॥ २० ॥

क्षालिताङ्घ्रिः समाचम्य शोषणाद्यैर्वपुः स्वकम् ।
संशोध्य कृत्वात्मयागमिष्ट्वा चक्रं हृदम्बुजे ॥ २१ ॥

तत्र ध्यानं —

रक्तं रक्ताम्बराढ्यं स्फुरदरुणमणिद्योतितानेकभूषं
दंष्ट्राशुभ्राट्टहासोत्कटविकटगलद्वह्निजालोग्रवक्त्रम् ।
शङ्खं चक्रं गदाब्जे मुसलमपि धनुः सेषु पाशाङ्कुशे द्वे
बिभ्राणं साष्टबाहुं कपिलकचदृशं विष्णुचक्रं नमामि ॥ २२ ॥

हृदि वा स्थण्डिले चित्रे ध्यात्वैवं पूजयेदरिम् ।
द्वारि चण्डं प्रचण्डं च गङ्गां च यमुनां तथा ॥ २३ ॥

धातारं च विधातारं द्वारलक्ष्मीं प्रपूजयेत् ।
पुष्पमन्तः क्षिपेदस्त्रं नाराचास्त्रमनुस्मरन् ॥ २४ ॥

अन्तः प्रविश्य वास्त्वीशमिष्ट्वासीनो निजासने ।
अर्घ्यं संसाध्य मूलाङ्गैः पूजाद्रव्याणि कूर्चतः ॥ २५ ॥

अर्घ्याद्भिः प्रोक्ष्य तद्भूमिमस्त्रवप्रं विधाय च ।
आधारशक्तिं कूर्मं चाप्यनन्तं पृथिवीमपि ॥ २६ ॥

योगपीठं च धर्मादीन् सूर्यसोमाग्निमण्डलैः ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमम्बुजे ॥ २७ ॥

इष्ट्वा सौदर्शनीं[1] मूर्तिं ध्यात्वावाह्य निधाय च ।
पुष्पाञ्जलिकरः स्वस्माद्धृदब्जाज्ज्योतिरूर्ध्वगम् ॥ २८ ॥

---

१. 'ने' क. पाठः.

नीत्वा बिन्दुं च तन्मूर्तौ हृत्पद्मान्तं नियोजयेत् ।
प्रणवेन च मूलेन द्वादशान्तामृताप्लुतम् ॥ २९ ॥
निरुध्य चामृतीकृत्य कोणेष्वङ्गानि विन्यसेत् ।
अस्त्रं च दिग्दलाग्रेषु नेत्रं च पुरतो न्यसेत् ॥ ३० ॥
पीठाद् बहिः पङ्कजेषु क्रमादष्टायुधान् न्यसेत् ।
तद्बाह्ये दश लोकेशान् पूजयेत् सायुधादिकान् ॥ ३१ ॥
षडरस्य तु चक्रस्य ज्वालामालाकुलस्य तु ।
मध्यस्थां चक्रमूर्तिं तां यजेन्मुख्योपचारकैः ॥ ३२ ॥
नैमित्तिकासु पूजासु पूर्वं चक्रस्य तूत्तरे ।
विष्णुं यथावदभ्यर्च्य पश्चाच्चक्रं तु पूजयेत् ॥ ३३ ॥
मनसा वा यजेद् देवं नित्यपूजां न हापयेत्[1] ।
पुरश्चर्यां विनाप्येष नित्यपूजाजपादिभिः ॥ ३४ ॥
भक्तस्य साधयत्यर्थान् किं पुनः पूर्वसेवया ।
विनियोगास्तु लिख्यन्ते साधकानां हिताय वै ॥ ३५ ॥
ब्रह्मश्रियं तु लभते पालाशसमिधो हुतात् ।
पर्वताग्रे जपित्वा षट्सहस्रं तु सिताम्बुजैः ॥ ३६ ॥
बैल्वैः फलैर्वा पत्रैर्वाप्ययुतं श्रियमश्नुते ।
राजश्रियं वा राज्यं वा विन्देल्लक्षाज्यहोमतः ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणादींस्तु वशयेत् समिद्भिस्तु पलाशजैः ।
अश्वत्थोदुम्बरार्कैश्च लवणादखिलानपि ॥ ३८ ॥
लावणीं तु प्रतिकृतिं सप्राणां क्षौद्रसेचिताम् ।
दक्षिणाङ्घ्र्यादि जुहुयात् सहस्रं सर्ववश्यकृत् ॥ ३९ ॥
दूर्वाभिरायुश्छिन्नाभिरपमृत्युजयो हुतः ।
पौर्णमास्यां मघायां तु ग्रहणे वेन्दुसूर्ययोः ॥ ४० ॥
उपोष्य पूर्वदिवसं भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
अहोरात्रं तु जपितं पिबेद् भसितमिश्रितम् ॥ ४१ ॥

---

१. 'न वाहयेत्' ख. पाठः.

सर्पिः श्रुतधरो वाग्मी कविः प्राज्ञश्च जायते ।
ब्राह्मे मुहूर्ते वा लक्षद्वयमभ्यस्य वाक्पतिः ॥ ४२ ॥
अञ्जलिस्थाम्भसा सेकादायुर्लक्ष्मीं च विन्दति ।
आज्यक्षीराहुताद् गोमान्[1] वासांसि कुसुमैर्हुतात् ॥ ४३ ॥
हैरण्यशतनिष्केण चक्रं कुण्डे निधाय च ।
आराध्याङ्कोलतैलेन हुत्वा राष्ट्रं स्वसाद्भवेत् ॥ ४४ ॥
त्रिरात्रोपोषितः कृष्णद्वादश्यादि घृतेन च ।
हुत्वा लक्षं निधिं पश्येदथवा महतीं श्रियम् ॥ ४५ ॥
क्षीराक्तैर्वेतसैर्हुत्वा वृष्टिर्भवति[2] भूयसी ।
बिलद्वारेऽष्टलक्षं तु जपित्वाखिलसिद्धिभाक् ॥ ४६ ॥
पर्वताग्रेऽथवारण्ये वसुलक्षं जपेन्मनुम् ।
अष्टाधिकसहस्रं तु हुत्वाङ्कोलाज्यमादरात् ॥ ४७ ॥
आकाशपतितं विन्देद् दिव्यं तु गुलिकाद्वयम्[3] ।
एकां कट्यां निबध्नीयादेकां तु वदने क्षिपेत् ॥ ४८ ॥
खेचरो वा मनोवेगो युवा स्याच्चिरजीवनः ।
वटाधः कृतिसाहस्रजपाच्चार्कैधसां पुनः ॥ ४९ ॥
हुत्वा तु पञ्चसाहस्रं यक्षिणी वशगा भवेत् ।
चक्रं हस्ततले ध्यात्वा षड्वर्णान् षडरेष्वथ ॥ ५० ॥
तज्ज्वालादह्यमानं तु दष्टं स्पृष्ट्वा विषं हरेत् ।
पुराणदष्टमन्यं वा पञ्चमार्णेन ताडयेत् ॥ ५१ ॥
स्तोभो भवति च स्वस्थमावेशयति च ध्रुवम् ।
मण्डले चतुरश्रे तु चक्रं चूर्णैर्विलिख्य तु ॥ ५२ ॥
अरेषु मन्त्रमङ्गानि सन्धिष्वाख्यां ततोदरे ।
इष्ट्वा तस्मिन् ग्रहग्रस्तं विन्यस्य प्रजपन् मनुम् ॥ ५३ ॥
भस्मना पञ्चमार्णेन क्षेपादाविश्य नश्यति ।
शङ्खमुद्राधरो ध्यात्वा शङ्खाभं च सुदर्शनम् ॥ ५४ ॥

---

१. 'द्' ख. पाठः. २. 'तु' क. पाठः. ३. 'क' ख. पाठः.

तज्ज्वालाभस्मसाद्भूतं विषं ध्यायन् जपेदपि ।
प्लावयेच्चामृतेनाथ गरलानि विनाशयेत् ॥ ५५ ॥
क्षुद्रग्रहादिशान्त्यर्थमिष्ट्वा विष्णुं सुदर्शनम् ।
आज्यापामार्गसमिधः पञ्चगव्यचरुं तिलान् ॥ ५६ ॥
प्रत्येकाष्टसहस्रं तु जुहुयाच्च चरौ घृतम् ।
सम्पात्याष्टसहस्रं तु जपित्वा प्राशयेच्चरुम् ॥ ५७ ॥
क्षुद्रभूतग्रहरुजो नश्यन्त्यन्येऽप्युपद्रवाः ।
तद्भूत्या लेपनं रक्षःक्षुद्ररोगादिशान्तिदम् ॥ ५८ ॥
अपामार्गाग्रसमिधः पञ्चगव्यचरुं घृतम् ।
हुत्वासितारुणैः सूत्रैः परिस्तीर्य तु मण्डले ॥ ५९ ॥
अग्रसन्धिषु कुम्भांस्तु मध्ये दिक्षु नव न्यसेत् ।
चतुःक्षीरत्वचां तोयं नवरत्नानि काञ्चनम् ॥ ६० ॥
गन्धपुष्पाक्षतयुतान् वस्त्रस्रग्दामवेष्टितान् ।
आसनादिक्रमात् तेषु स्वावाहितसुदर्शनान् ॥ ६१ ॥
इष्ट्वा तैः स्नपयेत् साध्यं तत्सूत्रग्रथितं तु वा ।
साध्यहस्ते शिखायां वा कण्ठे वा कल्पयेज्जपन्[1] ॥ ६२ ॥
क्षुद्रग्रहामयध्वंसि स्नपनं श्रीकरं च तत् ।
अत्युच्चशुक्रेऽङ्गुलीयं शतमानसुवर्णकम् ॥ ६३ ॥
कृत्वायुताज्यहोमेन सम्पात्य जपितं पुनः ।
तद्धारणेन रक्षा स्यादारोग्यायुष्करं तु तत् ॥ ६४ ॥
मेषचापैहरिस्थेऽर्के शुक्लाष्टम्यां भृगोर्दिने ।
शिलां शुक्लां तु जपितां निखनेदभिजित्क्षणे ॥ ६५ ॥
उदङ्मुखो जपेन्मन्त्रं क्षेत्रद्रोहो विनश्यति ।
मेषस्थेऽर्के दशाहान्ते कीलमर्धोदये रवेः ॥ ६६ ॥
आश्विनं निखनेन्मन्त्री क्षेत्रद्रोहादिशान्तये ।
युग्मचापोदये कीले भौमांशे पुष्यमैत्रयोः ॥ ६७ ॥

---

१. 'ज्जपेद्', २. 'भ', ३. 'षि' ख. पाठः.

नैर्गुण्डिके खनित्वा तु मृद्ग्राह्या सा स्वभूर्भवेत् ।
आहिर्बुध्न्ये बुधांशे वा ग्राह्या सिंहोदये तु मृत् ॥ ६८ ॥

तत् तत् क्षेत्रं स्वीयं भवति ।

क्षुद्राभिचारशान्त्यर्थं पञ्चगव्योक्षितैर्नवैः ।
अपामार्गैस्तु जुहुयात् तद्भूत्या लेपयेच्च तम् ॥ ६९ ॥

क्षीरवृक्षचतुष्कत्वग्गव्यक्वाथेन सेचयेत् ।
चक्रमध्यस्थमात्मानं रक्षायै वा परं स्मरेत् ॥ ७० ॥

चक्रोदरस्थं ग्रस्तं तु दह्यमानं तदग्निना ।
भ्रामयेच्चापि मनसा मुञ्चत्याविश्य तं ग्रहः ॥ ७१ ॥

अथ रम्ये शुचौ देशे षडरं चक्रमालिखेत् ।
मध्ये पीतमरा रक्ताः श्यामाः स्युररसन्धयः ॥ ७२ ॥

नेमिः श्वेता बहिः कृष्णकोणं भूमण्डलं ततः ।
मध्ये तारं च तन्नाम मन्त्रार्णाः स्युररेषु षट् ॥ ७३ ॥

दक्षिणोत्तरयोश्चक्रद्वयमेवं विलिख्य तु ।
उत्तरे कुम्भमापूर्य सहेमकुसुमादिकम् ॥ ७४ ॥

तस्मिन् सुदर्शनं सम्यगावाह्येष्ट्वा जपेदपि ।
याम्ये चक्रेऽग्निमाधाय तत्रावाह्य सुदर्शनम् ॥ ७५ ॥

अथ मार्गसमित्सर्पिस्तिलसर्षपतण्डुलान् ।
पायसं पञ्चगव्यं च प्रत्येकाष्टसहस्रकम् ॥ ७६ ॥

हुत्वा कुम्भे क्षिपेच्छेषं प्रतिद्रव्यं समन्त्रकम् ।
अर्धप्रस्थचरोः पिण्डं कुम्भवक्त्रे निधाय तु ॥ ७७ ॥

साध्यं नीराज्य कुम्भेन राशावस्याष्टमे घटम् ।
कुम्भाद् दक्षिणतो वह्निं परिध्याद्यं च विन्यसेत् ॥ ७८ ॥

ओं नमो विष्णुगणेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु शान्तये नमः ।

हुतशेषान्धसानेन दशदिक्षु बलिं हरेत् ।
क्षीरवृक्षमये पात्रे गव्यपूर्णे निधाय तम् ॥ ७९ ॥

---

१. 'ग्ध्या' क. पाठः. २. 'स्तूत्तरे' ख. पाठः.

चक्रेष्वग्नौ चतुर्दिक्षु हुत्वा क्षुद्रो विनश्यति ।
वेदाङ्गुलैरपामार्गसमिद्भिर्गव्यसेकतः ॥ ८० ॥

हुत्वा क्षुद्रादिनाशः स्याद् विष्णुपञ्चमिरात्रिषु ।
रौद्रप्राजेशपित्र्यर्क्षे जम्बूकर्णिवटोद्भवाः ॥ ८१ ॥

यष्टिः सीमान्तरे स्थाप्या भूः स्वीया स्याद् विधूदये ।
द्वितालमाश्विनं कीलं क्षेत्राख्याकर्मसंयुतम् ॥ ८२ ॥

सिंहस्थेऽङ्गारके विष्ट्यां क्षेत्रे तदुदये खनेत् ।
इन्द्वोरेकांशगतयोर्मृद् ग्राह्या भूः स्वसाद् भवेत् ॥ ८३ ॥

सुदर्शनेन सर्वत्र जपित्वा कर्म साधयेत् ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षखदिराणां तु सारतः ॥ ८४ ॥

जम्ब्वामलकनिम्बानामश्वत्थस्य च कारयेत् ।
वृषभश्वगजाहींश्च खरसिंहद्विकानपि ॥ ८५ ॥

चक्रं च विष्टयां तद्दिक्षु ग्रामादेः परितः खनेत् ।
सुदर्शनेन संमन्त्र्य सर्वरक्षाकरं भवेत् ॥ ८६ ॥

शुक्ले चतुर्थ्यामष्टम्यामेकादश्यां च पर्वणि ।
ईष्वक्षिमुनिदेवानां विष्टिर्यामेऽष्टदिक्षु च ॥ ८७ ॥

कृष्णे तृतीयासप्तम्योर्दशम्यां भौतिके दिने ।
ऋतुवेदाहिचन्द्राणां यामे दिक्षूदयः स्मृतः ॥ ८८ ॥

पुनर्नयो नरो नागो नृपो नारिर्नगात् पुनः ।
तत्कालविष्टिनाडी स्याद् वर्ज्याः शुक्लादितः क्रमात् ॥ ८९ ॥

वटश्च किंशुको वेणुरश्विवृक्षो विकङ्कतः ।
घातकी च स्नुहिः कर्णी विष्टिवृक्षाः क्रमादिमे ॥ ९० ॥

क्रमाद् विष्टयुदयेष्वेतान् स्वाशासु परितः खनेत् ।
पराङ्मुखं स्मरन् विष्टिं सस्यरक्षा कृता भवेत् ॥ ९१ ॥

---

१. 'ष्टया', २. 'इक्ष्यग्निमु', ३. 'यो' ख. पाठः. ४. 'यो' क, ख. पाठः.
५. 'बु', ६. 'तो' ख. पाठः

सिंहो व्याघ्रो वराहश्च गर्दभोऽथ गजो वृषः ।
श्वा चेति करणानि स्युस्तेषु श्वा विष्टिरुच्यते[1] ॥ ९२ ॥

विष्टिध्यानं च—

सजलजलदमूर्तिः पिण्डितस्थूलजङ्घा
कपिलनयनकेशी चक्रदंष्ट्रोच्चघोणा ।
मुखकुहरविनिर्यद्वह्निपिण्डैः समस्तं
भुवनमिह दहन्ती तूर्णमायाति विष्टिः ॥ ९३ ॥

अथ सुदर्शनयन्त्रं—

षट्कोणमध्यगततारगसाध्यनाम मन्त्रार्णकोणमथ सन्धिगताङ्गषट्कम् ।
बाह्याम्बुजाष्टदलकेसरगस्वराढ्यं साष्टाक्षरं तदथ षोडशपत्रमब्जम् ॥ ९४ ॥
तत्कादिवर्णयुगकेसरकं दलेषु सद्द्वादशार्णकवचास्त्रठयुग्म + + ।
बाह्ये सबिन्दुशिवकोपविदर्भिताख्यं त्रिः पाशवेष्टितमथाङ्कुशकेन तद्वत् ॥
भूमण्डलं त्वथ बहिर्विधिना लिखित्वा भूर्जेऽथवा कनकपत्रसितांशुकादौ ।
हुत्वाभिपूज्य कनकेन[2] गुलीकृतं तद् रक्षाकरं सकलभीतिहरं धृतं स्यात् ॥

वृत्ते मध्ये लिखेत् तारं षडराणि च तद्बहिः ।
मन्त्राक्षराणि षट्केषु सन्धिष्वङ्गानि च क्रमात् ॥ ९७ ॥
सम्पूज्य साज्यं कुम्भेन घृतं श्वासज्वरापहम् ।
बिल्वपङ्कजयोः पञ्च पृथगङ्गानि यत्नतः ॥ ९८ ॥
दग्ध्वा तन्मन्त्रितं भस्म क्षुद्ररोगग्रहापहम् ।
चतुःक्षीरत्वचो ब्राह्मीं लक्ष्मीचन्दनरोचनाः ॥ ९९ ॥
सुरसाबिल्वदूर्वाश्च कुशापामार्गराजिकम् ।
गुग्गुलुं पद्मकं कुष्ठं कान्तं सत्कुङ्कुमं निशाम् ॥ १०० ॥
गोमयेन तु मिश्रित्य गन्धैरन्यैश्च संयुतम् ।
दग्ध्वा सुदर्शनेनाग्नौ तद्भस्मानेन मन्त्रितम् ॥ १०१ ॥
क्षुद्रघ्नमपमृत्युघ्नं श्रीमदारोग्यदं परम् ।
महासुदर्शनो मन्त्रो लिख्यते वै यथास्थिति ॥ १०२ ॥

---

१. 'ते ॥ सजल', २. 'के गु' ख. पाठः.

उद्धारो व्यत्ययो वास्य कर्तव्यो नेति दर्शनात् ।

ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय महाचक्रराजाय रक्ष मम शत्रून् नाशय दर दारय भिन्धि ज्वल ज्वालय शतसहस्रकिरणप्रज्वलितशिखादुष्प्रेक्ष्य दारुण दुष्टदहनात्मक[1] दह पच लग पातय भर्ज त्रासय सुदुष्टे[2] पुरुयन्त्रांश्चूर्णय परप्रयुक्तमन्त्राणाम[3]ष्टादशकं स्फोटय पैरासिद्धिं वो गृह्ण परमन्त्रान् संहर रर मद्यमांसामिषरुधिरभोजनप्रिय तीक्ष्णात्रिदिवसुरासुरेन्द्रसङ्ग्रामयात्रार्त[4]मथन शङ्खचक्रचापोद्यतकर नरनारायण वरास्त्र लिहि पिलि मिलि बिलि मल मर्द यक्षराक्षसभूतपिशाचकूश्माण्डशकुनीयुवतीविनायक ज्वरसर्वलूतविषविष्कम्भकान् हर मारय ललघु त्रिविक्रम बलिन वरपुराण विष्वक्सेन करवराय सग्रहान् मोटय भञ्ज आविश कड्ड विष्णुकवचमनुस्मर ठठ । अस्यास्त्रबीजम् । आचक्राय ठठ हृदयम् । विचक्राय ठठ शिरः । सुचक्राय ठठ शिखा । संचक्राय ठठ कवचम् । महाचक्राय ठठ अस्त्रम् ।

ऋषिरस्य अहिर्बुध्निः धृतिश्छन्दोऽस्य दैवतम् ॥ १०३ ॥
महाविष्णुः पुरश्चर्या सहस्रं चाष्टकं जपम् ।
गुरुवक्त्रादधीतोऽयं पाठमात्रेण सिध्यति ॥ १०४ ॥

अथ कृष्णचतुर्दश्यामहोरात्रमुपोषितः ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा श्मशाने वा चतुष्पथे ॥ १०५ ॥
अर्धरात्रे जपेन्मन्त्रं यद्यदिष्टं तदाप्नुयात् ।
शत्रुनिग्रहकामस्तु जुहुयात् सर्षपैर्निशि ॥ १०६ ॥
त्रिसन्ध्यमष्टशतकं राजीहोमेन किङ्कराः ।
भवन्ति रक्षोभूताद्याः साधयन्ति च वाञ्छितम् ॥ १०७ ॥

इत्थं सुदर्शनमनोरुदितं विधानं सर्वार्थसाधनमिदं हरिभक्तिभाजाम् ।
येनापमृत्युविपदो विलयं प्रयान्ति क्षुद्रामयग्रहकृताश्च जपादिकृत्यैः॥१०८॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे मन्त्रपादे
सौदर्शनः सप्तत्रिंशः पटलः ।

---

१. 'दहनह', २. 'ष्ट' ख. पाठः, ३. 'क्तानां म' क. ग. पाठः, ४. 'र्त', ५. 'क' ख. पाठः,

## अथाष्टात्रिंशः पटलः ।

अथाखिलार्थसंसिद्ध्यै वक्ष्ये त्रैलोक्यमोहनम् ।
मन्त्रं ससाधनध्यानस्नानपूजार्चनादिकम् ॥ १ ॥

तारं हृत्पुरुशब्दश्च सदन्तः षोयुगाषढी ।
सोनन्तश्च महाकालौ प्रतिरूपपदं धराम् ॥ २ ॥

क्ष्मी(णिहाललचस्वः! निवास सकल)जगत्क्षोभण! सर्वस्त्रीहृदयदारण! त्रिभुवनमनोन्मादकर, सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय दीपय शोषय मारय स्तम्भय भ्रामय द्रावय आकर्षय परमसुखसौभाग्यकर, सर्वकामप्रद, अमुकं हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वान् भिन्द पाशेन कड्ढ अङ्कुशेन ताडय तुरु किं तिष्ठसि[२] तावद् यावत् समीहितं मे सिद्धं भवतु हुं फट् । नमः पुरुषोत्तमाप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास, हृदयाय नमः । सकलजगत्क्षोभण, सर्वस्त्रीहृदयदारण शिरसे ठठ । त्रिभुवनमनोन्मादकर शिखायै वषट् । सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय दीपय शोषय मारय स्तम्भय द्रावय आकर्षय कवचाय हुम् । परमसुखसर्वसौभाग्यकर सर्वकामप्रद अमुकं हन चक्रेण गदया खड्गेण सर्वान् भिन्द पाशेन कड्ढ अस्त्राय फट् । तुरु किं तिष्ठसि तावद् यावत् समीहितं सिद्धं भवति हुं फट् नेत्राभ्यां वौषट् ।

स्वयमेवेत्थमङ्गानि नेत्रान्तानि भवन्ति षट् ।

नमस्त्रैलोक्यमोहन, हृषीकेशाप्रतिरूप, मन्मथ सर्वस्त्रीहृदयाकर्षणागच्छ नम इति व्यापकस्य मन्त्रः । आवाहनमन्त्रश्चायम् ।

वत्सो नामास्य तु ऋषिः काम इत्यपि केचन ॥ ३ ॥
अत्युत्कृतिर्भवेच्छन्दो हृषीकेशश्च दैवतम् ।
मन्त्रमाचार्यतो लब्ध्वा स्नानानुष्ठितनैत्यकः ॥ ४ ॥
विष्णुमभ्यर्च्य पञ्चाशत्सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ।
नाभिदघ्ने जले स्थित्वा जलैरञ्जलिपूरितैः ॥ ५ ॥
स्वमूर्ध्नि जपितैर्मन्त्री सहस्रमभिषेचयेत् ।
ततस्तु वैष्णवे वह्नौ जुहुयात् पायसं घृतम् ॥ ६ ॥

---

१. 'नासान्तश्च', २. 'सि तांसि ता' ख. पाठः.

दधि क्षीरं च शुक्लान्नं द्वादश द्वादशाहुतीः ।
एकैकमङ्गमन्त्राणां पलाशसमिधां शतम् ॥ ७ ॥
शुक्लाक्षतांस्तिलैर्मिश्रान् सहस्रं घृतसेचितान् ।
ततस्त्रिमधुराक्तानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ ८ ॥
दधीनि ब्रह्मसमिधो जुहुयात् तु शतं शतम् ।
पूर्णां हुत्वा ततो विप्रान् शक्त्या सम्पूज्य भोजयेत् ॥ ९ ॥
ततः सिध्यति मन्त्रोऽयं ध्यानपूजाहुतादिभिः ।

ध्यानं च—

आधारशक्तिं कूर्मं च शेषं भूयोगपीठके ॥ १० ॥
धर्मादीन् कन्दनालाब्जसूर्यसोमाग्निमण्डलैः ।
पत्रादींस्त्रिगुणव्याप्तावात्मादित्रयकर्णिके ॥ ११ ॥
अब्जेऽस्मिन् गरुडारूढं सिन्दूरारुणविग्रहम् ।
अष्टबाहुमुदाराङ्गं सुकुमारं स्मिताननम् ॥ १२ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरं कान्तिलावण्यापूर्णयौवनम् ।
मदाघूर्णितताम्राक्षं शृङ्गाररसविह्वलम् ॥ १३ ॥
दिव्यमाल्याम्बरालेपं मकुटादिविभूषणैः ।
भूषितं कौस्तुभोरस्कं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ १४ ॥
शङ्खं चक्रं च सशरं शार्ङ्गं खड्गं गदामपि ।
मुसलाङ्कुशपाशांश्च बिभ्राणं क्रमशो भुजैः ॥ १५ ॥
लक्ष्मीं वामोरुनिहितां हेमवर्णां विभूषिताम् ।
मौलिकुण्डलहाराद्यैर्वामहस्तधृताम्बुजाम् ॥ १६ ॥
देवं दक्षिणहस्तेन श्लिष्यन्तीं कामविह्वलाम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभौ नाम्ना वनमालां च वक्षसि ॥ १७ ॥
पीताम्बरादिकं चान्यन्मौलिं मकरकुण्डले ।
यजेत् स्वनाम्ना ताराद्यं हाराद्याभरणानि च ॥ १८ ॥

महासुदर्शन, चक्रराज, सर्वदुष्टभयङ्कर, छिन्द हन विदारय परमन्त्रान् ग्रस भक्षय भूतानि त्रासय हुं फट् इति चक्रं पूजयेत् । जलचरपाञ्च-

जन्याय ठठ । नन्दकखड्गाय नमः । शराय ठठ । भूतग्रामाय विद्महे चतुर्विधाय धीमहे तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ठठ । संवर्तकमुसलाय पोथय हुं फट् ठठ । पाशबन्ध आकर्षय हुं फट् ठठ । अङ्कुश कड्ढ तर्ज ठठ ।

एवमिष्ट्वायुधान्यष्टौ

ओं पक्षिराजाय ठठ ।

अनेन गरुडं यजेत् ।

अथ स्नात्वा तु विधिवन्नैत्यकोक्तप्रकारतः ॥ १९ ॥

गत्वा यागालयद्वारं क्षालिताङ्घ्रिकरः सुधीः ।
आचान्तः पूजयेद् द्वाराद् बहिः पीठगतान् गणान् ॥ २० ॥

वैनतेयादिभ्यः समस्तविष्णुपरिवारेभ्यो नमः ।

प्राग्द्वारपीठयोर्मध्ये क्षेत्रेशं स्वाख्यया यजेत् ।
धातारं च विधातारं शुक्लकृष्णौ चतुर्भुजौ ॥ २१ ॥

शङ्खशक्रगदाहस्तौ सविस्मयकरौ यजेत् ।
मध्ये गङ्गां च यमुनां निधी द्वारोर्ध्वपार्श्वयोः ॥ २२ ॥

शङ्खपद्मौ धनं भूरि स्रवन्तौ शुक्ललोहितौ ।
ऊर्ध्वोदुम्बरमध्यस्थां द्वारलक्ष्मीं यजेत् ततः ॥ २३ ॥

ओं शार्ङ्गाय सशराय नमः ।

नाराचास्त्रमिति क्षिप्त्वा विघ्नान् निस्सार्य वाग्यतः ।
प्राकारमस्त्रतः कृत्वा समासीनो निजासने ॥ २४ ॥

विधाय भूतशुद्धिं च शोषणादित्रयं तथा ।
गुरुं स्मृत्वा त्रिधास्त्रेण करशुद्धिं विधाय तु ॥ २५ ॥

सकृन्मूलेन संमृज्य चाङ्गान्यङ्गुलिषु न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं नेत्रं च तलयोस्ततः ॥ २६ ॥

मूलेन व्यापकं देहे विन्यस्याङ्गानि षट् क्रमात् ।
ध्यात्वा प्रद्युम्नमात्मानं रक्तं रक्ताम्बरादिकम् ॥ २७ ॥

---

१. 'वा' ख. पाठः. २. 'सि', ३ 'स्त्न् स्मृ' क. पाठः.

शङ्खचक्रधरं शार्ङ्गकामपञ्चेषुधारिणम् ।
आराध्य गन्धपुष्पाद्यैरथ स्मृत्वा हृदम्बुजे ॥ २८ ॥
परं ज्योतिरनिर्देश्यमानन्दं मनसार्चयेत् ।
अस्त्रक्षालितपात्रेऽर्घ्यमापूर्य हृदयेन तु ॥ २९ ॥
स्मरबीजं न्यसेत् तस्मिन् यजेच्च[1] कुसुमादिभिः ।

मन्मथाय विद्महे कामदेवाय धीमहे, तन्नो गन्धर्वः प्रचोदयात् ।

अनया स्मरगायत्र्या स्पृष्ट्वा द्रव्याणि शोधयेत् ॥ ३० ॥
धेन्वामृतीकृतं त्वर्घ्यं[2] रक्षितं चक्रमुद्रया ।
तज्जलैः स्वशिरः प्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं तथा क्षितिम् ॥ ३१ ॥
पातालमूलादारभ्य शक्तिं चाधारसंज्ञिताम् ।
चतुर्भुजां शंखचक्रकृताञ्जलिपुटां स्मरेत् ॥ ३२ ॥
पातालानामधःकूर्मं रक्तं शेषं च पाण्डरम् ।
कृताञ्जलिं भूषिताङ्गं चक्रलाङ्गलधारिणम् ॥ ३३ ॥

हलमुसलधरं वा ।

नीलाब्जाभां भूषिताङ्गीं नीलोत्पलकरां भुवम् ।
ततः सिंहासनं हैमं धर्मादीन् सितविग्रहान् ॥ ३४ ॥
कृष्णवर्णानधर्मादीन् मध्ये सत्त्वादिकान्[3] गुणान् ।
शुक्लं पद्मं च तन्मूलकन्दनालेष्वनुक्रमात् ॥ ३५ ॥
मायां विद्यां कलातत्त्वं श्यामशुक्लहरिद्द्युति ।
सोमसूर्याग्निबिम्बानि तारस्वाख्यानमोऽन्तकम् ॥ ३६ ॥

पूजयेदिति यावत् । ओं परमसुभग, सौभाग्यकर, अप्रतिरूप, केशव स्मर हुं फट् त्रैलोक्यमोहनासनाय नमः—

वायव्यकोणादीशान्तं गणेशं च सरस्वतीम् ।
गुरुपङ्क्तौ यजेदेतान् नारदं नलकूबरम् ॥ ३७ ॥
गुरुं परात्मकगुरुं परमेष्ठिगुरुं तथा ।
द्विभुजान् पूर्वसिद्धांश्च ध्याननिष्ठान् समर्चयेत् ॥ ३८ ॥

---

१. 'न्यसेच्च', २. 'र्घ' ख. पाठः. ३. 'सि' क. पाठः.

ततो गन्धाक्षतान् पुष्पं पद्ममध्ये निधाय तु।
पुष्पाञ्जलिकरो मूलं स्मरन् नाभिसरोरुहात् ॥ ३९ ॥

उत्कृष्य तत् परं ज्योतिर्नीत्वा हृत्कमलं ततः।
आनन्दज्ञानमात्रं तन्नीत्वोर्ध्वे च हृदाम्बुजात् ॥ ४० ॥

कण्ठभ्रूमध्यगं बिन्दुं ततश्च द्वादशान्ततः।
नीत्वाथ बिन्दुमार्गेण संयोज्य कुसुमाञ्जलौ ॥ ४१ ॥

योगपीठस्थमूर्तौ वा स्थण्डिलाज्येऽथ वा न्यसेत्।
अम्भोजाङ्कुशमुद्रे द्वे बद्ध्वाभिमुखतां नयेत् ॥ ४२ ॥

गदाचक्राख्यमुद्राभ्यां सन्निधानं च रोधनम्।
तत्तत्प्रार्थनया युक्त्या भक्त्या देवस्य कल्पयेत् ॥ ४३ ॥

मूलेन व्यापकं कृत्वा मुद्राश्चैताः प्रदर्शयेत्।
उत्तानया दक्षिणया सारिताङ्गुष्ठया परम् ॥ ४४ ॥

मुष्ट्याङ्गुष्ठं गृहीत्वा तु तर्जन्यादिचतुष्टयम्।
प्रसार्य वामहस्तस्य परतर्जनिकायुतम् ॥ ४५ ॥

कल्पयेच्छङ्खमुद्रैषा हरेः प्रीतिकरी मता।
अन्योन्यसंमुखौ हस्तौ[2] विधाय प्रसृताङ्गुली ॥ ४६ ॥

वामेतराङ्गुष्ठगतौ व्यत्यासाद् बालिकाद्वयम्।
चक्रायुधप्रीतिकरी चक्रमुद्रा भवेदियम् ॥ ४७ ॥

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ मिथश्च ग्रथिताङ्गुली।
प्रसार्य मध्यमे युक्तौ गदामुद्रेयमीरिता ॥ ४८ ॥

कनिष्ठानामिकायुग्मं ज्येष्ठयाबध्य कुञ्चितम्।
तर्जनीमध्यमायुग्मं मुक्त्वा स्यात् खड्गसंज्ञिता ॥ ४९ ॥

अङ्गुष्ठेन समाबध्य कनिष्ठानामिकाद्वयम्।
मध्यमाग्रसमाक्रान्तं[3] तर्जन्यग्रयुतस्य च ॥ ५० ॥

---

१. 'द्वाश्चैताः प्रदर्शयेत्' ग. पाठः. २. 'मिथश्च ग्रथिताङ्गुली', ३. 'न्त' क. ग. पाठः,

प्रसारितस्य वामस्य करस्याग्रं शनैः शनैः ।
वामप्रकोर्पराक्रान्तकोर्परस्येतरस्य च ॥ ५१ ॥
ज्येष्ठातर्जनिकाग्राभ्यामग्रं स्पृष्ट्वा प्रसार्य तु ।
शार्ङ्गमुद्रा भवेदेषा शार्ङ्गपाणेः प्रियङ्करी ॥ ५२ ॥
वामेतरभुजद्वन्द्वमुष्ट्यैकीकरणान्मता ।
गर्भितप्रसृताङ्गुष्ठा मुद्रा मुसलसंज्ञिता ॥ ५३ ॥
वाममुष्टेस्तु तर्जाग्रं ज्येष्ठिकाग्रे निधाय तु ।
अन्य[1]मुष्टिनिसृष्टेन तर्ज्यन्यग्रेण संस्पृशेत् ॥ ५४ ॥
वामाङ्गुष्ठस्य मूलं तु पाशमुद्रेयमीरिता ।
तर्जनीं वाममुष्टेस्तां प्रसृतां पञ्चशाखिना ॥ ५५ ॥
मुष्टिरूपेण चान्येन गृहीत्वा तस्य तर्जनीम् ।
आकुञ्चिताग्रां कृत्वा स्यान्मुद्रा चाङ्कुशरूपिणी ॥ ५६ ॥
मध्यमानामिके मध्यो[2]ज्यैष्ठिकाभ्यां निपीडिते ।
कनीयसीमूलयुग्मे विनिधाय प्रदेशिनीम् ॥ ५७ ॥
श्रीवत्समुद्रा नाम्नैषा श्रीवत्साङ्कप्रियङ्करी ।
अधोमुखस्य वामस्य करस्यापि कनीयसीम् ॥ ५८ ॥
अनामामन्यतर्जन्या कनीयस्या यथाक्रमम् ।
आबध्य दक्षिणज्येष्ठामध्यमानामिकात्रयम् ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वाग्रं वामतर्जन्या संयु[3]तं प्रविधाय च ।
ज्येष्ठान्याङ्गुलिमूलेषु वामज्येष्ठां च मध्यमाम् ॥ ६० ॥
प्रविन्यसेदतिश्लिष्टा मुद्रेयं कौस्तुभात्मिका ।
द्विहस्तज्येष्ठिकाक्रान्ततर्जाग्राभ्यां गलादितः ॥ ६१ ॥
आपादं संस्पृशेन्मुद्रा वनमालाभिधा मता ।
विपर्यस्तौ करौ कृत्वा मिथो ग्रथितबालकौ ॥ ६२ ॥
सुश्लिष्टायततर्जन्यौ लम्बिताङ्गुष्ठयुग्मकौ ।
कुटिलानामिकामध्याकल्पितोभयपक्षकौ ॥ ६३ ॥

---

१. 'स्य', २. 'ध्यो' ख. पाठः, ३. 'धं' क. पाठः,

मुद्रेयं पक्षिराजस्य विपक्षाहिविनाशिनी ।
पूर्वोक्ता योनिमुद्रैव काममुद्रेति कथ्यते ॥ ६४ ॥
मुष्टीकृतकरद्वन्द्वप्रसृताभ्यां स्वमूर्धनि ।
निधाय ज्येष्ठिकाग्राभ्यां मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी ॥ ६५ ॥
प्रागादिकेसराग्रेषु कोणेष्वग्न्यादिषु क्रमात् ।
हृच्छिरश्चूलिकावर्महेतीन् देवाकृतीन् यजेत् ॥ ६६ ॥
देवाङ्गेभ्यस्तदङ्गानि दीपेभ्यो दीपका इव ।
लक्ष्मीं वाणीं रतिं प्रीतिं कीर्तिं शान्तिं विभूषिताम् ॥ ६७ ॥
तुष्टिं पुष्टिं च पूर्वादिदलाग्रेष्वर्चयेदिमाः ।
आपीतरक्तगौराभ्यां श्यामा सितशशिप्रभा ॥ ६८ ॥
पद्मवर्णा पिशङ्गा च चामराब्जकरास्तु ताः ।
प्रागादिदिक्षु तद्बाह्ये सितरक्तारुणप्रभान् ॥ ६९ ॥
श्यामं च शङ्खारिगदामुसलान् स्वास्त्रमस्तकान् ।
कोणेषु पीतगगनसितकृष्णनिभान् क्रमात् ॥ ७० ॥
शार्ङ्गास्यङ्कुशपाशांस्तु ध्यात्वा स्वस्वाख्यया यजेत् ।
तद्बाह्यावरणे स्वाशास्थितान् सायुधवाहनान् ॥ ७१ ॥
परिवारैः स्वकैर्युक्तान् दश शक्रादिकान् यजेत् ।

अथ तद्बाह्यावरणे—

कुमुदं कुमुदाक्षं च पुण्डरीकं च वामनम् ॥ ७२ ॥
शङ्कुकर्णं सर्वनेत्रं सुमुखं सुप्रतिष्ठितम् ।
कोटिकोटिगणाधीशानसिखेटकरानिमान् ॥ ७३ ॥
भूषितान् मकुटाद्यैश्च दिव्यमाल्याम्बरान् यजेत् ।
पिङ्गलश्मश्रुकेशान्तं श्यामवर्णं चतुर्भुजम् ॥ ७४ ॥
शङ्खचक्रगदाहस्तं नासान्ते तर्जनीकरम् ।
विष्वक्सेनं च संपूज्य देवं संपूजयेत् ततः ॥ ७५ ॥
ओमर्घ्यं कल्पयामीति शिरस्यर्घ्यं प्रदाय तु ।
तथा पाद्यं चरणयोरेवं चाचमनादिकम् ॥ ७६ ॥

---

१. 'ह्य' क. पाठः.

अर्घ्यादिषोडशोद्दिष्टैरुपचारैस्तमर्चयेत् ।
विभवे सति पूर्वोक्तैर्द्वात्रिंशदुपचारकैः ॥ ७७ ॥

मूलमन्त्रस्य तु पदैस्ताराद्यैस्तु नमोऽन्तकैः ।
पुष्पैः स्रग्भिरलङ्कृत्य तारपूर्वं श्रियै नमः ॥ ७८ ॥

इत्युत्सङ्गे समासीनां लक्ष्मीं देवस्य पूजयेत् ।
नैवेद्यान्तं च बल्यन्तं होमान्तं वापि शक्तितः ॥ ७९ ॥

सर्वत्र स्मरगायत्र्या संपूज्योक्तोपचारकैः ।
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं हस्तस्थचुलुकोदकम् ॥ ८० ॥

गन्धपुष्पान्वितं कृत्वा जानुभ्यामवनिं गतः ।
देवस्य दक्षिणे हस्ते जपादिफलमर्पयेत् ॥ ८१ ॥

एवं नित्यार्चनं कृत्वा शक्त्या विप्रांश्च भोजयेत् ।
स्वयं च भुक्त्वा शेषेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ८२ ॥

हृषीकेशः स्वयं साक्षात् पुरुषोत्तम उच्यते ।
तस्य मान्मथबीजं तु मन्त्रस्त्वेकाक्षरः स्मृतः ॥ ८३ ॥

स्मरबीजं ततो व्योम सप्तमस्वरसंयुतम् ।
श्वेतो[1] वामाक्षियुक्तश्च ब्रह्मा रुद्रः स्वरान्वितः ॥ ८४ ॥

दीर्घो बकश्च हृदयं मन्त्रोऽष्टार्णः प्रकीर्तितः ।
त्रैलोक्यमोहनश्चैष साधनाद्यं पुरोदितम् ॥ ८५ ॥

स्मरबीजयुतैर्दीर्घैः स्वरैरङ्गानि जातिभिः ।
जपतः सर्वकामानि भवन्ति नचिरादिव ॥ ८६ ॥

तारं हृत् साक्षिकुम्भं च श्वेतश्चोमापतिस्त्वतः ।
सोष्ठाम्भः कर्णगं शुक्लं[2] रक्तं पार्श्वमथाषढी ॥ ८७ ॥

सोष्ठं त्वक् च महाकालैः खं[3] दीर्घं छगलण्डकः ।
दीर्घः पिनाकी[4] वाली च स्वाहान्तोऽष्टादशाक्षरः ॥ ८८ ॥

मन्त्रो निरङ्गावरणो ब्रह्माधिपतिसंज्ञितः ।
ऋषिस्तु गौतमश्छन्दो धृतिर्विष्णुश्च देवतम् ॥ ८९ ॥

---

१. 'क्षिसंयुक्तः ब्र', २. 'लं' क. पाठः. ३. 'घंखग', ४. 'क' ख. पाठः

दारिद्र्यशमनः पुष्टिश्रीसौभाग्यसुखप्रदः ॥ ९० ॥

ध्यानं च—

क्षीरोदेन्दुमृणालकुन्दधवलः पद्मेन्दुबिम्बाननो
हस्ताभ्यां दधिभक्तपूर्णचषकं कुम्भं च पूर्णामृतम् ।
बिभ्रन्मौलिविचित्रहार[1]कटकाद्याभूषितः कौस्तुभी
ध्येयोऽन्नाधिपतिः प्रसन्नवदनः पीताम्बरो वामनः ॥ ९१ ॥

साधकायान्नपानाद्यं प्रयच्छन्तमनुस्मरन् ।
अयुतं तु जपेन्मन्त्रं पुरश्चरणसिद्धये ॥ ९२ ॥

दध्योदनं तु सघृतमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जुहोत्वस्मिन् कलियुगे जपहोमौ चतुर्गुणौ ॥ ९३ ॥

सिद्धमन्त्रस्ततोऽन्नाद्यं श्रियं चाप्नोति पुष्कलाम् ।
अन्नं हुत्वान्नवान् व्रीहिशाल्याद्यैस्तु समृद्धिमान् ॥ ९४ ॥

मण्डकैः शतपुष्पाणां बीजैरीतिर्विनश्यति ।
परचक्रभयं राजा शत्रुचोरभयादिकम् ॥ ९५ ॥

यद् दारिद्र्यभयं चान्यत् क्षुद्ररोगभयं तथा ।
शतपुष्पस्य बीजानां होमात् संशमयेद् ध्रुवम् ॥ ९६ ॥

दुर्गे वा विषमे मार्गे भये जाते तथा ग्रहे ।
देवं स्मरन् जपन् मन्त्रं दारिद्र्याच्च विमुच्यते ॥ ९७ ॥

त्रैलोक्याक्रमणाकारं त्रायन्तं महतो भयात् ।
ध्यात्वात्मानं परं वापि तत्तच्छान्त्यै जपेन्मनुम् ॥ ९८ ॥

भित्तौ वाथ पटे वापि शक्तः संपूजयेद्धरिम् ।
सान्नेनाज्येन वान्नेन साज्यदध्योदनेन वा ॥ ९९ ॥

नित्यहोमं यथाशक्ति कुर्वतः श्रीरनुत्तमा ।
यद्यदुद्दिश्य जुहुयाद् दध्यन्नं घृतसंयुतम् ॥ १०० ॥

तत्तदस्य भवत्येव भक्तस्येह परत्र च ।

---

१. 'मकुटाद्या' ख. पाठः.

इत्थं विचार्य बहुधा बहुतन्त्रसिद्धं त्रैलोक्यमोहनमनोर्विपुलं विधानम् ।
सङ्क्षिप्य साधकजनस्य हिताय गीतमन्त्राधिपस्य च हरेरिह कल्पदृष्टम्॥१०१॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे[1] मन्त्रपादे
त्रैलोक्यमोहनवामनमन्त्रपटलोऽष्टात्रिंशः ।

---

### अथैकोनचत्वारिंशः पटलः ।

विषग्रहामयार्तीनामिति पूर्वं प्रदर्शितम् ।
वस्तुनिर्देशपटले यस्मात् तदथ कथ्यते ॥ १ ॥
अभिवन्द्य गुरुं तत्र नागांश्चानन्तपूर्वकान् ।
सङ्क्षिप्य विषतन्त्रेभ्यो लोकानां हितकाम्यया ॥ २ ॥
मन्त्रध्यानौषधाद्यैस्तत्प्रतीकारः प्रदर्श्यते ।
फणिनो घोणसाश्चैव राजिला व्यन्तरास्तथा ॥ ३ ॥
फणिनो द्विविधास्तेषु दिव्या भौमाश्च ते पुनः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा इति सर्वे चतुर्विधाः ॥ ४ ॥
दिव्या ये कद्रुतनयाः सहस्रं कामरूपिणः ।
किरीटहारकेयूरमकुटाद्यैर्विभूषिताः ॥ ५ ॥
दिव्यमाल्याम्बरालेपा नागाः सर्वे महौजसः ।
तेषामष्टौ प्रधानास्तु शेषवासुकितक्षकाः ॥ ६ ॥
कार्कोटकोऽथ पद्मश्च महापद्माभिधानकः ।
शङ्खपालश्च गुलिको भानुवारादिपालकाः ॥ ७ ॥
सौरिवारस्य पूर्वार्धे शङ्खपालाधिदैवतम् ।
गुलिकश्चापरार्धस्य गोप्ता तन्निष्क्रमाश्च ते ॥ ८ ॥
ये नागाः कद्रुतनयाः सहस्रं भोगशालिनः ।
केचित् पातालनिलया भूम्यब्धिगिरिवासिनः ॥ ९ ॥
भुवःस्वर्वासिनः केचिद् यथेष्टनिलयाः[2] परे ।
शुक्ला रक्ताश्च पीताश्च कृष्णाश्च ब्राह्मणादयः ॥ १० ॥

---

1. 'सिद्धान्तसारे' ख. पाठः. २. 'णः' ख. पाठः.

सहस्रफणिनः केचिदष्टसप्तकषट्शतैः ।
पञ्चवेदत्रिकद्व्येकशतपञ्चफणैर्युताः ॥ ११ ॥
एतेषां वंशजा येऽन्ये तेषां संख्या न विद्यते ।
क्रमात् तद्वंशजा ये ते दिव्यसामर्थ्यवर्जिताः ॥ १२ ॥
यत्रतत्रनिवासास्ते सर्पास्त्वेकफणाः स्मृताः ।
पूर्वकर्मवशात् तेऽपि दशन्ति मनुजादिकान् ॥ १३ ॥
देवतानां प्रकोपाद् वा क्रूरपापनिषेवणात् ।
स्वस्थानरक्षणाद् वापि दशन्त्याक्रान्तितो भयात् ॥ १४ ॥
मिथः सङ्करसंभूता घोणसा राजिलादयः ।
आषाढादित्रिमासेषु गर्भं धत्ते हि सर्पिणी ॥ १५ ॥
कार्त्तिके मार्गशीर्षे वाप्यण्डानां विंशतेः परम् ।
आचत्वारिंशदण्डानि सूते नानाविधानि सा ॥ १६ ॥
तानि सप्तदिनादूर्ध्वं क्षुधार्ता स्वयमत्ति हि ।
अण्डमेकं द्वयं वा त्रीन् न भक्षयति सा यतः ॥ १७ ॥
उत्पद्यन्ते ततः सर्पास्ते सप्तदिवसे गते ।
दीर्घराजियुतं स्त्रैणं हैमाभं पुरुषाण्डकम् ॥ १८ ॥
शिरीषाभं तथा षण्डं शुक्लं कृष्णमथापि वा ।
भिन्ना भवन्ति दशभिर्दिनैर्बोधयुताश्च ते ॥ १९ ॥
एकविंशद्दिनैर्दंष्ट्राश्चत्वारिंशद्दिनैर्गतिः ।
जायते सूर्यमालोक्य भवन्ति सविषोल्बणाः ॥ २० ॥
मासैः षड्भिः करायामा निर्मोकं प्रजहन्ति (?) च ।
दीर्घा वृश्चिकजा रौद्रा ह्रस्वाः शान्ताश्च चापजाः ॥ २१ ॥
नद्यादिसङ्गमे शैले चोद्याने देवतालये ।
निवसन्ति हविर्गन्धा ब्राह्मणाः पद्मिनीषु च ॥ २२ ॥
गृहचत्वरवप्रादौ केतकीसुरभिर्नृपः ।
गोष्ठवल्मीकविपिनक्षेत्रधान्यगृहेषु च ॥ २३ ॥

---

१. 'द' ख. पाठः.

वैश्यो गुग्गुलुगन्धस्तु शूद्रो नैकत्र वासवान् ।
पूर्वमध्यापराह्णेषु निशि च ब्राह्मणादयः ॥ २४ ॥
वायुपत्रफलक्षीराण्यश्नाति ब्राह्मणो नृपः ।
मूषिकांस्तु वणिग् भेकान् शूद्रः सर्वमुपागतम् ॥ २५ ॥
मयूरश्येननकुलपोत्रिमार्जारगोखरैः ।
नराग्न्यशनिरुरुभिश्चिरं जीवेन्न चेद्धतः ॥ २६ ॥
भाग्रभावनसंख्यानि गोरोमाभानि वै त्वचा ।
छन्नान्यहीनां पादानि यतः पादैर्न याति सः ॥ २७ ॥
इन्दीवराम्बुजे शङ्खस्वस्तिकोत्पलबिन्दवः ।
फणासु शिशुपादौ वा चिह्नानि खलु भोगिनाम् ॥ २८ ॥
मण्डलैर्विविधाकारैश्चित्रा दीर्घाश्च घोणसाः ।
राजिलास्तिर्यगूर्ध्वं च चित्रिताङ्गाश्च राजिभिः ॥ २९ ॥
वातं पित्तं कफं त्रींश्च दधुर्दर्वीकरादयः ।
दंष्ट्राकारं दंशनं कारणं च चेष्टावेगस्थानमर्माणि दूतान् ।
वाक्यं तारादिङ्निमित्तैस्तिथीश्च ज्ञात्वा कुर्याद् वा न कुर्याच्चिकित्साम् ॥
भोगिनां द्वे शते दन्ताश्चत्वारिंशच्च तेष्वपि ॥ ३१ ॥
नव दन्तास्तु सविषास्तैर्दशाद् गरसम्भवः ।
कराली मकरी धूम्रा कालरात्रिः कपालिनी ॥ ३२ ॥
काली चोग्रा च यमनी प्रोक्ता तु यमदूतिका ।
उक्तैः कतिपयैर्दन्तैर्दशन्त्यनिलभोजनाः ॥ ३३ ॥
आश्लेषे[1] गुलिके वापि दष्टे नास्ति चिकित्सितम् ।
शस्त्रकण्टककीटाद्यैर्यः क्षतो गुलिकोदये ॥ ३४ ॥
सोऽपि वैवस्वतं याति सर्पदष्टस्तु किं पुनः ।
दिनरात्र्योश्च सन्ध्यासु पुंसर्पाद्या महाविषाः ॥ ३५ ॥
ज्ञेयश्चतुर्विधो दंशो दष्टं विद्धं च खण्डितम् ।
अवलुप्तं च दष्टस्य क्षतमेकं विभाव्यते ॥ ३६ ॥

---

१. 'ष' ख. ग. पाठः.

क्षतद्वयं चेद् विद्धं स्यात् खण्डितं तु बहुव्रणम् ।
अव्रणं त्ववलुतं स्यात् कथ्यन्ते दंश्रहेतवः ॥ ३७ ॥
भीतिः क्षुधा मत्तता चाप्याक्रान्तिः स्थानरक्षणम् ।
देवादेशश्च वैरं च कालदंशश्च तेऽष्टधा ॥ ३८ ॥
एकं वक्रं क्षतं यत्र भीताहिविहितं तु तत् ।
विषं न विद्यते तत्र यदा दंशद्वयं भवेत् ॥ ३९ ॥
ऋजु स्वल्पं विषं ज्ञेयं सुसाध्यं तच्चिकित्सयेत् ।
लालाक्तं दंशमध्ये तु खण्डितं क्षुधितोद्भवम् ॥ ४० ॥
दुःखसाध्यं तु तज्ज्ञेयमसाध्यमिति केचन ।
एकं क्षतं वा बहु वा रुधिरं बहुलं यदा ॥ ४१ ॥
दर्पजं तदसाध्यं हि कथञ्चित् साध्यमेव वा ।
सलालारक्तमांसानि क्षतानि स्थानरक्षिणः ॥ ४२ ॥
दृश्यन्ते यत्र साध्यं तदिति वाचस्पतेर्मतम् ।
ऋजु दंशद्वयं चैकं वक्रं वैरकृतं त्यजेत् ॥ ४३ ॥
त्रिक्षतं वा सरुधिरमसाध्यं कालचोदितम् ।
रोमाञ्चदाहौ स्वेदश्च लालास्रावोऽङ्गकम्पनम् ॥ ४४ ॥
स्मृतिमोहः पारवश्यं कालदष्टस्य तं त्यजेत् ।
कृष्णं तु मण्डलं दंशे बहुलो रुधिरास्रवः ॥ ४५ ॥
दन्तोष्ठयोर्विघटना कालदष्टस्य लक्षणम् ।
सोमाग्निसूर्यानरुचीन् पश्येन्नेत्रे त्रिलोहिते ॥ ४६ ॥
न पश्यत्यात्मनश्छायां क्षिप्तो यः प्लवते जले ।
अरोमाञ्चो जलैः सिक्ते छेदे नास्ति च लोहितम् ॥ ४७ ॥
वेत्रादिताडने तस्य पदं नो यत्र दृश्यते ।
विवृतं वदनं वापि कालदष्टः स वै मृतः ॥ ४८ ॥
त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्लानि धातवः ।
धातोर्धात्वन्तरप्राप्तिं विषवेगं प्रचक्षते ॥ ४९ ॥

---

१. 'रा' ख. पाठः.

मात्राशतात् तदर्धाद्वा वेगे रोहति साध्यते ।
क्षिप्रं रोहत्यसाध्यं चेद् वेगलक्ष्माथ कथ्यते ॥ ५० ॥

रोमाञ्चस्वेदशोषाश्च[1] विवर्णत्वं च वेपथुः ।
हिक्का च गलभङ्गश्च स्वापश्च मरणं तथा ॥ ५१ ॥

इति नव वेगाः ।

गुदं च गुह्योदरतालुकर्णस्तनाक्षिशीर्षगलशङ्खनासाः ।
नाभिः सकक्षाङ्घ्रिकराश्च जङ्घे स्थानानि दंशस्य तु निन्दितानि ॥५२॥

देवालयाश्वत्थवटाश्च जम्बूः श्लेष्मातकस्तित्रिणिवेत्रवंशाः ।
श्मशानशुष्कागमजीर्णकूपाश्चतुष्पथं चैत्यकमप्यनिष्टम् ॥ ५३ ॥

इत्यनिष्टस्थानानि ।

प्रसन्नवक्त्रः कुसुमादिहस्तः पूर्णाङ्गदेहश्च सिताम्बरा(द्यः?ढ्यः) ।
इष्टस्तु दूतोऽथ तथा ह्यनिष्टस्तैलाक्तदेहो विकलश्च रोगी ॥ ५४ ॥

काष्ठादिकं वाप्यथ कण्टकं वाप्युल्कां च यष्टिं मलिनो दधानः ।
कण्ठे च वस्त्रं स्वकरे च रज्जुं दूतस्तु निन्द्यः खलु मुक्तकेशः ॥ ५५ ॥

वर्णी लिङ्ग्यथवा योषिद् दूरतो व्याहरन्नपि ।
सर्पं पूर्वं ततो दष्टं ब्रुवन् दूतो विनिन्दितः ॥ ५६ ॥

वारदष्टाक्षरं वामे तले विन्यस्य चिन्तयेत् ।
आघ्राते केतके दर्वी पाटले मण्डली भवेत् ॥ ५७ ॥

राजिलो मल्लिकागन्धे व्यन्तरः करवीरके ।
पूर्वावस्थो यदा[2] पाणिर्विषं नास्तीति वा वदेत् ॥ ५८ ॥

वारुणैन्द्राक्षरैर्दूतवाक्याद्यैः स तु जीवति ।
वाय्वग्निजातैर्न भवेल्लिख्यन्ते तानि च क्रमात् ॥ ५९ ॥

इईलऌॡअंहलङञणनमा महेन्द्रजाः ।
अचछजकला(कवा?) खक्षझधभाश्चैव वारुणाः ॥ ६० ॥

एऐओऔ[4]ः + उगथा हयवा ढश्च मारुताः ।
आऊऋॠऔघतपा (त?र)दसाखश्च वह्निजाः ॥ ६१ ॥

[इ]ति दूतवाक्याक्षरनियमः ।

---

१. 'दो' क. पाठः. २. 'कालदल', ३. 'दा वाणी वि' ख. पाठः. ४. 'अं' क. पाठः.

रुद्राग्निसर्पाजमघासु मूलापूर्वाविशाखासु कुजेऽर्कजेऽर्के।
षष्ठ्यां नवम्यामपि पञ्चदश्यामायां चतुर्दश्यां मृत एव दष्टः (?) ॥६२॥

निमित्तानि शुभानीह लोकसिद्धानि सिद्धये।
शकुनानि च संसिद्धिं वदन्ति वचनैः शुभैः ॥ ६३ ॥

पूर्वादिदिग्गते दूते फणी कोणेषु मण्डली।
दिग्विदिङ्मध्यमाशाभ्यां राजिलो व्यन्तरः क्रमात् ॥ ६४ ॥

मन्त्रिवाक्यात् स्वयं वापि दूतोऽङ्गं यत् तु संस्पृशेत्।
तस्मिन् दंशो विसंवादे नाहिः स्यान्नास्ति वा विषम् ॥ ६५ ॥

दूतागमनकाले तु यस्मिन् पार्श्वेऽनिलश्चरेत्।
तत्पार्श्वे तु भवेद् दंशस्तस्मिन् दूतागतिः शुभा ॥ ६६ ॥

दष्टाख्याकीर्तनं पूर्वं शुभं सर्पस्य चेन्मृतिः।
शुक्ले पक्षेऽमृतं पुंसां दक्षिणेऽन्यत्र वै विषम् ॥ ६७ ॥

स्त्रीणां तद्विपरीतेन विपरीतं तथा सिते।
सुधाभागे यथा दंशः साध्योऽन्यत्र भवेन्मृतिः ॥ ६८ ॥

दूतवाक्ये त्रिधा भक्ते मृतिः स्यादक्षरैस्त्रिभिः।
एकाक्षराधिके साध्यं द्व्यर्णाधिक्ये विषं न हि ॥ ६९ ॥

शुभग्रहोदयारूढदृष्टयः शुभदास्तथा।
पापग्रहाणामशुभं दूतस्यागमनक्षणे ॥ ७० ॥

शकुनाद्यं परीक्ष्यैव व्रजेन्मन्त्री चिकित्सितुम्।
सृगालव्याघ्रनकुलचकोरफणिपोत्रिणाम् ॥ ७१ ॥

धान्यानां पूर्णकुम्भानां दक्षिणे दर्शनं शुभम्।
पतगाश्च मृगाश्चैव डुण्डुभा वामतः शुभाः ॥ ७२ ॥

दक्षिणाद् वामगश्चाषः काको वामाच्च दक्षिणः।
गमने शुभदं काकरुतं गौल्याश्च वामतः ॥ ७३ ॥

प्रवेशे गौलिकायास्तु रुतं दक्षिणतः शुभम्।
प्रवेशे दक्षिणगतिः शुभदा काकचाषयोः ॥ ७४ ॥

१. 'श्या चतुर्दश्यामपि मृ' क. ख. पाठः. २. 'भु' ख. पाठः.

मार्गस्योभयतः स्थित्वा पक्षिणोर्विरुतं शुभम् ।
व्यत्यस्तवदनेनाग्रे रुवतोस्तोरणाह्वयम् ॥ ७५ ॥

अत्यन्तशोभनं विद्याज्जृम्भणं च पुरः शुनाम् ।
आस्येन भक्ष्यं यत् किञ्चिद् गृहीत्वा वायसो व्रजेत् ॥ ७६ ॥

श्वा वान्यो विहगः शस्तः शस्तं मांसासवेक्षणम् ।
कन्या सुमङ्गली वेश्या पुष्पं शङ्खस्तथाक्षताः ॥ ७७ ॥

पूर्णचापं च शुभदाः सर्वे प्रतिमुखागताः ।
वामाङ्घ्रेस्ताडनं शस्तं तत्रापि ज्येष्ठिकां विना ॥ ७८ ॥

दक्षिणाङ्घ्रेस्तदशुभं ज्येष्ठिका तस्य शोभना ।

क्षुतस्याप्यन्यैरुक्तम्—

अग्रे निषेधो नयने निवृत्तिः कण्ठे विनाशः खलु दक्षभागे ।
पृष्ठेऽर्थसिद्धिस्त्वथ वामभागे कर्णे जयश्चक्षुषि सर्वलाभः ॥ ७९ ॥

सर्वतः क्षुतमशोभनमादौ गोक्षुतं मरणमेव करोति ।
यद् बलादथ विनाप्यबलानां वृद्धपीनसितबालकृतं च ॥ ८० ॥

इति ।

निमित्तानीत्यनिष्टानि ग्रन्थगौरवजाद् भयात् ।
न लिख्यन्ते यदुक्तेभ्यः शुभेभ्योऽन्ये त्वशोभनाः ॥ ८१ ॥

गौलिरुतस्य —

रवौ विनाशः शशिनीष्टवार्ता कुजे त्वनिष्टं सुहृदागमो ज्ञे ।
गुरौ हिरण्यं भृगुजे च भक्ष्यं शनौ विरोधो मरणं च राहौ ॥ ८२ ॥

दष्टस्य हृत्सरोजान्तः सानुस्वारं भृगुं न्यसेत् ॥ ८३ ॥

तन्नामार्णानि परितस्तस्योर्ध्वे चन्द्रमण्डलम् ।
तत्सुधास्रावि कण्ठे च तादृग् ध्यात्वेन्दुमण्डलम्[2] ॥ ८४ ॥

भ्रूमध्यबिन्दावमृतं बन्ध बन्धेत्युदीरयेत् ।
एवं सञ्चिन्त्य तु जपेन्नमो भगवतेति च ॥ ८५ ॥

१. 'शा' ख. पाठः. २. 'ते' क. पाठः.

नीलकण्ठाय ठयुगं जीवरक्षा कृता भवेत् ।
साज्यं शकृद्रसं वापि मरिचाज्यं तु पाययेत् ॥ ८४ ॥
परोक्षे वाथ सान्निध्ये स्यादेवं जीवरक्षणम् ।
साक्षः संवर्तकः पार्श्वे तारं वह्निप्रियां ततः ॥ ८५ ॥
मन्त्रोऽयं विपतिर्नाम्ना गरुडः शब्दविग्रहः ।

ज्वल महामति ठठ । गरुडशिखे प्रभञ्जन प्रभेदन विमर्दन ठठ । अप्रतिहतबलाप्रतिहतशासन हुं फट् ठठ । उग्ररूप धारक सर्पभयङ्कर भीषयं ठठ । सर्वं दह भस्मीकुरु ठठ ।

विपतेरेवमुक्तानि षडङ्गान्यस्त्रमन्त्रतः ॥ ८६ ॥
ऋषिवर्गान्त्ययुगलैरष्टपत्रं स्वरद्वयैः ।
सकेसरं नारसिंहकर्णिकं मातृकाम्बुजम् ॥ ८७ ॥
ब्राह्मयादिकाः सप्त मातॄर्महालक्ष्मीं तु पत्रगाम् ।
प्राग्याम्यपश्चिमोदीचीवह्निरक्षोऽनिलेशगाः ॥ ८८ ॥

अं आं कं खं गं घं ङं ब्राह्म्यै नमः ।

इत्यादिमन्त्रैः स्मृत्वेष्ट्वा ज्येष्ठाद्यं मध्यपर्वसु ।
पञ्चाक्षराणि विपतेर्भूतादीनां च मण्डलैः ॥ ८९ ॥
हृदये वामहस्ते च पद्मं ध्यात्वाष्टपत्रकम् ।
सप्तवर्गान्त्ययुग्माष्टदिक्पत्रं स्वरकेसरम् ॥ ९० ॥
सानुग्रहाग्नि बिन्द्वन्त्यं कर्णिकायां तु विन्यसेत् ।
एवं सञ्चिन्त्य हृदये वामे करतलेऽपि च ॥ ९१ ॥
विपतेस्तु क्रमाद् वर्णानङ्गुष्ठादि च विन्यसेत् ।
मन्त्रार्णानपि नागार्णान् महाभूताक्षराणि तु ॥ ९२ ॥
तन्मात्रागुणवर्णांश्च करे देहे च विन्यसेत् ।
वेदाश्रकोणवज्राङ्कं मांसकोणेन्द्रदैवतम् ॥ ९३ ॥

शुक्लमर्धेन्दुपद्माभं[1] मध्ये खङ्गि च वारुणम् ।
रक्तं त्रिकोणमग्नीशमध्यासृक्स्वस्तिकाङ्कितम्[2] ॥ ९४ ॥

वृत्तं रेखास्थषड्बिन्दुसत्त्वकृष्णं च मारुतम् ।
अरूपं शब्दतन्मात्रं स्वबिम्बं शिवदैवतम् ॥ ९५ ॥

इत्थं पृथ्व्यादिबिम्बानि ज्येष्ठाद्यं मध्यपर्वसु ।
स्वनागावेष्टितं न्यसेद् विपर्यर्णान्वितानि तु ॥ ९६ ॥

अनन्तगुलिकौ रक्तौ ब्राह्मणौ वह्निदैवतौ ।
इन्द्रदैवौ नृपौ पीतौ शङ्खपालश्च वासुकिः ॥ ९७ ॥

कृष्णौ वैश्यौ महापद्मतक्षकौ वायुदैवतौ ।
चतुर्थौ पद्मकार्कोटौ शुक्लौ जलधिदैवतौ ॥ ९८ ॥

नामाद्यर्णानि नागानां पृथ्व्याद्याद्यक्षरैः सह ।
तन्मात्रैः सह गन्धाद्यैर्ज्येष्ठाद्यङ्गुलिषु न्यसेत् ॥ ९९ ॥

आद्यपर्वसु तन्मात्रा भूतार्णान्यन्तपर्वसु[3] ।
मध्ये विषपतिवर्णानि भूतनागार्णमण्डलैः ॥ १०० ॥

पञ्चाक्षरान्विते तार्क्ष्ये तन्मात्रात्रिगुणान्विते ।
त्रयोदशकलोपेते हस्ते तार्क्ष्यं विचिन्तयेत् ॥ १०१ ॥

ततो भूमण्डलादीनि स्वदेहेऽपि च विन्यसेत् ।
पादादिजानुपर्यन्तं जान्वोर्नाभितटावधि ॥ १०२ ॥

नाभेर्गलान्तं च गलाल्ललाटफलकान्तकम् ।
ललाटाच्चापि मूर्धान्तं स्वर्णयुक्तानि विन्यसेत् ॥ १०३ ॥

आत्मानं गरुडं ध्यात्वा गरलानि विनाशयेत् ।

आजान्वोः स्वर्णवर्णं हिमगिरिशिखरप्रख्यमा नाभिदेशाद्
आ कण्ठात् पक्वबिम्बीफलनवविकसद्बन्धुजीवोपमानम् ।
आ शीर्षाद् भिन्ननीलाञ्जनचयरुचिरं भूषितं भोगिमुख्यै-
र्व्याप्तब्रह्माण्डमध्यं त्रिभुवननमितं वैनतेयं नमामि ॥ १०४ ॥

१. 'क्ल', २. 'श' क. ग. पाठः. ३. 'स्य', ४. 'च' क. पाठः.

इत्थं गरुडमात्मानं मन्त्रिणं वीक्ष्य पन्नगाः ।
पिशाचाद्या ग्रहाश्चान्ये नश्यन्त्याविश्य तत्क्षणात् ॥ १०५ ॥
स्वैक्येन गरुडीभूतो मन्त्री यद्यद् वदत्यसौ ।
तत्तन्मन्त्रं भवेद् दष्टं मुक्त्वा नश्यति तद्विषम् ॥ १०६ ॥
तार्क्ष्यहस्तं समुद्धृत्य मन्त्रार्णव्यत्ययेन तु ।
अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीनां तु चालनेन जपेन च ॥ १०७ ॥
स्तम्भसंहारसंस्तोभसङ्क्रामान् कुरुते क्षणात् ।
पञ्चाक्षराणां स्थानेषु प्रथमार्णं निवेश्य तु ॥ १०८ ॥
संस्तम्भयादिवीप्सोक्त्या स्यात् स्तम्भोऽङ्गुष्ठचालनात् ॥ १०९ ॥

क्षिप ओं स्वाक्षिप इति जपात् स्तम्भयेत् ।

प्रथमार्णद्वितीयार्णौ व्यत्यस्योच्चारयन्मनुम् ।
अनन्तकण्ठाभरणो हारस्तूरसि वासुकिः ॥ ११० ॥
कुण्डलेऽब्जमहापद्मौ गुलिकः शीर्षबन्धनम् ।
उदरे च तथा कट्यां बन्धः कार्कोटतक्षकौ ॥ १११ ॥
उपवीतं शङ्खपालः सिन्दूरारुणलोचनः ।
एवंभूतं तु गरुडं स्वैक्यं ध्यात्वा समाहितः ॥ ११२ ॥
शूलमुद्रां दर्शयित्वा स्तोभः स्यात् तु सकृज्जपात् ।
द्विवारेण तथावेशस्त्रिचतुर्वारजापतः ॥ ११३ ॥
निर्विषीकरणं पञ्चषड्वारान् विषभक्षणम् ।

**विपतिमन्त्राधिकारः ।**

---

संप्लव संप्लावय इत्युच्चारणात् तर्जनीचालनाच्च विषं हरति ।

तारं पार्श्वे क्षिवर्णं च ठौ च मध्यमचालनात् ।
संस्तोभयेति वाक्याच्च जपादाविश्य नश्यति ॥ ११४ ॥
चतुर्थं च द्वितीयं च तृतीयाद्यौ च पञ्चमम् ।
उक्त्वा सङ्क्रामयेत्युक्त्वानामिकां चालयेत् ततः ॥ ११५ ॥

सङ्क्रामयेत् ।

---

१. 'प्लु' ख. पाठः.

दीर्घं[1] खं पार्श्वतारौ च साक्षिसंक्षिपरे[2]हस्तथा (?) ।
अन्ते प्रक्षिप सं चोक्त्वा कनिष्ठाचालनाद्धरेत् ॥ ११६ ॥
गरं संहरेदित्यर्थः ।
शुक्लपद्मवनं मध्ये प्रफुल्लधवलाम्बुजे ।
पूर्णामृते तारकुम्भे ध्यायेत् पूर्णेन्दुमण्डले ॥ ११७ ॥
अकारादिकलाभिस्तु स्त्रीरूपाभिः समावृतम् ।
दष्टं शुक्लं कलानां तु स्तन्यधारामृताप्लुतम् ॥ ११८ ॥
ध्यात्वा स्वरानेव जपेन्निर्विषीभवति क्षणात् ।
कामदा सुभगा नीला भोगदा सर्वमङ्गला ॥ ११९ ॥
भै[3]द्रा भद्रवती सौम्या भोगिनी भगमालिका ।
कामेश्वरी काममाला सिद्धिऋद्धिश्च वामया ॥ १२० ॥
अमा च षोडश कलाः सुधामृतसमुद्भवाः ।
सोमोऽमृतमयः साक्षात् स षोडशकलात्मकः ॥ १२१ ॥
द्विभुजाः सौम्यवदनाः शुभाः शुक्लाम्बरादिकाः ॥ १२२ ॥
सुधाकलशहस्तास्ता भूषणैर्भूषिताः स्मरेत् ।
गोमयालेपिते स्थाने वीशार्णान् क्रमशो लिखेत् ॥ १२३ ॥
तत्संबन्धितया रेखाः कृत्वा दष्टेन लङ्घयेत् ।
निर्विषो भवति ।
दष्टं सुधाब्धिनिर्मग्नं ध्यात्वोत्तानं तु शाययेत् ।
तमाच्छाद्य तु वस्त्रेण तद्वस्त्रं चन्द्रमण्डलम् ॥ १२४ ॥
सञ्चिन्त्य वस्त्रमध्ये तु सानुस्वारं तु खड्[4]गिनम् ॥ १२५ ॥
अमृतस्राविणं ध्यात्वा तत्र स्थानं मुखेषु च ।
सुसंपूर्णेन्दुबिम्बानि मुड्ढ मुड्ढेत्यमुं पठेत् ॥ १२६ ॥
तद्वस्त्रस्यापकर्षेण दष्टमुत्थापयेत् सुखम् ।
श्रीकण्ठं हृदि विन्यस्य हां पृष्ठे चाङ्गसन्धिषु ॥ १२७ ॥
धूं दष्टशिरसि न्यस्तः सद्यो विषविनाशकृत् ।
[5]रकाः कर्णसंयुक्ता सत्सण्ठित्वक् पिनाकवान् ॥ १२८ ॥

१. 'घै' क. ग. पाठः. २. 'न' ख. पाठः. ३. 'मु' क. पाठः. ४. 'ण्डि' ख. पाठः. ५. 'ण्ठ' क. पाठः.

ठयुगान्तस्तु भूर्जस्थो न्यस्तस्तूच्चाटयेदहीन् ।
पार्श्वे साम्निद्विजार्धेन्दुमेषो वह्नित्रिमूर्तिमान् ॥ १२९ ॥
सबिन्दुर्लाङ्गली सर्गी नीलकण्ठीयको मनुः ।

हरः हृदयाय नमः ठठ । कपर्दिने शिरसे ठठ । नीलकण्ठाय शिखायै ठठ । कालकूटविषहराय हुं फट् । उग्र ठठ अस्त्रम् । ओं ह्रां ओं नीलकण्ठाय ओं कपर्दिने ओं ह्रीं हूं सर्वज्ञाय ठठ । त्रिनेत्राय कालकण्ठ विषं भक्षय ठठ ।

ऋषिरस्यारुणिर्नाम छन्दोऽनुष्टुप् च देवता ।
नीलकण्ठादिको रुद्रो बीजमाद्यर्णमीरितम् ॥ १३० ॥
शक्तिर्द्वितीयबिन्दुस्तु पुरश्चर्या त्रिलक्षकम् ।

अथवा —

कृष्णाष्टम्यामुपोष्येशं समभ्यर्च्यायुतं जपेत् ॥ १३१ ॥
तिलैः कृष्णचतुर्दश्यां जुहुयाच्चायुतं तथा ।

पुरश्चर्या कृता स्यात् ।

तारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्येत् तर्जन्याद्यङ्गुलित्रये ॥ १३२ ॥
मध्यपर्वसु वर्णांस्त्रीन् प्रणवं च कनिष्ठयोः ।
आ नाभेः कृष्णमाद्यर्णं द्वितीयं रक्तमा गलात् ॥ १३३ ॥
तृतीयममृताकारं मूर्ध्नि न्यस्येच्चिदात्मकम् ।
नेत्रत्रयेऽपि त्रीन् वर्णानङ्गान्यङ्गेषु विन्यसेत् ॥ १३४ ॥
आ नाभेरञ्जनप्रख्यमुदितार्कोभमा गलात् ।
आ मूर्ध्नश्चन्द्रबिम्बाभमष्टनागेन्द्रभूषितम् ॥ १३५ ॥
त्र्यक्षं त्रिशूलहस्तं च स्वैक्यं ध्यायेञ्जपेन्मनुम् ।
त्रियक्षरोऽयं मन्त्रस्तु प्रणवादिनमोन्तकः ॥ १३६ ॥
जपध्यानादिना शूलस्पृष्टो दष्टः सुखी भवेत् ।
श्मशाने नूतनेऽहीन्द्रमण्डले भैरवं यजेत् ॥ १३७ ॥
तस्याग्रे शालिपिष्टेन कृत्वा नागं तु पूजयेत् ।
निशि कृष्णचतुर्दश्यां स्थित्वा (जी?) वीरासनो जपेत् ॥ १३८ ॥

---

१. 'मः क' ख. पाठः. २. 'हरणाय' क. ग. पाठः' ३. 'या' क. ग. पाठः. ४. 'येञ्ज' क. पाठः. ५. 'ने यजत्' ख. पाठः.

नागं पश्यन् स चायाति तं गृहीत्वा तु भक्षयेत् ।
सिद्धमन्त्रो भवेत् तं तु दृष्ट्वैव विषनाशनम् ॥ १३९ ॥

अथवा —

एवं कर्तुमशक्तश्चेन्मातृस्थानेऽथवाम्बुधौ ।
निशि कृष्णचतुर्दश्यां त्रिलक्षं प्रजपेन्मनुम् ॥ १४० ॥

जुहुयादयुतं सर्पिः क्षीरं मधु च तण्डुलान् ।
सिद्धमन्त्रो भवेत् तेन विनियुञ्ज्याद् यथारुचि ॥ १४१ ॥

दष्टमाग्नेयबिम्बस्थं ध्यात्वा करतले स्वके ।
तारं ज्वलन्तं सञ्चिन्त्य दर्शयेत् तं स मूर्छति ॥ १४२ ॥

प्रथमार्णं धूम्रवर्णं वाय्वग्निपुरगं स्मरेत् ।
धूपं च दद्यादाविश्य दष्टो भवति निर्विषः ॥ १४३ ॥

अथ वायुपुरे कृष्णं द्वितीयार्णं तु धूम्रकम् ।
सञ्चिन्त्य परदेहे तु विषं सङ्क्रामयेत् ततः ॥ १४४ ॥

पूर्णेन्दुमण्डलगतं तृतीयममृताप्लुतम् ।
ध्यात्वा तं निर्विषं कुर्यादेवमेव शिरोरुजम् ॥ १४५ ॥

ज्वरांश्चातुर्थिकादींश्च नाशयेन्नात्र संशयः ।
तारहीनत्रिवर्णानि वह्निगेहगतानि तु ॥ १४६ ॥

देहे विचिन्तयेद् यस्य मूर्छितैः स पतिष्यति ।
अन्त्याक्षरं सुधावर्षि मूर्ध्नि ध्यात्वास्य तज्जपेत् ॥ १४७ ॥

निर्विषो भवति क्षिप्रं शूलमुद्राप्रदर्शनात् ।
साक्षी कुम्भस्ततः श्वेतः खमग्निर्नयनान्वितः ॥ १४८ ॥

ह्रिवर्षि खें वें ह्रिवर्षि ठठ ।

शुक्लाकल्पामुभां त्र्यक्षामिन्दुगौरां विभूषिताम् ।
कुम्भच्युतामृतैर्दष्टं सिञ्चन्तीं संस्मरन् जपेत् ॥ १४९ ॥

१. 'मृ' ख. पाठः. २. 'द्वा' क. पाठः. ३. 'तस्य', ४. 'ङ',
५. 'मि' ख. पाठः.

स्वैक्येनैकाग्रमनसा निर्विषं कुरुते जपन् ।
विना मन्त्रौषधाद्यैस्तु क्ष्वेलशान्तिः प्रदर्श्यते ॥ १५० ॥

अङ्गुष्ठोर्ध्वपदाङ्घ्रिसन्धिषु तथा जानौ च गुह्ये ततो
नाभौ हृत्स्तनकण्ठघोणनयनश्रोत्रेषु मध्ये भ्रुवोः ।
शङ्खे मूर्धनि पूर्वपक्षतिथिषु प्रोक्तामृताख्या कला
मूर्धाद्यं बहुले विलोममुदितारोहावरोहक्रमात् ॥ १५१ ॥

वामाङ्गुष्ठादिकं स्त्रीणां रोहोऽन्यत्रावरोहणः ।
सुधायाः सप्तमं स्थानं प्रोक्तं विषकला बुधैः ॥ १५२ ॥

दष्टदेहेऽमृतकलां ज्ञात्वा तत्र विमर्दनात् ।
निर्विषं स्याद् विषकला सुधास्थानात् तु सप्तमम् ॥ १५३ ॥

तत्र सम्मर्दनात् सर्वविषाणां स्तोभनं भवेत् ।
असाध्यस्तत्र दंशस्तच्चिकित्सां तत्र वर्जयेत् ॥ १५४ ॥

कण्ठे विषकलायां तु क्रियते यदि भोजनम् ।
अजीर्णोदररोगाद्यैः क्रमान्मृत्युर्भविष्यति ॥ १५५ ॥

यदा कण्ठे विषकला तत्रोत्तानं तु खड्गिनम् ।
चिन्तयित्वामृतं न्यस्येत् भुञ्जीयादमृतं स्मरन् ॥ १५६ ॥

नित्यं सुधाक्षरं कण्ठे कृत्वा ध्यात्वा परामृतम् ।
अश्नतो नापमृत्युः स्याज्जीवेच्च शरदां शतम् ॥ १५७ ॥

मर्दयित्वामृतकलां रतिः स्त्रीणां सुखावहा ।
यदा गुह्येऽमृतकले तदा प्रथमसङ्गमम् ॥ १५८ ॥

दम्पत्योः प्रीतिजननं वश्यं चैतदुदाहृतम् ।
यत्रामृतकला तस्मिन् प्राणान् नित्यं विचिन्तयेत् ॥ १५९ ॥

आयुः श्रीपुष्टिरक्षाकृच्छाकपूर्णिमतं यथा ।
आस्येऽक्ष्णोश्च गले बाह्वोः पार्श्वयोः पादयोरपि ॥ १६० ॥

गुरुप्रभाङ्गुलं काकभवाजन्मादिभिस्थितिः ।
साध्यप्रतिकृतिं कृत्वा विपत्प्रत्यरनैधने ॥ १६१ ॥

---

१. 'ला:' ख. पाठः. २. 'हृ' क. पाठः.

तारे विषकलायोगे यमविद्यादिमन्त्रतः ।
वेधे कृते प्रतिकृतौ साङ्घ्रिपांसौ मरिष्यति ॥ १६२ ॥

जरत्कारोर्जरत्कार्वां समुत्पन्नो महातपाः ।
आस्तीकः सत्यसन्धो मां पन्नगेभ्योऽभिरक्षतु ॥ १६३ ॥

ओं नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि ।
नमोऽस्तु नर्मदे! तुभ्यं पाहि मां विषसर्पतः ॥ १६४ ॥

ओं असितं चार्तिमन्तं च सुनीतं चापि यः स्मरेत् ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत् ॥ ११५ ॥

श्लोकानेतांस्तु जपतो दिवारात्रं च सन्ध्ययोः ।
सर्पमध्यगतस्यापि भयं तस्य न विद्यते ॥ १६६ ॥

इत्थं हिताय खलु देहभृतां समासान्नागोद्भवोदयकुलं कृतिहेतुदौत्यैः ।
सौवर्णमन्त्रविनियोगविधानपूर्वं ध्यानानि चैव कथितानि विषापहानि ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे[1]
मन्त्रपादे विषप्रतीकारपटल[2]
एकोनचत्वारिंशः ।

---

## अथ चत्वारिंशः पटलः ।

ध्यानानां चलचित्तत्वान्मन्त्राणां साधनस्य च ।
वैषम्यं[3] चाधिका(रीऽरा)णामौषधैः साध्यमिष्यते ॥ १ ॥

दंशकाहेस्तु सन्देहे करञ्जत्वचि भक्षिते ।
मधुरे तु फणी तिक्ते राजिलो घोर्णसङ्कटौ ॥ २ ॥

काकाण्डा(न्ताऽन्तः) क्षिपेद्धिङ्गु घर्मे शुष्कं गुलीकृतम् ।
मूत्रेण नसि निक्षिप्य फणिदष्टः सुखी भवेत् ॥ ३ ॥

मातृघातीरजो हिङ्गुश्छुछुन्दर्युदरे स्थितः ।
साधारश्चूर्णितः शुष्को नस्यात् फणिविषापहः ॥ ४ ॥

---

१. 'सिद्धान्तसारे' क. ग. पाठः. २. 'षयप्र', ३. म्याञ्चा' म. पाठः.
४. 'णसाघटौ', ५. 'ड' ख. पाठः.

शुण्ठीरामठकारवेल्लिलशुनैः स्वर्णं वचा तुम्बिनी
नक्तस्रग्वकुळास्थिशिग्रुफलजं कोशातकीबीजयुक् ।
क्षोणीपूर्वशिरीषकस्य च शिफा स्यात् सर्पगन्धा समं
सर्वं पिष्टमजाम्भसा कृतगुली नस्यादिनाहीन् जयेत् ॥ ५ ॥
षडङ्गीमूलपिष्टस्य नस्यालेपाद् विषं हरेत् ।
तदालिप्तकरः क्रीडन् सर्पैरिह न बाध्यते ॥ ६ ॥
गोघृतं लोणमरिचे हिङ्गु मातृरिपोः करम् ।
पिष्टं श्रोत्राक्षिनासासु सिक्तं फणिविषापहम् ॥ ७ ॥
पुनर्नवं च वाराहीं पीत्वा क्षीरेण निर्विषः ।
शङ्खतालकचूर्णाभ्यामधोङ्गानां च मार्जनात् ॥ ८ ॥
चूर्णयित्वा वचाहिङ्गुमरिचांस्तु समोद्धृतान् ।
कारवेल्लिरसैर्नस्यं दष्टमुत्थापयेत् क्षणात् ॥ ९ ॥
पत्राणि देवदाल्यास्तु सबीजाबीजकौशिका (?) ।
सौवीरपिष्टा पानाद्यैः सद्यः फणिविषापहा ॥ १० ॥
गुञ्जावकुलबीजानि मरिचं च नृवारिणा ।
पिष्ट्वा तन्नस्यपानेन नष्टसंज्ञोऽपि जीवति ॥ ११ ॥
भूनागं नरतोयेन पिष्ट्वा पीत्वा प्रलेपयेत् ।
नस्याञ्जने तथा कृत्वा फणिनां गरलं हरेत् ॥ १२ ॥
जननीरिपुहस्तं च रामठं च नराम्भसा ।
पाननस्याञ्जनैर्हन्यादपि वासुकिजं विषम् ॥ १३ ॥
बीजं तु वाकुलं मूत्रे पानाद्यैर्विषनाशनम् ।
कोशातकीजातिफले नक्तमालकरञ्जयोः ॥ १४ ॥
बीजे पिष्ट्वा तु तन्नस्यं सद्यो नागविषं जयेत् ।
अगारधूमो दार्वी च मेघनादो हरिद्रया ॥ १५ ॥
दध्याज्यपेषितः पीतो मुख्याहिगरलापहः ।
त्रिःसप्तकृत्वः संभाव्यः सूर्यक्षीरेण नागरम् ॥ १६ ॥
भक्षितं गरलं हन्ति पाननस्याञ्जनेन च ।
हिङ्गु त्रिकटुकं सिन्धुं रसोनं चोग्रगन्धिकाम् ॥ १७ ॥

---

१. 'ण्ढ' क. पाठः.

स्नुक्श्रेष्ठकन्यास्नुह्यर्कश्वेतार्काजापयस्सु च ।
सम्भाव्य वेणुपात्रस्थं तेन नस्यं तथाञ्जनम् ॥ १८ ॥
मैत्रस्थाने च निहितं दष्टमुत्थापयेन्मृतम् ।
कतकस्यार्द्रबीजैस्तु सप्तकृत्वः पटच्चरम् ॥ १९ ॥
भावयित्वाञ्जयेन्नेत्रे तैलेनात्मोदकेन वा ।
नस्यं च कुर्यात् सद्यः स्यात् फणिनां विषनाशनम् ॥ २० ॥
निशा कृष्णा नागरं च मरिचं गृहधूमकम् ।
सिन्धुवारस्य पत्राणि श्लक्ष्णं पिष्ट्वा तुषाम्भसा ॥ २१ ॥
आलेपनाद् विषं हन्ति रक्तास्रावश्च तिष्ठति ।
हरिद्रागृहधूमं च मेघनादं घृतं दधि ॥ २२ ॥
पीतं फणिविषं हन्यात् तक्रेणाप्यहिजं विषम् ।
[1]अहिगन्धा मुखे क्षिप्ता लिप्ता सप्तविषं जयेत् ॥ २३ ॥

**इति फणिचिकित्सा ।**

---

लवस[2]नेत्र! उल्कामुख! विषदहन! विषभोजन! वज्रहस्त! हन हुं मुष्टिबन्धेन विषं यरलव पक्षि हुं फट् फो ठठ ।

यदङ्गं मण्डलीदष्टं ध्यात्वा मण्डलिविग्रहम् ।
स्वयं वराहहस्तं च खादन् जाप्याद् विषं हरेत् ॥ २४ ॥

सानन्तं दण्डिखं शक्तिरल्पपक्षिदेहा अरविमरविमत्तवान् ठठ (?) ।

जपन् खादंश्च ताम्बूलं मण्डलीनां विषं हरेत् ।
अधोमुखं दंशकाहिं वमन् धूमविषं स्मरन् ॥ २५ ॥
दष्टाङ्गमर्दनाच्छोफाक्ष्वेलस्य तु विनाशनम् ।
तद्विषी श्वेततोला[3]भ्यां मूर्धाद्यं भक्षितं स्मरेत् ॥ २६ ॥

मण्डलि[4]विषं नश्यति ।

मूत्रविस्तम्भनेऽधस्तौ[5]न्नाभेर्लेप्या वृषस्य विट् ।
तण्डुलाद्भिः समं भेकवसालेपादपि स्रवेत् ॥ २७ ॥

---

१. 'अभिन्धो मु' क. ग. पाठः. २. 'णे', ३ 'भ्यां', ४. 'ल' ख. पाठः. ५. 'स्तनान्न' क. पाठः

बृहत्कदलिकामूलं विण्मूत्रस्तम्भनेऽम्भसा ।
नाभेरधः समालिप्य सर्वं स्रवति तत्क्षणात् ॥ २८ ॥

मण्डलिक्ष्वेलहृन्नस्यं पानं च लवणाम्भसाम् ।
स्त्रीस्तन्ये वाकुलं बीजं नसि दत्तं तु मोहहृत् ॥ २९ ॥

शतावर्यक्षवाराहिवेगामूलानि पेषयेत् ।
पुराणमेषीतक्रेण तल्लेपो घोणसापहः ॥ ३० ॥

सैन्धवं नालिकेराज्यं लिप्तं मण्डलिजं हरेत् ।
गुञ्जानील्योस्तथा मूलं नस्याद्यैर्मण्डलीं जयेत् ॥ ३१ ॥

चूर्णं भृङ्गी च ताम्बूलं दधि लोणं च पेषितम् ।
योगद्वयं पृथग्लिप्तं विषं मण्डलिजं हरेत् ॥ ३२ ॥

कृष्णाजमोदाकार्पासतिलापूपा गरापहाः ।
मयूरपिञ्ज(मैःरै)णत्वक्कोलविड्धूपतो हरेत् ॥ ३३ ॥

मण्डलिविषमिति यावत् ।

अजाम्भसा पोत्रिशकृदालेपो घोणसापहः ।
वज्रवल्लिं च तन्मूलं गोक्षीरेण तु पेषयेत् ॥ ३४ ॥

सतैलं पाययेत् तेन मण्डलीनां विषं हरेत् ।
क्षीरेण स्नुहिमूलं च जलेनार्कशिफा तथा ॥ ३५ ॥

योगद्वयं पृथक् पीतं मण्डलीनां विषापहम् ।
मूलं पुनर्नवस्यापि गिरिकर्णीद्वयस्य च ॥ ३६ ॥

शुक्तेन नस्यपानाभ्यामञ्जनेन च तद्धरेत् ।
कटुत्रयं दधि क्षौद्रं नवनीतं च सैन्धवम् ॥ ३७ ॥

पिबेन्मण्डलिजं क्ष्वेलवेगं रक्तं च नाशयेत् ।
त्रिफला च त्रिकटुकं सैन्धवं मधुमाहिषे ॥ ३८ ॥

तक्रे पिष्टं प्रलिप्तं चेन्नश्येन्मण्डलिनां विषम् ।
स्नुग्गव्यपयसोः प्रस्थे कुष्ठचन्दनकल्कके ॥ ३९ ॥

घृतं पक्वं हरेद् गव्यं सेकान्मण्डलिजं विषम् ।
फलत्रयनिशायष्टित्रिवृत्कल्कं घृतं पचेत् ॥ ४० ॥
स्नुक्क्षीरशिष्टगव्याढ्यं ब्रह्मीरसचतुर्गुणम् ।
तदालेपनपानाद्यैर्मण्डलीनां विषापहम् ॥ ४१ ॥
द्विमुखाहिं हतं मृत्सावेष्टितं चिरशोषितम् ।
मृद्भूतं सास्थि संचूर्ण्य तच्चूर्णेनाम्भसा सह ॥ ४२ ॥
मण्डलीनां क्षतालेपाद्विषं सद्यो विनाशयेत् ।
गुञ्जामूलं काञ्चिकेन मण्डलीनां विषं हरेत् ॥ ४३ ॥

पानालेपननस्यैरिति यावत् ।

नीलीमूलं घोणसानां विषघ्नं पानलेपतः ।

काञ्चिकेनेति यावत् ।

**इति मण्डलिचिकित्सा ।**

---

ह्रीं हुं फट् ठठ । ह्रूं हुं फट् ठठ । ज्रौं हुं फट् ठठ ।
मन्त्रास्त्रयो राजिलानां जपेन विषनाशनाः ॥ ४४ ॥
कान्तारकारवेल्ल्यास्तु शिफां दुग्धेन पाययेत् ।
मूत्रेण शारिबायाश्च पानाद्यै राजिलापहः ॥ ४५ ॥
वर्षाभूचिर्भटवचाः काञ्चिकेन पिबेद् विषम्[1] ।
हन्याद् राजिमतां नस्यात् तैलं च गृहधूमयुक् ॥ ४६ ॥
कणा क्षौद्रं च सिन्धूत्थं पीतं गोमयवारिणा ।
राजिलानां गरहरं गुह्यमेतदुदाहृतम् ॥ ४७ ॥
गोशकृद्रससिन्धूत्थं कणाज्यक्षौद्रपानतः ।
राजिलानां विषं हन्याच्छ्वेतपुङ्खशिफा तथा ॥ ४८ ॥

स्वरसेनेति यावत् ।

सतैलद्रोणपुष्पाम्बुनस्यं राजिविषापहम् ।
सतैलतिन्त्रिणीपक्वनस्यं राजिविषं हरेत् ॥ ५० ॥

---

१. 'विलेत्' ख. पाठः.

टङ्कणं सैन्धवं व्योषं नरमूत्रेण पेषितम् ।
प्रलिप्य राजिलादीनां क्षुद्राणां च विषं हरेत् ॥ ५० ॥
नन्द्यावर्तशिफापाननस्यं राजिविषापहम् ।

इति राजिल[1]चिकित्सा ।

---

अग्निकोत्तमकन्ये द्वे पिष्ट्वा हस्तेन तद्रसैः ॥ ५१ ॥
सर्वाङ्गाभ्यञ्जनं हन्याद् राजिकामण्डलीविषम् ।
मधूकजं यत् पिण्याकं तैगुरं[2] च नृमूत्रयुक् ॥ ५२ ॥
घ्राणस्थं राजिलानां च मण्डलीनां विषं हरेत् ।
पिशाचोदुम्बरदलैर्गिरिकर्णीशिफा समम् ॥ ५३ ॥
गव्याज्यपिष्टा नस्याद्यैः फणिराजिविषं हरेत् ।
त्वक्चूर्णमर्कमूलस्य शीताम्भोलोलितं पिबेत् ॥ ५४ ॥
फणिघोणसयोश्चापि विषं चाश्वारिजं हरेत् ।
टङ्कणश्लक्ष्णचूर्णं तु स्वच्छाम्भोलोलितं पिबेत् ॥ ५५ ॥
नस्यं च लेपनं कुर्यात् सर्वाहिविषनाशनम् ।
पुनर्नवरसे पिष्ट्वा रामठं नसि योजितम् ॥ ५६ ॥
मार्कवं काकमाचीं च वह्निकं कटुगन्धिनीम्[3] ।
पिष्ट्वा स्तन्येन नस्येन् सकलाहिविषापहम् ॥ ५७ ॥
चूर्णं च नवनीतं च स्नुहिमूलं च रामठम् ।
रम्भामूलं तथागस्त्यं शिशुमूत्रेण पेषितम् ॥ ५८ ॥
चम्पकत्वग्रसैर्नस्यं सकलाहिविषापहम् ।
उन्मत्ताम्भः सलवणं नस्यालेपाञ्जनार्पितम् ॥ ५९ ॥
ताम्बूलीसलिलं वापि समस्ताहिविषं हरेत् ।
तुम्बिनीबककूश्माण्डशैरीषैर्जातिजानि च ॥ ६० ॥
बीजान्यात्मोदकैः पिष्ट्वा नस्याद्यैः सर्वसर्पजित् ।
समूलं मेघनादं च वेगानीलीशिफायुतम् ॥ ६१ ॥

---

१. 'राजीबचि' ख. पाठः. २. 'तगरं च', ३. 'कम्' ग. पाठः.

घृतेन पीत्वा गरलं त्रिविधं च विनाशयेत् ।
अजास्पृश्या तथाज्येन पीता सर्वविषापहा ॥ ६२ ॥

पुनर्नवाम्भः सहिङ्गु नस्यात् सर्वविषापहम् ।
अङ्कोलपाठानिर्गुण्डीपर्णैस्तुल्यं रसोनकम् ॥ ६३ ॥

तद्वत् कतकवेगास्थि पुनर्नवशिफासमम् ।
चूर्णितं लाङ्गलीमूलं धूपावेतौ विषापहौ ॥ ६४ ॥

सन्ध्ययोरपराह्णे वा धूपयेन्नान्यदा क्वचित् ।

सर्वविषहराविति यावत् ।

पिष्टं पुनर्नवामूलं कृष्णामम्भसि तत् पिबेत् ॥ ६५ ॥

लेपाञ्जने च कुर्वीत सर्वसर्पविषापहम् ।
ऋक्षदन्तकृतं तार्क्ष्यमूर्तिमावाह्य तज्जपेत् ॥ ६६ ॥

तद् यो धारयते तस्य सर्पबाधा न विद्यते ।

**इति सर्वाहिचिकित्सा ।**

---

तारशुक्लाग्निपुंमन्त्रो वृश्चिकक्ष्वेलनाशनः ॥ ६७ ॥

ताम्बूलीसलिलं हिङ्गु कांस्ये हस्तेन पेषयेत् ।
लेपादलिविषं हन्ति लालाकर्णमलं तथा ॥ ६८ ॥

सैन्धवं हिङ्गु च शिला विश्वा गोमयवारिणा ।
वृश्चिकघ्ना च शैरीषं बीजं कृष्णा च लेपनात् ॥ ६९ ॥

अर्कक्षीरेण पालाशबीजं पिष्टं प्रलेपयेत् ।
करञ्जपत्रं हस्तेन पिष्ट्वा बद्धं च तद्धरेत् ॥ ७० ॥

वृश्चिकमिति यावत् ।

ताम्बूलं मारिचं वार्त्तं करञ्जास्थ्यश्वमारकम्[1] ।
आलेपनं च पानं च हन्याद् वृश्चिकजं विषम् ॥ ७१ ॥

शिरीषपुष्पमञ्जिष्ठाचन्दनं[2] च निशाद्वयम्[3] ।
कुष्ठं च कुमुदं द्वे द्वे लेपेनालिविषापहे ॥ ७२ ॥

---

१. 'ञ्जोऽस्थश्वनावकम्' ख. पाठः. २. 'दनं च ना' ग. पाठः. ३. 'दि' ख. पाठः.

पारावतपुरीषं च नागरं सिन्धुतालके।
बीजपूररसे पिष्टं प्रलिप्तं वृश्चिकार्तिजित् ॥ ७३ ॥
घृतस्याष्टांशसिन्धूत्थकोष्णलेपोऽलितोदजित्।
बर्बरस्योपनाहं च तत्पत्रामर्दनं तथा ॥ ७४ ॥
पुष्ये पुनर्नवामूलं विधिवत् सूद्धृतं पिबेत्।
वृश्चिकानां विषं तस्य शरीरे नाधिरोहति ॥ ७५ ॥
करञ्जशैरीषबीजे कुङ्कुमं च मनःशिला।
समा गुलीकृतास्तोये वृश्चिकानां विषापहाः ॥ ७६ ॥

इति वृश्चिकचिकित्सा।

---

कालकर्णद्वयोपेतो वह्निपत्न्यन्तको मनुः।
पूगत्रयं तु संच्छिद्रं सप्ततांम्बूलयोजितम् ॥ ७७ ॥
विलिख्य तेषु तज्जापाद् भक्षणादाखुजं हरेत्।
घे घेश्वेटपुरी च एकविलजगरुद्रजटपिङ्गल फु हर विषं हर संहर फु।
अधोग्रन्थ्यार्ककुसुमं द्वात्रिंशदभिमन्त्रितम् ॥ ७८ ॥
निगिरेदाखवविषे दन्तास्पृष्टं नवे हरेत्।
कपित्थपत्रमूलं चव्याघाटस्य शिफां निशाम् ॥ ७९ ॥
गोमूत्रपिष्टां तु पिबेत् सर्वाखुविषनाशनम्।
आरग्वधदलैर्धूपः साज्यं तत्पत्रभक्षणम् ॥ ८० ॥
कार्पासतोयं तैलेन पीतं चाखुविषं हरेत्।
कान्ता[1] शिरीषकुसुमैः कुस्तुम्बुरु निशाद्वयम् ॥ ८१ ॥
समं गोमूत्रपिष्टं तत्पानादाखुविषं हरेत्।
तापिञ्छमूलपिष्टं वा चव्यं वा काञ्चिके पिबेत् ॥ ८२ ॥
कृष्णरम्भाफलं कृष्णा सासितं पयसाथ वा।
रम्भाफलनिवासान्तः सप्तमं कणमाशयेत्(?) ॥ ८३ ॥
एते योगास्तु चत्वारः पृथगाखुविषापहाः।
नैवमालावामपर्णसप्तपिष्टं तु वा पिबेत् ॥ ८४ ॥

---

१. 'न्ताः शि' ख. पाठः. २. 'वनमा' ख. ग. पाठः.

मार्जारमलधुर्धूरधूपो डुण्डुभचर्मयुक् ।
हन्त्याखुगरलं वाद्यात् त्रिदलां गुलसंयुताम् ॥ ८५ ॥
तुण्डीशिफाक्काथजले पचित्वा वौदनं चरेत् ।
मध्वाज्ययुक्तां मुस्तां वा लिहेदाखुविषापहम् ॥ ८६ ॥
काञ्जिकेन तु पुन्नागबीजं प्रातः पिबेत् ततः ।
तैलसिक्तश्चिरं तिष्ठेद् घर्मे त्वाखुविषी नरः ॥ ८७ ॥
पुरातनांस्तु कुक्षिस्थान् वमेदाखुशिशूनपि ।
पेषयित्वार्कदुग्धेन मुष्टिकोद्रवतण्डुलान् ॥ ८८ ॥
कृत्वापूपं तु तज्जग्ध्वा वमेन्मूषिकजं विषम् ।
शिरीषपत्रक्काथाम्भो यवागूं स पुनः पिबेत् ॥ ८९ ॥
पुराणाखुविषार्तस्य शिरोरुङ्मलसञ्चयात् ।
छर्दी कुष्ठादि शोफाश्च कुक्षिशूलज्वरादिकम् ॥ ९० ॥
यदि स्यात् तच्छमायासौ कुर्यादुक्तविरेचनम् ।
तुण्डीवह्निशिखा वज्रीतोये विकृतिभावितम् ॥ ९१ ॥
क्रमुकं सहताम्बूलं भक्षयेत् तद्विरेचनम् ।
सागरैरण्डबीजं यत् ताम्बूलं च विषापहम् ॥ ९२ ॥

एतान्याखुविषविरेचकानि ।

कपित्थाङ्कोलयोः पत्रे शिरीषत्वग्भिरर्कजैः ।
पुष्पैः क्वथिततोयेन विरिक्तं स्नापयेत् तु तम् ॥ ९३ ॥
बिन्द्वग्निवामकर्णाढ्यमाजेशममृतस्रवम् ।
क्षीरे वाप्स्वौषधे न्यस्तं पीतमाखुविषापहम् ॥ ९४ ॥
झण्ठीशो बाहुयुगलरक्ताणे फुरनेन तु ।
शर्करा दशदिक्क्षिप्ता वृषवक्त्रनिबन्धनाः ॥ ९५ ॥

अष्टोत्तरसहस्रजपादिति यावत् । नतिर्भगवते हज्री यशपूरी च मृगवराहकण्ठरमरव भक्षय सन्तु भो बन्ध आज्ञापयेति हुं फट् ।

वस्त्रेऽहिग्रस्तवदनं लिखित्वाखुमिमं मनुम् ।
विलिखेत् परितो न्यस्येद् वृषानुच्चाटयेद् गृहात् ॥ ९६ ॥

बुधाश्लेषे धनुर्लग्ने कीलं सप्ताङ्गुलायतम् ।
बैभीतकं वा निखनेद् विलोमं वृषनाशनम् ॥ ९७ ॥

तद्बिले निखनेदिति यावत् ।

खनेच्छतभिषर्क्षे वा धनुष्यारग्वधोद्भवम् ।

इदमपि वृषनाशनम् ।

शुष्कं डुण्डुभपुच्छं तु सर्पिषा ज्वालयेत् तदा ॥ ९८ ॥
वज्रीकरञ्जमधुकद्विकोशातकिबीजयुक् ।
निर्गुण्डिमूलं च निशे पञ्चजामूत्रपेषिते ॥ ९९ ॥
सौवीरपिष्टा गुलिका न्यस्ता गेहे वृषान् हरेत् ।
पीता सर्वाखुविषहृच्छायाशुष्का गुली भवेत् ॥ १०० ॥
श्वेतार्कपाटलीमूलदेवदारुनिशाद्वयैः[१] ।
कल्कीभूतैः सगोमूत्रैः सर्पिः सिद्धं वृषार्तिहृत् ॥ १०१ ॥
रक्तार्कं लशुनं चैव बद्धमाखुविषापहम् ।

इत्याखुविषचिकित्सा ।

---

लूतिकाः कु(ति?मि)भेदाः स्युश्चतस्रः खे चरन्ति ताः ॥ १०२ ॥
अष्टौ भूमौ चरन्त्यासामसाध्याः खे चरन्ति याः ।
एका दर्शनतो हन्ति स्पृष्टान्या छायया परा ॥ १०३ ॥
इतरा चैव गन्धेन तस्माद् व्योम्नि शयीत न ।
भोजनं च न कुर्वीत निशासु व्योम्न्यनावृते ॥ १०४ ॥
खं साग्निबिन्दु हृल्लेखावियदग्नचर्धिबिन्दुमत् ।
विपर्ति कर्णिकान्तं च शुक्रं वर्मास्त्रके मनुः ॥ १०५ ॥

लषसषश्चिषाडित्यो[२] वह्निषु नमोऽस्तु ते रुद्राय, रुद्राग्निषु दोषक्षयाय फट् ।

मन्त्रास्त्रयोऽपि लूतघ्ना जपाद्यैस्तु पृथक् पृथक् ।
दुर्गासूर्येन्दुदेवत्याः सहस्राभ्याससाधिताः ॥ १०६ ॥
महाखर्जूरकुसुमं मरिचं तुलसीयुतम् ।

---

१. 'यो:' ख. पाठः. २. 'ज्मि' क. ग. पाठः.

सौवीरपिष्टं लेपाद्यैः सर्वलूतगरं हरेत् ॥ १०७ ॥

चन्दनोशीरतगरपाटलीकुष्ठपद्मकैः ।

ह्रीबेरशेलुनिर्गुण्डीशारिबाभिस्तु काञ्चिके ॥ १०८ ॥

पिष्ट्वा प्रलेपपानाद्यैः सर्वलूताविषं हरेत् ।

वचादोषालशुनकान्यर्धमर्धं च रामठम् ॥ १०९ ॥

विश्वा तदर्धं मूत्रेण लेपाद्यैर्लूतनाशनम् ।

वन्ध्याकर्कोटकीमूलं लूतघ्नं तण्डुलोदके ॥ ११० ॥

वेगामूलं तथाम्भोभिः साङ्गताम्बूलवारि च ।

लूताव्रणे निष्ठीवितामिति यावत् ।

ज्योतिष्मत्याश्च बीजानि मरिचं बदरीत्वचा ॥ १११ ॥

क्षीरे पिष्ट्वा प्रलेपाद्यैः सर्वलूताविषं हरेत् ।

अगस्तीपत्रतुलसीरसलेपश्च लूतजित् ॥ ११२ ॥

कदम्बनीलीतुलसीलाङ्गल्यालेपनं तथा[3] ।

चिञ्चावन्दाकगोक्षीरपानं लूतादिनाशनम् ॥ ११३ ॥

तत्कल्कपक्वतैलं च लूतिकाव्रणनाशनम् ।

अङ्कोलगुञ्जानिर्गुण्डीपत्रं विश्वा निशाद्वयम् ॥ ११४ ॥

क्वथितं सकरञ्जास्थिजलं सेकेन लूतजित् ।

इति लूतचिकित्सा ।

---

दर वर करि च्छिन्द खड्गेन छेदय शूलेन भिन्द चक्रेण दारय हुं फट् ठठ ।

गर्दभादिविषाणां तु मनुरेष विनाशकृत् ॥ ११५ ॥

मुस्तोशीराब्जमांसीभिः श्रेष्ठापद्मकचन्दनैः ।

अजादुग्धेन पानाद्यं गर्दभादिविषापहम् ॥ ११६ ॥

आदिशब्देन मार्जारवानरमकरग्राहनकुलाश्वादयो विवक्षिताः ।

---

१. 'तरगापा' ख. पाठः. २. 'ल' क. पाठः. ३. 'क्षीरसलेपश्च लूतजित् । कदम्बनीलीतुलसीलाङ्ग' ख. पाठः.

वचालोध्राश्वगन्धाः स्नुक्क्षीरे हयविषापहाः ।

पानालेपनादिति यावत् ।

इन्द्रवल्लीं निशां पुङ्खां (?) जीर्णं पर्णं च पानसम् ॥ ११७ ॥

द्रोणस्वरसतैलाभ्यां किञ्चिच्चूर्णयुतं पिबेत् ।

गर्दभश्वविषघ्नं[1] स्यात् पाननस्यविलेपनैः ॥ ११८ ॥

कपित्थबिल्वकार्काणां बीजानि मरिचं निशे ।

पिष्ट्वा पानादिकं सद्यो गृहगौलिविषं हरेत् ॥ ११९ ॥

करञ्जशिग्रुकापित्थबीजं गौलीविषे हितम् ।

निशाज्यशारिबालेपो जलूकानां विषापहः ॥ १२० ॥

व्योषैः शिरीषपञ्चाङ्गं हन्याच्छतपदीविषम् ।

दीपतैलं शतपदीदंशस्योपरि पातयेत् ॥ १२१ ॥

तद्विषं हरति ।

शिरीषबीजस्नुक्क्षीरे मण्डूकविषनाशने ।

स्वरसो हिङ्गुसंयुक्तस्तर्कारीभृङ्गराजयोः ॥ १२२ ॥

पानालेपननस्यैस्तु मार्जारविषनाशनः ।

निशाभृङ्गाश्वगन्धानां लेपादोतोर्विषं हरेत्[2] ॥ १२३ ॥

पीतं शिरीषपञ्चाङ्गं लिप्तं वानरदंशजित् ।

तृतीयकन्दं वेगाया नीलिका तण्डुलीयकम् ॥ १२४ ॥

क्षीरेण पिष्ट्वा लेपाद्यैर्नरदष्टविषं हरेत् ।

लोध्रं लवणहिङ्गुभ्यां सर्षपैः शुक्तपेषितम् ॥ १२५ ॥

आलेपयेत् पिबेच्चापि मत्स्यदंशविषापहम् ।

शमीन्यग्रोधनिम्बानां कल्ककाथं पिबेदपि ॥ १२६ ॥

तत्पिष्टलेपान्मर्त्यानां नखदन्तविषं हरेत् ।

गृहधूमत्रिकटुकसैन्धवैः शुक्तपेषितैः ॥ १२७ ॥

लेपपानादिना हन्याद् गोधादंशकृतं विषम् ।

सलोणतप्ततैलं तु सेचयेन्मक्षिकाविषे ॥ १२८ ॥

---

१. 'र्दभं च वि' ख. पाठः. २. 'हरेत् । लोध्रं' क. पाठः.

कपित्थस्य कपालेन प्रलेपो मक्षिकापहः ।
वेगानीलिकयोः पत्रैः समूलं तण्डुलीयकम् ॥ १२९ ॥
पिष्ट्वा प्रलेपनं कुर्याच्चतुष्पाद्विषनाशनम् ।
गृहधूमं समरिचं वचां रात्रिं च काञ्चिके ॥ १३० ॥
पिष्ट्वा प्रलेपपानाद्यैः सर्वकीटविषापहम् ।
शिग्रुकाकादनीमूलं समूलं तण्डुलीयकम् ॥ १३१ ॥
पिष्ट्वा क्षीरेण लेपाद्यैः कीटानां विषनाशनम् ।
कटुतुम्बिनिशादेवदारुबीजानि लाङ्गलीम् ॥ १३२ ॥
पिष्ट्वा शुक्तेन तल्लेपात् सर्वकीटविषं हरेत् ।
श्वेतापराजितामूलं पत्रपुष्पं च नागरम् ॥ १३३ ॥
व्योषं च काञ्चिके पिष्टं स्यात् क्षुद्रविषनाशनम् ।
हृदयान्ते भगवते विष्णवे सर्वोप्सितम् ॥ १३४ ॥
वसेति च स वर्मास्त्रे ठयुग्मं सर्वकीटजित् ।
मातृकापद्ममध्यस्थमन्त्यमौबिन्दुवह्नियुक् ॥ १३५ ॥

अलर्काटि[1]भटेशक्षराज मे शरणाधिप अलर्कदष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु मा चिराय ठठ ।

दष्टं श्वानं स्वमात्मानं सिंहं मध्ये च सागरम् ।
क्षुब्धं ध्यात्वा द्वयोर्भीत्या धावन्तं दष्टकुक्कुरम् ॥ १३६ ॥
निषिच्य मन्त्रं तु जपेत् कुक्कुराणां विषापहम् ।
यष्टिकुस्तुम्बुरुव्योषस्वगुप्ताबीजकुष्ठयुक् ॥ १३७ ॥
प्रियङ्गवश्चैकभागाः कर्णिकारं द्विभागिकम् ।
पयोगुलान्वितं पीतमलर्कगरलापहम् ॥ १३८ ॥
कोशातकीकुटजयोर्बीजान्यर्कशिफारसः ।
जात्याः क्षीरान्वितं पीतं सद्यः श्वविषनाशनम् ॥ १३९ ॥
यष्टिव्योषगुलक्षीरं पीतं च विषनाशनम् ।
कुस्तुम्बुरु स्वयंगुप्ताथ रात्रिः कटुमागधी ॥ १४० ॥

१. 'ष्टि' क. ग. पाठः.

कर्णिकारासनगुलं क्षीरे दष्टः शुना पिबेत् ।

मत्तशुना दष्टोऽपीति यावत् ।

शुक्ते करञ्जसर्वाङ्गक्काथे स्नात्वातपे स्थितः ॥ १४१ ॥

मत्ताश्वदष्टो मत्तोऽपि सद्यो निर्विषतामियात् ।
अङ्कोलोन्मत्तबीजानि नागरं मागधीसमम् ॥ १४२ ॥

कृष्णरम्भाफलोन्मिश्रमलर्कविषनाशनम् ।
रम्भायाः कारवल्ल्याश्च नील्या मूलं च तत्समम् ॥ १४३ ॥

अजाक्षीरेण पानाद्यैः सृगालविषनाशनम् ।
अपामार्गस्य पत्राणि तिलान्यपि च पेषयेत् ॥ १४४ ॥

काञ्जिकेन प्रलेपाद्यैर्जम्बुकस्य विषं हरेत् ।
भृङ्गराजं च नीलीं च निर्गुण्डीमश्वगन्धिकाम् ॥ १४५ ॥

अजाक्षीरेण लेपाद्यैर्हन्यान्नकुलजं विषम् ।
नीलीमूलं क्षीरपिष्टं पानाद्यैर्नकुलं हरेत् ॥ १४६ ॥

सव्योषकिंशुकशिफा तैलक्षीरविलोलिता ।
पिपीलिकाविषं हन्यात् पानालेपनयोजिता ॥ १४७ ॥

निशाव्योषे शुक्तपिष्टे पिपीलिकविषापहे ।
पुनर्नववचाहिङ्गुमरिचाः शुक्तपेषिताः ॥ १४८ ॥

पानालेपादिभिर्हन्युर्विषं भ्रमरदंशजम् ।
शिग्रुमूलं हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम् ॥ १४९ ॥

पिष्ट्वा प्रलेपयेत् सद्यो वञ्चुलाविषनाशनम् ।
षड्बिन्दोः पयसा नस्यं क्षौद्राज्यं वा समं पिबेत् ॥ १५० ॥

हृदयान्ते भगवते जषुदाशपवेन्द्रषू भाशपर्वतशिखररूपाय संहर मोचय चालय निर्विष विषममृतमहारससहशमिमं भक्षापयामि ठठ । अमलपक्षि क्षिप हर ठठ ॥

ताक्ष्यात्मानेन मनुना स्थावराणां विषं हरेत् ।
विस्मयाय स्वयं वाद्यादन्यं वाप्याशयेत् तु तत् ॥ १५१ ॥
स्थावरे तु विषे भुक्ते वान्तं शीताम्बुसेचितम् ।
मध्वाज्यमसमं पीत्वा कुर्यात् सम्यग् विरेचनम् ॥ १५२ ॥
निशाद्वयं च सिन्धूत्थं साज्यक्षौद्रं तु वा पिबेत् ।
सिताक्षौद्रयुतं ताम्रचूर्णं स्वर्णं तु(वा) लिहेत् ॥ १५३ ॥
कारस्करविषं हन्ति जम्बूपल्लवजो रसः ।
रम्भापुष्परसं तद्वत् कपित्थच्छदनाम्बु च ॥ १५४ ॥
फणीतकस्य शुण्ठ्यम्बुपानाच्छिन्नारसोऽपि च ।
स्नुहिस्नुक्चूतपुष्पाणि श्रृङ्गिक्ष्वेलहराणि च ॥ १५५ ॥
चूर्णस्य तैलकबलमङ्गारस्य निशारसः ।
कदलीपुष्पकासघ्नौ स्त्रीदत्तौषधिनाशनौ ॥ १५६ ॥
भल्लातं ब्रह्मवृक्षाम्बु गव्यं च दधिसम्भवम् ।
दशधौतं विलिप्तं तद् विषं प्रशमयेद् व्रणम् ॥ १५७ ॥
अञ्झटा चणकं हन्यादार्द्रकं[2] लाङ्गलीविषम् ।
नीली लोध्रसमा पिष्टा पानाद्यैः स्थावराणि तु ॥ १५८ ॥
हन्याद् विषाणि सर्वाणि खार्या गोपयसाथ वा ।
शिरीषकुसुमं हन्ति कोद्रवोत्थमुपद्रवम् ॥ १५९ ॥
पलाशकूश्माण्डरसो मदकोद्रवनाशनः ।
रम्भाफलस्य मरिचं पानसस्य च नागरम् ॥ १६० ॥
नालिकेरस्य चूताम्लं वरभृङ्गस्य कुण्डली ।
नालीकेराम्बुजम्बीरशुक्तान्यतमयोजिते ॥ १६१ ॥
कर्पूरे तद्विषहरो भृङ्गराजरसः स्मृतः ।
सशुक्तशालिमूलस्याप्युशीरं विषनाशनम् ॥ १६२ ॥
नीलिका चाश्वगन्धा च पाननस्यादियोजिता ।
निःशेषं स्थावरविषं संहरेदमृतं यथा ॥ १६३ ॥

---
१. 'स्या' ग. पाठः. २. 'कं' ख. पाठः

समाज्यक्षौद्रविषजं चक्रमर्दस्तु भक्षितः ।
स्नुहिस्नुह्योर्नाकुलीका नीलागमविषापहा ॥ १६४ ॥

एलाचन्दनकुष्ठगैरिककणासौवर्चलालोध्रकं
मांसीयष्टिनतोच्चटा समधृता सञ्चूर्ण्य मध्वाप्लुतम् ।
लीढं मूषिविषं निहन्ति पुरतो बिम्बं कृशानोः पुरं
ज्वालामालि विभावयन् मनुजपान्नश्येद् विषं स्थावरम् ॥ १६५ ॥

तारं नेत्रशशाङ्कखण्डहुतभुग्युक्तस्तु संवर्तकः
शक्तिर्वर्म च फट् च वह्निदयिता हन्याद् विषं स्थावरम् ।
दूर्वाच्छिन्नकणापटोलतगरैश्चित्राब्जचव्यावचाः
पानाद्यैः सविलङ्गमस्तुलुलिता हन्युर्विषं कृत्रिमम् ॥ १६६ ॥

विश्वालर्कतमालमूलसहितं हिङ्गुश्च शृङ्गीविषं
तत्कोशातकिजं घनं हयरिपुं पथ्या जले नाशयेत् ।
भूपोतं च निशार्कजं नृपनिशातोयं च चूर्णं हितं
कार्पासं जलजे[1] तु चित्रकविषं पद्मं तथोन्मत्तके ॥ १६७ ॥

यद्वा विषापनयनाय तथातुराणां रोगक्षयार्थमथवेष्टरसायनार्थम् ।
यत्रौषधग्रहणमिष्टमुपेत्य तस्य पूर्वेद्युरस्तसमये विदधातु रक्षाम् ॥ १६८ ॥

शुक्लाम्बरधरः क्षालिताङ्घ्रिपाणिस्त्वथाचमेत् ।
उत्तराशामुखश्चौषधीमूलमुपलिप्य तु ॥ १६९ ॥

गणेशं क्षेत्रपं चेष्ट्वा यवादीन् विकिरेदथ ।
रक्तसूत्रेण मूलं तु संवेष्ट्याथ कृताञ्जलिः ॥ १७० ॥

धन्वन्तरिं तु प्रणमेत् सुप्रभां ब्रह्मनिर्मिताम् ।
शुक्लां सुरूपां चार्वङ्गीं मुक्ताद्यैरप्यलङ्कृताम् ॥ १७१ ॥

मुख्यैराभरणैस्तारनाम्ना नत्वा तु तां यजेत् ।

ओं नमः सर्वौषधीभ्यः । ऊर्जावन्तो भविष्यथ । तद्वीर्यैः कृत्स्नीकुरुध्वम् । पच हन दह मारय तुभ्यं नमः ।

---

१. 'भ्या' क. पाठः. २. 'घेस्तु' क. पाठः. ३. 'श्चा' ख. पाठः.

इत्यमुं दशवारं तु जपित्वा चौषधिं पुनः ॥ १७२ ॥
नमस्कृत्य प्रभाते तु तन्मन्त्रेण प्रणम्य तु ।
गृह्णीयादौषधं वीर्यवत् स्यादुक्तफलं पुनः ॥ १७३ ॥
अन्यथा चौषधीवीर्यं गृह्णात्येव हि सुप्रभा ।

इत्थं विचार्य विधृतान्यतिविस्तृतानि
तन्त्राणि पूर्वगुरुभिर्विहितानि सम्यक् ।
क्ष्वेलोपशान्तिसुकृतार्थितया समासात्
सन्दर्शितं सकललोकहितं विधानम् ॥ १७४ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे
नानाविधविषचिकित्सापटलश्चत्वारिंशः ।

---

## अथैकचत्वारिंशः पटलः ।

अथ ग्रहचिकित्सात्र लिख्यते नातिविस्तृता ।
तत्र बालचिकित्सायाः प्रकारा बहुधा स्मृताः ॥ १ ॥
तेष्वादौ मतमाश्रित्य खड्गरावणचोदितम् ।
नारायणीयोदितं च मार्गद्वयमिहोच्यते ॥ २ ॥
लिख्यते प्रथमे वाह्नि मासे तु प्रथमे पुनः ।
संवत्सरे तु प्रथमे नन्दा गृह्णाति मातृका ॥ ३ ॥
चेष्टा तस्य ज्वरः कम्पो रोदनाशनवर्जनम् ।
नद्याः कूलद्वयमृदा शिशुमानात् तु पुत्तलीम् ॥ ४ ॥
संवेष्ट्य पीतसूत्रेण शुक्लान्नं[1] प्रस्थतण्डुलैः ।
मत्स्यमांसासवं[2] पुष्पैर्दधिक्षीरतिलान्वितैः ॥ ५ ॥
त्रयोदश स्वस्तिकांश्च पैष्टाश्चाष्ट प्रदीपिकाः ।
विलिप्य भूमिं रम्भाद्यैः कृत्वा पात्रं भुजायतम् ॥ ६ ॥
तन्मध्ये पुत्तलीं न्यस्य दीपाद्यं परितो न्यसेत् ।
तत्रापरा[3]यां सन्ध्यायां गन्धाद्यैर्विघ्ननायकम् ॥ ७ ॥

---

1. 'मं पीतत' ख. पाठः. 2. 'ब' क. पाठः. 3. 'मा' ख. पाठः.

इष्ट्वा प्राग्याम्यवारुण्यसौम्ये ब्राह्म्यादिमातृकाः ।
वाराह्याद्याश्च वह्न्यादिकोणेष्वैशे तु चण्डिकाम् ॥ ८ ॥

अवाह्याभ्यर्च्य मध्ये तु वीरभद्रं गणेश्वरम् ।
यथोद्दिष्टबलिद्रव्यचतुर्भागाद्द्विभागतः ॥ ९ ॥

वीरभद्रादिमातृभ्यो बोधिपत्रेषु वै बलिम् ।
पृथक् पृथक् तारपूर्वं नमोन्तं स्वाख्यया क्षिपेत् ॥ १० ॥

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तत्रेष्ट्वा खड्गरावणम् ।
नन्दां च स्वाख्यया शान्तां तयोरपि बलिं क्षिपेत् ॥ ११ ॥

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय दीर्घदर्शनाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

इति क्षेप्यो बलिस्तेन शिशुं नीराज्य निर्हरेत् ।
नन्दायै तु स्वनाम्नैव प्रणवादिनमोन्तकम् ॥ १२ ॥

पूर्वस्यां दिशि पश्चात् तु शिवनिर्माल्यसर्षपैः ।
निम्बपत्राज्यमिलितं धूपयेच्च शिशोस्तनुम् ॥ १३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थबिल्वपालाशपल्लवैः ।
कुम्भोदरस्थितैस्तैस्तु स्नपयेत् प्रोक्षयीत वा ॥ १४ ॥

एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे स्नपयेत् तथा ।
द्वितीयत्रितये बालं सुनन्दा नाम बाधते ॥ १५ ॥

चेष्टा तस्याक्षिरोगश्च सङ्कोचो हस्तपादयोः ।
प्राग्वत् पुत्तलिकाद्यं तु कृत्वा द्रव्यैः पुरोदितैः ॥ १६ ॥

वीरभद्रादिमातृभ्यः खड्गरावणविघ्नयोः ।
दिनादिमातृकायै च सर्वत्रायं बलिक्रमः ॥ १७ ॥

सूर्यास्तमयवेलायामुदीच्यां निर्हरेद् बलिम् ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय दीर्घदर्शनाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

तृतीयत्रितये बालं ग्रही गृह्णाति पूतना ॥ १८ ॥

ज्वरश्च गात्रभङ्गश्च गलभङ्गोर्ध्ववीक्षणम् ।
प्राग्वत् पुत्तलिकां कृत्वा तिलचूर्णौदनौ दधि ॥ १९ ॥

मत्स्यमांससुरापूपगन्धधूपध्वजादिभिः ।
वीरभद्रादिमातृभ्यः पूतनायै च पूर्ववत् ॥ २० ॥

ओं नमो भगवते खड्गरावणायातिशौर्याय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

अनेन तु बलिं क्षिप्त्वा पश्चिमायां तु निर्हरेत् ।
सिद्धार्थशिवनिर्माल्यनिम्बपत्रं घृतान्वितम् ॥ २१ ॥

अजशृङ्गेण धूप्यैनं स्नपयेच्छान्तिवारिभिः ।
चतुर्थत्रितये बालं गृह्णाति मुखमण्डिका ॥ २२ ॥

गात्रखेदो ज्वरः श्वासो मुष्टिबन्धोऽन्नवर्जनम् ।
प्राग्वत् पुत्तलिकादीनि द्रव्याण्यत्रापि कल्पयेत् ॥ २३ ॥
वीरभद्रादिमातृभ्यः पूर्ववन्निक्षिपेद् बलिम् ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय दीर्घभुजाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

अनेन चापि मन्त्रेण क्षिप्त्वा याम्यां बलिं नयेत् ॥ २४ ॥

पञ्चमे तु बिडालाख्या ग्रही गृह्णाति बालकम् ।
ज्वराक्षिरोगौ तच्चेष्टा मुष्टिबन्धश्च पूर्ववत् ॥ २५ ॥

पुत्तल्यादीनि सर्वाणि प्राग्वद् बलिनिवेदनम् ।
वीरभद्रादिमातृभ्यः पूर्ववन्निक्षिपेद् बलिम् ॥ २६ ॥

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय पूर्णाय नमः ठठ ।

क्षिप्त्वानेन बलिं तं चाप्यैशान्यां निर्हरेद् बलिम् ॥ २७ ॥

धूपयेन्निम्बपत्रैस्तु घृतगुग्गुलुमिश्रितैः ।
षष्ठत्रये शकुनिका चेष्टोर्ध्वालोकनं ज्वरः ॥ २८ ॥

प्राग्वत् पुत्तलिकादीनि विशेषो मधुशोणिते ।
मन्त्रस्तु पञ्चमः प्रोक्तो धूपश्चापि पुरोदितः ॥ २९ ॥

वायव्ये बलिमुद्वास्य स्नपयेच्छान्तिवारिभिः ।
सप्तमे त्वथ शुष्काङ्गी चेष्टा कम्पश्च रोदनम् ॥ ३० ॥
प्राग्वत् पुत्तलिकादीनि द्रव्याण्यत्रापि कल्पयेत् ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

अनेन तु बलिं क्षिप्त्वा हरेददितिगोचरे ॥ ३१ ॥

शान्त्युदकेन स्नपयेच्च ।

अष्टमत्रितये बालं ग्रही गृह्णाति जृम्भिका ।
मुष्टिबन्धो ज्वरः स्वेदश्चेष्टा गगनवीक्षणम् ॥ ३२ ॥
द्रव्याणि पुत्तल्यादीनि चतुर्वर्णे चतुर्ध्वजम् ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय दीप्तप्रज्वलितहस्ताय हन दह मुञ्च बालकं ठठ ।

दत्त्वानेन बलिं प्राग्वद् धूपयेत् स्नपयेच्च तम् ॥ ३३ ॥
अञ्जिका नाम नवमत्रये चेष्टा ज्वरस्तथा ।
मुष्टिबन्धोऽक्षिरोगश्च पुत्तल्यादीनि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥
शष्कुलीपर्पटीयुक्तं सन्ध्याकाले तु पश्चिमे ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय ज्वलितहस्ताय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

रेवती नाम दशमत्रये कम्पज्वरोद्गमौ ॥ ३५ ॥
रोदनं पुत्तलिकाद्यैर्वृक्षमूले बलिं हरेत् ।

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय दीर्घदर्शनाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

निर्माल्यराज्या संधूप्य स्नपयेच्चापि पूर्ववत् ॥ ३६ ॥
एकादशत्रये तद्वच्छिलाख्या तु ज्वरागमः ।
गात्रोद्वेगो मुष्टिबन्धः प्राग्वत् पुत्तलिकादिभिः ॥ ३७ ॥

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय हन गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

उत्तरस्यां यथापूर्वं बलिं निर्हृत्य धूपयेत् ।

---

१. 'ता' ख. पाठः.

स्नपयेच्च ।

द्वादशत्रितये तद्वत् पाकदाहज्वरोऽपि च ॥ ३८ ॥
मुष्टिबन्धोऽतिसारश्च चेष्टा पुत्तलिकादिभिः ।
पायसक्षीरमुद्गान्नैर्दधिभक्तैः पुरोदितैः ॥ ३९ ॥

ओं नमो भगवते खड्गरावणाय बलिं गृह्ण मुञ्च बालकं ठठ ।

अनेन तु बलिं दत्त्वा दक्षिणे निर्हरेच्च तम् ।
नैर्माल्याद्यैश्च संधूप्य स्नपयेच्छान्तिवारिभिः ॥ ४० ॥
एवमा द्वादशाद् वर्षाद् ग्रहा गृह्णन्ति बालकान् ।
आ षोडशात् परे प्राहुरा सप्तदशकात् तथा ॥ ४१ ॥

इति खड्गरावणबालचिकित्सा ।

---

अथ जातं दिने बालं बाधते पापिनी ग्रही ।
ग्रीवाविवर्तनं चेष्टा लालास्रावश्च तत्र तु ॥ ४२ ॥
वंशाद्यैर्बलिपीठं च संकल्प्य चतुरश्रकम् ।
तन्मध्ये वीरभद्रं च मातॄः कोणेषु दिक्ष्वपि ॥ ४३ ॥
विनायकं च चामुण्डामैशान्यां दिशि पूजयेत् ।
अपूपमत्स्यमांसान्नतिलचूर्णासवादिभिः ॥ ४४ ॥
प्रणवादिनमोन्तैः स्वैर्नामभिः प्रक्षिपेद् बलिम् ।
तत्रैशकोणे तामिष्ट्वा ध्वजदीपाष्टकान्वितम् ॥ ४५ ॥
अर्धास्तमयकाले तं शिशुं नीराज्य मन्त्रतः ।
विन्यसेच्चत्वरे वाथ दिशायाममरप्रभोः ॥ ४६ ॥
सिद्धार्थपुरनिर्माल्यनिम्बपत्रैर्घृताप्लुतैः ।
सन्धूप्योशीरमार्गाग्रबोधिपल्लवचन्दनैः ॥ ४७ ॥
संस्नाप्य युक्तसलिलैः कुम्भस्थैः प्रोक्षयेच्च वा ।
लोध्रचन्दनमञ्जिष्ठाधातकीभिः प्रलेपयेत् ॥ ४८ ॥
एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे वासरे पुनः ।
बिल्वक्षीरागमार्गाणां पत्राढ्यैः शान्तिवारिभिः ॥ ४९ ॥

संस्नाप्य शक्त्या विप्रेन्द्रान् वस्त्राद्यैरभिपूजयेत्।
आसप्तदशवर्षान्तमारभ्य[1] प्रथमं दिनम् ॥ ५० ॥
समानोऽयं विधिः प्रोक्तो भिन्नास्तद्देवताः क्रमात्।
द्वितीये दिवसे तत्र भीषणी सा ग्रही मता ॥ ५१ ॥
गात्रसङ्कोचनं कासश्वासौ चेष्टा प्रलक्ष्यते।
चन्दनोशीरमायूरैरजामूत्राभिपेषितैः ॥ ५२ ॥
शिशुमालिप्य गोदन्तश्रृङ्गरोमैः प्रधूपयेत्।
झण्टाली दिवसे प्रोक्ता तृतीये जृम्भणादिकम् ॥ ५३ ॥
चेष्टा गोहस्तिदन्ताद्यैरजाक्षीरेण लेपनम्।
राजिनिम्बदलैर्धूपश्चतुर्थे वासरे ग्रही ॥ ५४ ॥
काकोली फेनवमनं प्रक्षोभो नयनस्य च।
राजिमातङ्गदन्तैस्तु लेपनं निम्बपत्रकैः ॥ ५५ ॥
अहिनिर्मोकसंयुक्तैर्धूपः पञ्चमवासरे।
सिंहिका मुष्टिबन्धाद्यं चेष्टा लोध्रवचादिभिः ॥ ५६ ॥
आलेपनं स्याद् धूपोऽपि तन्निर्माल्यादिभिर्मतः।
फट्कारी षष्ठदिवसे तच्चेष्टा रोदनादिका ॥ ५७ ॥
पुरकुष्ठघृतैर्लेपो धूपस्तैरेव सम्मतः।
सप्तमे मुक्तकेशी तु वासरे जायते तदा ॥ ५८ ॥
चेष्टा रोदनदुर्गन्धकासजृम्भणपूर्विका।
साजमूत्रवचाकुष्ठैर्लेपो व्याघ्रनखैरपि ॥ ५९ ॥
धूपोऽष्टमे हि कथिता दण्डिनी कासपूर्विका।
चेष्टा रसोनकवचाहिङ्गुसिद्धार्थकैर्मतौ ॥ ६० ॥
लेपधूपौ च नवमे महामहिषिसंज्ञिता।
मुष्टिखादनकासाद्या चेष्टा तगरचन्दनैः ॥ ६१ ॥
कुष्ठसर्षपसंयुक्तैर्लेपस्तत्र प्रशस्यते।
कपिरोमनखैर्धूपो दशमे रोदनी ग्रही ॥ ६२ ॥

1. 'भ्य' ख. पाठः.

गृह्णाति बालकं तत्र तच्चेष्टा नीलवर्णता ।
निम्बपत्रदलैर्धूपलेपौ प्राग्वद् बलिर्मतः ॥ ६३ ॥
पूतना नाम गृह्णाति मासिकं बालकं ग्रहीः ।
ग्रन्थिश्च चेष्टा तत्र स्यात् काकवद् रोदनं तथा ॥ ६४ ॥
द्वितीये मासि मकुटा शीतलत्वादिकं तनोः ।
चेष्टा धूपोऽपि नैम्बैः स्यात् पत्रैर्लशुनसंयुतैः ॥ ६५ ॥
तृतीये गोमुखी मासे तच्चेष्टा रोदनादिकम् ।
क्षीरागबिल्वपत्राद्भिः संस्नाप्याथ प्रधूपयेत् ॥ ६६ ॥
सिद्धार्थैर्घृतसंयुक्तैश्चतुर्थे मासि पिङ्गला ।
तच्चेष्टा गात्रशोषाद्यं स्नानधूपौ च पूर्ववत् ॥ ६७ ॥
सराजिगजदन्तेन लेपो धूपश्च तत्परः ।
निम्बच्छदाहिनिर्मोकैः साज्यनिर्माल्यकैरपि ॥ ६८ ॥
हंसिका[1] पञ्चमे मुष्टिबन्धोर्ध्वालोकनादिकम् ।
श्वासश्च जृम्भणं चेति चेष्टा लेपेऽपि तत् पुनः ॥ ६९ ॥
मेषशृङ्गशिलाताललोध्रेण वचया पुनः ।
निर्माल्याद्यैश्च संधूप्य रक्षेच्छिशुमतन्द्रितः ॥ ७० ॥
षष्ठे मासि च गृह्णाति पङ्कजा कुक्षितोदनम् ।
चेष्टा निम्बच्छदैर्धूपो भवेत् सर्षपसंयुतैः ॥ ७१ ॥
शीतला सप्तमे मासि शीतलत्वादि चेष्टितम् ।
अष्टमे मासि यमुना मुखशोषणपूर्विका[2] ॥ ७२ ॥
चेष्टा चिकित्सा नैवात्र नवमे मासि बालकम् ।
बाधते कुम्भकर्णी च तच्चेष्टा मू(र्ति ? र्छि)का वमिः ॥ ७३ ॥
कुल्माषमत्स्यमांसान्नगन्धाद्यैरीशतो बलिः ।
तापसी दशमे मासि निराहारोऽक्षिमीलनम् ॥ ७४ ॥
चेष्टा च पीतरक्तान्नमत्स्यमांसैरुदग्बलिः ।
अथ चैकादशे मासे राक्षसी नाम बालकम् ॥ ७५ ॥

१. 'स'. २. 'र्वै' ख. पाठ.

गृह्णाति नेत्रयोरान्ध्यं नास्ति तत्र प्रतिक्रिया ।
द्वादशे मासि चपला तच्चेष्टा श्वासपूर्विका ॥ ७६ ॥
द्वितीये वत्सरे तद्वद् यातना पतनादिकम् ।
चेष्टितं केशगोदन्तधूपः पञ्चदलाम्बुभिः ॥ ७७ ॥
स्नानं तृतीयवर्षे तु रोदिनी रोदनादिकम् ।
चेष्टा चतुर्थे वर्षे तु चटका वेदनादिकम् ॥ ७८ ॥
चेष्टितं पिञ्छरोमाद्यैर्धूपस्तत्र विधीयते ।
पञ्चमे चञ्चला वर्षे गात्रभङ्गादिरूपिणी ॥ ७९ ॥
चेष्टात्र धावनी वर्षे षष्ठे चेष्टातिमूत्रता ।
राजीलशुनकैर्धूपः स्नानं पञ्चदलाम्बुभिः ॥ ८० ॥
यमुना सप्तमे वर्षे निराहारत्वकारिणी ।
अष्टमे हायने बालं बाधते जातवेदसी ॥ ८१ ॥
नवमे कालिनी वर्षे करस्फोटादिकारिणी ।
ओं मुञ्च पच दह आगच्छ बालिके ठठ ।
तिलैरनेन मन्त्रेण हुत्वा तद् धूपयेदपि ॥ ८२ ॥
कलहंसी च दशमे वत्सरे ज्वरकारिणी ।
सिद्धार्थकुष्ठलशुनैर्लेपो गोरोमसंयुतैः ॥ ८३ ॥
पिचुमन्ददलैर्धूपः स्यादेकादशवर्षके ।
देवदूती सदा भूरिक्षुत्पिपासादिकारिणी ॥ ८४ ॥
पलिता द्वादशे वर्षे नेत्ररोगादिकारिका ।
तथा त्रयोदशे वर्षे वायवी तत्र चेष्टितम् ॥ ८५ ॥
अङ्गसादादिकं तत्र यक्षिणी बाधते शिशुम् ।
ग्रही चतुर्दशे वर्षे ज्वरशूलादिकारिणी ॥ ८६ ॥
ग्रही च मुञ्जकमुखी वर्षे पञ्चदशे मता ।
चिकित्सा नास्ति वर्षे तु षोडशे वानरी स्मृता ॥ ८७ ॥
तथा सप्तदशे वर्षे ग्रही बन्धवती सदा ।
गात्रतोदमनोमोहप्रलापादिकरी मता ॥ ८८ ॥

वर्षे चाष्टादशे बालं कुमारी नाम बाधते ।
एवं बालग्रहाः प्रोक्ताः सर्वा देव्यस्तु मातरः ॥ ८९ ॥
कुमारीशब्दपूर्वं तु नमोन्तं स्वस्वनामभिः ।
सर्वासां च बलिः क्षेप्यो मन्त्रांश्चैतान् जपेदपि ॥ ९० ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणस्तथा ।
रक्षन्तु त्वरिता बालं मुञ्चन्तु च कुमारकम् ॥ ९१ ॥

ठठ ।

प्रक्षिप्तबलिनानेन त्रिधा नीराजयेच्छिशुम् ।
बलिप्रदानस्यान्ते तु जपेन्मन्त्रं स्पृशन् शिशुम् ॥ ९२ ॥

नमः सर्वमातॄणां हृदयमोटक भञ्ज कट्ठ स्फोटय स्फुर गृह्ण आकर्षय त्रोटय एवं सिद्धिं ज्ञापयति हर निर्दोषं कुरु बालकं ठठ ।

बलिप्रदानस्यान्ते तु मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।

कूश्माण्डि यक्षि भगवति चामुण्डे मुञ्च दह बालाद् गच्छ ठठ ।

तिलराजिघृतैर्होमं कुर्यात् तद्ग्रहमुक्तये ॥ ९३ ॥

ओं चामुण्डे नमो विद्ये हुं ह्रीं दुष्टग्रहा हुं तत्र गच्छन्तु गुह्यका यत्र स्थानं कुरु रुद्रो ज्ञापयति ठठ । अनेन प्रथमदिनादिसप्तदशवर्षान्तं बलिप्रक्षेपस्यान्तेऽश्वत्थोदुम्बरवटबिल्वपलाशपल्लवान् कुम्भजले प्रक्षिप्यानेन मन्त्रेण स्नापयेत् । क्ष्रूं रक्ष महादेव! नीलग्रीव! जटाधर! ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुञ्च कुमारकम् ।

अनेन राजिकालेपो धूपश्चैव ग्रहापहः ।
आख्याविदर्भिते भूर्जे बन्धो[1] बालग्रहार्तिजित् ॥ ९४ ॥
हस्तो माकान्तकौ साक्षौ वीप्सितौ तारपूर्वकौ ।

हि चिनि[2] भूचनि भूततटि विचाणि विरज नारायणि! उमे! दण्डहस्ते! रौद्रि! महेश्वरि! महामुखि! व्यालमुखि! शङ्कुकर्णे! शुष्कजङ्घे! अलम्बुषे! हन सर्वग्रहनाशिनि! खल सर्वाङ्गशोणितं यन्निरीक्षसि मनसा देवि! मम मोहनं मोहय ।

रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता ।
रुद्रे[3] रौद्रेण रूपेण त्वं देवि! एहि रक्ष माम् ॥ ९५ ॥

---

१. 'द्धो', २. 'नि भूतिविचाणि विरज', ३. 'द्र' ख. ग पाठः.

हुं फट् ठठ ।

शिखायां वा गले कट्यां धारयेत् स्कन्दमेखलाम् ।
बालो बालग्रहैर्वापि सर्पाद्यैर्वा न बाध्यते ॥ ९६ ॥

विष्णुस्ते पूर्वतः पातु रुद्रो रक्षतु दक्षिणम् ।
ब्रह्मा तु पश्चिमे पायात् स्कन्दो रक्षत्वथोत्तरम् ॥ ९७ ॥

उपरिष्टात् तथा सूर्यः पातु त्वाधश्च वासुकिः ।
पायाच्च त्वामधो वत्स! शिष्टाः काष्ठाः समीरणः ॥ ९८ ॥

स्वस्ति करोतु भगवान् पिनाकी वृषभध्वजः ।
गावो रक्षन्तु सर्वत्र भूमिः पातु सदा शिवा ॥ ९९ ॥

रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।
यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥ १०० ॥

एकदंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् ।
वराहरूपधृग् देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १०१ ॥

नखाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षःस्थलो विभुः ।
नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ॥ १०२ ॥

वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् ।
त्रिविक्रमः क्रमक्रान्तत्रैलोक्यः स्फुरदायुधः ॥ १०३ ॥

शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः ।
गुह्यं सजठरं विष्णुर्जङ्घे पादौ जनार्दनः ॥ १०४ ॥

मुखं बाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥ १०५ ॥

शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गनादहताः क्षयम् ।
गच्छन्तु प्रेतकूश्माण्डा राक्षसा ये तवाहिताः ॥ १०६ ॥

त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः ।
हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ॥ १०७ ॥

अनेन तु सदा रक्षां नन्दगोपस्तदाकरोत ।
कृष्णस्यैतज्जपन् स्पर्शाद् रक्षां स्यादक्षता शिशोः ॥ १०८ ॥

शक्तिमध्ये शिशोर्नाम तारं लुयुगलं जलम् ।
स्वाहान्तोऽनेन परितो वेष्टयेद् बाह्यतः शशी ॥ १०९ ॥

खण्डेन्दुभिरधोवक्रैर्बहिः संवेष्टयेत् पुनः ।
शिशुरोदनहृच्चक्रं संपूज्य कलितं त्विदम् ॥ ११० ॥

आज्यं निम्बदलं रसोनकजतूवंशत्वचा संयुतं
सिद्धार्थाज्यभुजङ्गचर्मनृकचैर्निर्माल्ययुक्तं तथा ।
वेणुत्वग्जतुनिम्बपल्लव(कृ ? घृ)तैः सिद्धार्थयुक्तं त्विमे
धूपा बालहितास्त्रयोऽपि कथिता बालग्रहार्तिच्छिदः ॥१११॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
बालचिकित्सापटलः एकचत्वारिंशः ।

---

अथ द्विचत्वारिंशः पटलः ।

निस्तेजदेवासुरनागयक्षगन्धर्वरक्षःपितृहेद्रुभस्माः ।
योन्युद्भवाः कश्मलकाः प्रलापा विघ्नाः कुशान्त्याश्च पिशाचभूताः ॥ १ ॥

अष्टादशविधास्त्वेवं ग्रहा गृह्णन्ति मानवान् ।
उन्मादाश्चाप्यपस्मारास्तथान्ये ब्रह्मराक्षसाः ॥ २ ॥

सर्वे ग्रहास्ते गृह्णन्ति बलिकामास्तु मानुषान् ।
रतिकामा हन्तुकामाः सौम्याग्नेयाश्च ते द्विधा ॥ ३ ॥

शून्यालयसरोवापीशैलोद्यानननदीषु च ।
एकवृक्षश्मशानेषु चैत्यदेवालयादिषु ॥ ४ ॥

निवसन्ति ग्रहास्त्वेते पीडयन्ति च मानवान् ।
क्रुद्धं हृष्टं हासिनं च भीतमेकाकिनं निशि ॥ ५ ॥

उच्छिष्टं भूषितं रात्रौ नष्टालब्धधनं तथा ।
वियोगिनं मुमूर्षुं च स्त्रियं नग्नां च गर्भिणीम् ॥ ६ ॥

दुराचारामृतुस्नातां नवसूतां रजस्वलाम् ।
कामार्तां मद्यपां मुक्तां रथ्याचत्वरयोः स्थिताम् ॥ ७ ॥

---

१. 'त्र' ख. पाठः.

सन्ध्यासु प्रथमाभोग्यामभ्यक्तामवमानिताम् ।

ग्रहा गृह्णन्तीति यावत् ।

देवताविप्रमहतां निन्दया पूर्ववैरतः ॥ ८ ॥

ऋणात् कर्मविपाकाच्च ग्रहा गृह्णन्ति नान्यथा ।
दुर्बलो निर्निमीलाक्षो निस्तेजो बहुभाषिता ॥ ९ ॥

स्नातः सुगन्धस्रग्वस्त्रः सौम्यो हृष्टः सुरग्रही ।
दुष्टात्मा निर्भयो दृप्तो धर्मदेवद्विजान् द्विषन् ॥ १० ॥

बह्वाशी प्रहसन् सर्वान् सकम्पाङ्गोऽसुरग्रही ।
गुलपानीयदुग्धादिवाञ्छया सृक्किणीं लिहन् ॥ ११ ॥

भूमौ प्रसर्पन् रक्ताक्षः क्रोडी नागग्रहातुरः ।
रक्तमाल्यादिगन्धेच्छुः संरक्तनयनातुरः ॥ १२ ॥

अक्रोधनस्तूर्णगामी गम्भीरो यक्षपीडितः ।
स्रग्गन्धगीतवाद्येच्छुः क्रीडन् गन्धर्वपीडितः ॥ १३ ॥

निर्लज्जो मद्यमांसासृक्प्रियोऽशौचश्च राक्षसः ।
पिण्डोदकक्रियां कुर्वन् मांसेच्छुश्च पितृग्रही ॥ १४ ॥

जानुस्थाधोमुखः स्मेरः समुद्विग्नैर्दृगो ग्रही ।
असङ्गतं ब्रुवन् वेपन् शीताङ्गस्तिर्यगीक्षणः ॥ १५ ॥

शुद्धाङ्गो बहुभुक् शुद्धो भस्मग्रहनिपीडितः ।
खिन्नाङ्गो मेषगन्धी च निर्मर्यादश्चलेक्षणः ॥ १६ ॥

बह्वाशी चिन्तितं जानन् मांसार्थी योनिजग्रही ।
निश्शौचो मलपङ्काढ्यो भस्मशायी हसन् रुदन् ॥ १७ ॥

स्त्रीद्विड्भ्रमन् सदैवान्यान् भीषयन् कश्मलग्रही ।
नृत्यन् हसंश्च शुष्काङ्गो बह्वाशी स्वाङ्गभञ्जनः ॥ १८ ॥

बहुप्रलापो विज्ञेयः प्रलापग्रहपीडितः ।
शूत्कारवान् वमन् दन्तान् कषन् वैनायकग्रही ॥ १९ ॥

---

१. 'षां', २. 'द्', ३. 'तुर्ग्रही' ख. पाठः. ४' 'ग्रही ॥ नृत्यन' क. पाठः.

विविक्तवासी शुक्लाङ्गो धावन् दारुणनिस्वनः ।
अतृप्तिर्भोजने पृष्टो न ब्रूते यः कुशग्रही ॥ २० ॥

विट्पङ्कलेपो रक्ताक्षस्तर्जयन् रक्तलोचनः ।
बह्वाशी दीनवाग् लुब्धः साङ्गकम्पोऽन्त्यजग्रही ॥ २१ ॥

दुर्गन्धश्चाशुचिर्लोलः पिशाचोऽत्यन्तरूक्षवाक् ।
सर्वानुकारी प्रहरन् जनानुच्चैः प्रभाषिता ॥ २२ ॥

आरोहविकृतो वृक्षान् भूतग्रहनिपीडितः ।
आस्फोटयन् हसन् गायन् रुदंश्चाङ्गानि विक्षिपन् ॥ २३ ॥

आताम्रकृशदेहश्च वातोन्मादी भृशातुरः ।
गर्जनं धावनं कोपः शीतच्छायान्नगृध्नुता ॥ २४ ॥

पीतोष्णदेहता छर्दिरुन्मादैः श्लेष्मपित्तजैः ।

विवृत्तनेत्रः पतितो विसंज्ञः फेनं वमन् सङ्कुचिताङ्घ्रिहस्तः ।
क्रन्दन् सुभीमं विदशंश्च दन्तान् मत्तस्त्वपस्मारयुतः सुखी (?) च ॥ २५ ॥

पठन् वेदान् कुशान् धत्ते द्विजानुष्ठानकृत् सदा ।
देवान् यजति विप्रांश्च ग्रहश्च ब्रह्मराक्षसः ॥ २६ ॥

धावन् वल्गन् हसन् क्षेत्रचेष्टितः क्षत्रियग्रही ॥ २७ ॥

उज्जृम्भंश्च हसन् क्रन्दन् कषन् क्रोशन् वणिग्ग्रही ।
अवाच्यं प्रवदन् नृत्यन् क्रुध्यन् विण्मूत्रभक्षितः ॥ २८ ॥

मेढ्रादिस्पृग् हसन् विप्रान् प्रद्विषन् वृषलग्रही ।
केशान् विधून्वन् हर्षेण वदन् पश्यति मन्त्रिणम् ॥ २९ ॥

वृक्षादेर्निपतंस्तोयमग्निं वा प्रविशन् रुदन् ।
हन्तुकामस्तु मन्त्राद्यैरसाध्यं तं विवर्जयेत् ॥ ३० ॥

उद्विग्नः सर्वतः पश्यन् ज्वरशूलादिपीडितः ।
क्षुत्तृट्परिगतो ब्रूते देहीति बलिकामुकः ॥ ३१ ॥

स्त्रीभिः क्रीडन् समुद्विग्नः सुस्नातः प्रियभाषितः ।
गन्धमाल्यप्रियः शुद्धो रतिकामस्तु स स्मृतः ॥ ३२ ॥

---

१. 'क्षे' क. पाठः.

साध्यावेतौ ग्रहौ विद्याद् बलिकामरतिप्रियौ ।
महापातकलेपैश्च स्त्रीगोगुरुवधादिभिः ॥ ३३ ॥
श्रीनीलकण्ठपादाब्जे शप्तः सत्यं वदेद् ग्रहः ।
ग्रहं ग्रहेप्सितं चापि ज्ञात्वा तदनुरूपतः ॥ ३४ ॥
कृतात्मरक्षणो मन्त्री कुर्याद् ग्रहचिकित्सितम् ।
पूर्वं ग्रहाणामभिवाञ्छितार्थैर्बलिप्रदानैस्तनुताच्चिकित्साम् ।
यदा न मुञ्चेन्मृदुभिः प्रयोगैस्ततश्चिकित्सां विदधातु रौद्रीम् ॥ ३५ ॥
आलेपनैर्धूपविशेषबद्धैः क्रूरैस्तथा भर्त्सनताडनैश्च ।
तत्पुत्तलीच्छेदनवेधहोमैः कुर्याद् विमोक्षं क्रमशो ग्रहाणाम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
ग्रहचेष्टापटलो द्विचत्वारिंशः।

---

## अथ त्रिचत्वारिंशः पटलः।

हृदयं भगवच्छब्दो शुद्राशगता फचुत मन्दरकुसुमषट्पदवज्रतुण्ड नीलाञ्जनसमप्रभ इदं भूतं हन[1] विलिपन्तं ख ख हुं फट् ठठ ।

अनेन माषकूसरैर्जपित्वा ग्रस्तताडनात् ।
तं मुञ्चन्ति ग्रहाः स्वैक्यं रुद्रध्यानेन तत्क्षणात् ॥ १ ॥

हृदयान्ते भगवते फवेश्वाषाश नमः कासश महेश्वराय भ्रमरि भ्रामय सूकरि भक्षय ठठ ।

माषाननेन संमन्त्र्य भक्षणान्मुञ्चति ग्रहः ।

नमो भगवते शुद्राश महाभैरव देवाय नर्तय मोटय वल्गय क्रोडय [2]भ्रूं ग्रह चण्ड हुं फट् ठठ ।

भूतप्रेतपिशाचादीन् जपाद्यैर्मोचयेन्मनुः ॥ २ ॥

तारं हृच्चण्डशब्दश्च क्रोधरुद्राय [3]हुंभुं पुपु भूतसमये तिष्ठ ठठ ।

सप्तवारं जपित्वेमं शिखां ग्रस्तस्य बन्धयेत् ।
ग्रहस्तु समये तिष्ठेद् बहिर्वायुपुरं पुनः ॥ ३ ॥

---

१. 'न लिपन्त ख', २. 'भ्रू', ३. 'षु भू' ख. पाठः. ४. 'रः' क. ग. पाठः.

लिखित्वा भस्मना तस्मिन् ग्रस्तं संस्थाप्य मन्त्रतः ।
अनेनाष्टोत्तरशतं जपित्वाम्भो मुखेऽस्य वै ॥ ४ ॥

प्रक्षिपेच्च जपन् क्रुद्धो ग्रह आविश्य मुञ्चति ।
रज्ज्वा जपितयानेन स्तम्भं बद्ध्वा स बध्यते ॥ ५ ॥

पिष्टप्रतिकृतिं कृत्वा तत्रावाह्य तु तं ग्रहम् ।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु क्षुरेणैनं विदारयेत् ॥ ६ ॥

छेदयेच्च त्रिशूलेन मर्मसु क्षतजं स्रवेत् ।
एतावता ग्रहग्रस्तान् न मुञ्चति यदा तदा ॥ ७ ॥

छिन्नां प्रतिकृतिं राजियुक्तां कुण्डे जुहोतु च ।
सहस्रं स ग्रहो दग्धः परित्यज्य पलायति ॥ ८ ॥

मन्त्रेणानेन जपितैः समाषतिलसर्षपैः ।
वह्निभूतैस्तु शतशस्ताडितो मुञ्चति ग्रहः ॥ ९ ॥

सिद्धार्थैः सप्तजपितैर्ग्रस्तं सम्भ्राम्य वाञ्छिते ।
सङ्क्रामयति तद् भूतं सद्य एव न संशयः ॥ १० ॥

हृच्चण्डासिपदं[2] धारा वायुः किलिपदद्वयम् ।
गच्छद्वयं नमःशब्दो महाकायाग्निजायया ॥ ११ ॥

अनेन तिलपिष्टेन लेपाद् भीतो भवेद् ग्रहः ।

हृदयान्ते भगवति क्षुद्रशालिफ वाचालि भवेश्वष चालि नन्दाश्विर कालि इन्द्रकालि ब्रह्मकालि परेतकालि भद्रकालि वज्रकालि वर पुर हर तुरु धर आवेशय खर्ज गर्ज ग्रह फण फालेश्वरि! श्रवणधारिणि! ओं क्रौं ग्रों अदः चामुण्डेश्वरि! ठठ ।

प्रणवस्थितशूलाग्रमध्ये नृहरिबीजयुक् ॥ १२ ॥

पार्श्वे शूलाग्रयोः शक्तिमिष्ट्वा ग्रस्तं च तत्स्थितम् ।
दह्यन्तमग्निना ध्यायन् जपेदाविश्य मुञ्चति ॥ १३ ॥

लिखेद् ग्रहं क्षितौ मन्त्री विषाङ्गारकेण तम् ।
जपितैर्निम्बकीलैस्तु मर्मदेशेषु वेधयेत् ॥ १४ ॥

---

१. 'बा' २. 'सि शरप' क. पाठः.

म्रियते वा ग्रहः क्रोशन् मुक्त्वा वा व्रजति क्षणात् ।
हृदयं चण्डशब्दश्च क्रोधयुक्तश्चतुर्थियुक् ॥ १५ ॥

किलि मिलि भूतपतिराज्ञापयति ठठ ।

हृदयान्ते भगवते रुद्राय चिमियुग्मकम् ।

विले भूताधिपतिराज्ञापयति ठठ ।

भूतक्रूरान्धसा रात्रौ मन्त्राभ्यां तु बलिं हरेत् ॥ १६ ॥
दोषारजोन्नलाजाश्च सक्तवश्च तिला दधि ।
भूतक्रूरान्नमुद्दिष्टं भूतानां प्रियकारकम् ॥ १७ ॥

ॐ

पूटाणि शाणविहलान्तिशाणि बलिं गृहीत्वा विधिवत् प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु रक्षन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ १८ ॥

अनेन च बलिं दद्यात् कुडुबत्रितयान्धसा ।
सभूतक्रूरभक्ष्येण प्रागुदीच्यां समाहितः ॥ १९ ॥
गृहारम्भादिकेऽप्येवं शान्त्यर्थं प्रक्षिपेद् बलिम् ।
सासपर्णं गृहं कृत्वा शुद्धे देशे त्रिभूमिकम् ॥ २० ॥
रक्तमालाभिरावेष्ट्य चतुर्द्वारमलङ्कृतम् ।
व्रीहिश्यामाकजैश्चैव प्रियङ्गूनां च तण्डुलैः ॥ २१ ॥
पृथक् त्रिकुडुबैर्दध्ना क्षीररक्तोदकैः क्रमात् ।
श्रपयित्वा चरून् सम्यङ् नीराज्योर्ध्वादिभूमिषु ॥ २२ ॥
क्रमाद् विन्यस्य तु पुनः सक्तून् व्रीह्यादिसाधितान् ।
लाजांश्च तत्र व्रैहेयान् नीराज्याथो गृहे न्यसेत् ॥ २३ ॥
ऐशे व्रीहियवान् सक्तून् श्यामाकान् नैरृतेऽनले ।
प्रियङ्गुसक्तून् लाजांश्च ततश्चूर्णनिशाजलैः ॥ २४ ॥
रक्तोदकं तु सम्पाद्य कुडुबाष्टशतोदकैः ।
तिलान् मुद्गांस्तण्डुलांश्च माषान् द्रोणप्रसूनकैः ॥ २५ ॥
नीराज्य सर्वं वायव्ये विन्यसेत् प्रोक्तमार्गतः ।
भूतान्यथ समावाह्य त्रितलेषु यथाक्रमम् ॥ २६ ॥
भूतानि यानीत्याद्यं तु जपन् भूतानि पूजयेत् ।
सुगन्धपुष्पधूपैश्च दीपनैवेद्यविस्तरैः ॥ २७ ॥

तिलमुद्गादिवस्तूनि सक्तून् लाजान् क्रमेण तु ।
एकैकशो रक्ततोये क्षिप्त्वा तेन ग्रहेण च ॥ २८ ॥

ग्रस्तं नीराज्य नीराज्य तेन रक्ताम्भसा ततः ।
तद् गृहं रक्ततोयं च नीत्वा न्यस्येत् तु चत्वरे ॥ २९ ॥

तद् गेहमध्ये रक्तोदं न्यस्येद् दिक्षु बलिं हरेत् ।
चरुशेषान्धसा युक्तं भूतक्रूरान्धसा तथा ॥ ३० ॥

ओं नि[1]याकषा यौद्राः सन्तोऽसन्तः सदसन्तो विरूपा विश्वरूपा घोररूपा मृगास्या विहगाननाः पुष्टिकृतोऽपुष्टिकृतः कामदाश्च बलिमिच्छन्ति, तेभ्यो ह्रुतेभ्यः सगणेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमो नमः ।

इत्यनेन बलिं दिक्षु विकिरेत् सर्वशान्तये ।
सर्वग्रहगृहीतानां मोक्षस्त्वेवं भविष्यति ॥ ३१ ॥

वह्निगेहं लिखेद् भूमौ रक्तेन रजसास्य तु ।
कोणेषु बीजमाग्नेय्यां मध्ये तु प्रणवं लिखेत् ॥ ३२ ॥

नवं शरावं तन्मध्ये कपिलाज्यप्रपूरितम् ।
सपद्मसूत्रवर्त्यां तु दीपं प्रज्वाल्य तत् पुनः ॥ ३३ ॥

घटेनाच्छाद्य तत्पृष्ठे यन्त्रं चिन्तामणिं लिखेत् ।
जपापुष्पो न(?) तत्रस्थे ग्रस्ते चिन्तामणिं लिखेत् ॥ ३४ ॥

वैकङ्कतस्य दण्डानि त्रीणि ग्रस्तायतानि तु ।
हस्तस्थूलानि गर्तस्य त्रिकोणेषु निवेश्य तु ॥ ३५ ॥

ग्रस्तं संस्थाप्य तन्मध्ये रक्तस्रग्भिस्तु वेष्टयेत् ।
तेषामुपर्यक्षतरुकारस्करमयं शुभम् ॥ ३६ ॥

प्रासादं तु विनिर्माय तस्योपरि शरावके ।
प्रस्थत्रयाज्यसंपूर्णं दीपानां तु सहस्रकम् ॥ ३७ ॥

प्रज्वाल्य भूतक्रूरेण ग्रस्तं नीराज्य तेन तु ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दशदिक्षु बलिं हरेत् ॥ ३८ ॥

**नमः पूटेभ्यो नमः पूटकृद्भ्यः सर्वेभ्योऽरिष्टकृद्भ्यः सद्भ्योऽसद्भ्यः सदसद्भ्यः सर्वभूतगणेभ्यो नमो नमः ।**

---

1. 'णि' क. पाठः.

अनेन दद्यात् तु बलिं जुहुयादपि चानले ।
जपाकिंशुकपुष्पाभ्यां जपादण्डत्रिकोणके ॥ ३९ ॥
कुण्डे तयोश्च वन्दाकैरपामार्गैः सहस्रशः ।
तद्भस्मना ताडयेच्च ग्रह आविश्य मुञ्चति ॥ ४० ॥
अपामार्गसमिद्भिश्च राजीभिः सर्षपैस्तिलैः ।
हुत्वा ग्रहाणां मोक्षः स्यान्मिश्रितैर्वनदुर्गया ॥ ४१ ॥
भानुवारे तु मध्याह्ने प्राङ्गणे वृत्तमण्डले ।
रक्तपीतनिशाचूर्णैः कृते ज्वालासमावृते ॥ ४२ ॥
दर्भमुष्टिपरिस्तीर्णे शरखड्गपरिस्तृते ।
विध्युक्तवह्नौ विधिना दुर्गामावाह्य चार्चयेत् ॥ ४३ ॥
आज्यं तिलं सर्षपांश्च हुत्वैकैकं शतं शतम् ।
आदित्यसमिधामष्टसहस्रं गव्यसेचितम् ॥ ४४ ॥
ग्रस्तं नीराज्य जुहुयादाज्याद्यैश्चरुणा तथा ।
संरक्तैरन्नपिण्डैस्तु प्रक्षिपेद् दशदिग्बलिम् ॥ ४५ ॥
ग्रस्तं मुक्त्वा ग्रहा यान्ति क्षुद्ररोगादयस्तथा ।
परसैन्यादयश्चान्ये पलायन्ति भयातुराः ॥ ४६ ॥
सितगुञ्जास्तथालब्धा जपिताः सैन्यचाटनाः ।
दुर्गास्थाने निराहारश्चादित्यसमिधां हुतात् ॥ ४७ ॥
जपित्वाम्भसि तत्क्षेपाद् ग्रहः सेना च गच्छति ।

भूराद्या व्याहृतीस्तिस्रः षेश्वस प्रज्वस ज्वासा पासिणी सर्वभूतसंहारिके वरदे जातवेदसि ज्वल हुं फट् ठठ ।

कार्पासबीजैः सिद्धार्थैः खण्डैर्लवण[1]षणैः ॥ ४८ ॥
वकुलारिष्टपत्रैर्वा समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः ।
समिद्भिर्वाज्यसंयुक्तैः पृथग्घोमाद् ग्रहार्तिजित् ॥ ४९ ॥
शेलुस्नुवेण तैलेन हुत्वानेन ग्रहापहः ।
कूश्माण्डाद्भिस्तु पुष्यर्क्षे दार्वी पिष्टा गुळीकृता ॥ ५० ॥

---

१. 'का:' क. पाठः.

छायाशुष्काञ्जिता त्वक्ष्णोः सर्वग्रहनिवारिणी ।
मरीचं सैन्धवं कृष्णा गोपी त्वक् च मधुप्लुतम् ॥ ५१ ॥
तदञ्जनाद् ग्रहाः सर्वे नश्यन्त्याविश्य तत्क्षणात् ।

नमो भगवते रत्नत्रयाय नमश्चण्डवज्रपाणये महासत्त्वसेनापतये नमश्चण्डशृङ्खलाय प्रदीप्ताय प्रज्वलितार्पितदीप्तकेशाय नीलकण्ठाय चिन्तिताय रूपाय(?) लम्बोदराय महाज्ञानवक्त्राय भ्रुकुटिकामाय चतुर्दंष्ट्राय करालाय महाविकृतरूपाय वज्रगर्भाय एह्येहि कायमनुप्रविश्य शिरसि गृह्ण चक्षुषी चालय हरि किं चिरायसि सिद्धदेवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसप्रेतनागपिशाचांस्त्रासय कम्पय समयमनुस्मर हन जह पच मथ विध्वंसय चण्डासिधाराधिपतिराज्ञापयति हुं फट् ठठ ।

चण्डासिधारामन्त्रोऽयं जपाद्यैर्नाशयेद् ग्रहान् ॥ ५२ ॥

ओं नमः खड्गरावणाय विद्महे । चण्डेश्वराय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात् ।

तोये स्थित्वायुतजपात् सिद्धोऽयं ग्रहमोक्षकृत् ।

हृदये पशुपतये नमो भूताधिपतये नमो रुद्राय खड्गरावणाय ललदिना विहर सर नृत्य श्मशानार्पितशरीर घण्टाकपालमालाधराय व्याघ्रचर्मपरिधानाय शशाङ्ककृतशेखराय कृष्णसर्पयज्ञोपवीतिने चेल[3] बिले[4] बिलेकस वल्ग अतिवर्तय कपालिन् हन भूतान् त्रासय मण्डलमध्ये कड्ड रुद्राङ्कुशेन समयं प्रवेशय आवाहय चण्डासिधारापतिरुद्रो ज्ञापयति ठठ ।

खड्गरावणमन्त्रोऽयं सर्वभूतग्रहापहः ॥ ५३ ॥

पूज्यः शिवः पीठपद्मे

ओं पूट भदि[5] ठठ ।

अनेनावाहयेच्च तम् ।

ओं नमः पशुपतये स्वाहा हृदयाय नमः । ओं नमो भूताधिपतये स्वाहा शिरसे स्वाहा । ओं नमो रुद्राय स्वाहा शिखायै वषट् । ओं अलब्धखड्गरावण लल हर सर नृत्य स्फोटय स्वाहा कवचाय हुम् । श्मशानभस्माञ्चितशरीराय घण्टाकपालमालाधराय व्याघ्रचर्मपरिधानाय शशाङ्ककृत-

१. 'भि', २. 'चे'; ३., ४. 'वि', ५. 'ढि' ख. पाठः.

शेखराय कृष्णयज्ञोपवीतिने स्वाहा अस्त्राय फट् । ओं वल किल तस खड्ग अनुवर्तितकपालिन् ! हन भूतान् त्रासय मण्डलमध्ये कट्टु रुद्राङ्कुशेन समयं प्रवेशय आवाहय चण्डासिधाराधिपतिरुद्रो ज्ञापयति स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् ।

खट्वाङ्गशूलडमराङ्कुशखड्गचर्मघण्टाकपालवरदाभयमुण्डहस्तः ।
दक्षादिकं दशभुजो मणिकुण्डलो वः पायात् सपञ्चमुखपञ्चशिरास्त्रिणेत्रः ॥

घण्टाजालविरा[1]विमेखललसद्व्याघ्राजिनात्ताम्बरो
घण्टास्थिस्रगहीन्द्रभूषणधरो नागोपवीतोज्ज्वलः ।
विद्युत्पुञ्जरुचिर्विभूतिधवलो ज्वालाकरालाननो
युष्मान् रक्षतु खड्गरावणशिवश्चन्द्रं कपर्दे दधत् ॥ ५५ ॥

स्नात्वा यथावदाचम्य कृतनित्यस्तु वाग्यतः ॥ ५६ ॥

द्वाराद्यमिष्ट्वोपविष्टः पञ्चशुद्धीर्विधाय तु ।
हस्ते शिरसि देहे च सद्योजाता[2]दिकान् न्यसेत् ॥ ५७ ॥

अङ्गानि च शिवो भूत्वा कृत्वा भस्म त्रियायुषम् ।
इष्ट्वा गणेशं च गुरुमापूर्यार्घ्यं शिवोदितम् ॥ ५८ ॥

आधारशक्त्यनन्तादिधर्माद्यर्कादिमण्डलैः ।
सत्त्वादीनपि वामाद्याः संपूज्य च ततोपरि ॥ ५९ ॥

पुष्पाञ्जलिगतां मूर्तिं खड्गरावणसंज्ञिताम् ।

ओं भूतपतिः स्वाहा ।

अनेनावाह्य हृत्पद्माच्छैवं ज्योतिः खपङ्कजात् ॥ ६० ॥

आनीय बिन्दुं तन्मूर्तौ हृत्पद्मस्थापनादिभिः ।
ह्यष्टोपचारैः संपूज्य परिवारांस्तु पूजयेत् ॥ ६१ ॥

खिंखिणीं चुलकुण्डां च ततो वै कृष्णपिङ्गलाम् ।
टिरिटिल्लां च सौम्यादिदलाग्रेष्वप्रदक्षिणम् ॥ ६२ ॥

ऐशान्यां मत्तवाणीं च चन्द्राङ्कितजटामपि ।
प्रस्खै[3]लिन्या फल्गुनीं च पूजयेत् तु प्रदक्षिणम् ॥ ६३ ॥

---

१. 'ज' क. पाठः. २. 'सि', ३. 'स्फु' ख. पाठः.

ऐन्द्रीं ब्राह्मीं वैष्णवीं च चामुण्डां चैन्द्रदिक्क्रमात् ।
माहेश्वरीं च कौमारीं वाराहीं च विनायकम् ॥ ६४ ॥

ईशादिकोणेष्वथ च लोकेशानायुधानि च ।
मातृः स्वदिक्षु चण्डेशं क्षेत्रेशं च यजेत् क्रमात् ॥ ६५ ॥

ततो मन्त्रं यथाशक्ति जपित्वेशं प्रवाहयेत् ।
चण्डोऽनुग्रहवान् दण्डी बीजं स्यात् खड्गरावणम् ॥ ६६ ॥

दीर्घस्वरैस्तदङ्गानि षडस्त्रान्तानि जातिभिः ।
ह्रस्वैः सद्यादिमूर्तीश्च कल्पयेत् प्राग्वदर्चयेत् ॥ ६७ ॥

चतुःषष्ट्या पदानां तु भद्रं[1] पूर्वोक्तमार्गतः ।
तत्रावाह्य यजेत् प्राग्वद् भूतेशं खड्गरावणम् ॥ ६८ ॥

खड्गाङ्कुशाभयवरप्रदमुग्रदंष्ट्रं हेमाद्रिकूटवपुषं ज्वलदग्निजिह्वम् ।
त्र्यक्षं स्मरेत् कनककुण्डलचित्रहारं घण्टावलीघटितमेखलमूर्ध्वकेशम् ॥ ६९ ॥

खड्गरावणमूर्तेश्च स्वैक्यध्यानजपादिना ।
भूतग्रहादयः सर्वे ग्रस्तं मुक्त्वा प्रयान्ति हि ॥ ७० ॥

शूलिनी वनदुर्गा चाप्यघोरास्त्रं सुदर्शनम् ।
नृसिंहमनवश्चैव मन्त्रराजापराजितौ ॥ ७१ ॥

व्योमव्यापी च तन्त्रेऽस्मिन् पूर्वमेव प्रदर्शिताः ।
तत्तत्कल्पोक्तमार्गेण मन्त्रा एते ग्रहापहाः ॥ ७२ ॥

ओं रष्टिदेहिं चोर्क्कंजिकाध ओंकारीं कात्यायनीं नैर्ऋत्यां कालीं महाकालीं वज्रकालीं यशस्विनीं सुकालीमाग्नेय्यां वायव्यां कालिकां पङ्क्तिशक्तिं शान्ताक्षीमिन्द्राणीं यक्षकौबेरीं माहेश्वरीं वैष्णवीं चामुण्डीं रौद्रीं वाराहीं कौबेरीं याश्चान्या मम समये तिष्ठन्ति तन्नामावर्तयिष्यामि । र्शाग्रं गृह्ण, ओं लल चुलु पूरय धर आनय सुभगे! आविश भगवति! महावज्रगान्धारि! सिद्धचन्द्रवज्रपाणिसंज्ञापयति ह्रीं हः हां हीं हां हुं फट् स्वाहा ।

---

१. 'कं' ख.-पाठः. २. 'त', ३. 'हां हुं क. ग. पाठः.

मन्त्रोऽयं वज्रगान्धारी ऋषिर्दीर्घतमा मतः ।
अतिच्छन्द(?)स्तथा विष्णुदुर्गा चास्याधिदैवतम् ॥ ७३ ॥

शुक्लप्रतिपदारभ्य विष्णुं दुर्गां च पूजयेत् ।
नक्ताशी तु जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ७४ ॥

पुरश्चर्या भवेन्मासाद् दशांशतिलहोमतः ।
गुग्गुलुं दशवारं तु जपित्वा ग्रस्तधूपनात् ॥ ७५ ॥

पिशाचेभ्यो ग्रहेभ्यश्च ज्वरेभ्यश्च विमुच्यते ।
त्रिर्जपित्वा शिखाबन्धात् सर्वा[1] रक्षा कृता भवेत् ॥ ७६ ॥

आत्मनो वान्यस्येति यावत् ।

त्रिवारं लूतिकाः पञ्चजपाद् वृश्चिकजं[2] गरम् ।
सप्तभिर्मूषिकाणां च सर्पाणां नवभिस्तथा ॥ ७७ ॥

एकादशजपात् सर्वविषजातं विनश्यति ।
स्थावराणां पञ्चदशविषं हन्याज्ज्वरानपि ॥ ७८ ॥

अष्टाधिकशतालब्धैः सिद्धार्थैः स्पर्शनेन च ।
तिलान् पुष्पाणि वा दद्याद् यस्मै स स्ववशो[3] भवेत् ॥ ७९ ॥

युद्धं गच्छन् सप्तजपाच्छिखां बद्ध्वा जयेद् रिपून् ।
अश्वत्थपत्रशङ्कुं च निखनेत् क्षेत्ररक्षणे ॥ ८० ॥

तुषैर्हुतैस्तु विद्वेषः स्यादक्षैर्मारणादिकम् ।
त्रिलक्षैरथवाश्वत्थसमिद्भिर्विन्दति श्रियम् ॥ ८१ ॥

सप्तालब्धाञ्जनं वश्यं गन्धाद्यैस्तिलकं तथा ।

ओं,

उमापतिं नमस्कृत्य देवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ ८२ ॥

अथातो महापाशुपतमावर्तयिष्यामि । स्वयं पशुपतिनाम्ना तत् त्र्यम्बकेन महात्मना महाशास्त्रं तं यज्ञमिव योजितमान्त्रमेदोस्थिरुधिरवसासंपूर्णो-

1. 'र्वे' क. पाठः. 2. 'जा', 3. 'स्वं' ख. पाठः,

दरं रुद्रं रौद्रंकारं (?) रुद्रस्यानन्दकरं तिस्रः कोट्योऽर्धकोटीश्च परमन्त्राणां वा संहरणमात्ममन्त्राणां सिद्धिकरमाप्यायनमतिमात्रपदाश्रयमग्निहोत्रपरायणं भस्मचूर्णेन विद्याधराणां नियमनम् अङ्गारचूर्णेन लोहचूर्णेन वा राक्षसानां निपातनं, दैत्यानां नागानां च सादनं, विद्याधराणां त्रासनं महास्त्रमन्त्रविदारणम्। एकपादाय महादंष्ट्राय सहस्रशिरसोदराय सहस्रभुजजिह्वास्याय ब्रह्मनारायणोत्कृष्टतेजाय हुं फट् आकड्ढ । बलदेवं महेश्वरं गरुडं विष्णुं कुमारं ब्रह्माणमिन्द्रं चन्द्रमसमादित्यं यक्षं राक्षसं भूतं प्रेतं पिशाचं कूश्माण्डमग्निं यमं निर्ऋतिं वरुणं वायुं कुबेरं धृतराष्ट्रं विरूपं विरूपाक्षं शङ्कुकर्णं बृहत्कर्णं घण्टाकर्णं द्रोणकर्णं गोकर्णं स्थूलकर्णं नन्दिकेश्वरं भृङ्गिरिटिं नायकं विनायकं पाश्विकं दामकं लोहकं यष्टिदेवीमोङ्कारां कोट्टगिरिकां दुर्गां कात्यायनीं कालीं यशस्विनीं सुकालीं भद्रकालीं चुल्लकालीमाग्नेयीं वायव्यां शालिकावतीं रात्रिं शक्तिं शान्तिं शताक्षीं महाशान्ताक्षीमिन्द्राणीं ब्रह्माणीं कौमारीं महामारीं माहेश्वरीं वैष्णवीं सुभगां चामुण्डीं वाराहीं कौबेरीमैशानीं[3] गुलु मुलु चुलु जुलु मुलु धं हुं फट् । ओं काल फट् । ओं कालरूपाय फट् । ओं कालपाशहस्त! फट् । ओं कालरूप फट् । ओं कलविकरण फट् । ओं बल फट् । ओं बलप्रमथन फट् । ओं विश्वरूप फट् । ओं छिन्द फट् । ओं भिन्द फट् । ओं हन फट् । ओं हनत फट् । ओं घातय फट् । ओं मोहय फट् । ओं उच्चाटय फट् । ओं संहर फट् । ओं संक्षिप फट् । ओं पातय फट् । ओं निपातय फट् । ओं यथा तत्त्वं पशुपतिना समन्वितं तथा निपातय स्वाहा फट् । स्वाहान्तकेन स्वङ्कार हुङ्कार ओं त्सं ओं हिं भक्षय हुं फट् स्वाहा । ओं अं हृदयाय नमः । ओं इं शिरसे स्वाहा । ओं एं शिखायै वषट् । ओं ऐं कवचाय हुम् । ओं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं अः अस्त्राय फट् । ओं । अस्य ध्यानं च —

उद्यत्प्रद्योतविद्युत्ततिहसितजपापुञ्जपिञ्जारुणाङ्गो
रक्ताकल्पो मुखानां दशशतशिरसां चोग्रदंष्ट्रोज्ज्वलानाम् ।
बिभ्रद् दोष्णां सहस्रं प्रतिवदनवमद्वह्निरात्तायुधानां
नागैराभूषितो वः पशुपतिरवताज्जाटजूटाहितेन्दुः ॥ ८२ ॥

---

१. 'द्रं' ख. पाठः. २. 'यणायोत्क', ३. 'न्यां' क. पाठः.

पाठमात्रेण मन्त्रोऽयं दृढभक्तेस्तु सिध्यति ।
कृष्णाष्टम्यादितो नित्यं हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥ ८४ ॥
नित्यमष्टोत्तरशतं जपेत् स्थित्वा नदीजले ।
यावच्चतुर्दशी कृष्णा ततः सिध्यत्ययं मनुः ॥ ८५ ॥
पूजयेद्धृदये वाप्सु प्रासादोक्तविधानतः ।
एकावरणमार्गेण पूजयेत् परमेश्वरम् ॥ ८६ ॥
यथाशक्ति जपन् ध्यायेत् त्रिसन्ध्यं नियतः शुचिः ।
मन्त्रिणो दर्शनादेव पलायन्ति ग्रहादयः ॥ ८७ ॥
त्रिवारजपमात्रेण रोगान् सर्वान् विनाशयेत् ।
स्वैक्यं ध्यानजपाद् ग्रस्तं पश्यन् भूत्वा तु ताडयेत् ॥ ८८ ॥
निर्माल्यैर्धूपनात् सद्यो मुक्त्वा यान्त्यखिलग्रहाः ।
श्रीवासं देवदारुं च मार्जारमलमिश्रितम् ॥ ८९ ॥
प्रियङ्गुकुष्ठगोसर्पिर्वटत्वग्रसपे[2]षितम् ।
साजमूत्रं गुलीकृत्यच्छायाशुष्कं तदञ्जनात् ॥ ९० ॥

सर्वत्र ग्रहमोक्षः ।

इति निगदितमेतन्नैकतन्त्रेषु दृष्टं हितमिति मनुजानां भूतबाधातुराणाम् ।
उपशमनविधानं भीषणानां ग्रहाणां शुचिभिरिह विधेयं मन्त्रिभिः सिद्धमन्त्रैः ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
भूततन्त्रपटलस्त्रिचत्वारिंशः ।

---

### अथ चतुश्चत्वारिंशः पटलः ।

अथोन्मादस्य शमनमपस्मारस्य चोच्यते ।
शतावरी च मधुकं विदारी पिप्पली मधु ॥ १ ॥
खर्जूरशर्करासर्पिः सर्वोन्मादहरं पिबेत् ।
उन्मत्तमूलचूर्णं तु चुक्रतैलान्वितं भुवि ॥ २ ॥

---

१. 'ळं', २. 'वेष्टितम्' ख. पाठः.

सप्ताहं न्यस्तमुद्धृत्य लिप्तमुन्मादशान्तिकृत् ।
मधूकं च कणा यष्टिमूर्द्धाकामुस्तशारिबाः ॥ ३ ॥
कर्पूरचन्दनं सर्पिः स्तन्येक्षुरसशर्कराः ।
पिष्टा नसि कृता हन्युरुन्मादानि नवान्यमी ॥ ४ ॥
कुष्ठहिङ्गुवचायष्टिशिरीषलशुनेन तैः ।
नस्याञ्जनं साजमूत्रैः पानं च भ्रान्तिनाशनम् ॥ ५ ॥
शिवस्कन्दार्यनिर्माल्यनिर्माल्याज्यं च गुग्गुलु ।
वचाजरोमगोपुच्छरोमनिम्बाश्विपुत्रयुक् ॥ ६ ॥
राजीहिङ्गुयुतं धूपास्त्रिसन्ध्यं ग्रहनाशनाः ।
मयूरपित्तगोशृङ्गकुक्कुटाण्डविलालविट् ॥ ७ ॥
वचाजरोमोन्मत्तानि मातुलास्थि कटुत्रयम् ।
राजीनिम्बदलैर्हिङ्गुयुक्तैर्धूपो ग्रहापहः ॥ ८ ॥
गोमूत्रोषणसिन्धूत्थकपित्थशिफया कणा ।
ग्रस्ताक्ष्णोरञ्जनाद्धन्यादुन्मादांश्च ग्रहानपि ॥ ९ ॥
वन्ध्यकार्कोटकीमूलं हिङ्गु च नृजलोक्षितम् ।
शुष्कं गुलीकृतं हन्यादञ्जनाद् सविषग्रहान् ॥ १० ॥
रसोननिम्बपत्राश्वि[1]लेपान्मुञ्चति तद्ग्रहः ।
मातृहाभूतवृक्षाभ्यां नस्यालेपौ ग्रहापहौ ॥ ११ ॥
शिरीषहिङ्गुलशुनमञ्जिष्ठाबकयष्टिभिः ।
वचाकुष्ठगुलीनस्यादञ्जनाच्च ग्रहान् हरेत् ॥ १२ ॥
व्योषहिङ्गुनिशादारुशिरीषलशुनैर्वचा ।
करञ्जबीजमञ्जिष्ठाकदलीमूलकल्कतः ॥ १३ ॥
रम्भाम्भसा च गोमूत्रकथिताज्यं ग्रहापहम् ।

पानादिनेति यावत् ।

ब्रह्मदण्डीं च मुण्डीं च कुमारीमिन्द्रवारुणीम् ॥ १४ ॥
पिष्ट्वा नृमूत्रे नस्येन ग्रहोन्मादविनाशनम् ।

---

1. 'बि' ख. पाठः.

भार्गीलवणकुष्ठानि वृश्चिकाली च पिप्पली ॥ १५ ॥
चूर्णीकृतान्यपस्मारं हन्ति नस्यप्रयोगतः ।
पुष्याहृतं शुनः पित्तं हन्त्यपस्मारमञ्जितम् ॥ १६ ॥
तेन गोघृतयुक्तेन धूपोऽपस्मारनाशनः ।
शुना वैभीतफलके खादितास्तत्तिलाः पुनः ॥ १७ ॥
याताः शकृत्त्वं तत्तैलं नस्याद्धन्यादपस्मृतिम् ।
वृकविड्रसनस्यं च धूपं चापस्मृतिं हरेत् ॥ १८ ॥
वृकभक्षितमांसास्थि पाननस्याच्च तद्धरेत् ।
भूनिम्बामृतपूतीका निर्यासो वनशिग्रुजः ॥ १९ ॥
वन्ध्यकार्कोटकीव्योषां (?) कोलक्वाथं पिबेद् यदि ।
दिनत्रयं वा सप्ताहमपस्मारग्रहापहः ॥ २० ॥
वचाश्वगन्धाकुष्ठानि निशे द्वे शङ्खपुष्पिका ।
कटूनि धात्री सिन्धूत्थं कल्कमेषां तु नित्यशः ॥ २१ ॥
एषां पृथक्पलक्वाथः प्रस्थद्वयमितो भवेत् ।
ब्राह्मीरसस्य प्रस्थे द्वे घृतप्रस्थे तु पाचयेत् ॥ २२ ॥
तत्पानाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादांश्च ग्रहानपि ।

प्रत्येकं कुडुबं तु यष्टिमधुकं हिङ्गोश्च सिन्धोः पृथग्
विंशत्या कुडुबैर्गजेन्द्रसलिलं पञ्चांशकं गोघृतम् ।
कूश्माण्डस्य रसो भवेद् द्विगुणितो मूत्राज्ययोः पाचितं
तत् पीतं च घृतं तथा नसिकृतं हन्यादपस्मारकान् ॥ २३ ॥

शतफलकशङ्खकुसुमे द्रोणद्वयवारियोजिते क्वथिते ।
तैलाज्यकुडुबषट्के सिद्धं पीतं जयेदपस्मारम् ॥ २४[1] ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
अपस्मारोन्मादपटलश्चतुश्चत्वारिंशः ।

---

1. 'षर्भं क्षि' ख. पाठः.

## अथ पञ्चचत्वारिंशः पटलः।

अथामयानां भैषज्यं लिख्यते पूर्वसंस्कृतम् ।
नक्षत्रतिथिवारेषु दुष्टादुष्टेषु या रुजः ॥ १ ॥

साध्यासाध्यास्तु विज्ञेया भिषग्भिर्वाथ मन्त्रिभिः।

सर्पेन्द्रवायुयमरुद्रशतोडुपूर्वा भौमासितार्कदिनविघ्नगुहा नवम्या ।
नक्षत्रवारातिथयः कथिता निषिद्धा रोगोद्भवे फलति नैषु चिकित्सिताद्यम् ॥

कृत्तिकायां रुजोत्पत्तौ पञ्चरात्रावधिर्भवेत् ॥ ३ ॥
तद्देवतामिदं ध्यन्नं तस्मै तन्मन्त्रतः क्षिपेत् ।
तत्तन्नक्षत्रदेवाय बलिद्रव्यैर्यथोदितैः ॥ ४ ॥
ताराद्येन स्वनाम्ना तु नमोन्तं प्रक्षिपेद् बलिम् ।
रोहिण्यामपि पञ्चाहाद् व्याधेर्मोक्षः प्रजापतिः ॥ ५ ॥

देवतास्मै प्रदातव्यो गन्धमाल्यौदनैर्बलिः ।
मृगशीर्षे तथा व्याधिरष्टरात्रं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

सोमाय मुद्गमाषाभ्यामन्नेन च बलिं हरेत् ।
आर्द्रायां दशरात्रं तु रुद्रार्थे पायसं बलिः ॥ ७ ॥

पुनर्वसावष्टरात्रं व्याधिस्तद्देवतादितिः ।
पयोन्नं रक्तगन्धस्रगाज्ययुक्तं बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

पुष्ये पञ्चदिनं व्याधिर्देवतास्य बृहस्पतिः ।
गन्धमाल्यैश्च गन्धान्नं बलिं तस्मै तु निक्षिपेत् ॥ ९ ॥

आश्लेषा सर्पदेवत्या तस्यां व्याधिस्तु मृत्युदः ।
तथापि होमदानाद्यैर्भिक्षान्नेन(?) बलिं हरेत् ॥ १० ॥
मघा पित्र्याष्टरात्रं तु तिलमिश्रान्नतो बलिः ।
पूर्वायास्त्वर्यमा दैवं गन्धमाल्यान्नतो बलिः ॥ ११ ॥
सप्ताहमुत्तरे व्याधिर्बलिः प्राग्वद् भगाय तु ।
हस्ते सवितृदेवत्ये सप्ताहाद् वा त्रिसप्तभिः ॥ १२ ॥
व्याधेर्मोक्षो हविष्यान्नं गन्धमाल्ययुतं बलिः ।
चित्रा तु त्वष्टृदेवत्या साज्यान्नैः षड्दिनं बलिः ॥ १३ ।
पञ्चपञ्चदिनैः स्वातौ व्याधिमोक्षोऽथ वा मृतिः ।
शुक्लान्नगन्धमाल्यैस्तु वायवे प्रक्षिपेद् बलिम् ॥ १४ ॥

विशाखासूनविंशत्या त्विन्द्राग्न्योः पूर्ववद् बलिः ।
मैत्रे पक्षाद् घृतान्नाद्यं बलिः स्याद् रोगमुक्तये ॥ १५ ॥
ज्येष्ठायामर्धमासाद् वा मोक्षः प्रायेण वा मृतिः ।
दानाद्यैस्तु हविष्यान्नं बलिमिन्द्राय दापयेत् ॥ १६ ॥
मूलायां वा नवाहोभिः प्राग्वन्निर्ऋतये बलिः ।
पूर्वाषाढेऽष्टदिवसैर्मासैर्मोक्षोऽथ वा मृतिः ॥ १७ ॥
आपो वै देवतास्ताभ्यो धानाद्यैः कृसरं बलिः ।
वैश्वदेवे सप्तरात्रान्मोक्षः स्यात् पायसं बलिः ॥ १८ ॥
वैष्णवे वत्सरान्मोक्षो गन्धमाल्यान्नतो बलिः ।
मासांस्त्रयोदश व्याधिर्धनिष्ठासु न मुञ्चति ॥ १९ ॥
वसुभ्यो देवताभ्यस्तु घृतमुद्गौदनैर्बलिः ।
शतभे पक्षतो मोक्षो मृतिर्वा दानहोमतः ॥ २० ॥
देवतेज्यां जलेशाय बलिं दद्यात् तु पायसम् ।
पूर्वभाद्रपदे मोक्षो नास्ति दैवमजैकपात् ॥ २१ ॥
दानाद्यैर्धातकीपुष्पै रक्तान्नेन बलिं हरेत् ।
अष्टाविंशत्यहोरात्रैरुत्तराभाद्रभे रुजाः ॥ २२ ॥
मोक्षस्तु गन्धमाल्यान्नैः स्यादहिर्बुध्नये बलिः ।
मासान्मोक्षस्तु रेवत्यां पूष्णे गन्धादिभिर्बलिः ॥ २३ ॥
अश्विन्यां पञ्चविंशाहादश्विन्योर्बलिरोदनम् ।
भरणी यमदेवत्या तस्यां जीवति वा नवा ॥ २४ ॥
तथापि होमदानाद्यैर्गन्धान्नाद्यैर्बलिं हरेत् ।
अनिष्टवारनक्षत्रतिथियोगो मृतिप्रदः ॥ २५ ॥
अभीष्टवारतिथिभिरिष्टभे विरुजोद्गमः ।
देवद्विजेज्याहोमाद्यैर्जीवेन्मन्त्रजपादिभिः ॥ २६ ॥
ज्वरभेदास्त्वष्टभिदा वातात् पित्तात् कफादपि ।
सन्निपाताद् वातपित्ताद् वातश्लेष्मविमिश्रणात् ॥ २७ ॥

---

१. 'भ्यो' ख. पाठः.

श्लेष्मपित्ताद्यभिघातादित्युक्तोऽष्टविधो ज्वरः ।
जृम्भिकाशीतकम्पाश्च कटचूर्वादिशिरोरुजा ॥ २८ ॥
तिक्तास्यता तृषा कासो नेत्राश्रूणि च वातिके ।
दाहमूर्छाप्रलापाश्च छर्द्यतीसारकभ्रमाः ॥ २९ ॥
अतिदाहो ज्वरस्तृष्णा पैत्तिकज्वरलक्षणम् ।
शीतोद्गमश्च विष्टम्भः स्तैमित्यं मधुरास्यता ॥ ३० ॥
हृल्लासमोहौ शीतं च कफज्वरगुणास्त्वमी ।
असङ्गतप्रलापित्वं तृण्मूर्छाकूजनभ्रमाः ॥ ३१ ॥
पित्तास्रवमनं जिह्वाकार्कश्यं सान्निपातिके ।
शिरोरुग्वमनं दाहो मोहः कण्ठस्य शुष्कता ॥ ३२ ॥
जृम्भरोमाञ्चतोदाश्च सन्धीनां वातपित्तजे ।
कासपीनसविड्बन्धा भ्रमसन्धिशिरोरुजाः ॥ ३३ ॥
वमनं श्लेष्मणो जाड्यं लिङ्गानि श्लेष्मवातजे ।
स्तम्भोऽङ्गानां तथा स्वेदो वमनं श्लेष्मपित्तयोः ॥ ३४ ॥
तिक्तास्यता च लिङ्गानि कफपित्तज्वरस्य वै ।
अर्थपुत्रादिनाशाद् वा मन्त्रदेवादिशापतः ॥ ३५ ॥
अजीर्णादथवा क्षुद्रादभिघातज्वरो भवेत् ।
स एव वातसंश्लेषादन्यो वा विषमज्वरः ॥ ३६ ॥
स सर्वदा वा रात्रौ वा दिवा वा विषमज्वरः ।
कालातिपातेनार्वाग् वा नियमो नास्य विद्यते ॥ ३७ ॥
एकाहो नित्यनियमाद् द्वैहिको नियमान्तरः ।
दिनद्वयमतीत्यायं ज्वरश्चातुर्थिको(?) मतः ॥ ३८ ॥
विषमज्वर एवैभिर्नामभिः पृथगीरितः ।
वातिकाद्याश्चिकित्साभिर्दानैर्देवद्विजार्चनात् ॥ ३९ ॥
मन्त्रयन्त्रजपैर्होमैर्गच्छन्ति विषमज्वराः ।
शीतज्वरा वैष्णवाः स्युरुष्णा माहेश्वरज्वराः ॥ ४० ॥

१. 'क्ल', २. 'बिद्धीनां' ख. पाठः.

तेषामादौ तु रोगाणां दानैर्मन्त्रैस्तथा हुतैः ।
बलिभिर्देवतेज्याभिः प्रतीकारो विधीयते ॥ ४१ ॥

उग्रं त्रिणेत्रं भसितावदातं भस्मायुधं वामवरप्रदानम् ।
आताम्रमाल्यादिकमेकदंष्ट्रं ध्यायेज्ज्वरं पिङ्गजटाकिरीटम् ॥ ४२ ॥

ओं लर्वज्वषपूटाश नमः ।

अस्याङ्गानि स्वयं पञ्च देवता च ज्वरः स्वयम् ।
पङ्क्तिश्छन्दो मुनिर्व्यासः कुर्याच्चानेन तर्पणम् ॥ ४३ ॥

ओं ज्वरं तर्पयामि । ओं शीतज्वरं तर्पयामि । ओं वातज्वरं तर्पयामि । ओं पित्तज्वरं तर्पयामि । ओं श्लेष्मज्वरं तर्पयामि । ओं सान्निपातज्वरं तर्पयामि । ओं शिरोरोगज्वरं तर्पयामि । ओं महाज्वरं तर्पयामि । ओं सर्वज्वरं तर्पयामि । ओं सर्वज्वरपार्षदांस्तर्पयामि ।

इक्षुमूले पद्मपीठे ध्यात्वा सन्तं ज्वरं विभुम् ।
लाजसक्तुविमिश्राद्भिः सन्ध्यात्रिषु तर्पयेत् ॥ ४४ ॥

क्षिप्त्वा शूलबलिं चैव तर्पणाम्भश्च पात्रगम् ।
आम्रमूले तु विसृजेत् त्रिदिनज्वरशान्तये ॥ ४५ ॥

ओं हृदयान्ते भगवते त्रियूसाशां प्रतिहताय हुं फट् खे क्ष । पिशाचमध्या विश हुं फट् ठठ ।

प्रस्थान्नपिण्डं कांस्ये तु निधायाज्यदधिप्लुतम् ।
तस्मिन् मन्त्रेण शूलाद्यैमावाह्येष्ट्वा शतं जपेत् ॥ ४६ ॥

दीपिकात्रितयं पिण्डे शूलाकारं तु विन्यसेत् ।
तेन नीराजयेत् साध्यं रोगक्षुद्रग्रहापहम् ॥ ४७ ॥

शूलबलिप्रसङ्गेन कपालबलिश्च कथ्यते ।

नवं शरावमापूर्य रक्तोदेनाढकोचितम् ।
तन्मध्ये पिष्टजे दीपे ज्वालयेद् द्वादशाङ्गुले ॥ ४८ ॥

---

१. 'मनः', २. 'गं त' क. पाठः. ३. 'षु' ख. पाठः. ४. 'म्रमूले ध्या' ग. पाठः. ५. 'यूशां' क. पाठः. ६. 'हुं खे' क. ख. पाठः. ७. 'हया' क. पाठः.

ध्यात्वा कपालं तं चेष्ट्वा जपित्वाष्टशतं मनुम् ।

ओं

हृद् ब्रह्मा पार्श्वभूबीजो दीर्घो वायुर्विषं च हा ॥ ४९ ॥

मुद्रा य प्रेक्ष पालय हुं फट् ठठ ।

अनेन साध्यं नीराज्य स्थापयेत् तच्चतुष्पथे ।

कुबेराद्येन मन्त्रेण प्रोक्ताङ्गैः क्षीरसेचितैः ॥ ५० ॥

आम्रपर्णैर्दशशतैर्जुहुयाज्ज्वरशान्तये ।

ओं

कुबेरं ते मुखं रुद्रं नन्दीमानन्दिमावह ॥ ५१ ॥

ज्वरं मृत्युं भयं घोरं ज्वरं नाशयते ज्वरम् ।

ओं स्वाहा । कुबेरादिमन्त्रः ।

इक्षोर्मूले श्वेतपद्मे निविष्टः पद्मं बिभ्रच्छूलटङ्कौ कपालम् ।
शुक्लाकल्पः स त्रिणेत्रः कृशाङ्गो भूतिश्वेतः सत्कपर्दो ज्वरः स्यात् ॥ ५२ ॥

एवंविधं महेश्वरज्वरं ध्यात्वेष्ट्वामुं मन्त्रं जपेत् । तारं च हृद्भगवते शुद्राश रुद्रज्वैर कृतान्तरूपाय ह्रां ह्रीं हूं फट् ।

रुद्रोऽस्य देवताङ्गानि स्वार्णैर्जातिविभाजितैः ॥ ५३ ॥

शुद्धो निशि जपेल्लक्षं ज्वरं ध्यात्वा तु सिध्यति ।

साध्यं क्षीरार्णवे पद्मे चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥ ५४ ॥

अन्वारभ्य जपेद् ध्यात्वा ज्वरमोक्षो भविष्यति ।

ओं भस्मा(शुंडाश ? युधाय) विद्महे । एकदंष्ट्राय धीमहे । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् । इयं ज्वरगायत्री ।

अनया जपितं भस्म विकिरेज्ज्वरशान्तये ॥ ५५ ॥

नमो षरलत्र शाशं हृदयमावर्तयिष्यामि । भो भो ज्वर श्रृणु हन गर्द छर्द सर्वज्वर चट वज्रपाणिराज्ञापयति । शिरो मुञ्च कण्ठं मुञ्च उरो मुञ्च हृदयं मुञ्च उदरं मुञ्च कटिं मुञ्च जङ्घे मुञ्च पादौ मुञ्च चण्डपाणिराज्ञापयति हुं फट् ठठ ।

---

१. 'र' ग. पाठः. २. 'ज' क. ख. पाठः. ३. 'रः' ग. पाठः. ४. 'मा' ख. पाठः. ५. 'श्व', ६. 'शु', ७. 'प' ग. पाठः. ८. 'ञ्च उ' ख. पाठः. ९. 'ञ्च च' क. पाठः.

बुद्धाधिदैवतो मन्त्रो ह्यस्य प्रकृतिजापतः ।
पृथग् गुल्गुलुदाहेन ज्वरो नश्यति धूपतः ॥ ५६ ॥

वृत्ते स्वरावृते कुम्भो भूगृहे ज्वरहा धृतः ।

साध्यनामयुक्तः ।

योऽसौ सरस्वतीतीरे अपुत्रो ब्राह्मणो मृतः ॥ ५७ ॥

तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चेदैकाहिको ज्वरः ।
प्रातरञ्जलिनानेन सकुशेन तिलोदकैः ॥ ५८ ॥

सरक्तपुष्पं सन्तर्प्य निर्यात्यैकाहिको ज्वरः ।
सप्तकर्कटवेश्मोत्थमृदा शौचावशिष्टया ॥ ५९ ॥

कुर्यात् त्रिवासरं पुण्ड्रमेकान्तरविनाशनम् ।
प्राचीना वसुरेखाः स्युः षड्रेखाश्चाप्युदङ्मुखाः ॥ ६० ॥

बाह्यविंशतिकोष्ठेऽन्त्यराजिष्वन्तर्भुवोऽक्षरम् ।
साध्यनामावशिष्टेषु रेखाग्रेषु त्रिशूलयुक् ॥ ६१ ॥

यन्त्रं लिखित्वा संपूज्य पञ्चवर्णौदनैर्बलिम् ।
बध्येच्चातुर्थिकश्चैव ज्वराभासश्च नश्यति ॥ ६२ ॥

ताराग्नियुक्तं पार्श्वभ्रूमध्यहृन्नाभिसन्धिषु ।
विन्यस्य साध्यं शार्दूलं स्मृत्वा स्पृष्ट्वा च तत्त्वचः ॥ ६

त्रिष्कृत्वस्तु हरेच्छुक्रमवर्माङ्गं च तं स्मरेत् ।
ज्वरागमनवारेषु चातुर्थ्यज्वरशान्तये ॥ ६४ ॥

दक्षिणोदङ्मुखं लेख्यं षट्कोणं मध्यतारकम् ।
तारस्य पार्श्वयोर्मांसं कोणेष्वग्निं च तद्बहिः ॥ ६५ ॥

कोणसन्धिष्वङ्कुशान् षड् लिखित्वाभ्यर्च्य तारकम् ।
पाशाङ्कुशौ च प्रजपेत् सर्वज्वरहरं धृतम् ॥ ६६ ॥

हृदयान्ते भगवते षुद्राशबन्ध ज्वर हुं फट् ठठ ।

अनेन सप्तकृत्वस्तु शिखाबन्धाज्ज्वरक्षयः ।

ज्वरो बद्धो भवति ।

---

१. 'षु' ग. पाठः.

तिन्त्रिणीवेष्टितं चूडाफलं शिरसि धारयेत् ॥ ६७ ॥
चातुर्थिकं हरेन्नो चेद् भृङ्गगुञ्जाभ्रकैः समैः ।
सतैलं धूपयेद् वस्त्रच्छन्नं नश्यति स ज्वरः ॥ ६८ ॥
तक्रे घृते वा पिबतु वन्दाकं बिल्वसंभवम् ।
विषमज्वरनाशाय दानादीनपि कारयेत् ॥ ६९ ॥
प्राचीनोदीच्यरेखाभिर्नवभिर्विषकोष्ठके ।
रेखाग्रतत्त्वशूले तु कोष्ठेषु वृतिषु क्षितौ ॥ ७० ॥
हारनीरप्रियाभानुसङ्ख्येषु क्रमशो लिखेत् ।
वाय्वाद्यर्णान् कृष्णरक्तपीतशुक्लान् सबिन्दुकान् ॥ ७१ ॥
इष्ट्वा जपित्वा तस्मिंस्तु शयीत ज्वरशान्तये ।
आख्याविदर्भं खं कुम्भे लिखेन्मध्ये तु तद्बलिः ॥ ७२ ॥
सार्काशाष्टदलाम्भोजं बाह्ये त्रिंशद्दलाम्बुजम् ।
काद्यैः शान्ताक्षरैर्युक्तं तद्बाह्ये जलमण्डलम् ॥ ७३ ॥
यन्त्रं सञ्जीवनमिदं सर्वरक्षोज्वरापहम् ।
मृत्युञ्जयपुटस्थं स्यान्नामजीवविदर्भितम् ॥ ७४ ॥
अन्त्यावृतं ततो वृत्तमाच्छाद्याष्टदलेष्वपि ।
मृत्युञ्जयपुटं बाह्ये षोडशच्छदनाम्बुजे ॥ ७५ ॥
मृत्युञ्जयपुटेष्वाख्या बाह्येऽब्जं रार्गपत्रकम् ।
काद्याः सदलगाः सान्ता बहिः शक्त्या वृतं तमः ॥ ७६ ॥
माबीजेन त्रिधावेष्ट्य यन्त्रं मृत्युञ्जयाह्वयम् ।
विश्वरोगग्रहार्तीनां शमनं शिरसा धृतम् ॥ ७७ ॥
चतुरश्रस्य कोणेषु तारं शक्तिश्च मध्यगा ।
शक्तौ नाम च तद् यन्त्रं ज्वराभासविनाशनम् ॥ ७८ ॥
शक्तौ नाम लिखेद् बाह्ये वसुपत्राम्बुजस्य तु ।
केसरेषु स्वरान् कादिवर्गान् सप्तदलेष्वपि ॥ ७९ ॥

---

१. 'न', २. 'रा', ३. 'स्य', ४. 'ज' ५. 'मं' ख. पाठः.

अष्टमेऽन्त्यद्वयं बाह्ये त्रिधा पाशेन वेष्टयेत् ।
अङ्कुशेन निरुध्येदं यन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ॥ ८० ॥

ज्वरेष्वासप्तमादह्नो न चिकित्सा विधीयते ।
यावद्बलं तूपवसेन्निषिद्धौ गोरसौदनौ ॥ ८१ ॥

पेयां निरन्नां पिबतु विश्वापर्पटसाधिताम् ।
श्रेष्ठः पञ्चशिफाक्काथः पाचनीयो मरुज्ज्वरे ॥ ८२ ॥

अमृतापिप्पलीमूलशुण्ठीक्काथस्तु पैत्तिके ।
बृहत्यौ वर्तियुग्मं च शुण्ठीभूनिम्बगोक्षुरैः ॥ ८३ ॥

कफज्वरे कषायस्तु पातव्यः पिप्पलीयुतः ।
छिन्नागोक्षुरमुस्ताभिर्बृहत्यौ कण्टकारिका ॥ ८४ ॥

विश्वार्द्रीबेरकट्फलापर्प्पटक्काथपानतः ।
वातज्वरः साङ्गकम्पः सद्य एव व्यपोहति ॥ ८५ ॥

बिल्वादिपञ्चविश्वाभिर्विश्वाच्छिन्नाब्ददुःस्पृशाः ।
प्रशस्तौ वातिके क्काथौ कम्पाङ्गव्यथने ज्वरे ॥ ८६ ॥

छिन्नाविश्वापञ्चमूलपिप्पलीमूलकैः शृतम् ।
सर्वाङ्गसन्ध्यस्थिशिरस्तोदे वातज्वरे पिबेत् ॥ ८७ ॥

कुस्तुम्बुरुद्विभागाभ्यां भागं विश्वाशृतं जलम् ।
दाहमोहौ त्रिदोषोत्थान् पीतं हन्याज्ज्वरान् क्षणात् ॥ ८८ ॥

मुस्तापर्पटदुःस्पर्शापाठोशीराम्बुभिः शृतः ।
पित्तज्वरापहो योगः किञ्चिच्छर्करया युतः ॥ ८९ ॥

तिक्तां सशर्करां तोये पिबेत् पित्तज्वरापहाम् ।
विश्वोशीरगुळूच्यम्बुपाठादुःस्पर्शधान्यकैः ॥ ९० ॥

क्काथः पित्तज्वरे पेयो भ्रमतृष्णाविघातनुत् ।
कुस्तुम्बुरुर्देवदारुर्नागरं बृहतीद्वयम् ॥ ९१ ॥

कथितं पाचकं पेयं प्रथमज्वरनाशनम् ।
वाशाविश्वाब्दमरिचैः क्काथः श्लेष्मज्वरापहः

१. 'तम्' ख. पाठः.

विलङ्गविश्वाबिल्वाब्दसुरदारुश्रृतं तु वा ।

किञ्चिन्मधूत्तरमिति यावत् ।

निशाब्दस्त्रिफला तिक्ता पटोलीपिचुमन्दकौ ॥ ९३ ॥
देवदारुः कण्टकारीपिप्पलीमूलकैः श्रृतः ।
डुण्डुकद्वयसंयुक्तः सन्निपातज्वरापहः ॥ ९४ ॥
तिक्ताश्लेष्माब्दमरिचभूनिम्बारिष्टवत्सकैः ।
छिन्नापटोलपाठाभिः क्वाथः सर्वज्वरापहः ॥ ९५ ॥
श्वासातुरो निपतितो नातिशीतोष्णवान् ज्वरी ।
भ्रान्तदृष्टिः प्रलापी चाप्यभिन्यासातुरो नरः ॥ ९६ ॥
सिन्धूत्थहस्तिपिप्पल्यौ मधुकास्थिवचोषणैः ।
पाननस्याञ्जनैर्हन्यादभिन्यासं तु सन्ध्ययोः ॥ ९७ ॥
व्याघ्रीमृणालभूनिम्बभोर्गीदुःस्पर्शसाधितः ।
कषायो हन्त्यभिन्यासं व्योषोग्राभार्गिकैः श्रृतः ॥ ९८ ॥
धात्रीकुस्तुम्बुरुच्छिन्नाचन्दनैः क्वथितं जलम् ।
सिताक्षौद्रयुतं पेयं कफवातज्वरापहम् ॥ ९९ ॥

हिक्काश्वासकासगलग्रहशोषप्रमोहांश्च हरति ।

छिन्नापथ्यानागरांशैस्त्रिद्व्येकैस्तु श्रृतं जलम् ।
सगुलं वायुसङ्गं च ज्वराजीर्णे च नाशयेत् ॥ १०० ॥
छिन्नापटोलत्रिफलाघनैर्निम्बशलाकया ।
धान्याकैश्च समैः क्वाथः सर्वज्वरविनाशनः ॥ १०१ ॥
वाशा देवद्रुमो धात्री पथ्यावर्ती च नागरम् ।
सितामधुयुतः क्वाथो ज्वरं चातुर्थिकं हरेत् ॥ १०२ ॥
गुले वदरमात्रे तु क्षिप्त्वैकं मक्कुणं ग्रसेत् ।
ज्वरश्चातुर्थिकश्चापि द्व्याहिकश्च विनश्यति ॥ १०३ ॥

---

१. 'भान्तदृ' ख. पाठः. २. 'भ' क. पाठः.

सहदेवां वचोपेतां धूपयेद् विषमज्वरे ।
कपिलाज्यसहाधूपान्नाशयेद् विषमज्वरम् ॥ १०४ ॥
छिन्नानिदिग्धिकाविश्वाक्काथं कृष्णान्वितं पिबेत् ।
पीनसार्दितकश्वासारुच्यजीर्णज्वरान् हरेत् ॥ १०५ ॥
छिन्नाकषाये तत्कल्के सिद्धमाज्यं ज्वरं जयेत् ।
भूबिम्बस्य त्रिभिर्भागै रेखे प्रागुत्तरायते ॥ १०६ ॥
मध्ये पञ्चदलाब्जेऽन्त्ये नामयुक्ताक्षिबाह्यतः ।
बिम्बाद् बहिश्चतुर्दिक्षु श्रीकण्ठं चान्तराश्रिषु ॥ १०७ ॥
साक्षमन्त्यं चितामष्या लिखित्वार्कैस्तदर्चयेत् ।
बलिं च दत्त्वा सन्ध्यायां कलयेच्छ्वासशान्तये ॥ १०८ ॥

[1] किन्नरकिंपुरुषगरुडगन्धर्वयक्षराक्षसनिःश्वासोपद्रवं हर पितृपिशाचाय ठठ ।

भूगृहावस्थवज्रस्य मध्ये नाम लिखेन्मनुम् ।
वज्रस्य परितोऽभ्यर्च्य घृतं श्वासविनाशनम् ॥ १०९ ॥
भुक्तोच्छिष्टान्नममुना दद्याच्छ्वासहृदश्नतः ।
कृष्णारम्भाफलं मूत्रे गवां संश्रुत्य भक्षयेत् ॥ ११० ॥
श्वासवान् भार्गिकां यष्टिं क्षौद्रे लीढ्वा तु तं हरेत् ।
कुसुमं सातपर्णं तु मस्तुना श्वासहृत् पिबेत् ॥ १११ ॥

बदरफलमात्रमेव ।

विश्वापथ्याब्दचूर्णं तु गुलेन गुलकीकृतम् ।
धारयेद् वदने तीक्ष्णकासश्वासहरं परम् ॥ ११२ ॥
विश्वाकृष्णानिशाव्योषचूर्णं तैले गुलान्वितम् ।
प्रातः प्रातर्लिहेत् सद्यः कासश्वासहरम् ॥ ११३ ॥
विश्वैलागैरिकाव्योषचूर्णं मध्वाज्यमिश्रितम् ।
लिहेच्छ्वासहरं प्रातः पटस्य बचनं यथा ॥ ११४ ॥
कृष्णा पथ्या शृङ्गिबेरराजा कर्कटशृङ्गिका ।
साञ्जना मधुना लीढाः पञ्चहिक्काहराः स्मृताः ॥ ११५ ॥

---

१. 'काङ्गिका' ख. पाठः.

हिङ्गु कर्कटशृङ्गयेला गैरिक मरिचं मधु ।
श्वासहिक्काहरं लेह्यान्मलयेन्द्रवचो यथा ॥ ११६ ॥

मध्वाज्ये शाल्मलं भस्म हिक्काश्वासविनाशनम् ।

शल्मलीकण्टकस्य भस्म ।

कृष्णा विश्वा सिता धात्री पिञ्छभूतिर्मधुप्लुता ॥ ११७ ॥

हिक्कां हरति कृष्णाब्दखर्जूरं मधुना तथा ।

वै वेदिषु बन्ध हा त शभातश निरुद्ध पूर्णमणि ठठ ।

कण्ठे भूमण्डलं स्मृत्वा तेन तोयं जपन् पिबेत् ॥ ११८ ॥

छर्दिं हरति ।

उत्पलं चन्दनं लोध्रं केसरं मधुकं मधु ।
पित्तच्छर्दिहरं लीढमथ त्रिकटु सैन्धवम् ॥ ११९ ॥

सूक्ष्मैला त्रिफला क्षौद्रे श्लेष्मच्छर्दिहराः स्मृताः ।
चातुर्जाते च पिप्पल्यश्चाश्वलण्डरसो मधु ॥ १२० ॥

लाजासितायुतं लेह्यं सर्वच्छर्दिविनाशनम् ।
शुण्ठीफलत्रयं लाजा लोध्राङ्कोलाञ्जनत्वचः ॥ १२१ ॥

छर्दिघ्ना मधुना लीढाः पृथक् पादोदितास्तु वा(?) ।

चाफसे ब्रह्मण्येलत्यहाडिणि न भविष्यसि । देवि ते विरूपे अवतर काम्रं कामिष्ठ फु ठठ ।

अनेन मन्त्रिताम्भोभिः स्नानपानानि कामिलाः ॥ १२२ ॥

मण्डूकपर्णीस्वरसं धात्रीरात्रिमधुप्लुतम् ।
धारोष्णपयसा पीतं नाशयेत् पञ्च कामिलाः ॥ १२३ ॥

महिषीमलतोयेन समानं महिषीदधि ।
किञ्चिद् यवानीचूर्णं तु शमयेत् पञ्च कामिलाः॥ १२४ ॥

विशेषेण कुम्भकामिलाम् ।

प्रातर्नागबलातोयं महिषीतक्रमिश्रितम् ।
मथित्वा तद्घनं त्यक्त्वा पीतं तत् कामिलां हरेत् ॥ १२५ ॥

---

१. 'तः' ख. पाठः. २. 'जलं पि' क. पाठः. ३. 'क्कादो' ग. पाठः.

रक्तापामार्गशिफया तक्रे नागबलां पिबेत् ।
शृङ्गाम्भसा शिरोऽभ्यज्य जिघ्रेच्चाप्यज्झटां सदा ॥ १२६ ॥

कामिला गच्छति

छिन्नामधूकत्रिफलानिम्बैः क्वाथं मधुप्लुतम् ।
पीतं तत्कामिलां हन्यादनम्ललवणाशनात् ॥ १२७ ॥
लवणाम्लं च घर्मोष्णं वर्जयेत् कामिलातुरः ।
शिलाजतु पशोर्मूत्रैः कुम्भकामिलकाहरम् ॥ १२८ ॥
यदा चिकित्सा न कृता कामिला पाण्डुरोगताम् ।
प्रयाति तत्प्रतीकारः किञ्चिदत्र प्रदर्श्यते ॥ १२९ ॥
तिक्ता फलत्रयं वाशा छिन्ना भूनिम्बनिम्बयुक् ।
क्वाथो मधुप्लुतो हन्ति पाण्डुरोगं च कामिलाम् ॥ १३० ॥
विश्वादीप्यकसिन्धूत्थभृङ्गपथ्याश्च चित्रकम् ।
भूकदम्बं च तक्रेण पाययेत् पाण्डुरोगहृत् ॥ १३१ ॥
पुनर्नवशिफापथ्याभृङ्गनागरदीप्यकाः ।
बलातिबलचित्रं च बदरी चन्दनं समाः ॥ १३२ ॥
तैर्भावितं समं किट्टमायसं मथिते पिबेत् ।
अनम्ललवणं प्राश्नन् पञ्च पाण्डुगदान् हरेत् ॥ १३३ ॥
विश्वाबलाभृङ्गतिलचित्रकिट्टानि वा पिबेत् ।
भृङ्गाणि तिलतक्राणि पिबेद् वा पाण्डुरोगजित् ॥ १३४ ॥
बन्धूकवाशाछिन्नानां कषायो मधुना जयेत् ।
रक्तपित्तं समधु वा छिन्नया साधितं जलम् ॥ १३५ ॥
समूलमुत्पलं द्राक्षा कदली पद्मकेसरम् ।
वटप्ररोहशुङ्गानि काश्मरीसारयष्टयः ॥ १३६ ॥
एतेषां समभागानां क्वाथं समधुशर्करम् ।
निद्रोत्थितः पिबेत् काल्यं रक्तपित्तं विनश्यति ॥ १३७ ॥

प्रमेहश्च ।

प्राचीनं चाप्युदीचीनं लिखेद् रेखाद्वयं द्वयम् ।
रेखाग्रेष्वष्ट वज्राणि मध्ये तारं च तद्बहिः ॥ १३८ ॥

तारं तत्कोष्ठके लेख्यमेवं हस्ततलेऽर्पितम् ।
दर्शितं चामृतध्यानाच्छिरोरोगं विनाशयेत् ॥ १३९ ॥

तारभान्तौ विना त्वस्मिन् चक्रे कोष्ठचतुष्टये ।
कोष्ठेषु यान्तसार्धेन्दुं सूर्यग्रहे[1]विषं लिखेत् ॥ १४० ॥

मध्ये सुपाशं क्रोडीशं चक्रस्य परितो मनुम् ।
अनन्तं च णिकारं च वीप्सितौ तौ[2] पिनाकिनम् ॥ १४१ ॥

सोमेशं द्विगुणं दीर्घं णिकारं चापि वीप्सयेत् ।
ठठ [3]णेमि ठठान्तोऽयं मन्त्रो लेख्यः प्रदक्षिणम् ॥ १४२ ॥

इष्ट्वा द[4]त्त्वा बलिं बद्धं शिरोरोगं विनाशयेत् ।
वाताच्छिरोरुङ् नात्युष्णात् पित्तादत्युष्णकोपनात् ॥ १४३ ॥

कफाद् गुरुत्वं शिरसस्तत् सर्वं सान्निपातिके ।
सूर्यावर्तशिरोरोगः पूर्वाह्णे चातिवर्धते ॥ १४४ ॥

क्षयं यात्यपराह्णे तु कफवातभवस्तु सः ।
अर्धावभेदः शीर्ष्णोऽर्धे शङ्खकः शङ्खवेदनः ॥ १४५ ॥

तौ च वातां[6]श्रयौ ।

कुलस्थमाषमुद्गांस्तु पिबेदाज्येन वातिके ।
शिरोरोगे शङ्खके च लिम्पेदाज्येन तत्रयम् ॥ १४६ ॥

धात्रीवचामलयजं च बलाजलाजकर्पूरयष्टिहिरिबेरमुशीरकं च ।
सर्वं समं दृषदि तण्डुलतोयपिष्टं लिम्पेच्छिरस्यखिलशीर्षरुजां शमार्थम् ॥

चिञ्चाफलं पुराणं तु शर्करानागरान्वितम् ।
तण्डुलाम्बुयुतं नस्यान्नश्येदेव शिरोरुजा ॥ १४८ ॥

दूर्वामूलनिशोशीरयष्टीमधुकचन्दनैः ।
नन्द्यावर्ताङ्कुरसमैः पिष्ट्वा तोयेन तद्रसः ॥ १४९ ॥

---

१. 'हे' क. पाठः. २. 'तु' ग. पाठः. ३ 'णेठंडा', ४. 'बद्ध्वा ब', ५. 'ष्णापि' ख. पाठः. ६. 'दा' क. पाठः.

सशर्करः प्रलिप्तस्तु सूर्यावर्तविनाशनः ।
सिन्धूत्थं नागरं कुष्ठं कार्पासस्य शिफा तथा ॥ १५० ॥
साज्यं कोष्णं शिरोरोगान् हन्यादेव हि नस्यतः ।
कूश्माण्डैरण्डयोर्मूले पिष्ट्वा शुक्तेन लेपयेत् ॥ १५१ ॥
पारिभद्रत्वचं वापि शिरोरोगप्रशान्तये ।
निशामरिचविश्वानां चूर्णवर्त्यः पृथक् पृथक् ॥ १५२ ॥
धूपनस्योपयुक्तास्तु शिरोरोगविनाशनाः ।
यत्रागतासि भद्रं ते तं विन्ध्यं गच्छ सुव्रते ॥ १५३ ॥

ठठ ।

दृक्पुष्पैर्हृदयः प्रोक्तो मन्त्रस्तोयादिसेकतः ।
लिखित्वा भूगृहे रेखाः साष्टिस्वरकसंयुताः ॥ १५४ ॥
लम्बयित्वापरेणेह दृष्टास्ताः कुञ्चितापहाः ।
उपानत्(?)पाठयोः पानान्न जायेत मसूरिका ॥ १५५ ॥
हिरिबेरकजीवन्तीछिन्ना वाशा च शारिबा ।
दार्वीचन्दननिम्बाश्च त्रिफलोशीरतोयदैः ॥ १५६ ॥
क्वाथः समाक्षिकगुलो मसूरिकनिवारणः ।
पटोलनिम्बयोः क्वाथं पिबेद् यदि सशर्करम् ॥ १५७ ॥
मसूरिकोद्गमात् पूर्वं नोत्पद्यन्ते मसूरिकाः ।
महिषीमलजं वारि सचन्दनरसं पिबेत् ॥ १५८ ॥
धात्रीशल्कफलप्रस्थं नृतोये दिवसोषितम् ।
निष्पीड्य पीतं यद्यस्य नोत्पद्यन्ते मसूरिकाः ॥ १५९ ॥
सिन्धूत्थपथ्याविश्वाख्याः समं पिष्ट्वोष्णवारिणा ।
पिबेदानाहविष्टम्भावामदोषं च नाशयेत् ॥ १६० ॥
पथ्यादीप्यकसिन्धूत्थकणाविश्वानि मस्तुना ।
तक्रेण क्वथितं प्रातः पिबेदग्निप्रदीपनम् ॥ १६१ ॥
पथ्याकणादीप्रसिन्धून् षट्चतुर्द्व्येकभागिकान् ।
तक्रेण क्वथितान् प्रातः पिबतामरुचिः कुतः ॥ १६२ ॥

अग्निप्रदीपनं च ।

---

१. 'ण्ण' क. पाठः.

द्रोणमूलसमं विश्वासैन्धवं तक्रपाचितम् ।
क्रोधाग्निं जनयेत् प्रातः पीतं चारुचिनाशनम् ॥ १६३ ॥

हिङ्गुसिन्धुकणाविश्वास्त्वेकैकं द्विगुणाभया ।
उष्णोदकेन पीताः स्युर्नृणां स्रंसनदीपनाः ॥ १६४ ॥

गुलूचीं सैन्धवं पथ्यां नागरं च समांशकम् ।
मथिते क्वथितं पीतं कायाग्निबलवर्धनम् ॥ १६५ ॥

भल्लातभार्गीलिशुमूलपथ्यां चैवाग्निराजीमरिचं यवानीम् ।
सिन्धूत्थदीप्यैः क्वथितं कदुष्णं वायोर्विकारं च कफं च हन्यात् ॥ १६६ ॥

सितासिन्धूत्थकृष्णाख्याः समांशाः श्लक्ष्णचूर्णिताः ।
सुकोष्णसलिले पीताः सद्यो हृद्रोगशान्तिदाः ॥ १६७ ॥

वाराहीचित्रवाशाभिस्तण्डुलैस्तैलसाधितः ।[1]
अपूपो भक्षितः सद्यो हृद्रोगशमनप्रदः ॥ १६८ ॥

दुःस्पर्शनागरबलाकषायः सैन्धवोत्तरः ।
पार्श्वशूलं च हृद्रोगमुदावर्तं च नाशयेत् ॥ १६९ ॥

क्वाथः सपिप्पलीचूर्णः पिप्पलीमूलविश्वयोः ।
पीतः सर्वग्रहणिकां हरेदग्निं च दीपयेत् ॥ १७० ॥

रजन्यौ मरिचं कुष्ठं शुण्ठि चोष्णोदके पिबेत् ।
संहरेद् ग्रहणीः सर्वा दृष्टिदोषादिकं तथा ॥ १७१ ॥

पाण्योर्दाहो[2] विलोणाम्भःपानं चापि विषूचिजित् ।
मुस्तोशीरकणामूलकलशीविश्वसाधितम् ॥ १७२ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवाभ्यां च विषूचिघ्नं पिबेज्जलम् ।
कट्वानि पञ्चलवणं किञ्चित् स्नुहिपयोयुतम् ॥ १७३ ॥

सुकोष्णाम्भसि पीतं चेज्जयेद् घोरां विषूचिकाम् ।
पथ्या पिण्डाख्यलवणं हिङ्गुश्चातिविषा वचा ॥ १७४ ॥

पीताः सुखोदके हन्युः सहमूला विषूचिकाम् ।
चित्रवत्सकविश्वाम्बुरामठातिविषां पिबेत् ॥ १७५ ॥

---

१. 'मि' क. पाठः. २. 'र्दो' ख. पाठः.

पाठा ज्योतिष्मती कर्णिवत्सकुस्तुम्बुरूणि वा ।
वचाब्दातिविषाशुण्ठीबिल्ववत्सकरामठाः ॥ १७६ ॥

तक्रकाञ्चिकयोरुष्णं पीतातीसारशान्तिदाः ।
मुस्ताक्वाथस्तु समधुः पक्वातीसारशान्तिदः ॥ १७७ ॥

अभयातिविषाविश्वादेवदारुवचाम्बुदाः ।
उष्णाम्भःपेषिताः पीताः सर्वातीसारशान्तिदाः ॥ १७८ ॥

सिन्धूत्थहिङ्गुमरिचा लशुनी च शुण्ठी कारञ्जवल्कमजमोजकजीरकाणि ।
एला सनागरकणा मथितेन मण्डं सामातिसाररुधिरं हरतीह पीतम् ॥ १७० ॥

आम्रास्थि दीप्यकं विश्वासमङ्गाशालिशुङ्गकैः ।
साभयैर्मथितं पक्वं साङ्गहिग्रहणीहरम् ॥ १८० ॥

यष्टिवत्सकभूनिम्बपाठारात्रिद्वयान्वितम् ।
तक्रक्वाथं पिबेत् सद्यः पीतां चातिसृतिं हरेत् ॥ १८१ ॥

भृङ्गीसमङ्गाकलशीसाब्दातिविषदारुभिः ।
पिष्टं वा क्वथितं गुप्ते वातातीसारनाशनम् ॥ १८२ ॥

मूलानि शक्रवल्ल्यास्तु पिष्ट्वा तक्रं मधुप्लुतम् ।
पीतं हन्यादतीसारं मस्तुना काञ्चिकेन वा ॥ १८३ ॥

छिन्नापाठाब्दभूनिम्बविश्ववत्सकसाधितः ।
पीतः कषायस्तु हरेत् सज्वरातिसृतिं क्षणात् ॥ १८४ ॥

कृष्णांस्तिलान् वयस्यां च लोध्रयष्टिसितोत्पलान् ।
अजाक्षीरे पिबेत् काल्यं रक्तातीसारशान्तये ॥ १८५ ॥

शूलाद् वाताद् भवेद् वस्तौ नाभौ दाही च पैत्ति(के?कः) ।
कफजो हृदि हृल्लासस्त्वसाध्यः सर्वगो[1]यदि ॥ १८६ ॥

एरण्डपत्रषट्काम्भः किञ्चित् सैन्धवमाश्रितम् ।
तन्नस्यं वातशूलघ्नं विश्वाचिञ्चादलाम्बु च ॥ १८७ ॥

---

१. 'ता' ख. पाठः.

हिङ्गुत्रिकटुसिन्धूत्थकुष्ठोग्राशैलचूर्णिकाः ।
उष्णोदके समं पीताः सद्यः शूलं हरन्ति हि ॥ १८८ ॥

लघ्वेरण्डस्य पत्राप्सु हिङ्गुसैन्धवकल्कयुक् ।
तैलं पचेत् तन्नस्येन शूलो नश्यति तत्क्षणात् ॥ १८९ ॥

कुबेराक्षिफलं कर्षं नागरं लशुनं तथा ।
तत्काथो हिङ्गुसिन्धूत्थचूर्णयुक् सर्वशूलहा ॥ १९० ॥

हिङ्गोस्तु सैन्धवं तस्मात् तैलमेरण्डजं क्रमात् ।
त्रिगुणं तैः समं चाम्भो लशुनं सर्वशूलजित् ॥ १९१ ॥

विलङ्गस्य तु सर्वाङ्गकाथः सहिङ्गुसैन्धवः ।
पीतः स्यात् सर्वशूलघ्नो न प्रकाश्यो दुरात्मनाम् ॥ १९२ ॥

नालिकेरमुखं छित्त्वा मृदाच्छाद्य तु तद् दहेत् ।
एरण्डबीजनिष्कं तु पिष्ट्वालोड्य तु तज्जले ॥ १९३ ॥

सोष्णमेव पिबेत् सद्यो निपतत्यश्मरी क्षणात् ।
रक्तापद्मार्कमूलं तु पीतमुष्णेन वारिणा ॥ १९४ ॥

पातयेदश्मरीं सद्यो मूत्रकृच्छ्रं तु नाशयेत् ।
मत्स्याक्षिमूलं तक्रेण शर्करापातनं पिबेत् ॥ १९५ ॥

सर्पाक्षी वनमल्लिका च वरणापामार्गशिग्रुद्वयी-
भद्रागोक्षुरकाशमर्दसुभगा[1]श्वेतच्छदाब्जैः समैः ।
तुल्यैः कृष्णकुलस्थकैः शृतजलं यन्नालिकेराम्बुमत्
कृष्णैलासहितं पिबेत् सहरुजा भिन्ना पतेदश्मरी ॥ १९६ ॥

जम्बूप्रवालकल्काढ्यं क्षौद्रं पीतं तु कृच्छ्रजित्[2] ।
एलाकृष्णाश्वदंष्ट्राभिर्मधूकारेणुपूतिकैः ॥ १९७ ॥

अश्मभेदिपृथक्काथे शिलाजतुयुतं पचेत् ।
तत् पिबेदश्मरीमूत्रकृच्छ्रहृच्छर्करापहम् ॥ १९८ ॥

---

1. 'गाश्वेकच्छ', २. 'जि' ख. पाठः.

नालिकेराम्बु सगुलं सकुस्तुम्बुरु कृच्छ्रजित् ।
छिन्नाकल्कं च ससितं गवां क्षीरेण कृच्छ्रजित् ॥ १९९ ॥
पारिभद्रत्वचो भस्म सर्वापामार्गजं तथा ।
एरण्डतैलमालोड्य पिबेद् गुल्मविनाशनम् ॥ २०० ॥
क्वाथं बिल्वशिफायास्तु सोष्णं सैन्धवयोजितम् ।
गुल्मशूलहरं पीतं क्वाथश्च वनशिग्रुजः ॥ २०१ ॥
पयसा मधुकं द्राक्षा पद्मकं चन्दनं मधु ।
पीतं तण्डुलतोयेन पित्तगुल्महरं परम् ॥ २०२ ॥
स्नुहिखण्डं तुलाभाण्डे तुल्यलोणविमिश्रितम् ।
विधायालिप्य च मृदा करीषाग्नौ दहेत् ततः ॥ २०३ ॥
शीतीभूते तथोद्धृत्य क्वथितं काञ्जिके पिबेत् ।
पञ्च गुल्मानि नश्यन्ति कायाग्नेर्दीपनं च तत् ॥ २०४ ॥
चिरिबिल्वत्वचा शुण्ठीकुलत्थैरसितैः समैः ।
क्वाथः कणाहिङ्गुयुतः श्लेष्मगुल्मोपशान्तिदः ॥ २०५ ॥
अर्जुनस्य फलैस्तुल्यमपामार्गं च दाहयेत् ।
तद्भस्मलोलिताम्भस्तु पचेत् कृष्णकुलत्थकान् ॥ २०६ ॥
तज्जलं त्रिकट्वग्निमिश्रं पञ्चगुल्महरं पिबेत् ।
समूलं विलङ्गं च भल्लातबीजं पचेद् द्रोणतोये चतुर्थावशेषम् ।
स्वकल्केन चाप्यूषणैः साधितं तत् समक्षौद्रमिश्रं हरेच्छूलगुल्मान् ॥ २०७ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
ज्वरादिचिकित्सापटलः पञ्चचत्वारिंशः ।

---

## अथ षट्चत्वारिंशः पटलः ।

आम्रास्थिलाजलवणै[1]र्लाजसैन्धवशर्कराः ।
दाडिमीलाजसिन्धूत्थं हिक्कावमनहृच्छिशोः ॥ १ ॥

---

1. 'ल्ये' ख. पाठः.

प्रयोगास्त्रयो मधुनेति यावत् ।

लाजोत्पलं वा स्तन्येन प्रियङ्गुलोध्रकं लिहेत् ।
कृष्णां समङ्गां वालोड्य ज्वरातीसारशान्तये ॥ २ ॥

निशे द्वे वत्सकं सिंही यष्टिस्तत्काथसेवनात् ।
शिशूनामतिसारघ्नं तत् पिष्टं पाययेन्मनाक् ॥ ३ ॥

मधुनातिविषा लिह्या[1] छर्दिज्वरहरं शिशोः ।
फलत्रयसहाशिग्रुदारुमेघशृतं जलम् ॥ ४ ॥

सद्राक्षामागधीकल्कं शिशुक्रिमिहरं भवेत् ।
त्रिफलाशारिबामेघनिशातापिञ्जपत्रयुक् ॥ ५ ॥

क्वाथो मधुयुतः सेकान्नेत्ररोगाणि संहरेत् ।
खदिरः कुटजो निम्बत्रिकटुत्रिफलावचाः ॥ ६ ॥

गोमूत्रपिष्टाः पीताश्चेद्धन्युर्जठरजान् क्रमीन् ।
प्रातः पूर्णाम्बुवदनो जलैराश्च्योतनं दृशोः ॥ ७ ॥

इन्दोर्वीक्षणमष्टयन्ते पाण्योर्माथाम्बु वा हितम् ।
तुत्थं[2] त्रिभागमक्षान्तर्बीजमामलकस्य च ॥ ८ ॥

द्व्येकभागं जले पिष्ट्वा गुली नेत्रामयान् हरेत् ।

तुत्थं ताम्रमयोरजस्त्रिकटुकं नागं तथा चन्दनं
सिन्धूत्थं त्रिफला च यष्टिमधुकं दार्वी च तुत्थाञ्जनम्[3] ।
कर्पूरं स्फटिकं च टङ्कणमथो तिक्तं करञ्जाम्भसा
पिष्टं तद्गुलिका निहन्ति तिमिरं सर्वांश्च नेत्रामयान् ॥ ९ ॥

नक्तमालफलं चैकं धात्रीराजिरसैः समैः ॥ १० ॥

पिष्टं छायाविशुष्कं तन्निहन्ति तिमिराम्बुदान् ।
त्रिफलालियष्टिशुण्ठीरसेषु मधुसर्पिषोरजाक्षीरे ।
गोमूत्रे मुनिसंख्यं तुत्थं नागं तु नेत्रयोरमृतम् ॥ ११ ॥

१. 'ह्यं' ख. पाठः. २. 'द्व' क. पाठः. ३. 'सूतोर्जनम्' ख. पाठः 'सूताञ्जनम्' क. पाठः.

तुत्थनागरसौ तुल्यौ तुल्यं नीलाञ्जनं तयोः ॥ १२ ॥
विकारांशेन्दुमिलितं तच्चूर्णं नयनामृतम् ।
कटुत्रयकरञ्जास्थिनागरं सिन्धुजं निशे ॥ १३ ॥
शङ्खबिल्वफले पिष्ट्वा वर्त्तिर्नेत्रामयापहा ।
समुद्रैरण्डजक्षीरं स्तन्ये पुष्पं दृशो हरेत् ॥ १४ ॥
द्रोणपुष्पाम्बु सस्तन्यं सफेनं नेत्रपुष्पहृत् ।
सिन्धुरात्रिकणाजातिताम्रकांस्यवराटकाः ॥ १५ ॥
कुनटी च क्षौद्रपिष्टा नेत्रपिल्लं हरन्त्यमी ।
शुक्तपिष्टं तु सिन्धूत्थं वस्त्रस्थं श्च्योतयेद् दृशोः ॥ १६ ॥
अभिष्यन्दहरं लोध्रमाज्यभ्रष्टं च तत् तथा ।
कृष्णाशकृद्रसौ कर्णमलं वा मधुनाञ्जनात् ॥ १७ ॥
द्रोणपुष्पाम्बु तैलेन निशान्ध्यं घ्नन्त्यमी त्रयः ।
नासिकासृक्स्रवं हन्यात् स्तन्यदूर्वाम्बुनस्यतः ॥ १८ ॥
रम्भागृञ्जनयोर्मूलं रसो वार्द्रकजः पृथक् ।
पूरणात् कर्णशूलघ्ना किञ्चित्सैन्धवयोजिता ॥ १९ ॥
अजामूत्रेण दध्ना च बिल्वान्तःफलसाधितम् ।
तैलं कर्णस्य बाधिर्यपूयस्रावादिकं हरेत् ॥ २० ॥
वचालशुनलोणानि शिग्रुमूलं च सत्वचम् ।
पाण्डूर्कस्नुहिपत्राप्सु तैलं कर्णार्तिहृत् पचेत् ॥ २१ ॥
सूर्यावर्तस्य शिग्रोर्मधुपदिनकृतोः सिन्धुवारस्य जात्या
रम्भायाः कारवल्ल्याः सुरसलशुनयोः स्वे रसे तुल्यभागे ।
तैलं पक्वं यथावच्छ्रुतिपुटनिहितं कर्णशूलं च पूयं
बाधिर्यं तद्व्रणं च प्रशमयति यथा भारतं पापजातम् ॥ २२ ॥
बिल्वस्य देवदारोर्वा काष्ठं क्षौमेण वेष्टितम् ।
तैलसिक्तं समादीप्य तच्चैलं कर्णशूलहृत् ॥ २३ ॥

---

१. 'ह्लां' ख. पाठः. २. 'न्तं पल' क. पाठः

बृहतीफलपिष्टेन धूपो योज्यो द्विजार्तिजित् ।
समूलतूलं पुङ्खायाः क्वाथे तैलं पचेद् भिषक् ॥ २४ ॥
पथ्याकल्कस्य गण्डूषाद् द्विजार्तिशमनं परम् ।
श्यामश्च क्रमुकं धान्याम्लनालिकेराम्बुमूत्रयुक् ॥ २५ ॥
क्वाथः कवलितो हन्यादधिजिह्वादिकं मुखे ।
सिन्धुवाररसे तैलं लाङ्गलीकल्कसाधितम् ॥ २६ ॥
गलगण्डं गण्डमालां नस्यादेव विनाशयेत् ।
वन्ध्यकार्कोटकीमूलं पीतं तण्डुलवारिणा ॥ २७ ॥
गण्डमालाहरो लेपो गोपीतुरगगन्धियुक् ।
गोमूत्रामलकल्कं तु पयस्तैलघृतैर्युतम् ॥ २८ ॥
अनुष्णो बहलो लेप्यस्तत् पक्वं विद्रधिं हरेत् ।
वय(स्य?स्था)चन्दनोशीरैर्लेपो वा क्षीरपेषितैः ॥ २९ ॥
लिम्पेदपक्वग्रन्थींस्तु सिन्धुनाकुलिनागरैः ।
निर्गुण्डी कटुतुम्बिनी किणिहरी तिक्ता निशा तूलकं
भृङ्गी लाङ्गलिपद्ममूलसुरसानिर्यासकास्फोटिकाः ।
गुञ्जाभिर्महिषीमयेन च समं तत्सर्पिषा वै समं
तैलं ग्रन्थिगणान् निहन्ति सकलानालेपनाश्च्योतनैः ॥ ३० ॥
करवीरास्थिकुटचभल्लातास्थिविलङ्गकैः ॥ ३१ ॥
कुष्ठं च तगरं लिप्तं गोमूत्रेणापचिं हरेत् ।
विश्वाविलङ्गकुष्ठानि सैन्धवं च सुपेषितम् ॥ ३२ ॥
गोमूत्रेणापचिं हन्याद् ग्रन्थिं चालेपमात्रतः ।
दन्तीहरिद्रामलकान् पिष्ट्वा तोयेन लेपयेत् ॥ ३३ ॥
त्रिफलानां कषाये तु सितमूलासकल्कके ।
तैलं पचेत् तत्सेकेन नाशमेति भगन्दरम् ॥ ३४ ॥
लाङ्गलीशेलुकुम्भास्थिसर्जाज्योतिष्मतीवचाः ।
पाठामृतार्कक्वाथे तु तत्कल्के तिलकं पचेत् ॥ ३५ ॥

१. 'बी', २. 'गु' क. पाठः. ३. 'क' ख. पाठः. ४. 'जं' क. पाठः.

तेनाभ्यञ्जनसेकस्तु भगन्दरविनाशनः ।
पुनर्नवामृते विश्वावटपत्रेष्टकाः समाः ॥ ३६ ॥
तक्रेण पिष्ट्वा लेपेन भगन्दरविनाशनाः ।
व्याघातस्नुहिपूतीकशिरीषार्[1]ककजातिजैः ॥ ३७ ॥
गोमूत्रपिष्टैस्त्वग्दोषान् प्रलेपेनाखिलान् जयेत् ।
असितैस्तु तिलैस्तुल्यं वाकुचीबीजभक्षणात् ॥ ३८ ॥
युक्ताहारविहारस्य कुष्ठमब्दाद् विनश्यति ।
जलखण्डनिकाबीजभक्षणं कुष्ठनाशनम् ॥ ३९ ॥
करञ्जास्थिकणाचित्रगृहधूमाश्च वाकुची ।
कटुतुम्बिनिकातैलप्रलेपः कुष्ठनाशनः ॥ ४० ॥
कासघ्नं मूलमश्वारेस्तमालस्य वचाङ्कुराः ।
प्रपुन्नाटकबीजानि निशा पथ्या च पेषिताः ॥ ४१ ॥
गवां तक्रेण लेपेन वत्सरात् कुष्ठनाशनम् ।
त्रिफलावह्निपूतीकचित्रकरात्रितिलैः समम् ॥ ४२ ॥
चूर्णीकृतैस्तु तक्रेण पीत्वा मूलाङ्कुरान् हरेत् ।
वाराहीचित्रपूतीकवन्ध्याकुटचसूरणैः ॥ ४३ ॥
पिष्टैस्तक्रयवाग्वोस्तु पानं मूलगदापहम् ।
शिला लाङ्गलिकामूलं गुञ्जासारं समं पृथक् ॥ ४४ ॥
पिष्ट्वार्कदुग्धे गोमूत्रे क्षारके तद् विपाचयेत् ।
कृत्वाङ्गुष्ठमितां वर्त्तिं स्थौल्यादायामतश्च ताम् ॥ ४५ ॥
पायौ दद्याद् भिषक् तज्ज्ञो निपतन्त्यर्शसोऽङ्कुराः ।
पूतीकत्रिफलारात्रिकरञ्जत्वक्फलाः समाः ॥ ४६ ॥
चूर्णिताश्चापि तत्क्वाथो हरेन्मेहं मधुप्लुतः ।
सूताभ्यां माकुलं बीजमेकैकं स्यान्मनःशिला ॥ ४७ ॥
लाजशैलकटाः कृष्णनिम्बमूलत्वचा शिफा ।
द्वौ द्वौ भागौ पृथग् ग्राह्यौ तथैव रसगुग्गु[2]लोः ॥ ४८ ॥

१. 'किं' ख. पाठः. २. 'लोः । ग्रन्थींस्तु सिन्धुनाकुलिनागरैः ?' क. पाठः.

खदिरस्य कपित्थस्य श्वेतकृष्णारिमेदयोः ।
पलाशस्य च निर्यासं(?) दार्वीकुटचबीजयोः ॥ ४९ ॥
भागास्त्रयस्त्रयो ग्राह्यास्त्वथ कान्तं च चन्दनम् ।
कृष्णमूलासुमूलं च मुसल्याकुलिकाशिफे ॥ ५० ॥
धात्री च नागकुसुमं पृथगेते चतुर्गुणाः ।
कार्पासस्यानुधावन्त्या मूले कृष्णार्जुनत्वचः ॥ ५१ ॥
पृथक् पृथक् पञ्चभागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं मधुना प्रातर्लेह्यं तक्रेण वा पिबेत् ॥ ५२ ॥
कषायं च पिबेद् रात्रौ वक्ष्यमाणौषधैः श्रृतम् ।
त्रिफला च निशायुग्मं जम्ब्वारग्वधयोस्त्वचौ ॥ ५३ ॥
पाठामृताब्दतकरशक्तिपत्रपुनर्नवाः ।
सर्वाणि समभागानि निष्क्वाथ्याष्टावशेषितम् ॥ ५४ ॥
शीतलं मधुना मिश्रं पीतं विंशतिमेहहृत् ।
निष्टेरकाकुलीबीजे बद्धवल्लिदलानि च ॥ ५५ ॥
अद्वैताद्वैतकद्वैतभागांस्तक्रेण पेषयेत् ।
त्रिचतुःपञ्चदिवसैर्मेहान् प्रातः पिबन् जयेत् ॥ ५६ ॥
शक्रवल्लिशिफांशाः षट् करञ्जस्याङ्कुरास्तथा ।
तत्क्वाथस्तु हरेद् वृद्धिं पीतस्तद्बीजचूर्णयुक् ॥ ५७ ॥
कोकिलाक्षाङ्कुरान् पिष्ट्वा विश्वासिन्धूत्थदीप्यकैः ।
पिबेत् तक्रेण गव्येन बीजवृद्धिर्विनश्यति ॥ ५८ ॥
करञ्जं गृञ्जनीपथ्याकाननाम्रश्रृते जले ।
शुक्ते तक्रादिना पेया बीजवृद्धिक्षयापहाः ॥ ५९ ॥

दूर्वायाः स्वरसाढके मलयजं ह्रीबेरकं शारिबा
मुस्ताब्जोत्पलतूलकुष्ठतगरैः शुङ्गानि च क्षीरिणाम् ।
कल्कीकृत्य पचेद् घृतं तदथवा तैलद्वयं वा समं
पीतं विश्वविसर्पकान् हरति तत्सेकेन चाभ्यञ्जतः ॥ ६० ॥

१. 'स्तद्बीतच्', २. 'कुब्जकुण्ठत' क० पाठः

अमृतविषपटोलीनिम्बधात्रीदलानां
　खदिरसमकषाये तत्पृथङ्निष्ककल्के ।
कृतिपलमितमाज्यं पाचितं काल्यलीढं
　हरति खलु विसर्पांस्तत्कषायश्च पीतः ॥ ६१ ॥

कल्कं शिग्रोश्च विश्वायाः क्षीरैकद्वयसंमितम् ।
क्वथितं पिबतः प्रातः शोफो नश्यति पक्षतः ॥ ६२ ॥

दशमूलशृतं दुग्धं कुडुपं मधुनिष्कयुक् ।
सार्धं निष्कं घृतं चाज्याद् द्विगुणं स्यात् तु शर्करा ॥ ६३ ॥

गुलं सार्धचतुष्कं तु निष्कं कृष्णारजोयुतम् ।
काल्यं मथित्वा क्वथितं वातशोणितनाशनम् ॥ ६४ ॥

द्राक्षाब्दरात्रिकाथं तु कफरक्तोद्गमे पिबेत् ।
गुलान्वितं द्विकालं तु भक्षयेत् कफरक्तहृत् ॥ ६५ ॥

कोकिलाक्षस्य निर्यासं तच्छाकाशी पिबेत् तदा ।
वातशोणितं नश्यति ।
　व्याघातवाशाच्छिन्नानां क्वाथमेरण्डतैलयुक् ॥ ६६ ॥

　पीतं वातासृजं हन्यात् कृष्णोष्णाम्भः प्लिहां हरेत् ।
विश्वाबिल्वाग्निमन्थैर्मगधजसहितैस्त्रित्रिनिष्कैः शृताद्भि-
　स्तुल्ये क्षीरे तु विश्वं क्षिपतु पचतु तत्क्षीरमन्नेन भुक्त्वा ।
तां शुण्ठीं भक्षयेच्च प्रतिदिनमिति यो वर्तते मासमात्रं
　यक्ष्माणो यान्ति नाशं वपुरपि च दृढं पुष्टिमिष्टां ददाति ॥ ६७ ॥

　वाशाभृङ्गेन्द्रकासघ्नीबृहतीनागरामृतैः ॥ ६८ ॥

　क्वथितैः सुशृतं क्षीरं कटुहृत् क्षयकृत् पिबेत् ।
भार्ङ्गीगोक्षुरकासवैरिबृहतीबिल्वा(ध?द्रि)रूढाः समा-
　स्तेषां क्वाथसमासमानमनले क्षीरं पुनः क्वाथयेत् ।
कृष्णाचूर्णमधुप्लुतं पिबतु तत् स्याद् यक्ष्मरोगापहं
　कासश्वासकफांश्च कायमधिकं मुष्णाति पुष्णाति च ॥ ६९ ॥

　माहिषक्षीरमथ तन्नवनीतं निशाम्बुदैः ॥ ७० ॥

पारावतस्य विट् दुग्धं वटजं वातभेदहृत् ।
चिरिबिल्वकषाये तु राजितत्कल्कयोजिते ॥ ७१ ॥
सिद्धं तैलं हरेद् वातमभ्यङ्गाच्चोपनाहतः ।
महाजमारकोले तु रात्रितद्बीजकल्कयुक् ॥ ७२ ॥
तैलं पाचितमभ्यङ्गाद् वातरोगापहं परम् ।
प्रसारिण्यर्कजम्बीरशिग्रुचिञ्चारसो दधि ॥ ७३ ॥
राजिनागरशिग्रूणां कल्केन तिलजं पचेत् ।
शिग्रुपञ्चाम्लसरणिद्विकरञ्जबलार्ककैः ॥ ७४ ॥
वरणैर्दशमूलैश्च चिञ्चापत्रैश्च कुट्टितैः ।
काञ्जिकं क्वथितं चैतैः सेचयेत् प्रथमं ततः ॥ ७५ ॥
तैलेनानेन चाभ्यङ्गाद् वातरोगो विनश्यति ।
अस्मिन्नेव कषाये तु कदुष्णे चावगाहयेत् ॥ ७६ ॥
छिन्नाबलाभ्यां धान्याम्लक्वाथसेकश्च वातजित् ।
केवले वातरोगे तु तैलसेकोऽपि केवलः ॥ ७७ ॥
भद्रामातुलबीजानि रास्नादारुमहौषधैः ।
साग्निमन्थैः शुक्तपिष्टैः प्रलेपो वातशोफहा ॥ ७८ ॥
कार्पासाङ्कोलबीजानि शिग्रुत्वग् विश्वभेषजम् ।
शुक्तपिष्टं कदुष्णं[1] तदालेपाद् वातरोगजित् ॥ ७९ ॥
पुन्नागैरण्डनिम्बैर्बकुलधनदहृन्नालिकेरैः करञ्जैः
कार्पासैः शिग्रुडोलाफलमुनिशरणैर्मूलकैः सर्षपैश्च ।
कोलाङ्कोलैः कुलस्थैः स(ह)लशुनवचारात्रि देवद्रुदार्वी-
पुष्पाम्लस्नेहयुक्तं सकलपटुयुतं पोट्टलं वातभञ्जि ॥ ८० ॥
(डोलाङ्कोल + सर्वाम्लास + + + + + + + ।
स(र्व?)स्नेहसैन्धवालेपो वातजिच्छुष्कपेषितः ॥ ८१ ॥
त्रिफलात्रिवृताक्वाथो गुलयुक्तो विरेचकः ।
सत्रिवृद्गुलयुक्तस्तु द्राक्षाक्वाथो विरेचकः ॥ ८२ ॥
अर्धभागस्त्रिवृत् खण्डं षड्भागं सिन्धुजं द्वयम् ।
चूर्णमेषां मधुयुतं साम्बुपानाद् विरेचकम् ॥ ८३ ॥

---

१. 'ष्णं तु बाले वा द्वात' ख. पाठः.

फलं तु धात्रीगुञ्जानां निष्क्काथ्याथ निपीड्य तत् ।
रसो गुल्युतः पीतः सद्य एव विरेचकः ॥ ८४ ॥

चतुस्त्र्येकभागास्तु पथ्याक्रमुकनागराः ।
सिन्धुजं चोष्णतोयेन साशुपानं(?) तु रेचकम् ॥ ८५ ॥

कोकिलाक्षः स्वयंगुप्ताबीजमाषसितातिलाः ।
समभागाः पयःपीता वृष्याः स्त्रीशतगामिनाम् ॥ ८६ ॥

त्रिफला ससिता क्षीरे स्वयङ्गुप्ताशिफा तथा ।
तद्बीजमाषचूर्णं च वृष्यं क्षीरे सशर्करम् ॥ ८७ ॥

तिलतण्डुलमाषाणां चूर्णं गुप्ताफलस्य च ।
कृष्णारम्भाफलं चाज्ये सिद्धं वृष्यं प्रमोदकम् ॥ ८८ ॥

क्षीरानुपानमिति यावत् ।

गुप्तावरीगोक्षुरमूलमालैस्तिलैः समैः श्लेष्मलकस्य बीजैः ।
चूर्णीकृतैः शर्करया च दुग्धे पिबेन्निशायां वनिता सुतार्थिनी ॥ ८९ ॥

शिफामशोकस्य धनेशदिग्गतां प्रजार्थिनी रक्तवटाङ्कुरैः समम् ।
जले स्थिता नाभिमिते पिबेदृतौ प्रियेण गर्भं लभते समागता ॥ ९० ॥

दूर्वाखिला(?) श्रीसहदेवमूलेनाश्वत्थदर्भाङ्कुरवंशशुङ्गम् ।
क्षीरेण पिष्ट्वा तु पिबेदृतौ स्त्री सम्प्राप्य गर्भं लभते कुमारम् ॥ ९१ ॥

श्रियश्च मूलं वटशुङ्गसप्तकं पिबेत् तु दुग्धेऽथ तयोस्तथाङ्कुरौ ।
सहाङ्कुरांश्चापि निपीड्य तद्रसैः करोतु नासास्थमृतौ सुतार्थिनी ॥ ९२ ॥

स्नाता चतुर्थदिवसे कृतमङ्गला स्त्री पीतौषधा वसुमतीं न पदा स्पृशेत् सा ।
तिष्ठेन्न चाह्नि जरिते त्वगदे सदुग्धं भुक्त्वाज्यवान्निजपतेः शयनं समेयात् ॥

नारी पिबेद् यदगदं तु तदेव नस्यं कुर्यात् तु दक्षिणपुटे सुतकामिनी चेत् ।
कन्यार्थिनी तदितरे शयनं च कुर्यात् पार्श्वेन तेन विधिनैवमृतुत्रयान्तम् ॥

गर्भस्य दोषशमनं तगरास्थि दुग्धे पेयं तु गर्भचलने दधिसम्प्रयुक्तम् ।
वन्ध्यारजो लिकुचचन्दनयष्टिलोध्रगोप्युत्पलं पिबतु तण्डुलतोयपिष्टम् ॥९५॥

---

१. 'को', २. 'के' क. पाठः.

धात्रीरसालोलितशङ्खपुष्पीं तथामलक्यास्तु कुरण्डमूलम् ।
घृतेन दध्ना सहितं पिबेद् वा नारी पटोलस्य शिफां सुतार्थम् ॥ ९६ ॥

काकमाच्याः शिफां पुष्ये प्रातरुद्धृत्य वाग्यतः ।
पयसा पाययेन्नारीं गर्भं सा लभतेऽचिरात् ॥ ९७ ॥

चन्दनगोपीद्राक्षालोध्रक्काथं पयोयुतं ससितम् ।
गर्भस्रावनिवारं मुस्ताक्षीरेण शीतलं पिबतु ॥ ९८ ॥

गर्भरक्षार्थम् ।

पृथङ्मासेषु गर्भस्य चलनेऽगदमुच्यते ।
पद्मकोशीरतगरमजाक्षीरेण पाययेत् ॥ ९९ ॥

कशेलुविश्वाशेलूकनीलाब्जानि द्वितीयके ।
तृतीये पाटलोशीरं मुस्ताक्षीरेण पाययेत् ॥ १०० ॥

कदलीकन्दनीलाब्जकन्दोशीरश्चतुर्थके ।
पञ्चमे क्षीरकाकोलीक्षीरिकाञ्च्युत्पलाम्बुजम् ॥ १०१ ॥

द्राक्षोत्पले केसरं च षष्ठे क्षीरेण पाययेत् ।
कपित्थत्वक्फले मूलसितालाजांश्च सप्तमे ॥ १०२ ॥

अष्टमे क्वथितं पेयं धान्यकोत्पलकेसरैः ।
एरण्डमूलं काकोलीं नवमे मोदकं चरेत् ॥ १०३ ॥

दशमे कुङ्कुमं यष्टिमधुकं च सितोत्पलम् ।
सितां च तण्डुलाम्भोभिः क्षीरयुक्तं तु पाययेत् ॥ १०४ ॥

वाशाशिफा वापि च पप्पणस्य(?) पत्राणि पिष्टानि जलेन नाभेः ।
अधः प्रलेपेन सुखप्रसूतिस्तच्छाखिकाधोमुखलम्बनाच्च ॥ १०५ ॥

प्रसूतिगेहोपरि सूतिकाले करञ्जमो(?) मूर्धनिवेशनाच्च ।
विलोममृत्युञ्जयजापतैलालेपेन गर्भस्य सुखप्रसूतिः ॥ १०६ ॥

द्राक्षाव्याघातरजनीचूर्णमध्वाज्यगर्भिणी ।
पटच्चरकृता वर्तिर्व्रणे योन्या विशोधनी ॥ १०७ ॥

शारिबोत्पलपत्रैर्वा लोध्रचन्दनयष्टिभिः ।
कल्के क्षीरेण तिलजं पचेत् तद् व्रणरोपणम् ॥ १०८ ॥

श्वेतपूलासपत्राणां(?) मनाङ्मरिचसिन्धुयुक् ।
कल्कं तैले पचेत् तद्वद् वयस्याश्च (?) व्रणापहम् ॥ १०९ ॥

तदेव नालिकेराज्यसिक्तं वह्निव्रणापहम् ।
हस्तपिष्टैरपामार्गपत्रैर्वा कारवल्लिजैः ॥ ११० ॥

किञ्चिल्लोणान्वितैर्बद्धं सद्यः क्षतविरोपणम् ।
तालाङ्कुरस्थचूर्णं च बद्धं सद्यः क्षतापहम् ॥ १११ ॥

षट्सप्ताष्टकनिष्कमात्रविधृतैः पथ्याक्षधात्रीफलै-
र्घर्मे प्रस्थजले विशोष्य कुडुबं तैलत्रयं प्रक्षिपेत् ।
गोपीचूर्णमपि क्षिपेत् सुविहितं तन्निष्कमात्रं स्थितं
धान्यानां निचये त्रिसप्तदिवसं कापालमर्शो हरेत् ॥ ११२ ॥

विश्वामित्रनिष्कं माजिल्लताया(?) वल्लीं च पत्रैर्वसुनिष्कमात्रम् ।
निष्काथ्य पीतं निशि तत् प्रभाते जरां(?) महोष्णं शमयेच्च दाहम् ॥ ११३ ॥

राजीनां कुडुबं पिष्ट्वा द्विप्रस्थं मथिते स्थितम् ।
ऊर्ध्वं दिनत्रयात् पीतं शीतिकाः सकला हरेत् ॥ ११४ ॥

रक्तगोक्षुरमूलानां त्रिनिष्कं क्षीरपेषितम् ।
क्षीरे सशर्करं पीतं शर्कराश्मनिपातनम् ॥ ११५ ॥

चूर्णं रसेनोत्तमकन्यकायाः समुद्रलोणाक्षतनालिकेरम् ।
तन्मूलवक्त्रं तु मृदा परीतं श्वासान् हरेत् संमुखदग्धमन्तः ॥ ११६ ॥

सिन्धूत्थाभ्रकमाक्षिकाणि कटुकैः पथ्यक्षधात्रीशिला-
भृङ्गाद्भिः शतशः पुटेषु विहितः कान्तः सहोषामृदा ।
एते तुल्यविभागिकास्तु सहितं सौतं ततोऽर्धांशकं
भृङ्गीमर्दितमात्रमानमदतो(?) मर्त्यस्य मृत्युः कुतः ॥ ११७ ॥

शाखापुरुषमात्रं तु मूले कोमलशल्मलेः ।
शिफां प्रधानां छित्त्वास्यच्छेदे कुम्भं निधापयेत् ॥ ११८ ॥

ऊर्ध्वं पुरुषमात्रे तु छित्त्वा तं शल्मलिं मृदा ।
अष्टाङ्गुलं समालिप्य गोकरीषेन्धनैर्दहेत् ॥ ११९ ॥

---

१. 'द्राव' ग. पाठः. २. 'ष्ककामवि', ३. 'मार्गो', ४. 'क्त्रं', ५. 'भ्रम- भ्रम' ख. पाठः.

षट्सप्तदिवसादूर्ध्वं कुम्भमुद्धृत्य तद्रसम् ।
छायाशुष्कं विधायैतं भृङ्गामलकवारिणा ॥ १२० ॥
सम्मर्द्य शुद्धकायस्तु बिलाल्पदमात्रकम् ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय प्लीहोदरविनाशनम् ॥ १२१ ॥
विशालामूलमादाय खादेदन्तः प्लिहां क्षणात् ।
विनाशयति हित्वा तं द्विधा पास्येत् प्लिहां हरेत् (?) ॥ १२२ ॥
सप्तार्कपत्रैः सिन्धूत्थं पुटदग्धं तु मस्तुना ।
पिबेत् प्लिहाहरं चैतद् धन्वन्तरिमतं यथा ॥ १२३ ॥
पुनर्नवस्य शुक्तस्य पाठायाश्च शिफां पिबेत् ।
तण्डुलोदकपिष्टे द्वे विद्रधिघ्ने च लेपयेत् ॥ १२४ ॥
ताम्रकिट्टं तु तक्रेण पिष्ट्वा लिप्तं तु कुष्ठजित् ।
वाकुचीपिष्टलब्धं तु भाण्डे क्षीरं दधीकृतम् ॥ १२५ ॥
तत् तक्रं नवनीतं च पीतं लीढं च कुष्ठजित् ।

तत्र मधुना सह नवनीतं लीढ्वा पश्चात् तक्रं पिबेत् । श्वेतकुष्ठं नश्यतीति यावत् ।

श्वेतापराजितामूलं विलिम्पेत् कुष्ठनाशनम् ॥ १२६ ॥
जलपिष्टशुण्ठिसहितं क्षीरक्वाथत्रिभागतः ।
गोमयाम्भोयुतं पीतं विषमज्वरनाशनम् ॥ १२७ ॥
तिक्तामुस्तापटोलानि लकपिञ्छं (?) च गुग्गुलु ।
कृष्णवाससि बद्ध्वा तद्धूपश्चातुर्थिकापहः ॥ १२८ ॥
क्षीरेण वा बलामूलं मेघनादाशिफा तथा ।
तण्डुलोदकपीता स्यादसृग्दरानिवारणम् ॥ १२९ ॥
रक्तशुक्लजपापुष्पं रक्तशुक्लस्रुतौ पिबेत् ।
क्षीरेण काल्यं तन्मूलं तत्क्वाथं पयसा निशि ॥ १३० ॥
नालिकेरस्य कुसुमं मृदावेष्ट्याग्निना दहेत् ।
तद्रसं पयसा पीतं शुक्लस्रावनिवारणम् ॥ १३१ ॥

---

१. 'तद् मू' क. ग. पाठः. २. 'स्य' ख. पाठः.

पुष्पाणि शल्मलेः क्षीरे ऋतौ पीत्वा चतुर्दिनम् ।
वन्ध्या स्यादभयाव्योषे पीत्वावन्ध्यैव जायते ॥ १३२ ॥

मञ्जिष्ठाञ्जनशारिबाब्दकटुकं नक्तैलजातीफला-
श्री(कण्ठ?खण्ड)त्रिफलाजटातगररुग्यष्टीचतुर्जातकैः ।
सोशीरागरुचोरयुग्ममृगनाभिः + पलाम्भोबिसै-
स्तैलं नेत्रशिरार्तिहन्तृ सपयः सिद्धं कुमारीरसे ॥ १३३ ॥

समेभदन्तामल(कं) पुटदाह्यमुषी(?) रसैः ।
भृङ्गस्य पिष्ट्वा तत्कल्कं आह्यमष्टपलं पुनः ॥ १३४ ॥

द्वात्रिंशत्पलभृङ्गाद्भिस्तदर्धं तिलजं पचेत् ।
खलतेरपि जायन्ते केशास्तत्तैलम्रक्षणात् ॥ १३५ ॥

रसाञ्जनमजाक्षीरं पुटदग्धेभदन्तयुक् ।
तत् पिष्टमायसगतं लिप्तं केशोद्भवप्रदम् ॥ १३६ ॥

खलतेरपीति यावत् ।

कृष्णगोमूत्रपिष्टं तु जपापुष्पं विलेपयेत् ।
इन्द्रलुप्तं हरेद् गुञ्जामूलं सा बृहतीरसे ॥ १३७ ॥

लघुबृहतीफलान्तर्वर्ती रस इति यावत् ।

धात्रीं कुष्ठं च मांसीं च मूलं नीलोत्पलस्य च ।
बलां जलेन सम्पेष्य लेपान्निबिडकेशता ॥ १३८ ॥

सगन्धामलमात्रास्थि लिप्तं केशच्युतिं हरेत् ।
नीलोत्पलशिफायष्टिकेसरास्तु समाम्रयः ॥ १३९ ॥

तैस्तुल्यामलकं लिप्तं कपालार्शोहरं परम् ।
आरग्वधदलं धात्री लाक्षापुन्नागबीजयुक् ॥ १४० ॥

सुखाम्बुपिष्टमालिप्तं कपालार्शोहरं परम् ।
बीजानि त्रिफलानां च शङ्खचूर्णं तु भृङ्गराट् ॥ १४१ ॥

रक्ताश्वमारकुसुमं नीलीचूर्णं च पेषितम् ।
गुलेन धूपितं लिप्तं कृष्णतां पलितं नयेत् ॥ १४२ ॥

---

१. 'लंमृक्ष', २. 'ल' ख. पाठः.

सर्वत्र काञ्जिकेनैव पेषयेत् ।

काकतुण्ड्याश्च पीलोश्च बीजतैलमयोमये ।
भाण्डे घर्मस्थमभ्यक्तं नस्याच्च पलितं हरेत् ॥ १४३ ॥

अन्तर्धूमं दहेन्महानर्कक्षीरे तु तद्रजः ।
कटुतैलयुतं लिप्तं शिरोरोगं व्यपोहति ॥ १४४ ॥

धात्रीपुन्नागबीजानि लाक्षारग्वधपल्लवाः ।
शु(श ? क्त) पिष्टा विलिप्तास्तु शिरोरोगहराः स्मृताः ॥ १४५ ॥

काकोडुम्बरमूलं तु तण्डुलोदकपेषितम् ।
दन्तस्य रुधिरास्रावं पीतमेव निवारयेत् ॥ १४६ ॥

पथ्याक्षामलनीलिका मधुकरीवाराहिमुण्ड्योऽमृता
ब्रह्मागश्च पुनर्नवा सतुरगा रक्तं तथा पीतकम् ।
चूर्णीकृत्य समांशकं शतपुटं कान्तं तदर्धांशतः
क्षौद्रालोलितमश्नतोऽब्दमजरं स्याच्चामरं तद्वपुः ॥ १४७ ॥

पथ्याक्षामलकाग्निकीटरिपवः स्याद् वाकुची भृङ्गिका
भल्लातश्च तथासनं शतपुटं कान्तं क्रमाद् वर्धितम् ।
तत्पात्रे मधुशर्कराज्यमृदितं लेह्यं तु संवत्सरात्
सिद्धिं प्राप्य जरां विजित्य शरदां जीवेत् सहस्रं सुखी ॥ १४८ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे मन्त्रपादे
नानारोगपटलः षट्चत्वारिंशः ।

---

## अथ सप्तचत्वारिंशः पटलः ।

अथाभिचाराः शत्रूणां धर्मवेदद्रुहां स्मृताः ।
ते च सप्तविधाः स्तम्भविद्वेषोच्चाटमारणैः ॥ १ ॥

भ्रान्त्युत्सादनयोगश्च यन्त्रमन्त्रहुतादिभिः ।
सिध्यन्त्यौषधयोगैश्च तत्तत्तन्त्रानिदर्शनात् ॥ २ ॥

प्रागेव कथितास्त्वस्मिन् ग्रन्थे गाणपतादिषु ।
त्रिष्टुबादिषु दौर्गेषु शक्त्यघोरास्त्रयोरपि ॥ ३ ॥
वैष्णवेषु नृसिंहादिकल्पेषु पृथगीरिताः ।
ते चाभिचर्याविषये विनियोज्या विजानता ॥ ४ ॥
धर्मसंरक्षणार्थाय लिख्यन्ते ये न दर्शिताः ।
वैभीतफलकामध्ये क्रोधं गैरिकया लिखेत् ॥ ५ ॥
मध्ये भान्तविदर्भाख्यां क्षेऽथ मांसाष्टकं बहिः ।
बाह्येऽष्टवज्रं माहेन्द्रं लिखेद् वासुकिना ततः ॥ ६ ॥
शङ्खपालेन चावेष्ट्य नाम वक्त्रे तयोर्लिखेत् ।
निर्माल्ये निखनेत् तां तु शिलां चोपरि निक्षिपेत् ॥ ७ ॥
परसैन्यादिकानां तु स्तम्भनं तदुदाहृतम् ।
मध्येऽब्जस्याह्वयं वर्म कवचं दिग्दलेष्वपि ॥ ८ ॥
कोणे च भूमिं पञ्चान्तः सार्द्धदिग्वज्रभूगृहम् ।
तत्सूचिषु लिखेद् वर्म बहिर्वारुणमण्डलम् ॥ ९ ॥
हारिद्रविघ्नक्रोडस्थं पीतद्रव्यार्चितं न्यसेत् ।
प्राग्वत् संस्तम्भनमिदं परचक्रादिविद्विषाम् ॥ १० ॥
यमराजसदोमेययमोयोरुणयोदय ।
दययोनिरयक्षेययक्षेशश्च निरामयः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं विकृताननाय हुंफट् स्वाहा ।

मन्त्रो द्वादशवर्णोऽयं यमस्य समुदीरितः ।

ओं ह्रीं कृष्णवर्णाय ओं विकृताननाय ओं नववक्राय पिङ्गलजटामकुटधारिणे ओं हुं सहस्रादित्योदयप्रभाय ओं ह्रीं त्रिणेत्राय नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं ह्रीं विकृताननाय हुंफट् । अस्त्रम् ।

यमान्तकस्य मन्त्रस्य षडङ्गानि स्वजातिभिः ॥ १२

ओं धूमान्धकाराय ठठ । इति यममन्त्रः । स्वयमेवाङ्गानि ।

वर्तुलत्रितये मध्ये दक्षिणोत्तरसंस्थितम् ।
रेखाद्वयं विलिख्याथ पूर्वपश्चिमतस्तथा ॥ १३ ॥

दक्षिणोत्तरयोर्लेख्यं शिरसी महिषाश्वयोः ।
कोणेषु रेखा चैकैका शूलान्यग्रेषु वै लिखेत् ॥ १४ ॥

रेखाग्रेष्विति यावत् ।

चिताङ्गाराक्षनिम्बाद्भिर्विलिखेच्छवकर्पटे ।
प्रथमे वर्तुले तत्र लिखेदक्षरपञ्चकम् ॥ १५ ॥
मध्यप्रागाप्ययाम्योदक्कोष्ठेष्वक्षरपञ्चकम् ।
क्रमेण य[1]ममेदक्षे नामकर्म च मध्यगम् ॥ १६ ॥
द्वितीये वर्तुले पूर्वयाम्याप्योत्तरकोष्ठगान् ।
रौ[2]द्रोयोयेति संलिख्य ततः कोष्ठै[3]चतुष्टये ॥ १७ ॥
कोष्ठद्वयेषु विलिखेज्जङ्घारुण नि[4]रावर ।
निरकरणानिदानिरक्षोऽनिलेशगान् (?) ॥ १८ ॥
पुनरन्तःस्थशूलानां पार्श्वकोष्ठाष्टकेषु वै ।
यमाष्टाक्षरमालिख्य पुनस्तद्द्वादशाक्षरम् ॥ १९ ॥
अन्तर्बहिःस्थशूलाग्रसूचिकासु लिखेदपि ।
यमान्तकं दलाग्रेषु नेमिबाह्ये दलेषु तत् ॥ २० ॥
एतदारभ्य यन्त्रं तु संपुटे तु शरावयोः ।
स्निग्धयोर्मध्यतो गच्छेत् श्मशानादौ खनेच्च तै[5]त् ॥ २१ ॥
बलिं च निक्षिपेत् पूर्वं द्रव्यैरेतैर्यमाय तु ।
पयोदध्योदनै रात्रीमध्वाज्यं मुद्गमाषकौ ॥ २२ ॥
मोदकं सक्तुलाजांश्च सर्वान् प्रागीशगोचरे ।

द्वादशाक्षरेण यमान्तकवक्त्रेषु नवकृत्वः क्षिपेत् ।

लोकेशेभ्यश्च कौबेर्यां यक्षेभ्यश्चाथ नैर्ऋते ॥ २३ ॥
राक्षसेभ्यश्च सर्वासु भूतेभ्यो दिक्षु निक्षिपेत् ।
चक्रस्य दक्षिणे स्वीयैर्नामभिः प्रक्षिपेद् बलिम् ॥ २४ ॥

---

१. 'त्वममे', २. 'दारो यो' क., 'रोदोये ये' ग. पाठः. ३. 'ग' क. पाठः. ४. 'रचन निरकरणानि दनि', ५. 'तम्' ग. पाठः.

यमराजश्च कालश्च यमो वैवस्वतस्तथा ।
शान्तश्च प्रेतराजश्च मृत्युरन्तक एव च ॥ २५ ॥

कृतान्तो धर्मराजश्च यमनामानि वै दश ।
एभिर्नमोन्तैः स्वार्णाद्यं यममन्त्रैर्बलिं हरेत् ॥ २६ ॥

ततो विघ्नादिमातृभ्यो वीरभद्राय च क्षिपेत् ।
लोकेशेभ्यश्च कौबेर्यां यक्षेभ्यश्चाथ नैर्ऋते ॥ २७ ॥

राक्षसेभ्यश्च सर्वासु भूतेभ्यो दिक्षु निक्षिपेत् ।
ह्रस्वा शक्तिश्च खं साग्निर्बिन्दुसर्गयुतो मनुः ॥ २८ ॥

शरावयोर्लिखेदेतत् साध्याख्याभ्यां विदर्भितः ।
इष्टमेकं लिखेत् स्वर्णलेखिन्या रोचनारसैः ॥ २९ ॥

श्मशानमषिसिक्तेन काकपक्षेण चापरम् ।
नद्यास्तु तीरयोस्तौ तु निखनेद् द्वेषकृन्मिथः ॥ ३० ॥

घर्मटिके घर्मटिके घोरे विद्वेषिणि विद्वेषकारिणि घोराघोरयोरमुकामुकयोः काकोलूकादिकृतपुंसोलूकपक्षाभ्यां पाणिभ्यां तर्पयेदपि । विद्वेषणम् ।

साध्याख्यां च विदर्भां च घर्मवायुगृहे लिखेत् ।
अष्टदिक्ष्वनिलः सर्गी स्याद्दक्षफलके ततः ॥ ३१ ॥

पुनः पुनर्घर्मटिकया लिखित्वा मार्जयेच्च तत् ।
तच्चूर्णं (शत्रु ?) शिरसि न्यस्तं शत्रोरुच्चाटकारकम् ॥ ३२ ॥

धुर्धूराम्भोमषियुतं श्मशानध्वजकर्पटे ।
पूर्वोक्तयन्त्रमालिख्य कृष्णसूत्राभिवेष्टितम् ॥ ३३ ॥

काकानने तन्निक्षिप्य शत्रुसैन्ये विसर्जयेत् ।
सेनोच्चाटनं भवति ।

श्मशानवस्त्रे तद्भस्म काकपक्षाहिचर्मयुक् ॥ ३४ ॥

रक्ततन्तुवृतं न्यस्तमुच्चाटनकरं परम् ।
चिताभस्म नरस्यास्थि ब्रह्मदण्डीयुतं खनेत् ॥ ३५ ॥

काकपक्षं नरस्यास्थि राजीवोच्चाटनं द्वयम् ।
अश्विकीलं त्रियश्रं तु दुर्गाबीजयुतं खनेत् ॥ ३६ ॥

शत्रुपादे गृहे वापि भवेदुत्सादनं रिपोः ।
परिद्वन्द्वं च वर्मान्ते स्वाहान्तं मनुनामुना ॥ ३७ ॥

निम्बकीलं विशाखायां खनेदुत्सादनं गृहे ।
निम्बस्थवायसगृहं दग्ध्वा तु चितिकानले ॥ ३८ ॥

तद्भस्म द्वारि विन्यस्तं गृहोत्सादनमावहेत् ।
तदेव शिरसि क्षिप्तं विद्वेषोच्चाटकारकम् ॥ ३९ ॥

नमो भगवतोन्मत्त रुद्राशँ भ्रम भ्रमय अमुकं वित्रासय उद्भ्रमय रुद्र!
रौद्रेण रूपेण हुंफट् ठठ ।

ऋषिः स्यादस्य कैवर्तः ककुप् छन्दोऽस्य देवता ।
रुद्रः कृष्णाष्टमीपूर्वं जपेद् यावच्चतुर्दशी ॥ ४० ॥

रात्रौ त्रिलक्षं सञ्जप्य श्मशाने तत्र होमतः ।
धुर्धूरसमिधां शत्रून् भ्रमत्येवाष्टभिर्दिनैः ॥ ४१ ॥

हेमगैरिकजां शत्रोः पुत्तलीं हेमसूचिभिः ।
मध्ये प्रतिष्ठितप्राणां सद्यः शत्रुर्मरिष्यति ॥ ४२ ॥

कालदष्टे भयकारि दर मर्द संहर हुंफट् ठठ । कालदष्टे ठठ । भय-
कारि ठठ । दर मर्द ठठ । संहर ठठ । हुंफट् ठठ ।

कुचकोऽस्य ऋषिश्छन्दो निचृद् दैवं यमः स्वयम् ।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां शिवमिष्ट्वा पयोव्रतः ॥ ४३ ॥

पञ्चलक्षं जपित्वा तु सिद्धमन्त्रो भवेत् ततः ।
नाभिमात्रे जले स्थित्वा पटेनार्द्रेण विग्रहम् ॥ ४४ ॥

विधाय संशिरोजापात् पक्षाच्छत्रुर्मरिष्यति ।
दृढकण्ठे ! विरूपाक्षि ! संक्षाणि ! स्वं महोदरि ॥ ४५ ॥

हन शत्रुं त्रिशूलेन क्रुद्धस्य पिब शोणितम् ।

दह पच मथ मारय शोषय उत्सादय नाशय हुंफट् ठठ । अस्याङ्गानि । सञ्जीवनि ! ऊर्ध्वकेशिनि ! प्रज्वलितशिखे ! मायात्रैलोक्यस्वरूपिणि! सहस्रपरिवर्तिनि ! तारकाक्षिमारिणि ! ।

एतानि जातियुक्तानि षडङ्गानि यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥

ऋषिस्तु पिप्पलादोऽस्य निचृच्छन्दस्तु देवता ।
भद्रकाली समाख्याता लक्षजापेन सिध्यति ॥ ४७ ॥

शुष्कान्त्रमांसजठरा कृशदीर्घकाया दंष्ट्राकरालवदना सकपालशूला ।
वृत्तोग्रपिङ्गनयना ज्वलितोर्ध्वकेशी व्यादीर्घघोणविकटावतु गृध्रकर्णी ॥ ४८ ॥

कर्णिकायां गृध्रकर्णीं कोणेष्वङ्गानि दिक्ष्वपि ।
अस्त्रं नेत्रं तथैवाभ्यां बहिर्मातॄंश्च पूजयेत् ॥ ४९ ॥

कपालान्तस्तु विलिखेत् साध्याख्यान्तरितं मनुम् ।
एकलिङ्गे जपेन्मन्त्रं याम्यवक्त्रस्तदासनः ॥ ५० ॥

मासान्तर्मारणादीनि सिध्यन्त्येवास्य रात्रिषु ।
निम्बपत्राग्रतद्बीजपिष्टेनालिप्य विग्रहम् ॥ ५१ ॥
स्निग्धयोर्मध्यतो गच्छेज्जपंस्तौ द्विषतो मिथः ।
कणैस्तत्पादरजसां गर्ते पैप्पलिके हुतात् ॥ ५२ ॥

उत्सादकृद्धोर्ध्वबाहुर्जपेद्वाभिमुखो रवेः ।
अस्थिकीलं खनेत् पादे स्यादुच्चाटस्तु दक्षिणे ॥ ५३ ॥

वामे व्याधिर्मृतिर्वा स्यात्समन्त्रं तु गुणाश्रकम् ।

ह्रीं श्रीं ह्रीं प्रेटधनतहुं शत्रुं नाशय हुंफट् ठठ ।

ससाध्याख्यं जपेन्मन्त्रं शत्रुश्चातुर्थिकज्वरी ॥ ५४ ॥

शूली वा स्यादस्थिविद्धां गैरिकप्रतिमां लिखेत् ।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव पुत्तलीषु ततः क्रियाः ॥ ५५ ॥

सिध्यन्त्यष्टोत्तरशतं[२] जपेन्मन्त्रमिमं क्रमात् ।
सजीवनामहृत्साध्यपुत्तली द्वादशाङ्गुला ॥ ५६ ॥

अमुष्य प्राणा इह प्राणा अमुष्य जीव इह स्थितः। अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनःप्राणा इहायान्तु ठठ।

यत्रामुष्य पदं तत्र साध्यनाम नियोजयेत्।
वामकर्णाढ्यमीनस्तु त्रिगुणोऽनन्तयुग् विषम्॥ ५७॥
कुम्भोषढीनेत्रयुतष्टौ चेत्यष्टाक्षरो मनुः।
धूमावती देवतास्य ज्येष्ठा या चातिभीषणा॥ ५८॥
ऋषिस्तु पिप्पलादोऽस्य निचृच्छन्दोऽङ्गकल्पना।
स्वयमेवाभिचारे तु विनियोगोऽस्य तु स्मृतः॥ ५९॥
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां मुक्तकेशो दिगम्बरः।
लक्षं जपेत नक्ताशी श्मशाने विपिनेऽपि वा॥ ६०॥

दीर्घाकारातिकृष्णा कृशविकटतनुर्मुक्तकेशी विरूपा
वक्रोत्तुङ्गाग्रनासा प्रविरलदशना वृत्तपिङ्गत्रिणेत्रा।
अस्थिभूषा रोमशाङ्गी मलचितवसना काकवाहध्वजाढ्या
पायाद् धूमावती वः प्रतिनवविधवा धूतशूर्पाग्रहस्ता॥ ६१॥

अष्टम्यां वाथ भूतायां काकं रात्रौ चितानले।
दग्ध्वा तद्भस्म जपितं क्षिप्तमुत्सादनं रिपोः॥ ६२।
नपुंसकानि कोणेषु मकारस्य विलिख्य तु।
मध्ये नामद्वयं लेख्यं षट्कोणे विषलेपितम्॥ ६३॥
कार्पासयष्ट्या सन्ताड्य जपेद् विद्वेषणं द्वयोः।
चिताकाष्ठैश्चितावह्नौ भस्महोमेन मारणम्॥ ६४॥
उन्मत्तवह्नौ भसितं तत्पादरजसा युतम्।
जुहुतो मासमात्रेण शत्रोरुन्मत्तता भवेत्॥ ६५॥
साध्याख्यालिखितैर्निम्बैः पत्रैर्हुत्वा तु मारयेत्।
सर्जीभूतेन लेख्यं तत् कालेषु गुलिकादिषु॥ ६६॥
गुरुमन्दांशकर्क्षेषु तयोर्वारे तदंशके।
संरिक्ते स्थविरो नाम योगः क्षुद्रेषु शस्यते॥ ६७॥

वैनाशिकं वधर्क्षं च कुजो राशिस्तथाष्टमः ।
क्षुद्रकर्मसु शस्ताः स्युरर्धरात्रं विशेषतः ॥ ६८ ॥

मार्गबीजैः समरिचैरालिप्य प्रतिमां रिपोः ।
नक्षत्रवृक्षजां रात्रौ क्वथयेत् स्याज्ज्वरी रिपुः ॥ ६९ ॥

कर्णीदर्व्या भ्रामयेच्च भ्रानः प्रादेशपत्रकैः ।
+ + + + + + पत्रशाखिभिस्तां विधाय तु ॥ ७० ॥

एधोभिरश्विजं होमाद् दुनाति त्रितये रिपुम् ।
कुण्डे शूलाधिरूढां तां संस्थाप्य भवनान्मृतम्[1] ॥ ७१ ॥

सैकतीं प्रतिमां वास्मिन् (ऊमुड्ढि अ?) मारयेत् ।

अश्विखमिद्भिर्होमादिति[2] यावत् ।

अयःकीलैस्तु तां विद्धामधोवक्त्रां तु तां खनेत् ॥ ७२ ॥

निर्माल्ये तत्र जपतो रिपुर्मृत्युपदं व्रजेत् ।
मन्त्राक्षरद्वयादूर्ध्वं नाम योज्यं जपादिषु ॥ ७३ ॥

मन्त्राभिधानसंयुक्तं षट्कोणे तालपत्रकम् ।
विषलिप्तं तु निर्भिद्य नद्यास्तीरद्वये खनेत् ॥ ७४ ॥

विद्वेषो भवति ।

हेमाम्भोभिश्चित्रकं लोणपिण्डं गेहे धूमं त्रीणि चाप्यूषणानि ।
पिष्ट्वावश्यं सूरणं तद्विषाख्यं यद् विद्वेषे मारणे तत् प्रयोज्यम् ॥ ७५ ॥

भ्रामसप्तकवल्मीकमृदश्च खरवालकम् ।
एकाश्वित्वक्[3]काकमूलपक्षे भस्म श्मशानकम् ॥ ७६ ॥

वह्निमन्थश्चैवन्दाकमर्कटीब्रह्मदण्डिकाः ।
ब्रह्मदण्डिचिताभस्म केशौ चण्डालविप्रयोः ॥ ७७ ॥

चिताग्निदग्धनिम्बस्थवायसायतनं तथा ।
शुनकास्थीश्मनिर्माल्यं खरवालेन चास्थि च ॥ ७८ ॥

---

१. 'नात् स्मृतिः । सै' क. ग. पाठः. २. 'ति' क. पाठः. ३. 'क्षो' ग. पाठः. ४. 'स्व' क. पाठः.

मर्कटी गुलिके युक्ता दशचूर्णमिदं भवेत् ।
एते तु गुलिके लब्ध्वा समांशा कालिकागृहे ॥ ७९ ॥

मन्त्रेण चूर्णिता लक्षत्रयजापेन साधिता ।
दशचूर्णमिदं न्यस्तं शत्रुवह्निमठादिषु ॥ ८० ॥

सर्वोत्सदनकृद् गुह्यं पिप्पलादेन भाषितम् ।
एकाश्रिकीलायसाख्यं + + सप्ताङ्गुलं रिपोः ॥ ८१ ॥

समन्त्रकं खनेत् पादे तस्योच्चाटनकृद् भवेत् ।
वनस्थानेषु दुर्गायाः काल्याया वाथ शर्कराः ॥ ८२ ॥

अश्रिकीलत्रयधृते कपाले शुक्तलोणवत् ।
तद्यष्टया भर्जिता जप्या विकीर्णाः सर्वचाटनाः ॥ ८३ ॥

सन्ध्यायां शिवमन्दिरेषु नवसु प्राप्योत्थिताः शर्करा

+ + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + ।
+ + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + +
+ + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + ॥८४॥
+ + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + + ।
नग्नो + + + + + + + + + याः शर्करोच्चाटनका विसृष्टाः ॥ ८५ ॥

मध्यादिविद्यां विलिखेत् षडश्रे रक्त + + वा + पुर महत्त्व ।
अग्नेश्च वायोर्नृकपालमध्ये प्रेताहितन्नं निखनेत् श्मशाने ॥ ८६ ॥

क्षुद्रप्रतीकारविधिः सुदर्शनमनूदितः ।
चक्रहोमाभिषेकाद्यैर्नश्यन्ति क्षुद्रजातयः ॥ ८७ ॥

दौर्गैश्च नारसिंहाद्यैरघोरास्त्रापराजितैः ।
क्षुद्राभिचारशान्त्यर्थाः प्रयोगाः सम्प्रदर्शिताः ॥ ८८ ॥

तथापीह प्रतीकाराः प्रत्याङ्गिरसचोदिताः ।
लिख्यन्तेऽत्र समासेन जनानां हितकाम्यया ॥ ८९ ॥

प्रत्याङ्गिरससूक्तेन पञ्चत्रिंशदृचा स्मृताः ।
पादाधिका खिले दृष्टा ऋषिणाङ्गिरसा पुरा ॥ ९० ॥

प्रत्यांङ्गिरस एवासामृषिः सामान्यतः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् स्मृता कृत्या देवता मातरस्तु ताः ॥ ९१ ॥
ऋचां यत्र तु बह्वीनां समवायैस्तु सूक्तके ।
आचार्यौ यास्कशाण्डिल्यौ वैश्वदेवं तथा हु म् ॥ ९२ ॥
ऋचा यांकल्पयन्त्या तु जपहोमादिकर्मभिः ।
क्षुद्राभिचारा नश्यन्ति तानेव प्रतियान्ति हि ॥ ९३ ॥
कुम्भं संस्थाप्य विधिवत् कुण्डं कृत्वास्य दक्षिणे ।
स्वशाखोक्ताग्निमाधाय मान्त्रिकं वा विधानतः ॥ ९४ ॥
खड्गैः संवेष्ट्य तौ वह्निं कपाले स्थापयेदपि ।
कृष्णाष्टम्यादि सन्ध्यायां रक्तगन्धाम्बरादिकः ॥ ९५ ॥
गोमूत्रसिक्तापामार्गसमिद्भिश्च घृतेन च ।
सिद्धार्थैः सर्षपैश्चैव चरुणा च पृथक् पृथक् ॥ ९६ ॥
नवाहुतीः कपालाग्नौ जुहुयात् तु समाहितः ।
यांकल्पयन्त्या नैर्ऋत्यादीशान्तं दिनसप्तकम् ॥ ९७ ॥
चतुर्दश्यां ततस्तत्तु कपालं पृष्ठतः क्षिपेत् ।
क्षुद्राणि चाभिचाराश्च नश्यन्ति व्याधयोऽपि च ॥ ९८ ॥
यथा विद्युद्धतेत्याद्यात् समिधः कुरवोद्भवाः ।
जुहुयात् क्षुद्रनाशाय गव्यैः प्रतिसरादिना ॥ ९९ ॥
त्रैलोहीं करमुद्रां च होमे सम्पात्य धारयेत् ।
गोमूत्राद्यैः क्षिप्रया वाप्यपामार्गसमिच्छतैः ॥ १०० ॥
नवभिर्जुहुयात् सप्तदिनं क्षुद्रादिशान्तये ।
गुग्गुलुं पञ्चगव्याक्तं जुहुयाद् वा सपत्नया ॥ १०१ ॥
प्रत्येकमेते होमाः स्युरभिचारकशान्तिदाः ।
ऋग्भिः शिष्टाभिरपि च प्रोक्तद्रव्यैः पृथक् पृथक् ॥ १०२ ॥
जुहुयात् क्षुद्रकृत्यानां रक्षायै रोगशान्तये ।

---

१. 'त्य' ख. पाठः. २. 'चां त्रये तु' क. ख. पाठः. ३ 'ये तु सू' ख. पाठः. ४. 'हु' ग. पाठः. ५. 'काः'. ६. 'यो' ख. ग. पाठः.

गव्यानि पञ्चेक्षुतिलान् यवांश्च (मुद्गान् ?) शालींश्च गोधूमकबिल्वमाषान् ।
तिलाब्जबीजानि च पद्मपत्रे ताम्रे निखन्याद् भुवि नागयोगे ॥ १०३ ॥

ताम्रसमुद्गके निधाय सुदर्शनेनायुतमन्त्रितमिति यावत् ।

अमावास्यान्त्ययामार्धे प्रथमा घटिका स हि ॥ १०४ ॥
सार्पे मुहूर्ते सार्पर्क्षे सार्पे तु करणे तथा ।

अयं च नागयोगः ।

मूलानि पञ्चापि मृदश्च पञ्च सर्वाणि बीजानि च पञ्चगव्यैः ।
मृत्पात्रगर्भे तु नृसिंहबीजं जपन् निखन्याद् भुवि नागयोगे ॥ १०५ ॥

क्षुद्राणि नश्यन्ति श्रियश्च वर्धन्ते ।

चतुःशरावेषु सिताब्जवर्त्या प्रज्वाल्य दीपान् कपिलाघृतेन ।
निधाय भाण्डे निखनेन्निशायां विवादभूः सास्य भवेत् समृद्धा ॥१०६॥

नग्नो भूत्वा स्वयं नागैः[1] क्षेत्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ १०७ ॥
ग्रहणे नागवक्त्रेण दर्शेद् भूमिः स्ववसाद् भवेत् ।

पञ्चाब्जपत्राणि पृथक् तु गव्यैरापूर्य चैकीकृतनालबद्धम्[2] ।
क्षुद्रापहं पत्रगतं निखन्यात् स्मृत्वा तु शेषं भुवि नागयोगे ॥ १०८॥

क्रोधाग्नेः कैलः[3] कटः हुंफट् ठठ । अर्चिषे[4] ठठ । ज्वालाधूम्राय ठठ ।
पातालरुद्राय ठठ । उत्तिष्ठ पुरुषाय ठठ । धनुर्धराय ठठ ।

एतानि जातियुक्तानि षडङ्गान्यस्त्रमन्त्रतः ॥ १०९ ॥
ऋषिस्तु पिप्पलादोऽस्यच्छन्दोऽनुष्टुप् समीरितम् ।
क्रोधाग्निर्देवता रुद्रो दशबाहुस्तु भैरवः ॥ ११० ॥
पाशाङ्कुशौ खड्गखेटं शरं चैव शरासनम् ।
खट्वाङ्गभुजगाभीतिवरदान् दधतं क्रमात् ॥ १११ ॥
नीलजीमूतसङ्काशं पिशङ्गोर्ध्वशिरोरुहम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं नानानागैश्च भूषितम् ॥ ११२ ॥

---

१. 'गं' क. ख. पाठः, २. 'गबन्धम्' ग., 'लबद्धः' ख. पाठः. ३. 'कट् कट् हुं', ४. 'ते' क. पाठः.

सर्वाभिचारहृन्मन्त्रः साङ्गः क्रोधाग्निरीरितः।
रौद्रस्थाने भैरवं तु पूजयेत् पश्चिमामुखम् ॥ ११३ ॥
पयोव्रतो लक्षजापी सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत्।
सन्ध्यासु रुद्रपञ्चम्यां कृष्णाष्टम्यां शिवानले ॥ ११४ ॥
त्रिकोणकुण्डेऽश्विसमित्सहस्रैरष्टकोत्तरैः।
जुहुयात् क्षुद्रशान्त्यर्थमष्टम्याद्यष्टवासरम् ॥ ११५ ॥
कारस्करैर्निशावक्त्रे तं नीराज्य जुहोतु च।
चत्वरे तं विसृज्याग्निं हुत्वा क्षेप्यो बलिस्तथा ॥ ११६ ॥

ओं नमो रुद्रगणेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रक्षिपामि बलिम्। प्रतिगृह्णन्तु शान्तये ठठ।

सक्रुरक्तौदनेनाष्टदिक्ष्वनेन बलिं क्षिपेत्।
लोकेशक्षेत्रपालेभ्यो बलिं निर्हृत्य वै पुनः ॥ ११७ ॥

भूतानि यानी[1] वै वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत् प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु रक्षन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ ११८ ॥

ग्रियाकषा रौद्राः सन्तोऽसन्तः सदसन्तो विरूपा विश्वरूपा घोररूपा मृगास्या विहगाननाः पुष्टिकृतोऽपुष्टिकृतः कामदाश्च बलिमिच्छन्तस्तेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः सगणेभ्यो नमो नमः।

अयं होमबलिश्चैव विश्वक्षुद्रविनाशनः।
पालाशनिम्बापामार्गास्तथा कुरवकेधसः ॥ ११९ ॥
चतुःक्षीरद्रुमाणां च सिद्धार्था गुग्गुलुस्तिलाः।
पञ्चगव्याज्यदुग्धानि चरुं चेति क्रमेण तु ॥ १२० ॥
साष्टाधिकं सहस्राणि हुत्वा क्षुद्राणि नाशयेत्।
ग्रहभूतादिमोक्षश्च रोगशान्तिश्च जायते ॥ १२१ ॥
अपामार्गाश्विसमिधां क्षीरस्य च हुतं तथा।
प्राह्णे कृष्णचतुर्दश्यां क्षीरं हुत्वा घटोदके ॥ १२२ ॥

---

1. 'ल' ख. पाठः.

तत् संपात्याभिषेकात् स्याद् ग्रहग्रस्तस्य मोक्षणम् ।
अङ्गारेणाश्विवृक्षस्य तस्यैव फलकोपरि ॥ १२३ ॥
यमराजाह्वयं चक्रं लिखित्वाराध्य भूतिदम् ।
तत्र स्थाप्याश्विसमिधां हुत्वा गोमूत्रसेचितम् ॥ १२४ ॥
अयुतं ग्रहमोक्षः स्यात् कुर्याच्च द्विजभोजनम् ।
चण्डीशमहेश्वराय अमुकस्य शीघ्रं विनाशय ग्रहं ठठ ।
अरिष्टारिष्टनीडं तु दग्ध्वा तु चितिकानले ॥ १२५ ॥
तत् कर्पटे निबध्याथ मन्त्रमेनं जपेत् स्पृशन् ।
अग्निध्वजवति[1] क्वापि पृथग् भानुसहस्रकम् ॥ १२६ ॥
तद्भस्म शत्रोः शिरसि गृहे ग्रामेऽथवा पुरे ।
क्षिप्तमुत्सादनोच्चाटे करोति नचिरादिव ॥ १२७ ॥
तस्य शान्त्यै तु तद्भूमिं खनित्वोत्सृज्य तां मृदम् ।
प्रतीकारविधानेन हुत्वा शान्तिर्भविष्यति ॥ १२८ ॥

क्षुद्रकृत्यमिति यत् प्रदर्शितं तत्र विप्रनृपयोः प्रयोजयेत् ।
आततायिषु च पापकारिषु श्रेयसोऽवनकृते प्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥
प्रागात्मनः कारयितुश्च रक्षां कृत्वा तु कुर्यादरिनिग्रहाद्यम् ।
सिद्धेऽथ कृत्ये कृतनिष्कृतिः सन् प्राज्ञः प्रतीकारविधिं विदध्यात् ॥ १३० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
क्षुद्रतत्प्रतीकारपटलः सप्तचत्वारिंशः ।

---

## अथाष्टचत्वारिंशः पटलः ।

अथ संवननाकृष्टिविषये किञ्चिदुच्यते ।
दीर्घं कूर्मं कार्णिविषं सोष्ठोमाकान्तदारुकः ॥ १ ॥
अमुकं दहवीप्सान्तं पचशब्दो ममेति च ।
वशमानय चाग्नेऽष्टौ विकृत्यर्णो मनुः स्मृतः ॥ २ ॥
त्रिसंख्यं गुरुसंख्यं तु जपेद्[2] गुरुदिनानि तु ।
सन्ध्यायां शुक्तलवणं सक्षौद्रं वशकृद्धुतम् ॥ ३ ॥

---

१. 'नि' क. ग. पाठः. २. 'पे गु' ख. पाठः.

काफुण्डेणिषिणि काफुण्डालि अमुकं दह पच शीघ्रं वशमानय ठठ।

सकार्पासास्थिलवणदन्तकाष्ठाङ्घ्रिपांसुभिः।
अनेन सन्ध्याहोमेन सप्तरात्राद् वशीकरम् ॥ ४ ॥

नमः कृष्णाय यक्षाय णाविरि णाविरि चले[1] विचले चित्ते रेतो मोचय ठठ।

अश्वारिकुसुमं रक्तं सप्तवारै[2]जपात् पुरैः।
यस्यास्तु भ्रमयेत् सास्य वश्या स्यात् क्षरति ध्रुवम् ॥ ५ ॥

यक्षाणां नमः। असमे कुसुमे ठठ।

एतत्सप्तजपात् पुष्पं दत्तं वश्याय वा फलम्।
चतुष्पत्राम्बुजं भूर्जे रोचनाचन्दनार्पितम् ॥ ६ ॥

सनामकर्णिकं पत्रचतुष्कलिखिताङ्कुशम्।
आज्यस्थमर्चयेत् पुंस्त्रीवश्यमाकर्षयेदपि ॥ ७ ॥

साग्निः साख्योऽर्धनारीशः साङ्घ्रिदण्डी तु वाससी।
चिताङ्गारेण लिखितं[4] योनिस्थः साध्यवश्यकृत् ॥ ८ ॥

वृषमेषौ दृशा युक्तौ दीर्घस्य ब्राह्मणोऽन्तगौ।
मनोरञ्जनि ठद्वन्द्वं दशार्णो वश्यकृन्मनुः ॥ ९ ॥

लिखेद् वामतले लाक्षारसेनाष्टदलाम्बुजे।
पत्रस्थमन्त्रं वश्याय दर्शयेद्धृदि वा न्यसेत् ॥ १० ॥

मन्त्रं लिखित्वा वश्यादौ जपेदायाति काङ्क्षितौ।
जपित्वानेन दधिजं योनौ विन्यस्य तज्जपात् ॥ ११ ॥

तेनाज्येन मषी क्लृप्ता नेत्रस्था भर्तृरञ्जिनी।
अथात्र सर्ववश्यानां मुख्यो लवणसंज्ञितः ॥ १२ ॥

मन्त्रो ह्याथर्वणोऽस्यर्षिर्वरुणो लवणोऽङ्गिराः।
छन्दोऽनुष्टुब् महारात्रिर्भद्रकाली च देवता ॥ १३ ॥

अग्निरित्यपरे प्राहुर्ध्यानं च द्विविधं स्मृतम्।

---

१. 'ले चि' ख. ग. पाठः २. 'रि' ख. पाठः. ३. 'नः' ग. पाठः. ४. 'ता' ख. पाठः. ५. 'भः' ग. पाठः. ६. 'तम्' ख. पाठः.

काली कालघनोपमा त्रिणयना शूलासिखट्वाङ्गकान्
नागं दक्षिणतोऽन्यतो डमरुकं मुण्डं च खेटं करैः ।
बिभ्राणास्रकपालकं च विलसद्दंष्ट्राहिभूषोज्ज्वला
ध्येया पिङ्गकपर्दसङ्कटशिरोमाला सुनीलाम्बरा ॥ १४ ॥

अग्निश्च,

त्रिलोचनो मेषगतः कपर्दी स्रुवं च शक्तिं वरदाभये च ।
भुजैर्दधत् कुङ्कुमपिङ्गवर्णो विभूषितोऽग्निर्धवलाम्बराद्यैः ॥ १५ ॥
मांसकुम्भावुमाकान्तो दार्घोऽनुस्वारभूषित[1]ः ॥ १६ ॥

असि तीक्ष्णोऽस्युग्रोऽसि हृदयं तव लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता ।

लवणे हू[2]यमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः ।
लवणं पचति पाचयति लवणं छिन्दति भिन्दति ।
अमुकं दह गात्राणि दह मांसं दह त्वचम् ॥ १७ ॥
दह त्वचास्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जकां दह ।
यदि वसति योजनशतं नदीनां वसतेऽन्तरे ॥ १८ ॥
नगरे लोहप्राकारे कृष्णसर्पशतार्गले ।
स दग्ध्वानयते शीघ्रमग्नेर्लवणस्य तेजसा ॥ १९ ॥
अत्रैव वशमायाति लोणमन्त्रपुरस्कृतम् ।
या रात्रिः शल्यमुद्धृत्य शूलाग्रारोपितस्य च ॥ २० ॥
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा ।
चिटि[3]! चण्डालि! महाचण्डालि! अमुकं वशमानय ठठ ।
ध्यायन् जपेत् सहस्रं यस्तस्य विश्वं वशे भवेत् ॥ २१ ॥
जानुमात्रजले रात्रौ भद्रकालीं स्मरन् जपेत् ।
यमुद्दिश्य स वश्यः स्यात् सहस्रमथ वा शतम् ॥ २२ ॥
रक्तस्रग्गन्धकुसुमैर्देवीमग्निं च पूजयेत् ।
साध्यनामविदर्भं तु तालपत्रे लिखेज्जपेत् ॥ २३ ॥

---

१. 'भू' क. पाठः. २. 'तां', ३. 'टि' ख. पाठः.

सहस्रं तं[1] तु निखनेद् भद्रकालीगृहे यदि ।
साध्यो वश्यो भवेत् तस्य यावज्जीवमसंशयः ॥ २४ ॥
साध्यर्क्षवृक्षफलके समासीनस्तु वाग्यतः ।
कृष्णाष्टम्यां निशायां तु यामादूर्ध्वमुदङ्मुखः ॥ २५ ॥
रक्तगन्धाम्बरधरः कुण्डे वा स्थण्डिलेऽथवा ।
इष्ट्वाग्निमग्रेः प्राग्भागे भद्रकालीं तु पूजयेत् ॥ २६ ॥
रक्तवस्त्रेऽच्छलवणनिर्मितां साध्यपुत्तलीम् ।
सजीवनामहृदयां सप्राणेन्द्रियसन्निधिम् ॥ २७ ॥
क्षौद्रासिक्तामग्निमुखाद् व्याहृत्या जुहुयात् परम् ।
आवाह्याग्नौ भद्रकालीमाराध्य ध्यानमास्थितः ॥ २८ ॥
वामपादं समारभ्य यावद्वामकरान्तकम् ।
विभज्य तां तु जुहुयाद् यावदाहुतिसप्तकम् ॥ २९ ॥
आज्यं व्याहृतिभिर्हुत्वा भूतक्रूरेण वै बलिम् ।
तिलराजिनिशासक्तुदधिमिश्रौदनं क्षिपेत् ॥ ३० ॥

णफो णफो कालरात्रिगणेभ्यः सर्ववश्यकरेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः। प्रतिगृह्णन्तु सर्ववश्याय सर्वशान्तये बलिमिमं ठठ ।

पश्चात् साध्यस्य हृदयं मन्त्रेण स्वहृदि न्यसेत् ।
स एवाहमिति स्मृत्वा जपेत् सप्तत्रिवारकम् ॥ ३१ ॥
अग्निं चैव महारात्रिमुद्वास्य तु समापयेत् ।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी ॥ ३२ ॥
तावल्लवणहोमं तु कृत्वा सर्वं वशं नयेत् ।
साध्यो दद्याच्च सर्वस्वं दासवन्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥
आस्यदघ्नजले स्थित्वा सहस्रावृत्ति कर्षणम् ।
मुक्तपुष्पसहस्रेण प्रत्येकं तत्पदे क्षिपेत् ॥ ३४ ॥
जपित्वा भद्रकाल्यास्तु साध्याकृष्टिकरं परम् ।
तालपत्रे लिखेन्मन्त्रं साध्यनामविदर्भितम् ॥ ३५ ॥

---

१. 'तं तु' ग. पाठः.　२. 'धू' ख. पाठः.

आज्यक्षीराम्भसि क्वाथ्य जपन्नाकर्षयेज्जनम् ।
नास्यास्ति हि पुरश्चर्या नोपवासादिकाः क्रियाः ॥ ३६ ॥
गृहीत एव फलति जपध्यानादियोगतः ।

**लवणमन्त्राधिकारः ।**

---

मेषाषढी सहग्वल्कौ क्लिन्ने भान्तोऽत्रिणा द्रवे ॥ ३७ ॥
हृदयं च सदाक्लिन्ना जपाद्यैः सर्ववश्यकृत् ।

नित्य ग्रे हुंफट्[1] । नित्यायै ठठ । नित्यक्लिन्ने हुम् । नित्यक्लिन्ने नमः ठठ ।

स्त्रमालोक्य जपेद् विद्यां सा क्षरेद् वशगा तथा ॥ ३८ ॥
तज्जापजलपानेन गन्धाद्यालेपनेन च ।
कुसुमादिप्रदानेन वशयेदखिलं जनम् ॥ ३९ ॥

देवश्रीमुखश्रीयक्षि[2] महायाक्षि! पद्मावति! अमुकं मे वशमानय ठठ ।

छत्रफलकायुग्मं माहेन्द्रमनुनामयुक् ।
स्वीयं परोपरि न्यस्तं गुप्तं सम्यग् वशीकरम् ॥ ४० ॥

नमो मातङ्गानाम् । नमो मातङ्गीनाम् । नमो मातङ्गकुमारिकाणाम् । तद्यथा कुरु कुरु ठठ ।

वाल्मीकपुत्तलीं साख्याशिरसं प्राणसंयुताम् ।
जपेदाक्रम्य पादेन त्रिसन्ध्यं तद्वशीकरम् ॥ ४१ ॥
दक्षिणेतरपादाभ्यां पुंस्त्रीवशकरं क्रमात् ।

सप्तदिनमिति यावत् ।

पाशशक्त्यङ्कुशाद्युक्तां जपेत् स्वैक्यमुमां स्मरन्[3] ॥ ४२ ॥
नियुतं स वशे विश्वं जपाद्यैः कुरुते स्फुटम् ।

हृद्दीर्घवेधा कौलश्च धेहा शलवें[4] गणधं[5] प्रियाय सर्वजनसंमोहनाय ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु ठठ ।

अयं मन्मथमन्त्रस्तु स्वैक्यं ध्यात्वा तु मन्मथम् ॥ ४३ ॥

---

१. 'हं नि', २. 'क्षि प', ३. 'स्मरेत्॥' ख. पाठः. ४. 'ता', ५. 'ध्व' क. पाठः. ६. 'स' ग. पाठः

रक्ताकल्पं सुरक्ताङ्गं मनसेष्ट्वा जपेन्मनुम्।
सर्वसंवननो ह्येष जपहोमादिसाधितः ॥ ४४ ॥

सगन्धपुष्पैरपरेद्युरायसं निधाय चालोहिततन्तुवेष्टितम्।
सितार्कमर्काभ्युदये तु तच्छिफा हृता तया स्यात् तिलकं वशीकरम् ॥४५॥

हेमपञ्चाङ्गचूर्णाढ्यवर्त्या साधितकज्जलम्।
नेत्राभियुक्तं वशयेत् पुरुषानपि योषितः ॥ ४६ ॥

चन्दनागरुकर्पूरकाश्मीरोत्पलकेसराः।
मांसीलवङ्गेभमदयष्टिभिः समभागिकैः ॥ ४७ ॥

आलक्तके कृष्णपशोर्मध्याद्यैरखिलवश्यदा(?)।
रोचनातालकशिलापद्माद्यरुणचन्दनम् ॥ ४८ ॥

कर्णिकारस्य निर्यासं क्रौञ्चपारावतीशकृत्।
किराततिक्तभृङ्गेन्द्रभीता वटशिफाङ्कुराः ॥ ४९ ॥

दुग्धस्नुहित्वक् शशविट् पुराणं तिन्त्रिणीफलम्।
करञ्जबीजं लशुनं समान्येतानि चूर्णयेत् ॥ ५० ॥

अलक्तके विश्ववृक्षफलतोयविभाजिते।
पञ्चगव्येन तच्चूर्णं सिक्तं मूर्ध्नि विनिक्षिपेत ॥ ५१ ॥

कृत्वा वर्तिं तु मध्वाज्यनिम्बतैले कृता मषी।
मदेनेभस्य संलिप्ते शरावे लोकरञ्जनी ॥ ५२ ॥

आत्मपञ्चाङ्गसम्मिश्रं पञ्चाङ्गं कनकस्य तु।
मधुना पेषितं दद्यादुपयुक्तं वशीकरम् ॥ ५३ ॥

सैन्धवं मातुलुङ्गाम्ले क्षिप्त्वा कायाम्बुसेचितम्।
सप्ताहं तन्निशायां तु संपुटे तु शरावयोः ॥ ५४ ॥

चतुष्पथे दिग्वसनः काष्ठैर्धुर्धूरकैः पचेत्।
येभ्यस्तद् दीयते लोणं ते वश्या यावदायुषम् ॥ ५५ ॥

कुष्ठं पुन्नागनिर्यासं सिंहीमूलं मधुप्लुतम्।
पिष्ट्वालिप्य व्रजेद् योषां भार्गवस्तम्भनं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

---

१. 'सकलपाङ्गं' ख. पाठः. २. 'अ' ख. ग. पाठः. ३. 'ष्याखि', ४. 'द्' ५. 'नु' क. पाठः. ६. 'नि' ख. पाठः.

गव्याजस्नुहिदुग्धानां तत्स्तम्भः पादलेपनात् ।
श्वेतपुङ्खेक्षुमूले तु मुखे विन्यस्य काञ्चिके ॥ ५७ ॥

तत् पिष्ट्वा मेढ्रमालिप्य काव्यस्तम्भनमुत्तमम् ।
लम्बितध्वजयोरश्वगजयोर्मुखरोमभिः ॥ ५८ ॥

तथा वृषस्य लाङ्गूलं मुखरोमाणि चाहरेत् ।
रज्जुं तैर्वलयाकारां कृत्वा मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ५९ ॥

प्रकोष्ठे दक्षिणे क्षिप्त्वा रतिः काव्यनिवारणी ।

गजाश्वप्रवराणां रोमबन्धनाय ।

दन्तीमूलं स्नुहिक्षीरे पिष्ट्वा पादौ प्रलेपयेत् ॥ ६० ॥

पादलेपेन काव्यस्य स्तम्भः स्यात् क्षालने पतेत् ।

उष्णाम्भसेति यावत् ।

मत्स्यपित्तं तुरङ्गस्य केसरः करिणो मदः ॥ ६१ ॥

मधुना ध्वजमालिप्य योषासंवननं परम् ।
विलङ्गं तिलपुष्पाणि गुलं कर्पूरचन्दने ॥ ६२ ॥

स्वभार्गवेण लेपोऽयं योषासंवननं परम् ।
मांसी वचाश्वगन्धा च कुन्दं च वकुलं तथा ॥ ६३ ॥

अम्भःपिष्टं तदुद्वर्त्य स्थौल्यं प्रजननो व्रजेत् ।
जातिपुष्पैः पचेत् तैलं तल्लेपात् सुभगो भवेत् ॥ ६४ ॥

धुर्धूरबृहतीपत्रे गात्रमुद्वर्त्य वश्यदम् ।
धुर्धूरपत्ररात्रिभ्यां वश्यमुद्वर्तनं तथा ॥ ६५ ॥

निर्यासं कर्णिकारस्य कर्पूरं केतकीरजः ।
सिन्धूत्थक्षौद्रयुग्लेपो ध्वजस्य मरणान्तिकः ॥ ६६ ॥

बैल्वं च पुष्पं सघृतं च पद्मं जातिप्रियङ्गुं पशुरोचनाभिः ।
तद्वर्तिगव्याज्यमषीं दृशोऽञ्जेद् यं यं जनं पश्यति सोऽस्य दासः ॥

कुष्ठं कुरण्डं मधुकागरू द्वे कस्तूरिकाचन्दनमिन्दुयुक्तम् ।
आलेपितं गोमयवारिपिष्टं स्पृष्टं कराभ्यां वशयेत् समस्तम् ॥ ६८ ॥

---

१. 'णाः' क, ख, पाठः. २. 'कु', ३. 'म' ख. पाठः.

तैलं वार्ताकतोयं च वृषस्नेहेन संयुतम् ।
पिष्टं कृत्वा समालिप्य पुनः कन्या भविष्यति ॥ ६९ ॥
आरनारादि कारञ्जं दन्तकाष्ठं तु भक्षयेत् ।
सप्ताहं लीढमादाय खाने दद्याद् वशीकरम् (?) ॥ ७० ॥
पारावतशकृच्छुण्ठीकुष्ठोग्राञ्जनरोचनाः ।
मधुना पेषिता लिप्ता ध्वजे योषिद्वशीकराः ॥ ७ ॥

तारं च देवि! मातङ्गि! रुद्रभोगसुभगधारिणि! नमस्ते ठठ । लेपमन्त्रोऽयमीरितः ।

पद्मपत्राणि संचूर्ण्य कपिलामूत्रतो गुलीम् ।
विशोष्यालिप्य गात्रं स्त्री पतिं दासं करिष्यति ॥ ७२ ॥
द्राक्षां च यष्टिमधुकमपुष्पा पयसा पिबेत् ।
पुष्पिता स्यात् तथा चूतत्वग्रसस्य च नावनात् ॥ ७३ ॥
कृष्णरम्भामूलचूर्णं यष्टिचूर्णं च गोपयः ।
प्रातः पीतं तु नारीणां रक्तस्रावं विनश्यति ॥ ७४ ॥
अक्षमात्रं तु पयसा गैरिकं त्रिदिनं पिबेत् ।
रक्तस्रुतिं हरेत् क्षौद्रं तथोदुम्बरपल्लवैः ॥ ७५ ॥
मृणालं चन्दनं छिन्ना भीरुचिल्लीसुधामधु ।
उदुम्बराङ्कुरैः पीतमसृग्दरनिवारणम् ॥ ७६ ॥
रक्तशुक्लजपापुष्पं रक्तशुक्लस्रुतौ पिबेत् ।
क्षीरेण काल्यं तन्मूलं तत्क्वाथं पयसा निशि ॥ ७७ ॥
नालिकेरस्य कुसुमं मृदावेष्ट्याग्निना दहेत् ।
तद्रसः पयसा पीतः शुक्लस्रावनिवारणः ॥ ७८ ॥
पुष्पाणि शल्मलीक्षीरे ऋतौ पीत्वा चतुर्दिनम् ।
वन्ध्या स्यादभयाव्योषे पीत्वावन्ध्यैव जायते ॥ ७९ ॥
दुग्धे नाकुलिपुष्पाणां पानं स्त्रीपुष्पनाशनम् ।
कुक्कुटाण्डं द्विकाण्डं च ब्रह्मी पारावतस्य विट् ॥ ८० ॥

लक्ष्मीं च तुल्यं सञ्चूर्ण्य दद्याद् दासः पतिर्भवेत् ।
हेमोन्मत्तस्य पञ्चाङ्गक्वाथे क्षीरोदधीकृते ॥ ८१ ॥
तत्सारेणाङ्गमालिप्य माषैरुद्वर्त्य तत् पुनः ।
प्रक्षिप्य तत् फलस्यान्तः खनित्वा तत्र मेहयेत् ॥ ८२ ॥
सप्ताहादुद्धृतं पञ्चमलैः संयोज्य दापयेत् ।
एतत् संवननं श्रेष्ठं मन्मथाङ्कुशमीरितम् ॥ ८३ ॥
स्वरक्तं काव्यकिट्टानि श्वेतभानुशिफा मधु ।
वचाकुष्ठयुतं दत्तं पुम्भिर्योषावशीकरम् ॥ ८४ ॥
पीत्वोद्गीर्णेन दुग्धेन कूश्माण्डदधि तत् पुनः ।
मथित्वा नवनीतं च व्यञ्जनं च वशीकरम् ॥ ८५ ॥
भूकदम्बरसं क्षौद्रं शर्करां च प्रलेपयेत् ।
योषावराङ्गं तस्यास्तु पतिर्दासो भविष्यति ॥ ८६ ॥
कक्षाङ्गश्रोत्रनासादृग्दन्तजिह्वोद्भवानि च ।
स्वेदात्मतोययुक्तानि द्वयोर्भुक्त्वा वशीकरम् ॥ ८७ ॥

कस्तूरिकाचन्दनचन्द्रकुष्ठकाश्मीरकालागरुनक्तमालान् ।
कामाह्वयं गोमयवारिपिष्टान् स्वाङ्गं समालिप्य समस्तवश्यम् ॥ ८८ ॥

कस्तूरिकाचन्दनयोः क्रमाद् द्वे दानलाश्विनाम् (?) ।
इन्दोश्च भागा नीहारपिष्टा लिप्ता वशीकराः ॥ ८९ ॥
सप्तधा गोमयाम्भोभिः सिक्ता वर्त्तिर्वटाङ्कुरैः ।
चूर्णीकृतैः कैलाज्येन कज्जलं सर्ववश्यकृत् (?) ॥ ९० ॥

काश्मीरामयरोचनाञ्जनमदैः पाद्मं रजः पञ्चकं
कर्पूरागरुलोहचन्दनयुगं सर्वं समं चूर्णितम् ।
क्षीरे क्षीरमहीरुहां स्नापितयालक्त+वर्त्या वृतं
कृष्णायाः सुरभेर्घृते कृतमषी त्रैलोक्यवश्यप्रदा ॥ ९१ ॥

लक्ष्मीः श्रीः कुमुदं देवी हेम पारावतस्य विट् ।
गुलीकृता मलयजपङ्कोन्मिश्रा वशङ्करी ॥ ९२ ॥

---

१. 'ता' ख. पाठः. २. 'कवला' ख. ग. पाठः.

कुष्ठश्वेतार्कमञ्जिष्ठातगरारुणचन्दनैः ।
पुण्ड्रक्रिया जगद् वश्यं करोत्यखिलमोहिनी ॥ ९३ ॥

मांसी चन्दनरोचना करिमदो नीलोत्पलस्पृक्कया
जातित्वक्सुरदारुपत्रतगराण्येला शिला कुङ्कुमम् ।
पद्मं केसरपद्मकृष्णतुलसीसिद्धार्थकैः संमितैः
पुष्येन्दावुदये विधोर्हिमजलैः सत्कन्यया पेषयेत् ॥ ९४ ॥

तेन स्यात् तिलकालेपः श्रीकरं च वशीकरम् ।
कुष्ठकेसरसिन्धूत्थनतायश्चन्दनेन्दवः ॥ ९५ ॥

एलाश्च कुङ्कुमं त्वेतैस्तुल्यं वशकृदञ्जनम् ।
पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां प्राचीनं मण्डलत्रयम् ॥ ९६ ॥

वृत्तं कृत्वाप्यबिम्बे तु सूपविष्टस्तु वाग्यतः ।
पूजाद्रव्याणि मध्यस्थे बिम्बे विन्यस्य पूर्वतः ॥ ९७ ॥

पूजयेत् पद्ममध्यस्थं शुक्लाकल्पविभूषितम् ।
कन्यकाङ्कगतं सौम्यं कुमुदद्वयपाणिनम् ॥ ९८ ॥

ससद्यदण्डं शुक्लं तु सोमाय नम इत्यपि ।
मन्त्रोऽनेन यजेत् सोमं गन्धाद्यैरुपचारकैः ॥ ९९ ॥

रोहिणीं रेवतीं रात्रिं ज्योत्स्नां दिग्दलगाः क्रमात् ।
कृत्तिकां भरणीमार्द्रां कलां चाग्न्यादिकोणगा[1] ॥ १०० ॥

नैवेद्यान्तं समाराध्य क्षीरमापूर्य राजतैम्[2] ।
विद्यामन्त्रेण चषकं चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ १०१ ॥

ओं विद्ये! विद्यामालिनि! चान्द्रिणि! चन्द्रमुखि! स्वाहा इत्ययं विद्यामन्त्रः ।

इत्थं मासत्रयं दद्यादर्घ्यं कन्या प्रदीयते ।
काफुण्डे चालि चालि कुमार्गे भगं मे प्रयच्छ ठठ ।
कृष्णाष्टम्यादितो मन्त्रमयुतं प्रतिवासरम् ॥ १०२ ॥

चतुर्दश्यन्तमभ्यस्य सिद्धमन्त्रस्ततो निशि ।

१. 'ता' ख. पाठः. २. 'लाश्वा' क. पाठः. ३. 'कम्' ख. पाठः.

सदधिव्यञ्जनान्नस्य पिण्डं प्रकृतिजापतः ।
दद्यान्मासं विवाहार्थमिष्टां कन्यां स विन्दति ॥ १०३ ॥

कुष्ठं बृहत्यपामार्गं सिद्धार्थांस्तगरं क्षणात् ।
व्योषं समानीक्षीरेण लिम्पेत् कुचविवर्धनम् ॥ १०४ ॥

कर्णपाल्योश्च ।

एवंप्रकारा बहुतन्त्रसिद्धाः प्रदर्शिताः संवननाधिकाराः ।
तत्तत्प्रयोगा निपुणैर्यथावदतन्द्रितैरादरतः प्रयोज्याः ॥ १०५ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
संवननपटलोऽष्टचत्वारिंशः ।

---

अथैकोनपञ्चाशः पटलः ।

आरग्वधत्वचा रात्रिं लोणं चिञ्चाफलं तथा ।
शुक्ते पिष्ट्वा हरेत् पीतं गवामुदरबृंहणम् ॥ १ ॥

क्षीरे पिष्ट्वा तिलान् पाटामूलं कार्पासपत्रयुक् ।
पाययेद् गां तु गोतके गोविषूचीं हरेत् क्षणात् ॥ २ ॥

नालिकेरजलं क्षीरं काञ्चिकं च बलारसम् ।
पीतं हन्यात् सरुधिरमतिसारकृतं गवाम् ॥ ३ ॥

फणीतकं च निर्गुण्डीं दीप्यकं लशुनं वचाम् ।
काञ्चिके पाययेत् पूयश्लेष्माभेऽतिसृतौ तु गाम् ॥ ४ ॥

सहस्ररश्मिरादित्यो[१]ऽग्निः ठठ ।

मन्त्रं पत्रे लिखित्वा गो रक्षायै कलयेद् गले ।

अष्ट फणा हरिः पालयति ठठ ।

अश्विनीवृक्षघण्टान्तर्लिखितो[२]ऽयं तु गोगले ॥ ५ ॥

बद्धस्तु धातकीरज्ज्वा पीडां गोमारिजां हरेत् ।

नमो भगवते वज्रमुकारदर्शनाय ओं विलि मिलि मेलि सिद्धि

---

१. 'त्सेभ्योऽग्निः' ग. पाठः. २. 'खित्वा यस्तु गो' क. पाठः.

गोमारि ! वज्रिणि ! हुंफट् । अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु शान्ति कुरु ठठ । अयं च मन्त्रः—

घण्टाकर्णरवो येन गणं प्रोक्तो महाबलम् ॥ ६ ॥

मारीनिर्णाशनकरः स नः पातु जगत्पतिः ।

ठठ । अयं च गोमारिहरो मन्त्रः—

अश्विनीवृक्षघण्टान्तः पृथगेतौ विलिख्य तु ॥ ७ ॥

बद्धौ मारिहरौ (स्यातां) गोद्वयस्य गलद्वये ।

गवामशनयज्ञेन यष्टः कुररवः पुरा ॥ ८ ॥

अनन्या देवदेवस्य वचनानि वटोः स्मर ।

ठठ ।

यत्किञ्चित् सप्तकृत्वस्तु जपितं गां तदाशयेत् ॥ ९ ॥

दुष्टापि वशगा सा स्यात् गिरिकर्णीविशेषतः ।

नमो विष्णवे पुराणाधिपतये ठठ ।

तर्जनीज्येष्ठकाभ्यां तु गृहीत्वा नासिकां तु गोः ॥ १० ॥

नामयेन्मनुनानेन वश्याः स्युश्च तुरङ्गमाः ।

क्षीरगोपवगोयक्षीरक्षमाक्षक्षमाक्षर ॥ ११ ॥

नोमानोगगनोमागोपक्षगत्यत्यगक्षपः ।

रेखाग्रतत्पशूलाढ्ये चतुष्षष्टिपदे त्विमम् ॥ १२ ॥

विलोमप्रतिलोमाभ्यां सर्वभद्रमनुं लिखेत् ।

खादिरे वापि फलके भूर्जे वा पूजितं ततः ॥ १३ ॥

गोशालाद्वारदेशे तु बध्नीयाद् गोगलेऽथवा ।

इदमपि गोरक्षाकरं भवति ।

संज्ञां गोरपि गोमतः सकलशं वृत्तत्रयं बाह्यतः

कुम्भावेष्टितमष्टपत्रकमले वेत्स्यादिमन्त्रं लिखेत् ।

स्वाहान्तं त्वथ वर्तुलं जलभृच्छूदण्डान्वितौ सान्तरा-

वावेष्ट्याकलयेद् विलोममखिलं तैलादिकं गोगले ॥ १४ ॥

---

१. 'कररवः पुरा', २. 'वानानि', ३. 'गो' ग. पाठः.

तैलाभ्यक्तैकवेणीत्रपुमयविलसत्कर्णिकाकान्तकर्णा
लोहेनैकेन कृत्वा चरणनिगलनेनात्मनः पादशोभाम् ।
दिग्वासा रासभेन भ्रमसि जगदिदं या जपाकर्णपूरा
मार्जन्यूर्ध्वप्रबद्धध्वजविततभुजा वेत्सि देवि! त्वमेव ॥ १९ ॥

गोष्ठद्वारे वा निहितं गोरक्षाकरमिति यावत् ।

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
गोरक्षापटल एकोनपञ्चाशः ।

---

## अथ पञ्चाशः पटलः ।

चोरकुष्ठमुराग्रन्थिमांसीपूतीश्च[1] ते समाः
धात्रीफलं तत्रिगुणं गन्धतोयेन पेषयेत् ॥ १ ॥
गन्धेन धूपितं पुष्पैः सुगन्धैरपि वासितम् ।
गन्धामलकमेतत्तु राजयोग्यमुदीरितम् ॥ २ ॥
एलातगरपत्राब्जग्रन्थिरुक्पूतिचोरकाः ।
समास्तद्विगुणा धात्री सुपिष्टा गन्धवारिणा ॥ ३ ॥
गुलागरुभ्यां सर्जेन भूयो भूयश्च धूपितम् ।
पुष्पाधिवासितं त्वेतत् सुगन्धामलकं भवेत् ॥ ४ ॥
ग्रन्थिमांसी मरुवकं शैलेयं दामनं दलम् ।
चोरगं तगरं सर्वं समं तेभ्यो द्विभागकम् ॥ ५ ॥
प्राग्वदामलकं प्रोक्तं संस्कारोऽपि च पूर्ववत् ।
टङ्कणं हस्तिकुसुमं देवदालीमृणालकैः ॥ ६ ॥
चूर्णीकृतैः समधुकैः किञ्चिन्मधुसमन्वितैः ।
आकुण्ठितानि पुष्पाणि द्युतिं मुञ्चन्ति युक्तितः ॥ ७ ॥
मधुनालिप्य परशुं तच्छिन्नतरुचूर्णकैः[3] ।
छुरितानि द्रवन्त्येव मल्लिकाचम्पकानि वै ॥ ८ ॥

---

१. 'द', २. 'चू' क. पाठः. ३. 'र्णितैः' ख. पाठः.

शङ्खचूर्णरसालेपात् केतकीद्युतिसम्भवः ।
मञ्जिष्ठानवपत्तङ्गकुसुम्भारक्तचन्दनैः ॥ ९ ॥
क्रमवृद्धैस्तु लाक्षाम्भोलुलितैर्वस्त्रगालितैः ।
संप्लुक्षात्तण्डुलक्षौद्रयुक्तैः सम्यग् विभावितैः ॥ १० ॥
पिण्डीकृतैस्तु भवति जातिलिङ्गं सुशोभनम् ।

विश्वैकभागा गुलनिम्बहिङ्गुबीजद्विभागैरथ गुग्गुलोः षट् ।
एरण्डबीजस्य तथाजदुग्धे पिष्टा पुरेवद् भवतीह हिङ्गुः ॥ ११ ॥

धान्यराशिस्थमिति यावत् ।

बिल्वफलनिम्बविश्वामाषा लशुनं च हिङ्गुरेते स्युः ।
ऋत्वब्धिनेत्रभागद्वयवेदमिता यथापुरं हिङ्गुः ॥ १२ ॥

पूर्ववदजादुग्धपेषणादिक्रियया हिङ्गुर्भवति ।

विकारनागश्रुतिनेत्रनेत्रैश्चन्द्रेन्दुनागैर्मितबिल्वमाषाः ।
नैम्बैर्गुडाजाद्वयहिङ्गुविश्वारसोनकाः पूर्ववदेष हिङ्गुः ॥ १३ ॥

अजाक्षीरपेषणधान्यराशिस्थापनयेत्यर्थः ।

क्वाथस्य शिग्रुमूलस्यच्छागमूत्रं तथा मधु ॥ १४ ॥
पृथक् चतुष्पलं ग्राह्यं तत् त्रिभागावशेषितम् ।
जातीतक्कोलकस्तूरीचन्द्रकाश्मीरचन्दनाः ॥ १५ ॥
पृथक् पलानि कर्षं चाप्यगरोः श्लक्ष्णपेषितम् ।
गन्धभाण्डे सुविहितं मण्डलं व्रीहिराशिभिः ॥ १६ ॥
उद्धृत्य निकरीकृत्यच्छायाशुष्कं निधाय तु ।
निकरादेकमेकं वा योजितं तुल्यगुरुत्वया ॥ १७ ॥
जलक्लिन्नं तु तत् साक्षाद् भवेत् कस्तूरिका शुभा ।
कुमूलं शक्रमोचायाश्छित्त्वा किञ्चित्तु वैणवीम् ॥ १८
नालिकां योजयेद् द्वित्रिनिशां तत्तद्रसस्य तु ।
प्रस्थद्वयमितं तस्य कणोशीरकचोरकान् ॥ १९ ॥

---

१. 'ब्दः' क. पाठः. २. 'मुकुलं', ३. 'योजिता कि', ४. 'दं' ख. पाठः.

कर्षमात्रं तु सञ्चूर्ण्य पलार्धं[1] घनसारकम् ।
चूर्णितं योजयेत् सर्वं[2] नालिकाकदलीजले ॥ २० ॥

अन्धीकृत्य[3] समावेष्ट्य रज्ज्वालिप्य मृदा बहिः ।
दग्ध्वा तुषकरीषाग्नौ शीतमुद्धृत्य तत् पुनः ॥ २१ ॥

सप्ताहं धान्यराशिस्थं कर्पूरं जायते स्फुटम् ।
प्ररोहतोये केतक्याश्चोष्णाम्भःशालिमण्डयोः ॥ २२ ॥

क्षीरे च टङ्कणं धौतं याममात्रं स्थितं पृथक् ।
चूर्णयित्वा चतुर्थांशं घनसारेण योजितम् ॥ २३ ॥

क्षीरे निष्काथ्य कदलीपत्रे निक्षिप्य शोषयेत् ।

तच्चारु घनसारं भवति ।

पक्वबिल्वफलान्तःस्थमर्धतैलेन योजितम् ॥ २४ ॥

विशोष्य घर्मे संक्षुद्य स्वच्छाद्भिः क्वथितं पुनः ।
निष्पीड्य तैलं सङ्गृह्य कर्षकर्पूरयोजितम् ॥ २५ ॥

कर्पूरतैलं भवति ।

सिक्थच्छादितवृन्तानि घृतक्षौद्रस्थितानि तु ।
बीजपूराणि तिष्ठन्ति रसवर्णयुतानि हि ॥ २६ ॥

आम्राणि स्ववतीर्णानि किञ्चिद्वृन्तयुतानि तु ।
तैले क्षिप्तानि सगुले चिरं तिष्ठन्त्यसंशयम् ॥ २७ ॥

अन्यान्यपि फलानि तथा चिरं तिष्ठन्ति ।

सलोणवज्रिक्षीराभ्यां ताम्रपत्राणि लेपयेत् ।
अग्नौ प्रताप्य निर्गुण्डीरसे निर्वाप्य यत्नतः ॥ २८ ॥

त्रिःसप्तकृत्वो रूप्यादिकरणे विनियोजयेत् ।
गन्धकेन हतं ताम्रं टङ्कणेनोत्थितं पुनः ॥ २९ ॥

सप्तकृत्वो जहात्येव स्वगन्धं[3] कालिकामपि ।
एवं विशुद्धशुल्बस्य पत्राण्यच्छानि[4] कारयेत् ॥ ३० ॥

---

१. 'स्थी' ख. पाठः. २. 'क्त', ३. 'स'. ४. 'त्र्यच्छा' ग. पाठः.

शुद्धनागशिलासूतान्[1] सर्पाक्षीतोयपेषितान् ।
आलिप्यालिप्य घर्मे तु शुष्कान् प्रकृतिवासरम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रकाशे विद्राव्य गोमयोन्मिश्रकाञ्चिके[2] ।
निषिञ्चेत् सप्तवारं वा तारं भवति योजितम्[3] ॥ ३२ ॥
मासमात्रं नृतोयस्थं सूतं भल्लाततैलतः ।
गृहधूमेन तैलेन गुलेनापि च खल्वके ॥ ३३ ॥
पेषयेत् तेन तारस्य पत्राण्यच्छानि लेपयेत् ।
दत्त्वा पुटत्रयं हेम्ना समं स्यात् काञ्चनं द्रुतम् ॥ ३४ ॥
मुनिपुष्पसलिलपिष्टः सूरणकन्दोदरस्थितो गोष्ठे ।
खातो मासाद् द्रवति श्वेतः कृष्णोऽथवाभ्रको हेम्ना ॥ ३५ ॥
धान्यकृताभ्रं वज्रक्षीरे पिष्टं च भावितं तस्मिन् ।
सप्ताहादतिघर्मे पात्रे ताम्रेऽथवापि मृत्कलशे ॥ ३६ ॥
रक्तोत्पलस्य नालाद्भिः श्लक्ष्णपिष्टः पयोधरः ।
पश्चात् कुसुम्भतैलेन पिष्टो युक्त्या द्रवत्यसौ ॥ ३७ ॥
क्षीरकाञ्चीरसे पिष्टो द्रवत्यभ्रः सुपेषितः ।
लोहजातं तथा सर्वं द्रवत्येवातपे स्थितम् ॥ ३८ ॥
द्राक् पक्वः खण्डहाल्यास्तु रसे चूर्णीकृतानि तु ।
द्रवन्ति सर्वलोहानि युक्त्या घर्मस्थितानि तु ॥ ३९ ॥
हेमताराररतीक्ष्णानि द्वि(कु?गु)ञ्जासार्धरक्तिकः[4] ।
तदर्धपादमानास्तु द्रुता वङ्गे नियोजयेत् ॥ ४० ॥
मुनिपुष्परसे वङ्गं द्रुतं प्रकृतिवारकम् ।
निषिञ्चेत् तु शिलाचूर्णं प्रतिवापं विशुद्धये[5] ॥ ४१ ॥
हेमादिकानुक्तभागान् शुद्धवङ्गोपले क्षिपेत् ।
अन्धीकृत्य द्रुतं स्तम्भयत्येव ।
सूर्यनन्दाश्विभागाः स्युस्तारताम्रत्रपूंषि च ॥ ४२ ॥

---

१ 'ना' ग., 'त्था' ख. पाठः. २. 'द्वि' ग. पाठः. ३. 'तान्' क. पाठः, ४. 'क्षि', ५. 'येद्' ख. पाठः.

आरस्य टङ्कणस्यापि प्रकाशे द्रवयेत् सह ।
निक्षिप्य गोमयाप्सु स्यात् तारं प्रकृतिवारकम् ॥ ४३ ॥
क्षोणीबदरिकामूलं लवणं लघुसिक्थकम् ।
तिलक्षीरिणिकाकृष्णवलयं च पृथक् पृथक् ॥ ४४ ॥
किंशुकाम्भःकुडुवके गोघृतार्धविमिश्रिते ।
सङ्कोचबन्धगुलिकां सहेमां सूर्कनागताम् ॥ ४५ ॥
अन्धीकृत्य क्रमाध्मां तामुदुम्बरयोक्तरसे क्षिपेत् ।
एवं निर्वाप्य बहुशो जीर्णं भवति वै यदा ॥ ४६ ॥
गुलिकासमरुक्मं तु ततो रात्रिरसे द्रुतम् ।
नागं निषिच्य त्रिष्कृत्वो गुलिकामानमात्रकम् ॥ ४७ ॥
अष्टनिष्के तु तन्नागे क्षिप्तं ताम्रं तु वेधयेत् ।
कर्णिकारप्रसूनानां रसप्रस्थे तु नूतने ॥ ४८ ॥
कांसाख्यं विमलाचूर्णं निष्कमात्रं तु निक्षिपेत् ।
मृद्वग्निना तदग्निस्थं विशोष्य घनतां गते ॥ ४९ ॥
तत्तुल्यं तु शिलाचूर्णं मिश्रीकृत्य तु मर्दयेत् ।
तदवस्थाप्य पात्रे तु सप्तरङ्गादिहेमसु ॥ ५० ॥
निष्कस्य गुञ्जमानेन क्रामणासहितं धमेत् ।
तद् द्राव्यमाणं त्वथ कृष्णलार्धात् सञ्चालयेच्छीतलमुद्धरेच्च ।
तदेकवर्णाधिकतां प्रयाति प्रयत्नहीनं कनकं सुखेन ॥ ५१[3] ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे
नानाद्रव्यपटलः पञ्चाशः ।

---

## अथैकपञ्चाशः पटलः ।

महेन्द्रजालविज्ञानप्रसङ्गात् पूर्वचोदितात् ।
नर्मप्रकारैः संक्षिप्य लिख्यन्ते विस्मयप्रदाः ॥ १ ॥
चूर्णं वराङ्गे निहितं सद्भूनागेन्द्रगोपयोः ।
येन तेनैव भोग्या स्यान्नान्येषां मासमात्रकम् ॥ २ ॥

---

१. 'काग' ख. पाठः. २. 'स' क. पाठः. ३. 'रात् स', ४. 'नां' ख. पाठः.

यन्मुखोद्गीर्णताम्बूलं कृकलासस्य चर्मणि ।
भल्लातकसमुद्गस्थं मुखरोगकरं भवेत् ॥ ३ ॥

उद्धृते मोक्षः ।

शुक्तिसम्पुटचूर्णस्य लेपो भगनिरोधकृत् ।
कपर्दचूर्णगोतक्रक्षालनात् पूर्ववद् भवेत् ॥ ४ ॥
पिष्टाधोमुखगोशृङ्गलेपो योनिनिरोधकृत् ।

ऊर्ध्वमुखशृङ्गलेपाद् भोग्या भविष्यति ।

रक्तेन कृकलासस्य सिक्तसूत्रस्य लङ्घनात् ॥ ५ ॥
रक्तस्रावो भवेत् स्त्रीणां द्विमुखाहेश्च शोणितात् ।

तत्सूत्रं प्रक्षाल्य लङ्घितं निवर्तयति ।

कृष्णकाकासृजा चूतपत्रे यन्नाम योजितम् ॥ ६ ॥
तस्यैव वर्चसि क्षिप्तं तं तुदन्ति मुहुर्द्विकाः ।

उद्धृत्य दग्धे मोक्षः ।

यस्याः स्वमोदकं मोदायुक्तो वृश्चिककण्टकः ॥ ७ ॥
मदनस्य फलस्थोऽस्या वराङ्गे[1] तोदमावहेत् ।

उद्धृते मोक्षः ।

मयूरमलदुर्धूरविषत्वग्लाङ्गलीयुतम् ॥ ८ ॥
महिषासृजि पिष्टं तद्धूमः सर्वांस्तु मोहयेत् ।

छुण्डुकतैलेनालक्तकवर्तिदीपोऽपि तत्प्रभावलोकिनं जनं सर्वं मोहयति ।

काकोलूकासृजा नाम ययोर्निम्बदलस्थितम् ॥ ९ ॥
तत्कोटरे[2] तन्निहितं तयोर्वैरकरं भवेत् ।

महिषाश्वरक्तेनापि तथा ।

पुच्छचूर्णं ब्रह्मसूनोर्जलाहेर्वाप्यलक्तके ॥ १० ॥

---

१. 'ङ्ग' क. पाठः. २. 'कोऽपि' ख. पाठः.

वर्तीः कृत्वा कृता दीपाः सर्वान् कुर्याद् दिगम्बरान् ।

धूपप्रदीपप्रयोगो रात्रावेव फलति ।

गोघृतेनात्मरक्षार्थं स्वनासान्तर्विरोपयेत् ॥ ११ ॥

नेत्रयोरञ्जयेद्वापि स्वयमन्यान् विमोहयेत् ।

वज्रीक्षीरेण बहुशस्तिलान् सम्भाव्य शोषितान् ॥ १२ ॥

तत्तैललेपात् कृष्णा ये केशाः शुक्ला भवन्ति ते ।

बहुशः पिप्पलीचूर्णं वज्रीक्षीरेण भावितम् ॥ १३ ॥

पिष्ट्वा सामलकं क्षिप्तं केशनाशनमुत्तमम् ॥

राजपुत्रीरजोऽश्वानां नासान्तःस्थं तु पातयेत् ॥ १४ ॥

तानश्वान् पातयतीति यावत् । चन्दनस्य पानात् प्रत्यायनम् ।

सुरतारब्धखरयोः कटकं पुच्छरोमभिः ।

आरोपितं प्रकोष्ठे तु लग्नं लिङ्गोन्नतिं वहेत् ॥ १५ ॥

क्षपणके शेफोत्थानमिति यावत् । अधो नीतं पातयति ।

सृगालभुक्तबदरीबीजानि सुरतस्थयोः ।

प्रारोपितानि (बालैः?) स्त्रीवस्त्रं पातयन्ति प्रकोष्ठके ॥ १६ ॥

प्रकोष्ठस्थिता बदरीमाला योषित्सन्निधौ ऊर्ध्वं नीता पातयतीति यावत् ।

राजीतैलेऽर्कतूलेन दीपो मत्कुणकान् हरेत् ।

रात्रौ ।

स्थलकुम्भिशिफा शय्यागता मत्कुणकान् हरेत् ॥ १७ ॥

कुलीरस्य कपोले तु दीपस्तत्स्नेहसाधितः ।

गृहस्थान् मत्कुणान् सर्वानाकर्षयति च ध्रुवम् ॥ १८ ॥

अलक्तकार्कतूलाभ्यां वर्त्या राजीघृते कृतम् ।

मत्कुणोच्चाटकृद् रात्रौ करीराम्भस्तु यूकहृत् ॥ १९ ॥

सितापराजितामूलं फलपुष्पेऽर्जुनस्य च ।

विलङ्गसर्जकं लाक्षा श्रीवासारुष्करैः पुरम् ॥ २० ॥

---

१. 'रः ॥' ख. पाठः.

तुल्यैरेतैः कृतो धूपो मशकान् मत्कुणानहीन् ।
मूषकांश्च घुणान् लूतानुत्सारयति वै गृहात् ॥ २१ ॥

कोकिलाक्षस्य बीजानां श्लक्ष्णचूर्णान्वितं जलम् ।
दृढं स्याद् बद्धवल्ल्या चेद् युक्तं मांसाकृतिर्भवेत् ॥ २२ ॥

तीक्ष्णघर्मस्थितं कांस्यं निर्मूले तदधः स्थिते ।
तूले करीषे शुष्के वा स्यादग्निः सूर्यकान्तवत् ॥ २३ ॥

भेकस्नेहेन लिप्तं तु खरमूत्रयुतेन चेत् ।
हस्तयोः पादतस्तत्तदग्निना नैव दह्यते ॥ २४ ॥

समङ्गामूलपिष्टेन भेकस्नेहेन वा तथा ।

आलेपादग्निं स्तम्भयतीति यावत् ।

तुलारोहणकाले चेद् रुद्धश्वासो लघुर्भवेत् ॥ २५ ॥
गुरुः स्याद् रेचयेद् वायुं निर्दोषोऽपीह मानवः ।
वायुवेश्मनि वायुस्थं नामबाह्येष्टवायुयुक् ॥ २६ ॥

तुलामूले निखातं चेद् ब्रह्मघ्नोऽपि लघुर्भवेत् ।
भूवेश्मस्थितवज्रस्थं नामबाह्येष्टमांसयुक् ॥ २७ ॥

निखनेत् तत् तुलामूले शुद्धोऽपि स्याद् गुरुर्नरः ।
तद्दिने जातगोवत्सपुरीषैतगराचिताम् ॥ २८ ॥

गुलिकां प्रथमं जग्ध्वा विषं भक्षयतो न तत् ।

विषप्रत्ययमेवं कुर्वन् जयति ।

सव्योषककणां पिष्टां गुलीं पूर्वं तु चर्वयेत् ॥ २९ ॥

तण्डुलप्रत्ययं पश्चात् कुर्याद् विजयते नरः ।
जलाहिदन्तमास्यस्थं जलं दिव्यं जयप्रदम् ॥ ३० ॥

जलप्रत्ययजयकरम् ।

चूर्णं तु कोकिलाक्षाणां रक्तगोघृतमिश्रितम् ।
आलिप्य सर्ववदनं घ्राणकर्णजलं विशेत् ॥ ३१ ॥

---

१. 'नि तज्ज' क. पाठः. २. 'गू', ३. 'स्यादेव यद्', ४. 'ष' ख. पाठः. ५. 'श्र', ६. 'ष' क. पाठः. ७. 'लं', ८. 'बी', ९. 'ल' ख. पाठः.

जलप्रत्ययं कुर्वन् सदोषोऽपि जयति ।

शिंशुमारमलालिप्तं मुष्ट्या चित्रं न दृश्यते ।

मुष्टिमोक्षाद् दृश्यते ।

स्योनाकबीजैरन्तस्स्थैस्तद्दारुकृतपादुके ॥ ३२ ॥

आक्रम्य पर्यटेत् तोये निश्शङ्कस्तु यथासुखम् ।

निश्चलं चित्तमावेश्य सभ्रूमध्ये ललाटके ॥ ३३ ॥

सकुम्भकोत्तानतनुर्जले प्लवति नौरिव ।

बद्धपद्मासनश्च प्रसारितसर्वाङ्गो वा ।

तैलस्निग्धा यदा वर्तिः सर्जचूर्णविरूषिता ॥ ३४ ॥

अन्तर्बहिश्च तोयाढ्ये पात्रे ज्वलति दीपिका ।

स्नुक्क्षीरभाविता वर्ती तैलार्द्रा चाब्धिफेनवत् ॥ ३५ ॥

आपूर्यायसपात्रे तु सूतं तस्योपरि क्षिपेत् ।

दीप्ताङ्गारं तु तत्पात्रमाकाशे तिष्ठति स्फुटम् ॥ ३६ ॥

पिञ्छनालं तु सारं वा सूतापूर्णं विधाय तत् ।

तद्गर्भवर्तिस्तैलाक्ता ज्वलिता खे व्रजेत् स्वयम् ॥ ३७ ॥

ऋतुस्त्रीयोनिगर्भस्थं सौवीरं सप्तवासरम् ।

अग्निमध्ये क्षिपेत् तस्मिन् पुरुषो दृश्यते स्फुटम् ॥ ३८ ॥

बीजपूरकतैलं तु ताम्रपात्रे निधाय तु ।

घर्मे निधाय मध्याह्ने रथी सूर्योऽत्र दृश्यते ॥ ३९ ॥

अगस्तिपुष्पतोये तु भावितं बहुशोऽञ्जनम् ।

स्रोताख्यमञ्जितं नेत्रे दिवा नक्षत्रदर्शकम् ॥ ४० ॥

विद्युद्धततरोः कीलं क्षिप्तं खे तत्र तिष्ठति ।

किञ्चिच्चूर्णजलोपेतं भावि तैलं घृतं यथा ॥ ४१ ॥

लघुद्धृताज्यसंसिक्तपाणौ लोणजलं स्थितम् ।

विसृष्टं तत् पलालादौ दहत्यग्निश्च तद् दहेत् ॥ ४२ ॥

स्त्रीजरायुकृताद् धूपादालेख्यानि रुदन्ति हि ।

---

१. 'सु' क. पाठः. २. 'फः' ख. पाठः. ३. 'ल' क. पाठः.

गुग्गुलुधूपस्तु निवर्तयति ।

चुच्छुन्दरीमदनतालकलाङ्गलीकसाश्वारिकुम्भकरवीरकृतस्तु धूपः ।
चित्राणि रोदयति तालकसंयुतानि धूपे पुरेण विहिते प्रकृतिं प्रयान्ति ॥

मयूरपित्तेनादर्शे विलिप्यार्धाधिकं न्यसेत् ॥ ४४ ॥
सूर्यस्य संमुखं गुप्तं ग्रहणं दृश्यते स्फुटम् ।
भल्लाततैलसिक्ता ये शफरा गतजीविताः ॥ ४५ ॥
प्रसरन्ति जले क्षिप्ता जीवन्त इव च क्षणम् ।
मत्स्याण्डचूर्णं तत्पित्त[1]दिग्धं तं जनयेज्जले ॥ ४६ ॥

मत्स्यशिशुं जनयति ।

नदीशैवलचूर्णं तु माहिषे मथिते क्षिपेत् ।
विलोड्य यामात् परतो भेकास्तत्र भवन्ति हि ॥ ४७ ॥
आलिप्य शिखिपित्तेन पाणौ निम्बदलानि तु ।
दृढं गृहीत्वा मुक्तानि वृश्चिकाः सम्भवन्ति हि ॥ ४८ ॥

अङ्कोलतैलेनापि निर्गुण्डीनिम्बपत्राणि तथा ।

वात्यानीतं तरोः पै[3]र्णं + + + कोलदंष्ट्रयुक् ।
कट्यां बद्धं भोजयति दशानां भोजनं नृणाम् ॥ ४९ ॥
सायं निमन्त्रितोऽसीति आमन्त्र्याक्षं ततः प्रगे ।
तदग्रपत्राण्यादाय बहु भोज्यं यदा भवेत् ॥ ५० ॥
तानि दक्षिणपादेन क्रान्त्वाश्नात्योदनं बहु ।
खरीजरायुत्रिकटुचूर्णदिग्धपदेन तु ॥ ५१ ॥
वामेन ता[4]डितो वृक्षः शीर्णपुष्पफलो भवेत् ।
शिलातैलान्वितं सप्तदिनमन्नं तु भोजयेत् ॥ ५२ ॥
शिखिनं तन्मलालिप्तपाणिस्थं नैव दृश्यते ।
कुरण्डपत्राण्याचर्व्य चिरमोष्ठं तु वेधयेत् ॥ ५३ ॥

---

१. 'द' क. पाठः. २. 'वात्यानितं', ३. 'पू', ४. 'पि', ५. 'त' ख. पाठः.

कपोलं वापि सूच्या सा वेदना नैव जायते ।
शुण्ठीं चोलं च संचर्व्य तत्स्नेहं लिहेत् सुखम् ॥ ५४ ॥

न दह्यत इत्यर्थः ।

कोशातकीतैललिप्तो वायुना न विहन्यते ।
यावकारक्तसूत्रेण तैलार्द्रेण तु भाजनम् ॥ ५५ ॥
कांस्यमावेष्ट्य तु पचेत् पायसं नैव दह्यते ।

सूत्रं न दह्यते ।

तत्पायसोपयोगस्तु छिद्राक्त[illegible] ॥ ५६ ॥
जयत्यन्यगजान् हस्ती पौष्पै[illegible]ञ्जनात् ।
छुच्छुन्दरीचूर्णलिप्ता[illegible] दृष्ट्वा गजो भयात् ॥ ५७ ॥
पलायति तदालाने लेपात् तस्माच्च धावति ।
तिल्वोपरि प्ररूढस्य [illegible] फल्का यदा ॥ ५८ ॥
महानसस्था तत्रस्थं भोज्यं तिक्तं करिष्यति ।

उद्धृते मोक्षः ।

जलकाकास्थियुगलमथनेऽग्निर्ज्वलत्यपि ॥ ५९ ॥
जले च तिल्वक्षीराक्तं गन्धचूर्णं जलोपितम् ।

पलालपूलगृहादिष्विति यावत् ।

कुक्कुटस्य च विट् तावत् पारावतमयूरयोः ॥ ६० ॥
हेमपञ्चाङ्गचूर्णं च शिरस्युन्मत्तकृद् भवेत् ।

यस्य शिरसि क्षिप्तं, तमुन्मत्तं करोति । केशमुण्डनात् स्वस्थः ।

स्नुक्क्षीरनिम्बचूर्णाभ्यां पिष्टकतले स्थितम् ॥ ६१ ॥
तत्पोलिकां वा जग्ध्वा तद्गृहाद् गच्छन्ति मूषिकाः ।
तालं च मार्जारमलं छागमूत्रेण पेषयेत् ॥ ६२ ॥
तेनैव मूषिकालेपात् सर्वे गच्छन्ति मूषिकाः ।
गन्धकाङ्कोलतैलाभ्यां सिक्ते निस्सारकेन्धने ॥ ६३ ॥
अतितप्ताज्यहोमेन स्वयं ज्वलति पावकः ।
सदाभद्राशिफावक्राश्वयेद् धवलां शिलाम् ॥ ६४ ॥

---

१. 'चोष्णानिज' क. पाठः.

इन्द्रवल्ल्या वलाया [illegible] रसगाविते ।
कण्डूतिर्न भवेदामध्येत[illegible] (?) ॥ ६५ ॥

हस्तस्थवृषवन्दाको द्यूतेषु विजयी भवेत् ।

भाण्डानने सूक्ष्मकपित्वचा वाप्याच्छादितेऽन्तर्महिषीघृतेन ।
प्रज्वाल्य दीपं विनिधाय तूलै[illegible] च पूर्णं शशिनं च पश्येत् ॥६६॥

अमावास्यायामुपरिरात्राविति यावत्।

सहस्रपादश्च कृताञ्जलिश्च [illegible] जननीधरस्य ।
शिरश्च तच्चूर्ण[illegible] युवतिस्तनौ स्ताम् ॥ ६७ ॥

करञ्जबीजेन्द्र[illegible] काञ्जिके ॥ ६८ ॥

कृकलासपदं चैभिर्गुली दूराध्वयानकृत् ।

कक्ष्यां बद्धो । सर्वथात्र गृहे द्वारं स्तम्भय ठठ ।

कपेरस्थि खनेन्मूत्रे यस्य तु स्तम्भनं भवेत् ॥ ६९ ॥

षण्डो भवति यन्मूत्रे लाङ्गलीं निखनेद् यदि ।

तदुद्धृते मोक्षः ।

भुक्तः शिरीषनिर्यासो बाधिर्यं जनयेन्नृणाम् ॥ ७० ॥
हेमद्रवयुतश्चान्ध्यं निर्यासः शल्मलीभवः ।
शर्करामहिषीक्षीरपानात् स्वास्थ्यं तयोर्भवेत् ॥ ७१ ॥

साजे कीलं कुलालस्य गृहे [illegible] ।

एष षल षड अनेन निखलैल प्रज्वल सङ्करि ! हुं सर्वप्रसादिनि !
ठठ ।

अनेनायुतसिद्धेन सप्तजापाच्छिरीषजम् ॥ ७२ ॥

कीलं प्रदक्षिणं नीत्वा केदारे मध्यतः खनेत् ।

निश्यूनविंशघटिकां चोरस्तम्भकरं तु तत् ॥ ७३ ॥

भल्लातकरसे गुञ्जागोली मण्डलकारिका ।
विषं च चूर्णितं गात्रे प्रक्षिप्तं कुष्ठकारकम् ॥ ७४ ॥

---

१. 'श', २ 'दृष्वा', ३. 'क्र' ख. पाठः. ४. महुतयुवश्चा' क. पाठः.
५. 'म', ६. 'संह' ख. पाठः.

निम्बाम्भःशर्कराक्षौद्रपानतस्यात् सुखी भवेत् ।

प्रलेपाच्च ।

कर्माणि विस्मापनकानि येषां नर्मादियुक्तान्यभिवाञ्छितानि ।
शर्माणि तेषां मनसो विधातुं मर्माणि जाप्यस्य विनिर्मितानि ॥ ७५½ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ तन्त्रसारे मन्त्रपादे नर्मपटल एकपञ्चाशः ।

---

अथ द्विपञ्चाशः पटलः ।

कलिप्रसङ्गकटुकामित्यादौ दर्शितो यतः ।
कलिर्युद्धमतो युद्धे जयोपायो निगद्यते ॥ १ ॥

सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यार्थं पञ्चमूर्तिर्यतः शिवः ।
ततस्तु पञ्चधा पञ्चत्रिंशत्तत्त्वमयं जगत् ॥ २ ॥

तत्रापि पञ्च भूतानि वायवश्चेति तन्मयः ।
सुपर्णः पक्षिराट् तेन निर्मिताः पञ्च पक्षिणः ॥ ३ ॥

ते पञ्चभूतादिमया लिप्यर्णमयविग्रहाः ।
प्राग्याम्याप्योत्तराशासु मध्यकोष्ठे च पञ्चधा ॥ ४ ॥

पञ्चभूतात्मकं चक्रं तत्र पञ्चापि पक्षिणः ।
चरन्ति पञ्चधा भावैः पञ्चभिश्च क्रमोत्क्रमात् ॥ ५ ॥

कण्टकः पिङ्गला चाथ कारण्डवकसारसौ ।
बर्हीं च पञ्च विहगाः पूर्वाद्यासु च मध्यतः ॥ ६ ॥

अआकडा वछभधा इईखमनजाः शढौ ।
उऊगपा झषणया एऐतरसघाः फथौ ॥ ७ ॥

ओऔचठा दलबहाः पक्षिणां कण्टकादिनाम् ।
अष्टावष्टौ पृथग्वर्णा विज्ञेयाः क्रमशो बुधैः ॥ ८ ॥

श्रीकण्ठानन्तविधयो दारुकाम्भोद्भिरण्डकाः ।
मीनैकनेत्राविल्यष्टौ कण्टकस्याक्षराणि हि ॥ ९ ॥

सूक्ष्मस्त्रिमूर्तिचण्डेशौ विषमेषचतुर्मुखाः ।
बकश्चैवार्धनारीशः पिङ्गलार्णाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

कर्णौ पाली बाहुमध्यं पार्श्वजेशौ च मज्जया।
उमाकान्तश्च कथिता वर्णाः कारण्डवस्य हि॥ ११ ॥

ओष्ठे चाषादिरक्ते च शिवोत्तमशिखी तथा।
डिण्डी शुक्लं च वर्णाः स्युरष्टौ सारसपक्षिणः॥ १२ ॥

दन्तस्थौ लाङ्गलीकूर्मावात्रिमांसं ततो नभः।
छगलण्डश्च वर्णाः स्युरष्टावेव तु बर्हिणः॥ १३ ॥

ऋॠऌॡचतुष्कं च स्वरान्त्यौ टङञान्तिमाः।
पक्षिचारविहीनानि तान्यनामादिकानि हि॥ १४ ॥

प्रतिपत्पूर्वास्तिथयो नन्दा भद्रा जया च रिक्ताख्या।
पूर्णा च पञ्चमी स्यात् पञ्च क्रमतस्तु कण्टकादीनाम्॥ १५ ॥

स्वतिथौ नाडीषट्कं प्रथमं भोक्ष्यन्ति कण्टकाद्यास्ते।
शेषाः क्रमेण विहगाः नाडीषट्काणि भुञ्जते क्रमशः॥ १६ ॥

बालः कुमारो राजा च वृद्धः स्वर्गत एव च।
भुक्तिर्यानं च राज्यं च कर्म सुप्तिस्तथा मृतिः॥ १७ ॥

नन्दादिष्वादिषट्काद्यमवस्थैवं तु पक्षिणाम्।
पञ्चस्वपि च षट्केषु तिथिपूर्वापरार्धयोः॥ १८ ॥

नन्दाद्यनाडिषट्के बालकुमारावनीशवृद्धमृताः।
श्येनः कारण्डवसारसशिखिनो यथाक्रमं कथिताः(?)॥ १९ ॥

पिङ्गलकारण्डवकौ सारसशिखिनौ च कण्टकः क्रमशः।
बालाद्या विज्ञेया द्वितीयषट्के तु पञ्चके विहगाः॥ २० ॥

कारण्डवसारसकौ शिखिकण्टकपिङ्गलास्तृतीये स्युः।
षट्के बालकुमारकनृपवृद्धमृताः क्रमेण विज्ञेयाः॥ २१ ॥

सारसकेकिश्येनाः पिङ्गलकारण्डकौ चतुर्थे स्युः।
षट्के बालकयौवननरपतिवृद्धा मृतश्च विहगवराः॥ २२ ॥

शिखिकण्टकशिशुलूकाः कारण्डवसारसौ च पञ्चैते।
बालकुमारकनरपतिजरठातीताश्च पञ्चमे षट्के॥ २३ ॥

अशनं यानं राज्यं सुप्तिर्मरणं च [illegible] ।
स्वस्याशाद्यं ज्ञेयं चक्रे शरकोष्ठके विहङ्गानाम् ॥ २४ ॥

नन्दायाः परभागे [illegible] केकी ।
सारस्योऽपि च भुङ्क्ते याति च राज्ये स्वपत्यपि प्रमृतः ॥ २५ ॥

प्रथमषट्के ।

पश्चाद् द्वितीयषट्के लूकश्येनौ च केकिसारसकौ ।
कारण्डवश्च बालो युवा नृपो वार्धकी च मरणगतः ॥ २६ ॥

पश्चात् तृतीयषट्के श्येनो बर्ही च सारसध्वाङ्क्षौ ।
लूकश्च बालयौवननृपवृद्धमृता क्रमेण ते विहगाः ॥ २७ ॥

पश्चाच्चतुर्थषट्के बर्ही बालो युवा तु सारसकः ।
कारण्डवस्तु नृपतिर्लूको वृद्धश्च कण्टकः प्रमृतः ॥ २८ ॥

पश्चात् पञ्चमषट्के सारसनामा युवा तु कारण्डः ।
राजा पिङ्गलसंज्ञः श्येनो वृद्धो मृतो मयूरः स्यात् ॥ २९ ॥

भद्राद्ये पिङ्गलध्वाङ्क्षौ सारसः केकिकण्टकौ ।
बालो युवा नृपो वृद्धो मृतश्चैव प्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥

तेषां कर्माण्यपि प्राग्वद् भुक्तिर्यानं च राजता ।
सुप्तिश्च मरणं चैवमन्येषां च समूहयेत् ॥ ३१ ॥

कारण्डाद्यं द्वितीये तु सारसाद्यं तृतीयके ।
मयूराद्यं चतुर्थे तु कण्टकाद्यं तु पञ्चमे ॥ ३२ ॥

भद्रायां नाडिषट्कायामित्यर्थः ।

भद्रापराद्यषट्के तु सारसध्वाङ्क्षपिङ्गलाः ।
श्येनश्च बर्हिणो ज्ञेया बालाद्यास्तु यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥

द्वितीये जलकाकाद्यं तृतीये पिङ्गलादिकम् ।
चतुर्थे कण्टकाद्यं च मयूराद्यं च पञ्चमे ॥ ३४ ॥

अपरार्धषट्केष्वित्यर्थः ।

---

१. 'तत्राद्ये' ग. पाठः. २. 'भ', ३. 'णं तैल' ख. पाठः.

जयाद्यषट्के कारण्डः सारसो बर्हिकण्टकौ ।
उलूकश्चैव बालाद्या भुक्तियानादिकर्मभिः ॥ ३५ ॥

जयाद्द्वितीयषट्के तु सारसो बर्हिकण्टकौ ।
पिङ्गला जलकाकश्च बालाद्यास्ते स्वकर्मभिः ॥ ३६ ॥

बर्हिणाद्यं तृतीयं तु चतुर्थं कण्टकादिकम् ।
पञ्चमं पिङ्गलाद्यं स्याज्जयायाः पृथगीरितम् ॥ ३७ ॥

जयापूर्वार्धस्य ।

जयापरार्धाद्यषट्के बर्हिसारसवायसाः ।
पिङ्गलाकण्टकौ चापि बालाद्याः कर्मभिः स्वकैः ॥ ३८ ॥

जयापरद्वितीयस्य सारसध्वाङ्क्षपिङ्गलाः ।
कण्टकश्च मयूरश्च बालाद्याः स्वस्वकर्मभिः ॥ ३९ ॥

जयापरतृतीयस्य कारण्डोलूककण्टकाः ।
बर्हिसारसकौ चापि बालाद्याः कर्मभिः स्वकैः ॥ ४० ॥

जयापरचतुर्थस्य पिङ्गलश्येनबर्हिणः ।
सारसश्चाथ कारण्डो बालाद्या भुक्तिपूर्वकैः ॥ ४१ ॥

जयापरशरांशस्य श्येनबर्हिणसारसाः ।
तद्वत् कारण्डकोलूकौ बालाद्याः प्रोक्तकर्मभिः ॥ ४२ ॥

रिक्तायाः पूर्वषट्कस्य सारसः केकिकण्टकौ ।
उलूककाकौ बालाद्या भुक्तियानादिकर्मभिः ॥ ४३ ॥

मयूराद्यं द्वितीयं तु कण्टकाद्यं तृतीयकम् ।
लूककारण्डवाद्यौ तु रिक्तायाः शिष्टभागयोः ॥ ४४ ॥

बालाद्या इति यावत् ।

रिक्तापरार्धषट्कस्य श्येनबर्हिणसारसाः ।
ध्वाङ्क्षोलूकौ च विज्ञेयाः प्राग्वद् बालादिकर्मभिः ॥ ४५ ॥

रिक्तापरद्वितीयादिषट्कानां बर्हिसारसौ ।
कारण्डपिङ्गलाश्येना बालाद्या भुक्तिपूर्वकैः ॥ ४६ ॥

रिक्तापरार्धस्येति यावत् ।

पूर्णाप्रथमषट्कस्य बर्हिकण्टकपिङ्गलाः ।
जलकाकः सारसश्च बालाद्यास्ते प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥
तद्द्वितीयादिषट्कानां कण्टकोलूकवायसाः ।
सारसश्चैव पूर्णाया बालाद्याः प्रोक्तकर्मभिः ॥ ४८ ॥
पूर्णापरार्धाद्यषट्के पिङ्गलश्येनबर्हिणः ।
सारसो जलकाकश्च बालाद्या व्युत्क्रमेण हि ॥ ४९ ॥
द्वितीयषट्कादिकानां पूर्णायाः कण्टकः शिखी ।
सारसो वायसश्चाद्या ज्ञेया बालादयः क्रमात् ॥ ५० ॥
यस्याभिधानाद्यवर्णस्य पक्षी राज्यं करोति चेत् ।
विजयो युधि वादे वा कुमारो मध्यमं फलम् ॥ ५१ ॥
बाले फलं स्यादधमं वृद्धे नाशो मृते मृतिः ।
राज्ये श्रेष्ठफलं याने मध्यं भुक्तौ तथाधमम् ॥ ५२ ॥
स्वापे क्षयो मृते मृत्युरेवं ज्ञेयं विचक्षणैः ।
सारसो बलवान् काकात् तस्माल्लूकस्ततः शिखी ॥ ५३ ॥
मयूराद् बलवान् श्येनस्त्वेवं विद्याद् बलाबलम् ।
मयूरश्येनकारण्डसारसा बलिनो दिवा ॥ ५४ ॥
उलूकस्तु बली रात्रौ सर्वे सन्ध्याबलाश्च ते ।
तिथीनां पूर्वभागस्तु दिवा रात्रिश्च पश्चिमः ॥ ५५ ॥
तत्तत्कालबलं ज्ञात्वा धीरो युद्धे प्रवर्तयेत् ।
पक्षिचारेण विज्ञेयं जीवितं मरणं रुजा ॥ ५६ ॥
लाभालाभागमापायकार्याकार्यं शुभाशुभम् ।
राजा राज्यं च सर्वत्र श्रेष्ठं यानकुमारकौ ॥ ५७ ॥
मध्यमौ भुक्तिबालौ चेदधमं प्रस्तुतं फलम् ।
स्वापे वृद्धे च तन्नाशो मृतौ च मरणे वधः ॥ ५८ ॥

तत्तत्कार्यानुकूल्येन फलं चैवं समूहयेत्।
गरुडश्चौतुसिंहौ श्वा सर्पमूषिकदन्तिनः॥ ५९॥

शशश्चैन्द्रादिदिक्संस्थास्तेषां विद्याद् बलाबलम्।
अकाराद्यष्टवर्गा ये दिक्षु तार्क्ष्यादिरूपिणः॥ ६०॥

तत्तदक्षरपूर्वाख्या येषां तेऽपि तदात्मकाः।
तार्क्ष्यसर्पौ मिथः शत्रू तथा मार्जारमूषिकौ॥ ६१॥

गजसिंहौ शशश्वानौ परस्परविरोधिनौ।
तार्क्ष्यः सर्पं जयेत् सर्पो न तार्क्ष्यं तार्क्ष्यभागतः॥ ६२॥

सर्पोऽपि तार्क्ष्यं जयति प्रायः सर्पदिशि स्थितम्।
एवन्तु सिंहगजयोरोतुमूषिकयोरपि॥ ६३॥

शशकुक्कुरयोश्चापि विद्याद् भूमेर्बलाबलम्।
तार्क्ष्योतुसिंहश्वानस्तु बलिनः शत्रुयायिनः॥ ६४॥

शिष्टाः सर्पादयः स्थाने प्राप्नुवन्ति पराभवम्।

स्थानव्यत्यस्तं फलमिति केचित्।

नामाद्यर्णेषु दीर्घास्तु कला येषां बलाधिकाः॥ ६५॥

ह्रस्वाः कलास्तु यन्नाम्नामादौ हीनबलास्तु ते।
तार्क्ष्यादिवर्गवर्णानि येषां नामादिकानि तु॥ ६६॥

ते ते तार्क्ष्यादिका ज्ञेयास्तैस्तैर्विद्याद् बलाबलम्।
द्वन्द्वयुद्धेऽथवा युद्धे ययोर्वा नृपयोर्द्वयोः॥ ६७॥

तार्क्ष्यादिजातिं च दिशो ज्ञात्वा युद्धानि कारयेत्।
शुक्ले चतुर्थ्यामष्टम्यामेकादश्यां च पर्वणि॥ ६८॥

इन्द्वग्निमुनिवेदानां विष्टिर्यामेषु दिक्षु च।
कृष्णे तृतीये सप्तम्यां दशम्यां भौतिके दिने॥ ६९॥

---

१. 'क्ले', २. 'तम्' ख. पाठः. ३. 'द्याभू' ग. पाठः. ४. 'ष्टाः शर्वाद',
५. 'नि' ख. पाठः:

ऋतुवेदाग्निचन्द्राणां यामदिक्षूदयः स्मृतः ।
पुनर्नयो नरो नागो नृपो नारी नगं पुनः ॥ ७० ॥
तत्कालविष्टिनाडी स्याद् वर्ज्याः शुक्लादितः क्रमात् ।
[1]यस्यां तिथौ च यामे च विष्टिर्भानो[2]र्दिशि स्थिता ॥ ७१ ॥
तस्यां तस्यां तिथौ विष्ट्यां चण्डराहुः समः स्थितः ।
अर्कोदयादि नित्यं तु प्रागाद्यासु प्रदक्षिणम् ॥ ७२ ॥
अर्कारगुरु[3]सौम्यानां सितसौरीन्दुभोगिनाम् ।
उदयः सैंहिकेयस्य प्रातरैशे स्थितिः स्मृता ॥ ७३ ॥
अर्धार्धयाममष्टासु दिक्षु तस्याप्रदक्षिणम् ।
स्थितिरास्तमयाद् रात्रावपि राहोर्गतिः समा ॥ ७४ ॥
अपि सांवत्सरो राहुर्दिक्षु मासेषु तिष्ठति ।
प्राच्यां सिंहाजचापेषु याम्ये मीनक[4]गोस्थितिः ॥ ७५ ॥
यमतौलिघटेष्वाप्ये सौम्ये कर्किझषालिषु ।
यस्मिन् राशौ स्थितः सूर्यो मासराहुश्च तत्स्थितः ॥ ७६ ॥
तस्माज्जयार्थी विष्ट्याश्च राहोर्नाभिमुखं व्रजेत् ।
राहोरपरभागस्थो युध्यन् विजयते रिपून् ॥ ७७ ॥
ब्रह्माण्याद्यास्तु योगिन्यः पार्थरम्भाम्बुशान्तिदैः ।
क्रमात् प्रागादिर[6]व्यादिवह्निदुर्गोतिथिक्रमात् ॥ ७८ ॥

स्थिता इति यावत् ।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराह्यैन्द्री च चामुण्डी महालक्ष्मीश्च मातरः ॥ ७९ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डो (भी?रो)श्चणोन्मत्तकौ तथा ।
कपाली भीषणस्तद्वत् संहारश्चाष्ट भैरवाः ॥ ८० ॥
ते चाष्टमातृभिः सार्धं [5]तिथिवारवशात् क्रमात् ।
तिष्ठन्ति भीषणाकाराः सत्रिशूलकपालकाः ॥ ८१ ॥

---

१. 'त्व' ग. पाठः. २. 'ष्टिमार्गे दिशि' ख. पाठः. ३. 'रुसैन्यानां' ग. पाठः. ४. 'शो', ५. 'ह्म' ख. पाठः. ६. 'प्या' ग. पाठः.

युद्धयात्रादिकृत्येषु मातृभैरवसंमुखम् ।
गच्छन् विनश्यति क्षिप्रं तच्छूलाभिमुखं तथा ॥ ८२ ॥
तस्माद् राहोश्च योगिन्या भैरवस्य च संमुखम् ।
आयुषोऽर्थी जयार्थी वा न युद्धाय व्रजेद् बुधः ॥ ८३ ॥
रुद्राणां योगिनीनां च भुजे शूलं तु दक्षिणे ।
वामे कपालं युद्धाय शूलभागं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥
वामभागकपाले तु युद्धाय जयदा गतिः ।
शरीरेषु मनुष्याणां नक्षत्रेषु ग्रहाः स्थिताः ॥ ८५ ॥
ग्रहेष्वपि च भौमस्य विज्ञेया विग्रहे स्थितिः ।
जन्मादितो मुखे त्रीणि दृशोश्चत्वार्यथो गले ॥ ८६ ॥
चतुष्कं भुजयोः षट्कं पार्श्वे द्वावष्ट पादयोः ।
कुजास्थितर्क्षमङ्गं यत् तत्र शस्त्रक्षतं ध्रुवम् ॥ ८७ ॥
तस्मात् कुजाश्रिताङ्गं यत् तत् प्रयत्नेन गोपयेत् ।
षड्व्योमनामसंयुक्तमष्टपत्राम्बुजोदरे ॥ ८८ ॥
तारश्च लिङ्किकाकुण्डे ठद्वयान्तं दलेष्वपि ।
भूमण्डलं बाह्यतोऽग्नेः षट्कोणेषु षडायतान् ॥ ८९ ॥
साध्यार्णान्तरितानग्नेर्वर्णा ठारा(ङ्गा?)दिकान् लिखेत् ।
इन्दुबिन्दुद्वयस्याग्निः साग्निः सर्गं वियल्लिखेत् ॥ ९० ॥
संवर्तैः सर्गिभिर्बाह्ये वेष्टयेचान्तरालयोः ।
बाह्ये लिप्यावृतं त्वेतद् बिन्दुमण्डलवेष्टितम् ॥ ९१ ॥
पूजितं गन्धपुष्पाद्यैर्वरिपट्टमिदं धृतम् ।
क वा ललाटे रक्षेत् तं युद्धे शत्रुं च मोहयेत् ॥ ९२ ॥
एतद् युद्धक्षितौ न्यस्तं स्तम्भयेत् परवाहिनीम् ।
सञ्जीवनाख्यं चक्रं च नारसिंहं सुदर्शनम् ॥ ९३ ॥
धृतं शिरसि शस्त्रेभ्यो रक्षेच्च विजयावहम् ।
निहतारिः शरो यः स्यात् तं गृहीत्वा सुनिश्चितम् ॥ ९४ ॥
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां वलयं तेन कारयेत् ।

वज्री लाङ्गलिका दन्ती त्रिशूली श्रीश्च मोहिनी ।
राजमोहिनिका काकभक्ष्या प्रतिपदादिषु ॥ ९६ ॥

ब्रह्माण्यादिक्रमादाप्ता पृथक् पिष्टा हिमाम्भसा ।
समस्ता वा तनौ लिम्पेद् युद्धकालेऽस्त्रवारिणी ॥ ९७ ॥

नमो भगवद्भ्यः सर्वास्त्रविसर्गेभ्यो मां रक्षन्तु भगवन्तः! ठठ ।

लक्षजाप्येन मन्त्रोऽयं साधितः शस्त्रवारणः ।
चन्दनेन्दुजपाराजीविदारीकुष्ठकागरून् ॥ ९८ ॥

हिमाम्भसा समालिप्य तत्काले शस्त्रवारणम् ।
नागकेऽस्त्रि[1](?) शिखासूतं (जिंवी!नीवा)राङ्घ्रिश्च वारयेत् ॥ ९९ ॥

नागो भूनागः ।

श्रीपर्णिमूलं प्राचीनं कृत्तिकाचं शिरः[2]स्थितम् ।
भुजबद्धं च शस्त्राणि वारयेन्नात्र संशयः ॥ १०० ॥

इन्द्रवल्लीशिफाशुक्ले पिबेत् क्षीरेण मस्तके ।
करे धृतं मृणालं वा श्वेतं क्षीरेऽस्त्रवारणम् ॥ १०१ ॥

पीतमिति यावत् ।

सितापराजितामूलं नन्द्यावर्तं मृणालकम् ।
भूतवृक्षस्य च शिफाः[3] सर्वं बस्ताम्बुपेषितम् ॥ १०२ ॥

तत्कालेऽस्त्रप्रलेपेन सर्वशस्त्राणि वारयेत् ।
श्वेतपुङ्खाशिफास्यस्था बाणपातं निवारयेत् ॥ १०३ ॥

संमोहिनीशिफा तद्वत् खड्गपातं निवारयेत् ।
मावीजं दण्डभृच्चण्डो डान्तः सोष्ठोऽथ दंसनम् ॥ १०४ ॥

वाग्बीजमग्निजायान्तं रक्तसूतिनिवर्तकम् ।
जपित्वा वाणिशब्देन पानाच्च जपिताम्भसाम् ॥ १०५ ॥

---

१. 'स्ति' ग. पाठः. २. 'रोस्यतम्', ३. 'खाः', ४. 'ढा' ख. पाठः.

रुधिरं निवर्तयेत् ।

हस्तर्क्षे लाङ्गलीमूलं गृहीत्वालिप्तविग्रहः ।
द्वन्द्वयुद्धे जयेच्छत्रुं [1]परेण [illegible] ॥ १०६ ॥
शिफया चेन्द्रवारुण्याः वरुणस्य च पिष्टया ।
लिप्ताङ्गः कुक्कुटं युद्धे कुक्कुटो जयति स्फुटम् ॥ १०७ ॥
मार्जारस्नेहतच्चर्म[2]धूपितः कुक्कुटो जयेत् ।
शिफा शिखिशिखायाः स्यात् पादे जैत्री मुखे स्थिता ॥ १०८ ॥
शस्त्रवारणकृन्मूलं [illegible] मुखे स्थितम् ।
तदेव तण्डुलाम्भोभिः पीतं यावन्न जीर्यते ॥ १०९ ॥

शस्त्राणि वारयतीति यावत् ।

पुष्यो[3]द्धृतं च पाठाया मूलं वक्त्रेऽस्त्रवारणम् ।

*श्वेतपुङ्खाशिफागतो बाणं निवारयेत् ।

श्मशानचैत्यवल्मीकमार्गदेवालयादिषु ॥ ११० ॥
अशुद्धदेशे चोत्पन्ना ग्राह्या नौषधयो बुधैः ।
श्वेतापराजिताश्वेतपुङ्खामूले + + + + ॥ १११ ॥
लोष्टस्योभयतो बद्धे शस्त्रस्तम्भकरे (करे) ।

करो दक्षिणः ।

सस्त्रीशलभखद्योतचूर्णगर्भितवर्तितः ॥ ११२ ॥
कृष्णगोराज्यमध्याक्तनेत्रो रम्भायते रिपुम् ।
[4]काकतुम्बिनिकामूलं पुष्ये तु भुजयोर्द्वयोः ॥ ११३ ॥
बन्धनाच्छरपातांश्च शस्त्राणि च निवारयेत् ।
एकरात्रोषितः शुद्धः सायं पूर्वेद्युरोषधिम् ॥ ११४ ॥
संप्राप्य रक्षां कृत्वा तु प्रातर्गृह्णातु मन्त्रतः ।
एष राजा बलीवर्दाश्चित्रवीर्यो महाबलः ॥ ११५ ॥

---

१. 'पत्रेण', २. 'धूपयेत् कु' ग. पाठः. ३. 'ष्ये धृतं' ख. पाठः
४. 'कटुतुम्बिनिकामूले पु' ग. पाठः.

तेन बद्धेन बद्धासि तिष्ठात्रैव तु मा ग(तः!मः) ।

ठठ ।

इति रक्तसूत्रेण बन्धयेत् । सुप्रभे ठठ । तण्डुलधान्यमुष्टिं प्रक्षिप्य । ओम्

श्वेतपुष्पे! महानीले! शुभे! चन्दनगन्धिनि! ॥ ११६ ॥
त्वामोषधिं प्रपद्येऽहं त्राहि मां महतो भयात् ।
मा उं(प!त्प)तेर्मा निपतेर्मा च तेजो व्यतिक्रमेत् ॥ ११७ ॥
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि! मम कार्यकरी भव ।
मम कार्ये कृते पश्चात् स्वर्गलोकं गमिष्यसि ॥ ११८ ॥
राक्षसानां पिशाचानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ।
तेषां बध्नामि चक्षूंषि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥ ११९ ॥

गण्डे मुरिते मालिनि चण्डिके गदापाणिनि स्तम्भिनि मोहिनि नमोऽस्तु ते ठठ ।

एवं तामोषधिं मन्त्रैरुपस्थाय ततः खनेत् ।

अमुकोपरि ठठ ।

अनेन निखनेद् भूमिम्

ओं नमः सर्वौषधीभ्यः ।

ऊर्जावन्तो भविष्यथ ॥ १२० ॥

स्ववीर्यैः कृत्स्नीकुरुध्वं दुरितानि हन दह पच मारय (स!) नमस्तुभ्यं नमः इति गृह्णीयात् ।

अनेन तु विधानेन गृह्णीयादोषधिं बुधः ।
तच्छक्तिरन्यथा स्वल्पा भवेद् दैत्यादिभिर्हृते ॥ १२१ ॥
एका वाप्योषधिः सम्यग् गृहीता मिश्रिता परैः ।
औषधैर्यच्छति बलमन्तरायाच्च रक्षति ॥ १२२ ॥

शस्त्रवारणाधिकारः ।

---

१. 'ल', २. 'दावर्णिनि' ग. पाठः.